CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दी के निर्गुण संतकाव्य में संगीत तत्व

डॉ. सीता बिम्ब्रॉ

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दी का निर्गुण संतकाव्य, संगीत की मूल भित्ति पर प्रतिष्ठित है, इसलिये शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत तथा सुगम शास्त्रीय संगीत, लोकसंगीत, संगीत की समस्त विधाओं में, संतकवियों के पद सबसे अधिक गाए जाते हैं। लेखिका ने, संतों के पदों के अन्तर्गत मिलने वाले विवेचन राग, ताल, वाद्य, प्रबंध-धातु, प्रबधांग, प्रबंध भेद, गेय छंदों एवं विभिन्न गायन शैलियों आदि संगीत तत्वों की दृष्टि से, प्रशंसनीय खोज द्वारा, पुस्तक में, दर्शाया है कि संतकाव्य एक समृद्ध गेय साहित्य है।

खोजपूर्ण रचना में, हिन्दी के निर्गुण भक्तिधारा के, 13वीं शताब्दी से लेकर, 16वीं शताब्दी तक के कालक्रम के, संगीत की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सात प्रतिनिधि कवियों, जयदेव, नामदेव, कबीर, नानक, दादू, गुरु अर्जुनदेव तथा सुंदरदास के काव्य का बड़ा ही रोचक एवं अपूर्व अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

उक्त परिप्रेक्ष्य में, संतकाव्य का ऐसा गहन अध्ययन अद्यावधि सर्वथा उपेक्षित तथा अपृष्ट विषय रहा है। इस मौलिक पुस्तक से, संगीत की दृष्टि से संतकाव्य, हिन्दी के सगुण भक्तिकाव्य के समकक्ष अवस्थित हो गया है।

इस कृति से, अद्यावधि अनचीन्हे हिन्दी-साहित्य के महान वाग्येकार कवियों के काव्यों के वांछित अध्ययन के नवल आयाम खुलेंगे। साहित्य और संगीत, दोनों क्षेत्रों में इस खोजपूर्ण रचना का भारी स्वागत होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

S.3

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माँ भारती के मंदिर की दीपशिखा,
ज्ञान की सतत आलोकवाही,
उर्मिला बहन को
यह स्नेहोपहार,

बहन,
[illegible] मिश्रा

दिनांक: २६.२.२०९६.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दी के निर्गुण संतकाव्य में संगीत-तत्त्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेखिका की अन्य पुस्तकें

1. खादी-दर्शन
2. आस्था के स्वरः भाग-I
3. आस्था के स्वरः भाग-II
4. लहर-पारदर्शिका
5. सप्तव्रत
6. छंद-प्रवेशिका
7. रस-प्रवेशिका
8. अलंकारों का चार्ट
9. भक्ति
10. कर्तव्य
11. नारीः समस्या और समाधान
12. संपूर्ण रामायण
13. सूक्ति-सुधा
14. आज़ादी के इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठः बाबा लालसिंहजीः व्यक्तित्व और कर्तृत्व
15. अन्त्याक्षरी-मंजूषा
16. तुलसी-वाङ्मय-अन्त्याक्षरी
17. संगीत के परिप्रेक्ष्य में मैथिलीशरण गुप्त का काव्यः परंपरा और आधुनिकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दी के निर्गुण संतकाव्य में संगीत-तत्त्व

डॉ. सीता बिम्ब्रॉ

राधा पब्लिकेशन्स
नई दिल्ली—110002

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

© लेखिका

पहला संस्करण : 2014

ISBN : 978-81-7487-900-4

ISBN 81-7487-900-5

9 788174 879004

राधा पब्लिकेशन्स

4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज,

नई दिल्ली-110002

फोनः 23247003, 23254306

Email : radhapublications@rediffmail.com

Website : www.radhapublications.com

श्री नितिन गर्ग द्वारा राधा पब्लिकेशन्स के लिए प्रकाशित तथा
एशियन ऑफसेट प्रिंटर्स, मौजपुर, शाहदरा, दिल्ली में मुद्रित।

Hindi Ke Nirgun Santkavya Mein Sangeet Tatva
by Sita Bimbrahw

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समर्पण

'जे पर भनिति सुनत हरषाहीं।
ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं।'

x x x

४७ वर्षों से अनचीन्ही पड़ी,
शोध-रचना को,
पहचान दिलानेवाले
सरस्वती-माँ के यशस्वी पुत्र
अपने अनन्य डॉ. धर्मेंद्रनाथ भाई को,
पूजा का यह चरू भेंट।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशकीय

मैंने डॉ. सीता बिम्ब्रॉ की 'हिंदी के निर्गुण संतकाव्य में संगीत तत्व'; पीएच. डी. के शोध-प्रबंध के आधार पर लिखी पुस्तक से पूर्व, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में संगीत के गड़े ख़ज़ाने को बाहर निकालकर, सार्वजनिक बना देनेवाली निराली कृति, **'संगीत के परिप्रेक्ष्य में, मैथिलीशरण गुप्त का काव्यः परंपरा और आधुनिकता'** प्रकाशित की। मेरा उत्साह बढ़ा। मैंने पाया कि हिंदी के सगुणोपासक कवियों के संगीत-पक्ष पर तो विपुल साहित्य, हिंदी में उपलब्ध है परन्तु अनहद नाद के उपासक कवियों के काव्य में शास्त्रीय-संगीत की समस्त विविधताओं को खोज निकालना, एक विरल कार्य है। यह सोचकर, मैंने सहर्ष यह पुस्तक प्रकाशित कर दी।

मैं गौरव के साथ यह कह सकता हूँ कि 'हिंदी-साहित्य में संगीत' जैसे सरस परंतु उपेक्षित पड़े विषय के प्रेमियों के लिए, उत्तरोत्तर खोज-हेतु, मेरा यह प्रकाशन, दिशा-दर्शक बनेगा।

संगीतज्ञा लेखिका ने १३वीं शताब्दी से लेकर, १६वीं शताब्दी तक के कालक्रम के ७, प्रतिनिधि कवियों, जयदेव, नामदेव, कबीर, नानक, दादूदयाल, गुरु अर्जुनदेव तथा सुंदरदास के पदों में अन्तर्निहित संगीत तत्वों का ऐसा संधान किया है, जैसा अभी तक देखने को नहीं मिला।

हिंदी, संस्कृत और अंग्रेज़ी के अतिरिक्त, लेखिका ने पंजाबी और बंगला सीखकर, उनके प्रकृष्ट विशिष्ट ग्रंथों का अध्ययन करके, प्रमाणित किया है कि पदों के अंतर्गत मिलने वाले विभिन्न राग, ताल, वाद्य-नाम; प्रबंध-धातु; प्रबंधांग; प्रबंध-भेद, छंद एवं गायनशैलियों के वैविध्य आदि संगीत-तत्वों की दृष्टि से; संतकाव्य, समृद्ध गेय साहित्य हैं। संगीत के क्षेत्र में इसके प्रचार की महती आवश्यकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपक्रम

हिंदी का निर्गुण संतकाव्य, संगीत की मूल भित्ति पर प्रतिष्ठित है। संतों की साधना में नाद के आहत एवं अनाहत, उभयपक्षों की साधना का समावेश रहा है, जिसकी विस्तृत विवेचना प्रस्तुत शोधप्रबंध के अंतर्गत की गई है। शास्त्र-ग्रंथों में संगीत का मूल विभाजन 'मार्ग' और 'देशी' नाम से मिलता है। संगीत के इस रूप-द्वय का अस्तित्व, निर्गुण-संतकाव्य में, गेय पदों की रचना के क्रमशः 'प्रयोजन' (महोदय, Great Elevation) या नियताभ्युदयप्रदः अर्थात् निश्चित रूप से आत्मोत्थान करने वाला, मार्ग संगीत का यह लक्ष्य ही निर्गुण-मार्गी संतों की पदरचना का ध्येय है और 'स्वरूप' भी, संतों के पदों के साथ नामोल्लेख रूप में निर्दिष्ट राग-तालनामादि 'देशी' संगीत का स्वरूप है। संगीत के समस्त प्रमुख तत्वों की दृष्टि से संतकाव्य को उच्चकोटि के गेय-साहित्य के अंतर्गत स्थान दिया जा सकता है। पदों के अंतर्गत मिलने वाले विभिन्न राग, ताल, वाद्य, प्रबंधधातु, प्रबन्धांग, प्रबन्धभेद, छंद एवं गायनशैलियों आदि संगीत-तत्वों की दृष्टि से, संतकाव्य; एक समृद्ध गेय साहित्य सिद्ध होता है; किंतु उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में संतकाव्य का सर्वांगीण अध्ययन अद्यावधि नितान्त उपेक्षित, गर्हित एवं अस्पृष्ट विषय रहा है।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में संगीत की दृष्टि से अतिशय महत्त्वपूर्ण इस भक्तिधारा के 13वीं शताब्दी से लेकर 16वीं शताब्दी तक के कालक्रम के 7 प्रतिनिधि संतकवियों (जयदेव, नामदेव, कबीर, नानक, दादू, गुरु अर्जुनदेव और सुंदरदास) के काव्य का विशिष्ट अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

हिंदी-काव्य-साहित्य में निहित संगीत-तत्वों के विश्लेषणात्मक अध्ययन को लेकर, हिंदी में अद्यावधि जो शोधकार्य हुआ है, वह अत्यल्प एवं नितांत अपूर्ण है।

लगभग सात वर्ष पूर्व लखनऊ विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत डॉ. उषा गुप्ता का शोध प्रबंध 'हिंदी के कृष्णभक्ति कालीन साहित्य में संगीत' स्वीकृत एवं प्रकाशित हुआ। सन् 1962 में डॉ. उमा मिश्रा का दिल्ली विश्वविद्यालय से स्वीकृत शोधप्रबंध 'काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध' (1700 से 1900 तक) प्रकाशित हुआ। लगभग तीन वर्ष पूर्व डॉ. हेमलता भटनागर का शोधप्रबंध 'हिंदी के शृंगारयुग में संगीत काव्य' दिल्ली-विश्वविद्यालय से स्वीकृत हुआ।

उक्त प्रबन्धों का यद्यपि मेरे शोधप्रबन्ध के विषय से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है, तथापि उपर्युक्त किसी भी प्रबंध में, संगीत की दृष्टि से विषयों का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया। प्रबन्ध-धातु, प्रबन्धांग तथा प्रबन्धभेदादि की दृष्टि से, गेयकाव्य का विश्लेषण, अद्यावधि सर्वथा उपेक्षित रहा है।

हिंदी के निर्गुण संतकाव्य को अभी तक संगीत की दृष्टि से बहुत हेय समझा जाता रहा है।[1] अतः यह विषय आजतक अस्पृष्ट विषयों की सूची में ही सन्निविष्ट रहा है, परिणामतः संगीत के परिप्रेक्ष्य में संतकाव्य के गवेषणामूलक अध्ययन को लेकर अबतक कोई स्वतंत्र शोधग्रंथ नहीं लिखा गया।

जिन पुस्तकों में उपर्युक्त विषय पर प्रसंगवश कुछ चर्चा हुई है, उन ग्रंथों के नाम निम्नांकित हैं।

डॉ. सुरेंद्रसिंह कोहली कृत 'ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ़ आदिग्रंथ'; डॉ. धर्मपाल मैनी कृत 'श्री गुरुग्रंथःएक परिचय', परशुराम चतुर्वेदी कृत 'संतकाव्य' और 'कबीर साहित्य की परख' ('कबीर साहित्य में संगीत' शीर्षकस्थ अंतिम अध्याय) पुस्तकें, डॉ. चित्तरंजन ज्योतिषी का काशी हिंदू विश्वविद्यालय से डी. म्यूज़ के लिए स्वीकृत (अभी अप्रकाशित) शोधप्रबन्ध 'रागकल्पद्रुम का विश्लेषणात्मक अध्ययन; उमेश जोशी कृत 'भारतीय संगीत का इतिहास', त्रिलोकीनारायण दीक्षित की 'संतदर्शन' आदि।

इस प्रकार के गुरुमुखी लिपि में लिखित प्रमुख स्वतंत्र-ग्रंथ निम्नांकित कहे जा सकते हैं।

बाणी बिऔरा (डॉ. चरणसिंह कृत), गुरमत संगीत पर हुणतक मिली खोज (सम्पादित), गुरछंद दिवाकर (भाई कान्हसिंह), गुरुबाणी संगीत (सरदार ज्ञानसिंह), गुरुमत संगीत निर्णय (डॉ. चरण सिंह) रागमाला निर्णय (शमशेरसिंह अशोक) तथा श्री गुरु ग्रंथ कोष (ज्ञानी लालसिंह) आदि।

गुरुमुखी लिपि में संतकवियों के संगीत-पक्ष पर लिखे गए कुछ फुटकर लेख 'पंजाबी दुनिया' आदि पत्रिकाओं में यत्र-तत्र प्रकाशित हुए हैं।

संतों के पदों के पारम्परिक गेय-स्वरूप के ज्ञान की दृष्टि से 'गुरुबाणी संगीत' ग्रंथ, अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ में संत नामदेव, कबीर, नानक और गुरु अर्जुनदेव, हमारे विवेच्यकाल के उक्त चार कवियों के पदों की पारम्परिक[2] स्वरलिपियाँ मिलती हैं। पुस्तक-लेखक ने वंशानुगत क्रम से स्वयं को मर्दाना का वंशज लिखा है और अल्पायु से ही दरबार साहिब, अमृतसर में उन्होंने अपने 'शबद' गायन का उल्लेख भी किया है।[3]

उक्त पुस्तक का प्रबन्ध में मैंने संतों के उन विभिन्न रागों में निबद्ध पदों के स्वरूप दिखाने में उपयोग किया है, जोकि आज शास्त्रीय संगीत में या तो नितांत अप्रचलित हो गए हैं अथवा जिनका स्वर-स्वरूप अधुना प्रचार से नितांत अथवा किंचित् भिन्न प्रतीत हुआ है।

कृष्णानन्द व्यासदेव द्वारा सम्पादित 'रागकल्पद्रुम' ग्रंथ (तीन खंड) जिसे कि संगीत का विश्वकोष कहा जा सकता है, संगीत के परिप्रेक्ष्य में हिंदी-साहित्य का अध्ययन करने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है। 19वीं शताब्दी में संपादित इस ग्रंथ में शास्त्रीय-संगीत में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रचलित भणितासाहित्य एवं भणितारहित (अज्ञातनामा कवियों अथवा वाग्गेयकारों के) अनेक पदों ('चीज़ों) का संकलन मिलता है, और विभिन्न राग-तालों में बद्ध हिंदी के सगुणभक्तों के पदों के साथ-साथ, निर्गुण-संतों के पदों को भी विविध राग-ताल-नाम-सहित स्थान मिला है। रागकल्पद्रुम का संकलन गायक-वर्ग में से प्रस्तुत होने के कारण, प्रमुख निर्गुण संतकवियों के पदों के साथ रागनाम प्रचुर हैं, जबकि पदसंग्रहों की मूल प्रतियों में रागनाम अत्यल्प संख्या में मिलते हैं। विशेषतः कबीर के 'कबीर-बीजक' एवं सुंदरदास के 'सुंदरविलास' की मूल प्रतियों में जहाँ पदों के साथ कहीं भी रागनाम का उल्लेख नहीं मिलता, वहाँ रागकल्पद्रुम में इन पदों के साथ प्रायः 70 रागों के नाम अंकित हैं। इससे यह व्यंजित होता है कि ये पद उस काल में या तो सामान्य गायकवर्ग में विशेष प्रचलित रहे होंगे अथवा कोई निर्गुणपंथी ही विशेष गायक रहे होंगे, जिन्होंने संप्रदाय के अनुराग से, समस्त पदों को रागतालबद्ध कर लिया होगा। इस प्रकार यह कहना ग़लत न होगा कि उक्त ग्रंथ के राग-संबन्धी उल्लेख का आधार गायकवर्ग में प्रचलित परम्परा पर ही रहा होगा। इसी दृष्टिकोण से, निर्गुण कवियों के पदों में राग, ताल और गायनशैली के अध्ययनार्थ (उक्त) ग्रंथ का मैंने प्रबंध में सम्यक् उपयोग किया है और ग्रंथ के अध्ययन-हेतु मैंने बंगला सीखी।

इस प्रकार गुरुबाणी संगीत तथा रागकल्पद्रुन, ग्रंथद्वय में, संतों के पदों के साथ विभिन्न राग-ताल-नामों एवं गायनशैलियों का उल्लेख तथा संकेत मिलता है। उनके अध्ययन द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निर्गुण संतों में सगुण भक्तकवियों की कीर्तनशैली की भाँति, किसी स्वतंत्र गायन-शैली का प्रचार तो नहीं था, किंतु मध्यकाल में एवं अधुना प्रचलित ध्रुवपद, ख्याल तथा ठुमरी तीनों गायनशैलियों का संतों के संप्रदायों में यथेष्ट प्रचार अवश्य रहा है। इसके अतिरिक्त गुरुद्वारों में निर्गुण संतों के पदों (आदिग्रंथ में संगृहीत पदों को) को पड़ताल, पउड़ी ताल आदि विशेष तालों में, गायन का प्रचार रहा है। इन तालों में गाए जाने वाले पदों को 'शास्त्रीय सुगम संगीत' के अंतर्गत रखा जा सकता है। संतों के पदों में मिलनेवाले संगीत-तत्वों के अंतर्गत, विविध गायनशैलियों का विस्तृत विवरण, प्रस्तुत प्रबंध के पंचम अध्याय में क्रमबद्ध दिया गया है।

इस उपक्रम में एक बात का यहाँ निर्देश करना अप्रासंगिक न होगा कि 'हिंदी-साहित्य में संगीत' के विषय को लेकर लिखी पुस्तकों में अनेक भ्रांत धारणाएँ मिलती हैं।

डॉ. हेमलता भटनागर ने अपने प्रबंध में 'छंद' की चर्चा करते हुए लिखा है कि 'छंद पिंगलशास्त्र का विषय होने के कारण, छंदः शास्त्र की सामग्री बने रहे, संगीत में उनका कोई स्थान नहीं बन पाया।[4]"

संगीतरत्नाकर एवं संगीतराज आदि संगीत के सभी प्रमुख ग्रंथों में प्रबन्धभेदादि एवं स्वतंत्र रूप में दोनों प्रकार से छंदों का महत्त्वपूर्ण स्थान एवं विवेचन देखा जा सकता है।

डॉ. हेमलता भटनागर के अनुसार' गेय छंद की गणना मात्रिक और वर्णिक किसी भी छंद में नहीं की जा सकती।[5]"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय संगीत इतना समुन्नत रहा है कि उसमें जहाँ विभिन्न प्रबन्धभेदों के आधार वृत्तियाँ, रस और तालादि तत्व रहे हैं, वहीं विपुल मात्रा में मात्रिक और वर्णिक छंद भी आधारतत्व के रूप में गृहीत रहे हैं।[6]

इसके अतिरिक्त ध्रुपद-शैली के पदों में मात्रिक (विशेषतः) और वर्णिक छंदों का प्रयोग तो होता ही है एवं गायन में निर्वाह भी पर्याप्त सीमा तक होता है, क्योंकि उक्तशैली में स्वर, लय के साथ-साथ पद को भी मुख्यता प्राप्त है। ख्याल, ठुमरी एवं टप्पा आदि जिन गायन-शैलियों में शब्दरचना संक्षिप्त रहती है और स्वर-लयगत वैचित्र्य का अधिक स्थान रहता है, वहाँ अवश्य पदगत वर्णिक अथवा मात्रिक छंद के निर्वाह की रक्षा करना कठिन हो जाता है।

हिंदी-साहित्य के इतिहास पर संगीत की दृष्टि से दृष्टिपात करने वाले लेखकों ने निर्गुण संतकाव्य को उक्त संदर्भ में अत्यंत हेय स्थान दिया है। डॉ. रामखेलावन पाण्डेय के अनुसार, 'संत कवि पक्के गवैया नहीं थे, गायक थे। संगीतशास्त्र की शास्त्रीयता के साँचे में ढला और नपा तुला गीत न था और न थी काव्यात्मकता की वह कसौटी, जिसे साहित्यशास्त्र प्रश्रय देता है।[7]'

अब आगे वे लिखते हैं 'शास्त्रीय रागियों के अंतर्गत जो रचनाएँ (संतों की) मिलती हैं उनका विषय के साथ विशेष संबंध नहीं है। एक ही राग के अंतर्गत सिद्धांत-निरूपण भी है और आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति भी।[8]

इस प्रकार की स्थापनाओं एवं मान्यताओं से, लेखक की संगीत-ज्ञान संबंधी अल्पज्ञता प्रकट होती है। अधुना प्रचलित शास्त्रीय-संगीत में मल्हारादि कुछ रागों के अतिरिक्त, किसी भी राग के लिए उसके अनुरूप कोई विशेष विषय नियत नहीं है, ऐसा देखने में आता है[9]' अतः इस दृष्टि से संतकाव्य को त्रुटिपूर्ण समझना पूर्णतः निराधार है। इसी प्रसंग में डॉ. उमा मिश्रा ने संतकाव्य को वर्ण्य-विषय की दृष्टि से सदोष माना है।[10]

जहाँ तक संतकाव्य में शास्त्रीय संगीत के तत्वों के अभाव का प्रश्न है, सो तत्संबंधी विस्तृत विवेचन प्रस्तुत प्रबंध में किया गया है।

संतकाव्य में उपलब्ध संगीत तत्वों का विवेचन हिंदी एवं गुरुमुखी लिपि में लिखित पुस्तकों में बहुत भ्रष्ट मिलता है। 'वाणी बिओरा' पुस्तक में' बिहागड़ा' और 'विहाग' को एक ही राग माना है[11], जबकि संगीत में दोनों राग सदा पृथक्-पृथक् रूप में प्रचलित रहे हैं। इसी प्रकार 'सुंदर ग्रंथावली' के संपादक ने 'मारू' को 'मारवा' रागिनी से अभिन्न माना है।[12] ये भूलें संभवतः संगीत-कला के ज्ञानाभाव में, नामसाम्य को देखकर ही की गई हैं।

इसी संदर्भ में उल्लेखनीय है कि संतों के संगीत-पक्ष पर विचार करने वाले कतिपय विद्वानों ने निर्गुण संतकवियों को बहुत संकुचित बना दिया है। डॉ. तारनसिंह के अनुसार, 'गुरु नानक ने अपने गीत विशेषतः पंजाबिओं के लिए लिखे थे[13] तथा वार माझ में गुरु नानक साहिब विशेषतः पंजाबियों के ही कवि हैं, क्योंकि यह राग एक प्रादेशिक राग है, इसलिए इसमें नामदेव, कबीर आदि भक्तों की बानी नहीं है।[14]'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उच्चकोटि के अध्यात्म-साधक गुरु नानक अथवा किसी भी संतकवि के संबंध में इस प्रकार के संकीर्ण विचारों का आरोपण, साहित्य में शोभनीय प्रतीत नहीं होता। 'माझ' राग को प्रादेशिक राग अवश्य माना जा सकता है, परंतु गुरु नानक को इसी क्रमबद्ध आधार पर केवल पंजाबियों के वाग्गेयकार कहना उचित नहीं।

आज निर्गुण संतकवियों की रचनाओं का विभिन्न घरों में तथा पड़ताल, मत्तताल, जतताल आदि विविध तालों में गायन लुप्त होता जा रहा है। संतों के मंदिरों एवं गुरुद्वारों में उनके पदों के गान में परम्परा के आग्रह का ध्यान नहीं रखा जाता, जबकि सगुण भक्तों के मंदिरों में आज भी उनके पदगान में परंपरा का पर्याप्त पालन होता है, ऐसा मैंने दोनों साधना-मार्गों के पदगान के आयोजन करवाकर प्रत्यक्ष देखा है। फ़तहगढ़ साहिब, सरहिंद के गुरुद्वारे में (जहाँ गुरु गोविन्दसिंह जी के दोनों सुपुत्रों को ईंटों की दीवार में चुन दिया गया था) एक बहुत बड़े आयोजन में बड़े-बड़े रागियों को, संतों के पदों को, फ़िल्मी धुनों में गाते सुनकर बहुत दुःख हुआ। सगुण भक्तों में परम्परा का मोह आज भी काफ़ी है, केवल इतना ही है कि उनकी कीर्तन-शैली पर शनैः-शनैः ख्याल शैली का थोड़ा प्रभाव अवश्य पड़ने लगा है।

प्रस्तुत प्रबंध हिंदी की निर्गुणभक्ति-धारा (जोकि संगीत की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है) में मिलने वाले संगीत-तत्वों को प्रकाश में लाने के उद्देश्य से लिखा गया है। प्रबंध का विभाजन छः अध्यायों (एवं परिशिष्ट भाग) में किया गया है।

प्रथम अध्याय में मैंने 13वीं शताब्दी से लेकर 16वीं शताब्दी तक के जिन निर्गुण संतकवियों के काव्य के विशिष्ट-अध्ययन को प्रबंध का विषय बनाया है, उक्त कविवर्ग के लिए 'निर्गुण और 'संत' का अभिधान क्यों स्वीकार किया है (अभिधान की स्वीकृति के) इस आधार को स्पष्ट किया है। विषय का अवतरण, परतत्व को 'निर्गुण' और 'सगुण' मानने की परम्परा, निर्गुण और सगुण के प्रति समन्वय दृष्टि', 'संत' शब्द की व्युत्पत्ति, 'संत' और 'भक्त' की तुलना आदि शीर्षकों के अंतर्गत, हिंदी साहित्य के इतिहास में 'निर्गुण भक्ति के नाम से प्रचलित अध्यात्मधारा-विशिष्ट की मूल विचारधारा में मिलनेवाले सगुण-भक्ति से पार्थक्य-विधायक तत्वों का संक्षेप में विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

भगवद्भक्ति में बाह्याडम्बर एवं इष्टदेव के श्री-विग्रह की बाह्य अर्चा में अविश्वास, ज्ञानतत्व का अपने भक्तिमार्ग में विशिष्ट स्थान, और अभेदलीला आदि आधारों पर हिंदी की निर्गुण-भक्ति-धारा, सगुणभक्ति से एकदम अलग हो जाती है, यह स्पष्ट कर दिया गया है।

द्वितीयाध्याय में हिंदी के निर्गुण संत कवियों की साधना में संगीत के मूल आधार 'नादानुसंधान' विषयक प्रकरण पर विचार किया गया है। संगीत-साधना का मूल-आधार 'नाद' है[15]' जोकि अध्यात्मसाधना में भी इसी रूप में स्वीकृत है[16]। हमारा समस्त प्राचीन दर्शन, नाद की मूल भित्ति पर प्रतिष्ठित है, तद्वत् हिंदी के निर्गुण संतकवियों की अध्यात्मसाधना भी नाद की पृष्ठभूमि पर स्थित है। संतों की नादसाधना पर पूर्ववर्ती अध्यात्मधाराओं की नाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संबंधी मान्यताओं का प्रभाव निश्चय ही पड़ा है, अतः 'तांत्रिक दर्शन में नादसाधना', 'उपनिषदों में नादानुसंधान', 'हठयोग में नादसाधना', 'सूफ़ीमत में नादसाधना', 'संतों की उपासनापद्धति में नादसाधना का स्थान' और 'निर्गुण और सगुणोपासना में नादसाधनाः एक तुलनात्मक दृष्टि' शीर्षकों के अंतर्गत, संतों की नादसाधना पर पूर्ववर्ती अध्यात्मधाराओं का प्रभाव, निर्गुण मत में नादसाधना का स्वरूप एवं निर्गुण मत में प्रचलित नादसाधना का सगुणमत में मान्य, नादसाधना के स्वरूप से अंतर, आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। नादसाधना की दृष्टि से निर्गुण और सगुण उपासना का दर्शाया गया भेद, उक्त अध्याय का वैशिष्ट्य है।

तृतीयाध्याय में 13वीं शताब्दी से लेकर 16वीं शताब्दी तक के कालक्रम के संत जयदेव, नामदेव, कबीर, नानक, दादू, गुरु अर्जुनदेव और सुंदरदास इन 7 प्रतिनिधि कवियों का संगीत-ज्ञान के संदर्भ में, संक्षिप्त जीवन-परिचय प्रस्तुत किया गया है।

संतों की नादसाधना में आहत एवं अनाहत-नाद के उभयपक्षों की साधना का समावेश हुआ है। द्वितीयाध्याय में संतों की अनाहत नादसाधना पर विचार किया गया है और चतुर्थ अध्याय में उनकी राग, ताल एवं वाद्य-नामादि रूप में मिलने वाली आहत नादसाधना का गवेषणामूलक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय को अध्ययन की सुविधा-हेतु एवं संगीत-तत्वों के पारस्परिक घनिष्ठ संबंध के कारण प्रबंध, छंद और गायनशैली, (क्रमशः क, ख और 'ग') तीन भागों में विभक्त कर दिया गया है। इस अध्याय में प्रबंध धातुओं, प्रबंधांगों और प्रबंध भेदों, संतों के काव्य में निर्दिष्ट एवं अनिर्दिष्ट छंदों तथा बहुविध गायन-शैलियों के निकष पर, संतकाव्य का गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रयोजन की दृष्टि से संगीतशास्त्र में किए गए मूल विभाजन 'मार्ग' और 'देशी' की दृष्टि से भी संतकाव्य का संगीत में स्थान निर्धारित करने का विनीत प्रयास किया गया है, जिससे कि संतों की संगीत - साधना का 'लक्ष्य' एवं 'स्वरूप' स्पष्ट हो जाता है।

षष्ठ अध्याय में 'हिंदी के निर्गुण संतकाव्य में प्रयुक्त रसों का संगीत के संदर्भ में अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। काव्य के नवरसों का संगीत में किस प्रकार अस्तित्व रहता है तथा विभाव (आलम्बन और उद्दीपन), अनुभाव, संचारी भाव, स्थायी भाव, सात्विक भावादि, रस के समस्त उपकरणों की संगीत में किस प्रकार स्थिति मानी जाती है आदि विषयों पर उक्त अध्याय में संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।

अंत में, 'परिशिष्ट' में, "शास्त्रीय संगीत के 'पद' अंश में हिंदी-निर्गुण-काव्य का अस्तित्व" शीर्षक से शास्त्रीय-संगीत के अधुना प्रचार के आधार पर बने ग्रंथों, क्रमिक-पुस्तक मालिका (भातखंडे कृत, 6 भाग), राग-विज्ञान (पटवर्धन जी कृत, 6 भाग) संगीतांजलि (पं. ओंकारनाथ ठाकुर विरचित, 6 भाग), राग रत्नाकर (भक्तराम व्यास कृत) और रागकल्पद्रुम (कृष्णानंद व्यासदेव द्वारा संपादित 3 खंड) में मिलने वाले निर्गुणपरक पदों एवं हिंदी के निर्गुण संतकवियों के शास्त्रीय-संगीत में प्रचलित पदों का संकलन प्रस्तुत किया गया है, जिससे कि हिंदी के निर्गुण संतकाव्य का शास्त्रीय-संगीत में अस्तित्व एवं प्रभाव परिलक्षित होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट में मैंने रागकल्पद्रुम के तीनों खंडों में अज्ञात-नामा कवियों के यत्र-तत्र बिखरे निर्गुणपरक पदों का पृथक् रूप से संग्रह भी प्रस्तुत किया है, जिससे उक्त विषय पर शोधकार्य करने वालों को एक दिशा मिल सकती है।

इस प्रकार, शोध-प्रबंध में हिंदी की निर्गुण-भक्ति धारा के 400 वर्षों के 7 प्रमुख संतकवियों के काव्य के विशेष अध्ययन द्वारा यह सिद्ध कर दिया गया है कि हिंदी का निर्गुण संतकाव्य, संगीत की दृष्टि से अतिसमृद्ध साहित्य है और उपर्युक्त दृष्टिकोण से इस अध्यात्मधारा के काव्य को, सगुणकाव्य के समानान्तर स्थान दिया जा सकता है।

उक्त परिप्रेक्ष्य में इस संपूर्ण काव्यधारा के गहन अध्ययन एवं अनुशीलन की ओर संगीत जगत् एव हिंदी जगत् का ध्यान आकृष्ट हो, यही इस प्रबंध का लक्ष्य है।

अंत में, प्रस्तुत शोध-प्रबंध में मुझे हिंदी-साहित्य एवं संगीत के जिन-जिन विद्वानों से उपयोगी सुझावों के रूप में निर्देशन मिला, उन सभी के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापित करना मेरा परम कर्त्तव्य है। मैं इस संदर्भ में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, स्वामी मंगलदास महाराज, 'संगीत शिरोमणि' में मेरे संगीत-शिक्षक, ध्रुपद-गायक श्री चंद्रशेखर पंत, मेघराज 'मुकुल', पं. परशुराम चतुर्वेदी, पं. सीताराम चतुर्वेदी, डॉ. नगेंद्र, डॉ. विजयेंद्र स्नातक, डॉ. हेमलता भटनागर, रामसिंह तोमर, मेरे गुरुजी पं. दिलीपचंद्र वेदी, प्यारासिंह 'पद्म', डॉ. सुरेंद्रसिंह कोहली तथा भाई समुदसिंह रागी; इन सभी विद्वानों से समय-समय पर मिलने वाले मूल्यवान् सुझावों, (प्रकाशित एवं अप्रकाशित और दुर्लभ) पाठ्य-सामग्री की सहायता आदि के लिए मैं हृदय से उनकी आभारी हूँ।

मैं अपने श्रद्धेय गुरुवर्य स्व. डॉ. विनयमोहन शर्मा जी 'आचार्य जी' की विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने साहित्य और संगीत दोनों विषयों में मेरी समान अभिरुचि देखकर, शोधप्रबंध के लिए मुझे मेरे मनोनुकूल प्रस्तुत विषय दिया था तथा संगीत के परिप्रेक्ष्य में निर्गुण संतकाव्य के अध्ययन जैसे उपेक्षित विषय को लेकर, हिंदी में ठोसकार्य करने के लिए तीन वर्ष की अवधि में बराबर प्रोत्साहन और प्रेरणा प्रदान की थी। उनके ऋण से मैं कभी उऋण नहीं हो सकती। यदि वे जीवित होते तो ग्रंथ को प्रकाशित देखकर कितने प्रफुल्लित हो उठते! मैं अपनी शर्माभगिनियों परम विदुषी डॉ. प्रेमलता शर्मा तथा उर्मिल शर्मा के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने समय-समय पर अनेक संस्कृत-ग्रंथों एवं बंगला ग्रंथ 'जपसूत्रम' के उपयोगी अंशों के हिंदी अनुवाद द्वारा प्रबंध में मुझे दुर्लभ सहायता प्रदान की। वास्तव में दिवंगत डॉ. प्रेमलता शर्मा 'बहनजी' के निस्वार्थ सहयोग तथा विद्वत्तापूर्ण कुशल मार्गदर्शन के कारण ही यह शोधप्रबंध बन पाया है। उन्हें मैं शत-शत नमन करती हूँ। उनसे मैं कदापि उऋण नहीं हो सकती।

अमर स्वाधीनता-सेनानी, ज्ञान-गंगा के ऋषि भगीरथ तथा वात्सल्य के साक्षात् श्रीविग्रह मेरे पूज्य 'बाबाजी'(बाबा लालसिंह जी) ने मुझे सन् 1964 में, पं. ओंकारनाथ ठाकुर तथा (संगीत विभाग, श्री कला संगीत-भारती में रीडर उनकी शिष्या) डॉ. प्रेमलता शर्मा के मार्गदर्शन में, वाराणसी में रहकर, शोधग्रंथ को पूरा करने के लिए, प्रेरित किया था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन वर्ष तक, वे प्रतिदिन एक जवाबी पोस्टकार्ड लिखकर, मुझसे लेखन, पठन एवं तत्संबधी हर समस्या की रिपोर्ट माँगकर, निरंतर मेरा मनोबल बढ़ाते रहे। यही नहीं, वे हर माह मुझे आर्थिक सहयोग-राशि भी भेजते रहे। मैं अपने ऐसे अद्भुत-अपूर्व महामहिम गुरु (बाबा लाल सिंहजी) 'बाबाजी' को कैसे भूल सकती हूँ? मेरा रोम-रोम उनका आभारी है। आज वे इस दुनिया में नहीं हैं परंतु मुझे ऐसा लगता है कि उनकी आत्मा मेरे बंधु 'धर्मेंद्र भाई' के शरीर में प्रवेश कर गई है। उनके बाद, वे उन्हीं की तरह मुझे सत्साहित्य के सतत् लेखन तथा प्रकाशन के लिए, हर समय प्रेरित एवं आग्रह करते ही रहते हैं।

सन 1966 में, मैंने अपना यह शोधग्रंथ कुरुक्षेत्र वि.वि. से प्रस्तुत किया था और मार्च 1967 में, मुझे पी एच.डी. की डिग्री मिल गई थी तथापि यह अप्रकाशित ही पड़ा रहा। 'संगीत', विश्वभारती' आदि पत्रिकाओं में, अवश्य मैं इसमें से यदा-कदा लेख प्रकाशित करवाती रही। 17 पुस्तकें प्रकाशित हो जाने के पश्चात् भी, मैं इस शोध-प्रबंध को प्रकाशित करवाने की ओर से उदासीन ही रही परंतु गत चार-पाँच वर्षों से, मेरे परम स्नेहशील तथा विश्वकोष-रूप बंधु 'धर्मेंद्र भाई' जोकि अपनी सजग लेखनी से, माँ सरस्वती की अनवरत सेवा में तल्लीन रहते हैं, उनके आग्रहों के कारण मेरी उदासीनता का कुहासा हटा, फलतः आज ग्रंथ, पाठकों के हाथों में है।

'तभी समर्थ भाव है कि तारता हुआ तरे' उक्ति में उनका दृढ़ विश्वास है। ग्रंथ को प्रकाशित करने का सहर्ष दायित्व लिया, स्नेहिल अनुज, नितिन भाई ने। मैं दोनों भाइयों की हार्दिक आभारी हूँ। आभार-ज्ञापन-हेतु शब्द, सदा छूँछे रहते हैं, यही कहूँगी, 'पतिआइहै तेरो हियो, मेरे हिय की बात।' मैं जानती हूँ कि ग्रंथ को प्रकाशित करके मेरे ज्येष्ठ तथा अनुज दोनों भाई मुझसे भी अधिक प्रसन्न हैं। छोटी-अतीव प्यारी मीनू भाभी की मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने कंप्यूटर एवं प्रूफ रीडिंग, स्वरलिपि का विशुद्ध रूप, सब दृष्टियों से पुस्तक को किन्हीं भी भूलों से रहित बनाने का प्रयास किया है।

संगीत के संदर्भ में हिंदी-साहित्य के सम्यक् अध्ययन की दिशा में यह कृति उपयोगी सिद्ध होगी। इससे उक्त दिशा में संगीत एवं हिंदी-साहित्य के महान् वाग्गेयकार अद्यावधि अनचीन्हे कवियों के काव्यों के वांछित अध्ययन के नवल आयाम खुलेंगे, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

— सीता बिम्ब्रॉ

7344/1, प्रेमनगर

शक्तिनगर दिल्ली-110007

दूरवाणीः 23829990

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संदर्भ

1. द्रष्टव्यः का. और सं. का पा. सं. –डॉ. उमा मिश्रा –पृ. 117-18।
2. द्रष्टव्यः गु. सं.–भूमिका
3. वही।
4. हिं. सा. के शृं. यु. में सं. का. –(अप्रकाशित) पृ. 376।
5. वही, पृ. 379।
6. द्रष्टव्य, सं. र. चतुर्थ प्रबन्धाध्याय में आर्या, गाथा, दण्डक, द्विपथ, वृत्त आदि प्रबन्ध भेदों का विवरण।
7. मध्यकालीन संतसाहित्य–पृ. 246।
8. वही।
9. 'दरबारी' राग में मुबारकबादियाँ शादियाँ तथा 'भैरवी' में बाजूबन्द खुल-खुल जाये' जैसी चीज़ें विभिन्न रागों में प्रचलित हैं, जिनका राग की प्रकृति के साथ कोई संबंध नहीं है।
10. का. और सं. का पा. सं.-पृ. 117-19।
11. अ. ब. बा. स.- एस. एस. अमोल –पृ. 165।
12. सुं. ग्रं. प्र. खं. भूमिका –पृ. 175।
13. गु. ना. चिं. ते क. –पृ. 298।
14. वही –पृ. 242।
15. द्रष्टव्यः सं. र. संपा. पं. एस. सुब्रह्मण्य शास्त्री, पृ. 23।
16. यो. शि. उप. –पृ. 431।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संकेत-सारणी

अ.सं.	—	अध्याय संख्या।
अ.रा.सा	—	अध्यात्म रामायण सार।
अ.बां.	—	अनुराग बांसुरी।
अ.दि.मि.	—	अलगज़ाली दि मिस्टिक।
अ.छा.के वा. यं.	—	अष्टछाप के वाद्ययंत्र।
अ.बा.वा.स.	—	अमोल बाई वारां सटीक।
अष्टो.शतो.षत्सु	—	अष्टोत्तरशतोपनिषत्सु।
आ.भ.	—	आश्रम भजनावली।
आ.ग्रं.	—	आदिग्रंथ।
आ.ऑफ़ इ.क.	—	आउटलाइन्ज़ ऑफ़ इस्लामिक कलचर।
आ.अ.	—	आइने अकबरी।
आ.मै.ऑ.इं.	—	आर्ट मैन्यूफ़ैक्चर्ज़ ऑफ़ इंडिया।
आ.रिलि.कल्ट.	—	आंग्लो रिलिजियंस कल्ट्स।
आ.हिं.का.में.छदं यो.	—	आधुनिक हिंदी काव्य में छंद योजना।
आ.हिं. का. में गी. त.	—	आधुनिक हिंदी काव्य में गीतितत्व।
इं.म्यू.ज.	—	इंडियन म्यूज़िक जरनल।
इं.	—	इंद्रावती।
ईशा.उप.	—	ईशावास्योपनिषद्।
उ.कां.	—	उत्तरकांड (रामचरितमानस)
उ.भा.की.सं.पं.	—	उत्तरी भारत की संत परम्परा।
ऋ.वे.सं.	—	ऋग्वेदसंहिता।
ए.क्रि.स्ट.आफ़ आ.ग्रं.	—	ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ़ आदिग्रंथ।
क.	—	कबीर।
क. ग्र.	—	कबीर ग्रंथावली।
क.वच.	—	कबीर वचनावली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क. और उ.का.	—	कबीर और उनका काव्य।
क. की वि. धा.	—	कबीर की विचारधारा
क.सा.की श.	—	कबीर साहेब की शब्दावली।
क.बी.	—	कवीर बीजक।
क.सा.की प.	—	कबीर साहित्य की परख।
का.और सं. का पा. सं.	—	काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध।
कठ.उप.	—	कठोपनिषद्
क्र.पु.मा.	—	क्रमिक पुस्तक मालिका।
क.ए.वि	—	कबीर एक विवेचन।
गा.ऑफ़ लै.	—	गार्लैंड ऑफ़ लैटर्ज़।
गी.	—	गीता।
गु.गु.बा.	—	गुसाईं गुरुबानी।
गु.अ.दे.की बा.	—	गुरु अर्जुनदेव की बानी।
गो.ना.एंड.मि.मि.	—	गोरखनाथ एंड दि मिडिवियल मिस्टिसिज्म।
गो.बा.	—	गोरखबानी।
गी.गो	—	गीतगोविन्द।
गु.ना.चिं. ते. क.	—	गुरुनानक चिंतन ते कला।
गु.प्र.जां.गुरु. बं.	—	गुरु प्रनाली जां गुरु बंसावली।
गु.सं.	—	गुरुबाणी संगीत।
गु.सं.नि.	—	गुरुमत संगीत निर्णय।
गु.छं.दि.	—	गुरुछंद दिवाकर।
गो.सि.सं.	—	गोरक्ष सिद्धांत संग्रह
गु.सं.पर हु. तक मि.खो.	—	गुरुबाणी संगीत पर हुणतक मिली खोज।
चौ.सं.	—	चौपाई संख्या।
चि.का.मी.	—	चित्रकाव्य-मीमांसा।
छं.प्र.	—	छंदः प्रभाकर।
छं.शा.की भू.	—	छंदशास्त्र की भूमिका।
छां.उप.	—	छांदोग्य उपनिषद्।
ज.सू.	—	जपसूत्रम्।
जा.ग्रं.	—	जायसी ग्रंथावली।
ज.ऑफ़ म्यू. एके.म.	—	जरनल ऑफ़ म्यूजिक एकेडेमी, मद्रास।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज.दा.	—	जयदामा।
तं.दे.फि.एंड ओ. सी.	—	तंत्राज़ देयर फ़िलॉसफ़ी एंड ओकल्ट सीक्रेटस।
त.अथवा सू.म.	—	तसव्वुफ़ अथवा सूफ़ीमत।
तां.वां. में शा. दृ.	—	तांत्रिक वांङ्मय में शाक्त दृष्टि।
त.सं.	—	तत्वसंदोह।
तै.उप.	—	तैत्रीय उपनिषद्।
ता. प्र.	—	तालप्रकाश।
ता.मा.	—	तालमार्तंड।
दा.बा.	—	दादूबानी।
दि न्यू.डि.ऑफ़ म्यू.	—	दि न्यू डिक्शनरी ऑफ़ म्यूज़िक।
दि.रि ए. एंड ला. इन इ.	—	दि रिलिज़ियस एटीच्यूड एंड लाइफ़ इन इस्लाम।
दी फ़ो.ऐलि.इन हिं. कल्च.	—	दी फ़ोक एलिमेंट इन हिंदू कल्चर।
दा. द. जी.द. और का.	—	दादूदयाल जीवनदर्शन और काव्य।
दो.सं	—	दोहा संख्या।
ध्या.बिं.उप.	—	ध्यानबिंदु उपनिषद्।
ना.बिं उप	—	नादबिन्दु उपनिषद्।
ना.सं.	—	नाथ संप्रदाय।
ना.और सं. सा का तु.अ.	—	नाथ और संत साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन।
ना.बा.	—	नानकबानी।
ना.शा.	—	नाट्य शास्त्र।
ना.प्र.प.	—	नागरी प्रचारिणी पत्रिका।
पा.दो.	—	पाहुड़ दोहा।
प्रे.र.सि	—	प्रेम रस सिद्धांत।
प्र.भा.	—	प्रणवभारती।
प्रि.ऑफ तं.	—	प्रिंसिपल्ज़ ऑफ़ तंत्राज़।
पा.यो.द.	—	पातंजलि योग दर्शन।
पो.ज.सा.भा. बा. जी की	—	पोथी जनमसाखी भाई बालेजी की।
पं.मा.	—	पंजाबी मॉझां।
प्र.का शा. अ. ए. सं. दि.	—	प्रबंध का शास्त्रीय अध्ययनः एक संक्षिप्त दिग्दर्शन।
पं.बा.मा.	—	पंजाबी बारह माहे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पृ.चं.च.	–	पृथ्वीचंद्रचरित।
फ़ि.ऑल इं. म्यू. टी.कॉ.एं.म्यू. फ़े.	–	फ़िफ्थ ऑल इंडिया म्यूज़िक टीचर्ज़ कान्फ्रैंस एंड म्यूज़िक फ़ैस्टिवल।
बा.कां.	–	बालकांड (रामचरितमानस)।
ब्र.उप.	–	ब्रह्मोपनिषद्।
बो.सा.	–	बोधसागर।
बो.गा.औ.दो.	–	बौद्धगान औ दोहा।
बा.वा.स.	–	बाई वारां सटीक।
बृ.हिं.को.	–	बृहत् हिंदी कोष।
बि.प.खु.रा.	–	बिशनपदे खुशहालरायि।
भ.का सं.सि.	–	भरत का संगीत सिद्धांत।
भ.को.	–	भरत कोष।
भ.र.सिं.	–	भक्ति रसामृतसिंधु।
भ.सू.	–	भक्ति सूत्र।
भा.ता.दी.	–	भारतीय तालदीपिका।
भा.ता.मं.	–	भारतीय तालमंजरी।
भा.सं.का इति.	–	भारतीय संगीत का इतिहास।
भा.सं.और सा.	–	भारतीय संस्कृति और साधना।
मं. उप.	–	मंत्रिकोपनिषद्।
मुंड. उप.	–	मुंडकोपनिषद्।
महा.भा.	–	महाभारत।
मी.सु.सिं.	–	मीरा सुधा सिंधु।
मी.बा.की पदा.		मीरा बाई की पदावली।
मी.की पदा.	–	मीरां की पदावली।
मी.स्मृ. ग्रं.	–	मीरां स्मृति ग्रंथ।
मी.एक अध्य.	–	मीरां एक अध्ययन।
मी.द.	–	मीरां दर्शन।
मं.ब्रा.उप.	–	मंडल ब्राह्मणोपनिषद्।
म्यू.ऑफ इं.	–	म्यूज़िक ऑफ़ इंडिया।
मा.फु.मा.	–	मारिफुन्नगमात।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मा.छं.का वि	—	मात्रिक छंदों का विकास।
म.सा.में अ.वा.	—	मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद।
म.हिं.सं.वि.और सा.	—	मध्यकालीन हिंदी संत विचारधारा और साधना।
यो.प्र.	—	योगप्रवाह।
यो.शि.उप.	—	योगशिखोपनिषद्।
यो.मा.	—	योगमार्तंड।
यो. चू. म. उप.	—	योगचूड़ामण्योपनिषद्।
यो.द.	—	योगदर्शन।
यो.ता.	—	योगतारावली।
यो.वा.	—	योगवाशिष्ठ।
रा.क. का वि.अ.	—	रागकल्पद्रुम का विश्लेषणात्मक अध्ययन।
रा.क.	—	रागकल्पद्रुम।
रा.मा.नि.	—	रागमाला निर्णय।
रा.एंड.रा.	—	रागाज़ ऐंड रागिनीज़।
रा. का लो.सं.	—	राजस्थान का लोकसंगीत।
रा.वि.	—	राग विज्ञान।
रा.र.	—	रागरत्नाकर।
रा.व.	—	रागवर्षा।
र.सं.भं.	—	रतनसंगीत भंडार।
ल.भा.	—	लघुभागवतामृत।
वृ.उप.	—	वृहदारण्यकोपनिषद्।
वृ.दे.	—	वृहद्देशी।
व.उप.	—	वराहोपनिषद्।
वि.की पदा.	—	विद्यापति की पदावली।
वि. और वि.	—	विचार और विश्लेषण।
श्वे.उप.	—	श्वेताश्वतरोपनिषद्।
शब्दा.	—	शब्दावली।
श.एं.दी शा.	—	शक्ति एंड दी शाक्त।
श्री. गी.	—	श्री मद्भगवद्गीता।
श्री.भा.	—	श्रीमद्भागवत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शा.ति.तं.	—	शारदातिलक तंत्र।
श्री रा. मा चिं.	—	श्रीराधामाधवचिन्तन।
श्री श्री चै.च.	—	श्री श्री चैतन्य चरितावली।
श्री.गु.ग्रं.ए.परि.	—	श्री गुरु ग्रंथ एक परिचय।
श्री गु.ग्रं.को.	—	श्री गुरु ग्रंथ कोष।
श्री गु.नि.सा.	—	श्री गुरुमत निर्णय सागर।
श्री गु.पु.प्र.ग्रं.	—	श्री गुरु पुर्व प्रकाश ग्रंथ।
सू.का.सं	—	सूफ़ी काव्य संग्रह।
सा.द.	—	साहित्य दर्पण।
सुं.ग्रं.	—	सुंदर ग्रंथावली।
स्वा.दा.द. की बा.	—	स्वामी दादूदयाल की बानी।
सं.सं.सु.सा.	—	संक्षिप्त संतसुधासार।
सं.का.	—	संतकाव्य।
सं.की नि.स.स.सा.	—	संतों की निर्गुण सगुण समन्वय-साधना।
सं.म. का स. सं.	—	संतमत का सरभंग संप्रदाय।
सं.ना.की हिं. पदा.	—	संत नामदेव की हिंदी पदावली।
सं.पा.	—	सर्पेंट पावर।
सु.द.	—	सुंदर दर्शन।
सं.बा.सं.	—	संत बानी संग्रह।
सुं.वि.	—	सुंदरविलास।
सू.सा.	—	सूरसारावली।
सि.सा.	—	सिद्ध साहित्य।
सू.म.सा.और सा.	—	सूफ़ीमत साधना और साहित्य।
सू.म.और हिं.सा.	—	सूफीमत और हिंदी साहित्य।
सू.का.	—	सूफ़ीकाव्य।
सि.गु.ना.च.	—	सिरी गुरु नानक चमत्कार।
सं.तां.	—	संगीतांजलि।
सू.सा.	—	सूरसागर।
सं.पा.	—	संगीतपारिजात।
सं.र.	—	संगीत रत्नाकर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सं. राज.	—	संगीतराज।
स.म.	—	संगीत मकरंद।
सं.द.	—	संगीत दर्पण।
सं.शा.	—	संगीतशास्त्र।
सं.ता.जी.और रच.	—	संगीतज्ञ तानसेन जीवनी और रचनाएँ।
सं.क. की हिं.रच.	—	संगीतज्ञ कवियों की हिंदी रचनाएँ।
सं.बै.और गो.जी.और र.	—	संगीतज्ञ बैजू और गोपालः जीवनी और रचनाएँ।
स.सो.यो.बृ.	—	सती सोरठी योगी बृजामार।
स.ब.वं.दी वा.	—	सत्ते बलवंड दी वार।
से.दा.की बा.	—	सेवादास जी की बानी।
सा.सं.	—	साखी संख्या।
सं.अ.	—	संगीत अर्चना।
हिं.की नि.का. और उ.दा.पृ.	—	हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि।
हि.सा.का इति.	—	हिंदी साहित्य का इतिहास।
हिं.भ.र.सिं.	—	हिंदी भक्तिरसामृत सिंधु।
हि.का.और उ.सौं.	—	हिंदी काव्य और उसका सौंदर्य।
हिं.का. में नि. सं.	—	हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय।
हिं. और म. का नि. सं.	—	हिंदी और मराठी का निर्गुण संतकाव्य।
हिं. को म. सं. की दे.	—	हिंदी को मराठी संतों की देन।
हिं.सं. का सं.	—	हिंदी संत काव्य सग्रंह।
ह.प्र.	—	हठयोगप्रदीपिका।
हिं.सा.का आ.इति.	—	हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।
हिं.छं.प्र.	—	हिंदी छंद प्रकाश।
हिं.भ.सा. में लो.त.	—	हिंदी भक्ति साहित्य में लोकतत्व।
हिं.सा. का वृ.इति	—	हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास।
हिं.सा.का आ. का.	—	हिंदी साहित्य का आदिकाल।
हिं.का.	—	हिंदी काव्य।
हिं. के कृ.भ.का. सा.में सं.	—	हिंदी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-सूची

षड्ज : प्रथम अध्याय

हिंदी के निर्गुण संतकाव्य का विराट् फलक 1-41

(क) विषय का अवतरण 1

(ख) परतत्व को "निर्गुण" और "सगुण" मानने की परम्परा 2

(ग) "निर्गुण" और "सगुण" के प्रति समन्वय-दृष्टि 6

(घ) 'संत' शब्द की व्युत्पत्ति 13

(ङ.) 'संत' और 'भक्त' की तुलना 14

(च) हिन्दी-निर्गुण सन्तकाव्य की परिधि 22

ऋषभ : द्वितीय अध्याय

संगीत के मूल आधार 'नादानुसंधान' की परम्परा में, हिंदी-निर्गुण-संतकाव्य 42-122

(क) तांत्रिक दर्शन में नाद-साधना 44

(ख) उपनिषदों में नाद-साधना 58

(ग) हठयोग में नाद-साधना 67

(घ) सूफ़ीमत में नाद साधना 76

(ङ.) संतों की उपासना-पद्धति में नाद-साधना 82

(च) निर्गुण और सगुण उपासना में नाद-साधनाः एक तुलनात्मक दृष्टि 95

गंधारः तृतीय अध्याय

विवेच्य संतकवियों का संगीत-ज्ञान-संबंधी-परिचय 123-140

(क) संत जयदेव 125

(ख) संत नामदेव 126

(ग) कबीर 127

(घ) गुरु नानक 129

(ङ.) दादूदयाल 133

(च) गुरु अर्जुन देव 134

(छ) संत सुन्दरदास 136

मध्यमः चतुर्थ अध्याय

संतकाव्य का राग, ताल औरवाद्य-वैविध्य-वैभव 141-223

(क) राग-खंड 141

(ख) ताल-खंड 183

(ग) वाद्य-खण्ड 190

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंचमः पाँचवाँ अध्याय

संत काव्य में प्रबन्ध, छन्द और गायनशैलियों का वैशिष्ट्य 224-379

(भाग I) : प्रबंध

(क) प्रबंध की परिभाषा एवं इतिहास 224
(ख) संतकाव्य में 'प्रबंध-धातुओं का अस्तित्व' 231
(ग) संतकाव्य में उपलब्ध 'प्रबंधांग' 248
(घ) विविध 'प्रबंध-भेदों' का सौष्ठव 250

(भाग II) : छंद

(क) छंद और संगीत का सम्बन्ध 281
(ख) संतकाव्य की विशिष्ट छंद शैलियों में उपलब्ध, अन्य छंदों की परिभाषाएँ एवं उदाहरण 289
(ग) संत-पदावली में शीर्षक रूप में उल्लिखित छंदों की तालिका 296
(घ) हिंदी निर्गुण काव्यधारा के 'पद' अंश में प्रयुक्त प्रमुख छंद 298

(भाग III) : गायन-शैली

(1) विशुद्ध शास्त्रीय संगीत-कोटि 305
(2) मिश्र अथवा सुगम शास्त्रीय-संगीत—कोटि 308
(3) सुगम संगीत-शैली-कोटि 311
(4) छंदोगान अथवा पद्यगान-कोटि 312
(5) लोक-संगीत-कोटि 313
(6) आदिग्रंथ में गायन-हेतु उल्लिखित विशिष्ट निर्देशों का मर्म 348
उपसंहार 352

धैवत : षष्ठ अध्याय

हिंदी के निर्गुण संतकाव्य में प्रयुक्त रसों का संगीत के संदर्भ में अध्ययन 380-390

निषाद : सप्तम अध्याय

शास्त्रीय संगीत के 'पद' अंश में, हिंदी-निर्गुण—काव्य का अस्तित्व 391-446
निर्गुण-निराकार ब्रह्म की उपासना से संबंधित ध्रुपद शैली में प्राप्त पद 393
निर्गुण निराकार- ब्रह्मोपासना संबंधित ख्याल शैली में प्राप्त पद 394
गुरु महिमा के ख्याल शैली में प्राप्त पद 394
संगीत में नाम महिमा के ध्रुपद-शैली के पद 394
नाम-महिमा के ख्याल शैली के पद 395
शास्त्रीय संगीत में ख्याल-शैली में उपलब्ध उपदेशात्मक पद 396
ख्याल-शैली में प्रचलित विनय और आत्मनिवेदन के पद 398

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तानसेन के निरंजन निराकार-महिमा-गान के पद 400
तानसेन के प्रभु-महिमा के पद 402
तानसेन के नाम-महिमा संबंधी पद 403
अनाहत नाद-निरूपण संबंधी तानसेन के पद 403
तानसेन द्वारा किया गया इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना का वर्णन 405
वाग्गेयकार बैजु के निरंजन-निराकार अलख-अगोचर ब्रह्म-महिमा के पद 406
बैजू के प्रभु-महिमा के पद 407
बैजू के नाम-महात्म्य के पद 408
बैजू के चेतावनीपरक एवं उपदेशपूर्ण पद 409
शास्त्रीय संगीत में प्रचलित हिंदी निर्गुण संत कवियों के ब्रह्मतत्व निरूपण संबंधी पद 410
हिंदी के निर्गुण संतकवियों के शास्त्रीय संगीत में प्रचलित उपदेशपूर्ण पद 411
साधु-संग महिमा के निर्गुण-संत कवियों के शास्त्रीय-संगीत में प्रचलित पद 415
हिंदी के निर्गुणोपासक कवियों के "अनन्य प्रीति" के पद 416
'राग-रत्नाकर' एवं 'आदिग्रंथ' में प्राप्त कबीर के पदों की राग-नाम की दृष्टि से तुलना 417
'राग-रत्नाकर' एवं 'आदिग्रंथ' में प्राप्त 'नानक' के पदों की राग-नाम की दृष्टि से तुलना 418
'राग-रत्नाकर' में प्राप्त गुरु अर्जुनदेव की वाणी की आदिग्रंथ में सुलभ वाणी से तुलना 419
'राग-कल्पद्रुम' में प्राप्त अज्ञातनामा कवियों के पदों में हिंदी-निर्गुन-काव्य का अस्तित्व 422
'राग-कल्पद्रुम' के 'प्रथम' खंड में प्राप्त अज्ञातनामा कवियों के निर्गुण परक पद 422
"रागकल्पद्रुम" द्वितीय खंड में प्राप्त अज्ञातनामा कवियों के निर्गुणपरक पद 424
राग कल्पद्रुम, तृतीय खंड, में प्राप्त अज्ञातनामा कवियों के निर्गुणपरक पद 425
"रागकल्पद्रुम" में उपलब्ध "कबीर बीजक" के अतिरिक्त कबीर के पद एवं अन्य निर्गुणोपासक भक्तों के पद 428
निष्कर्ष 431
संदर्भ ग्रंथों की सूची ***437***

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षड्ज : प्रथम अध्याय

हिंदी के निर्गुण-संतकाव्य का विराट्-फलक

(क). विषय का अवतरण

प्रस्तुत शोधप्रबंध में हिंदी की मध्यकालीन भक्तिधारा के जिन प्रमुख कवियों की "बानियों" का संगीत की दृष्टि से अध्ययन किया जा रहा है, उनके वर्ग-विशिष्ट के लिए मैंने प्रबंध में 'निर्गुण' और "संत" का अभिधान स्वीकार किया है अतः सर्वप्रथम यहाँ उक्त अभिधान की स्वीकृति के आधार को स्पष्ट करना आवश्यक होगा।

उपासना के क्षेत्र में अतिप्राचीन काल से परतत्व के दो स्वरूप प्रचलित रहे हैं। एकः उसका निर्विशेष अर्थात् गुण, विशेषण, आकार और उपाधि से परे निर्गुण रूप और दूसरा, सविशेष अर्थात् उपर्युक्त सभी विशेषताओं से युक्त, उसका सगुण रूप। हमारे विवेच्य-वर्ग के कवि, परतत्त्व के उक्त प्रथम स्वरूप के उपासक थे और परतत्त्व के लिए उनका प्रिय संबोधन भी विशेषतः "निर्गुण"[1] शब्द ही रहा है।

ये साधक अपने इष्टदेव की भक्ति के लिए बाह्यसाधन एवं कर्मकांड-मात्र को निस्सार और आडम्बर[2] मानते हैं अतः मूर्त्तिपूजा[3], माला[4], तिलक[5], अर्चन-सेवन,[6] भगवान को भोग लगाना[7], तीर्थस्थान[8], जप-तप-संयम[9], मुद्रा-आसन[10], आँख मूँदना-कान रूँधना[11], सींगीनाद-श्रवण[12] आदि बाह्य क्रियाओं के घोर विरोधी हैं। इन्होंने हठयोग को भी उसकी एकांगिता (केवल ज्ञानतत्त्व को साधना में स्थान, कर्म एवं भक्ति पर बल नहीं) तथा बाह्याडम्बर को त्याग, उसे अपने सिद्धांतानुकूल एक सर्वथा स्वतंत्र रूप में ही ग्रहण किया है। इस विषय का स्पष्टीकरण आगे प्रस्तुत है।

वे अपने आराध्य को मंदिर, मस्जिद, तीर्थस्थानादि बहिर्जगत् में ढूँढने की अपेक्षा उसकी सत्ता की अनुभूति अपने एवं नरनारी-मात्र के हृदय में पाते हैं[13] तथा उसके साक्षात्कार -हेतु कर्म,[14] भक्ति और ज्ञान[15] इस साधन त्रय के अभ्यास को अपेक्षित मानते हैं। ये साधक भक्ति में मुक्ति की स्पृहा को भी हेय स्थान देते हैं और जीवन्मुक्ति को ही परम काम्य मानते हैं।[16]

इनका इष्टदेव अकुल[17], अवर्ण और अजाति है, अतः वे कुल, वर्ण, जाति आदि तत्वों को भक्तिपथ में अंतराय-रूप मानते हैं[18] और यों समाज को सर्वप्रकार के भेदभावों का परित्याग कर[19], व्यावहारिक स्तर पर अपना जीवन ब्रह्ममय बनाने के लिए प्रेरित करते हैं।[20]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन सभी तत्त्वों के आधार पर हिंदी में उक्त वर्ग के उपासकों को "निर्गुण संतकवि" तथा उनके साहित्य को "निर्गुण संतकाव्य" कहने की परम्परा रही है, अतः इसी आधार पर मैंने इस अध्यात्मधारा–विशिष्ट के साहित्य के लिए प्रबंध में "निर्गुण संतकाव्य" अभिधान स्वीकार किया है। संतों में निर्गुण ब्रह्म का मान्य स्वरूप, निर्गुण और सगुण भक्ति में भेद एवं समन्वयवादी तत्त्व, संत और भक्त में अंतर, "संत" शब्द की व्युत्पत्ति तथा निर्गुण संतकाव्य की परिधि, विषयों पर विस्तृत विवेचन आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

(ख). परतत्व को "निर्गुण" और "सगुण" मानने की परम्परा

शास्त्रों में परतत्त्व के दो रूपों की कल्पना स्पष्ट दिखलाई पड़ती है–एक उसका निर्विशेष, निरुपाधि, निर्गुण और निराकार रूप तथा दूसरा; सविशेष, सोपाधि, सगुण और साकार रूप।

मैत्रेय्युनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, मुंडकोपनिषद् तथा श्वेताश्वतर आदि प्रमुख उपनिषदों में परतत्त्व के उपर्युक्त दोनों रूपों का वर्णन मिलता है। निर्गुण और सगुण उसके दोनों स्वरूप कहे गए हैं।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में परमेश्वर को सब जीवों में स्थित सर्वव्यापी, सब भूतों के अंतस् में निवास करने वाला, सर्व कर्मों का नियामक, सब जीवों का आश्रयभूत एवं सबका साक्षी, चेतन स्वरूप, पवित्र तथा "निर्गुण" कहा गया है।[21]

इसी उपनिषद् में परतत्त्व को संसार का रचयिता, ज्ञानरूप, सर्वविषयों का ज्ञाता, स्वयंभू, काल का भी काल और "गुणयुक्त" भी कहा गया है।[22] उसे एक-साथ, अजन्मा और अनन्तानंत जन्म धारण करने वाला भी कहा गया है।[23]

वृहदारण्यकोपनिषद् में भी परतत्त्व के निर्गुण और सगुण दोनों स्वरूषों का वर्णन किया गया है।[24]

डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार; निर्गुण और सगुण ब्रह्म के इन दोनों रूपों की कल्पना इसी श्रुति के आधार पर की गई है।[25] अस्तु, इस कथन की सयुक्तिकता का विवेचन करने का यहाँ अवकाश नहीं, इतना अवश्य है कि श्रुतियों में परब्रह्म के निर्गुण और सगुण स्वरूप संबंधी उल्लेख, स्थान-स्थान पर मिलते हैं।

"मंत्रिकोपनिषद्" में भी परतत्त्व को निर्गुण और सगुण एक साथ कहा है।[26] उसे ब्रह्मचारी की वृत्ति वाला, स्तम्भ के समान अडिग, संसार के रूप में फलयुक्त संसार की गाड़ी को चलानेवाला, लाल रंग का आदि अनेक विशेषणों एवं साकारत्व द्वारा विभूषित किया है।[27] "मुंडकोपनिषद्" में उसका रूप-कथन करते हुए कहा है, "अग्नि उसका शीर्ष है, चंद्र-सूर्य चक्षु हैं, दिशाएँ कान हैं, वेद उसकी वाणी है, वायु उसका प्राण है और यह विश्व उसका हृदय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके दो चरणों से पृथ्वी निकलती है।"[28] तथा "छान्दोग्योपनिषद्" में उसे सब रसों का आश्रय और सर्वगंधमय[29] आदि कहकर स्पष्टतः ब्रह्म में सविशेषत्त्व का आरोप किया गया है।

महाभारत[30] और गीता[31] में भी परम ब्रह्म को एक साथ निर्गुण और सगुण कहा गया है।

सामान्यतः यह बात नितांत विरोधी सी जान पड़ती है कि एक ही वस्तु एक ही साथ निर्गुण भी हो और सगुण भी हो, निराकार भी हो और साकार भी हो, निरुपाधि भी हो और सोपाधि भी हो, निर्विशेष भी हो तथा सविशेष भी हो।

सत्य तो यह है कि परतत्त्व को निर्गुण भी कहा जा सकता है और सगुण भी, परंतु वास्तव में वह निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार की कल्पनाओं से परे है तथा उस निर्गुणातीत और सगुणातीत तत्त्व का निर्विशेष और सविशेष निरूपण, उसकी ऐंद्रियातीत महिमा की अभिव्यंजना एवं व्याख्या के आधारमात्र ही हैं। परब्रह्म पर परस्पर विरोधी तत्वों के आरोपण का यही तात्पर्य है।

श्रुतियों ने "नेति नेति" कहकर विविध ढंग से उसका वर्णन किया है। वृहदारण्यकोपनिषद् में इस शैली का अवलंब लेकर, उसके संबंध में कहा गया है, "वह स्थूल भी नहीं, सूक्ष्म भी नहीं, छोटा भी नहीं, बड़ा भी नहीं, छायायुक्त भी नहीं और अंधकारमय भी नहीं इत्यादि।[32]

श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है कि वह इंद्रियों से रहित होते हुए भी समस्त इंद्रियों के विषयों को ग्रहण करता है।[33] दूसरी ओर उसे अनंत शीर्षवाला तथा अनंत चक्षुओं वाला आदि कहा गया है।[34]

इस प्रकार के वर्णन ईशावास्योपनिषद्[35] आदि सभी प्रमुख उपनिषदों में भरे पड़े हैं।

एक साथ परस्पर विरोधी विशेषणों के व्यवहार का अभिप्राय यही है कि प्राकृत विशेषणों से परतत्त्व के अचिन्त्य रूप का बोध दुष्कर है।[36]

इस सत्य का प्रतिपादन समस्त श्रुतियों एवं शास्त्रों में मिलता है। हिंदी के निर्गुण और सगुण भक्तों ने भी इस सत्य को स्वीकार किया है, अंतर इतना ही है कि परतत्व के किस स्वरूप-विशिष्ट को उन्होंने अपनी साधना का लक्ष्य बनाया है, स्वभावतः ही उनका अभिनिवेश भी उस स्वरूप में अधिक मिलेगा। अनुशीलन भी उनके द्वारा उसी स्वरूप का अधिक हो सका है। यही वह अंतर है, जिसके आधार पर हिंदी में निर्गुण और सगुण भक्तिधाराद्वय का सूत्रपात हुआ।

हमारे विवेच्य काल के संतकवियों ने परब्रह्म के सगुण रूप को पूर्णतः अस्वीकार न करते हुए भी, उसकें निर्गुण स्वरूप की ही उपासना की है।[37] परतत्त्व का निर्गुण अर्थात् गुणातीत, रूपातीत एवं सीमातीत स्वरूप ही उनकी साधना का लक्ष्य बना है।[38]

यद्यपि संतों ने सगुण भक्तों को मान्य, परतत्व के पर्याय लगभग प्रत्येक शब्द के संबोधन एवं प्रयोग द्वारा अपने इष्टदेव का स्मरण किया है[39] तो भी सगुण भक्तों की भाँति उन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परब्रह्म की अवतारलीला नहीं दिखाई।

वे स्पष्ट कहते हैं कि "निर्गुण" ही हमारा पीव है।[40] "निर्गुण" राम की उपासना का ही वे उपदेश देते हैं।[41] उनके राम सगुणभक्तों के अवतारी राम नहीं हैं, वे पुराण प्रतिपादित राम नहीं हैं, इस तथ्य को भी उन्होंने अनेकों पदों में स्पष्ट निवेदित कर दिया है।[42]

प्रश्न उठता है, यदि अवतारी राम अथवा कृष्ण की भक्ति उन्हें अमान्य है तो उन्होंने अपने "निर्गुण" के लिये ब्रह्म के अवतारसूचक नामों को क्यों स्वीकार किया है? इसका कारण यह है कि संतों का अवतार-नामों से कोई विरोध नहीं है, उन्हें अमान्य हैं, परतत्त्व के श्री-विग्रह, बाह्य अर्चा[43] तथा भेदलीला[44] आदि तत्त्व।*

निर्गुण भक्तों का भगवान की अभेदलीला में विश्वास है। वे घट में ही अपने आराध्यदेव की सत्ता मानते हैं।[45] अतः घट में ही वे अपने प्रेमास्पद के साथ प्रेमलीला रचाते हैं।[46] लीला संबंधी यह अंतर निर्गुण और सगुण भक्ति में प्रमुख अंतर कहा जा सकता है।

अभेदलीला में विश्वास रखने के कारण संतों ने मंदिर, मस्जिद, तीर्थस्थाने आदि समस्त बाह्य साधनों का बहिष्कार किया है।[47] उन्होंने पूजा, नमाज, माला, तिलक, योग-याग, जप-तप, व्रत, मुद्रा, आसन, षपरा, सींगी आदि समस्त बाह्याचारों[48] का भी विरोध किया है, क्योंकि उनकी दृष्टि में बाह्याचार-मात्र, अपनी जड़ प्रकृति के कारण विशुद्ध चेतन तत्त्व की उपलब्धि में बाधक सिद्ध होते हैं। वैसे भी अभेदभक्ति में निष्ठा के कारण, बाह्याचारों में विश्वास, संतों की उपासना-पद्धति के अनुकूल नहीं।

संतों ने अपनी पूर्ववर्ती उपासना-पद्धतियों में से सर्वाधिक हठयोग का प्रभाव ग्रहण किया है। हठयोग के प्रसिद्ध सिद्धांत, "जो ब्रह्मांड में है, वही पिंड में है" का भी संतों ने उल्लेख किया है।[49] इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों, दशम द्वार, भँवरगुफा, त्रिकुटी, नाद, बिंदु, नाद-बिंदु-मिलन, सुरति-निरति, उन्मनी दशा आदि के वर्णन संतों की पदावली में भरे पड़े हैं, किंतु हठयोग का भी उन्होंने आंशिक प्रभाव ही ग्रहण किया है। उन्होंने अपनी साधना-पद्धति में हठयोग के साथ सहज योग एवं भक्ति-तत्त्व का सामंजस्य कर, मौलिक रूप में हठयौगिक वर्णन प्रस्तुत किये हैं।[50]

संतों ने ज्ञानतत्त्व को अपनी भक्ति में बहुत उच्च स्थान दिया है।[51] "अगम" की स्थिति उन्होंने "ज्ञानपद" में मानी है।[52] प्रिय के साथ प्रेमलीला का आनंद लेते हुए भी उन्होंने ज्ञान एवं ज्ञानमूलक लीला-उपकरणों का ही प्रयोग किया है।[53] उनका यह अटल विश्वास है कि ज्ञानविहीन भक्ति तथा भक्तिविहीन ज्ञान एकांगी है।[54] उनकी साधना-पद्धति में ज्ञान और भक्ति को एक समान महत्त्व मिला है।[55]

भक्ति के साथ ज्ञानतत्त्व का संयोग न होने के कारण और संभवतः अल्पज्ञ कथावाचकों से कृष्णलीला की चर्चा सुन-सुनकर समाज में कामवासना को बढ़ावा मिला है।[56] ऐसा उनका दृढ़ मत है।

सुंदरदास ने ज्ञानतत्त्व को विचारे बिना यज्ञ, व्रत, तीर्थ, दान, तथा पुराणों की कथा के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पारायण आदि समस्त पुण्यकर्मों के संपादन को भटकने के विविध मार्ग कहा है[57]। ज्ञानतत्त्व को महत्त्व तो सगुण भक्तों ने भी दिया है, परंतु प्रमुख अंतर है, अभिनिवेश एवं अनुशीलन की दृष्टि का।

निर्गुणोपासना में ज्ञानपद को भक्तितत्त्व के समान महत्त्व तो मिला ही, इसके अतिरिक्त संतों ने उसका उपयोग भक्ति के क्षेत्र में प्रविष्ट समस्त बाह्याचारों को मिटा डालने में भी किया। सगुण भक्तों की तुलना में, इस प्रकार, संतों का ज्ञानतत्त्व में अधिक अभिनिवेश परिलक्षित होता है। अनुशीलन की दृष्टि से भी देखा जाय तो भक्ति के समकक्ष महत्त्व, लीला की ज्ञानमूलक व्याख्या, बाह्योपचारोन्मूलन आदि प्रसंगों में संतों द्वारा की गई ज्ञानतत्त्व की विवेचना द्वारा ज्ञान का निर्गुण भक्ति में निजी स्वतंत्र स्थान सिद्ध हो जाता है।

निर्गुण भक्तों का उपास्य अकुल, अजाति और अवर्ण है, उसका किसी विशेष धर्म से संबंध नहीं है, अतः उन्होंने कुलगत, जातिगत, वर्णगत एवं धर्मगत आचारों, कुसंस्कारों तथा रूढ़ियों का ज़ोरदार विरोध किया है। इन तत्वों के विश्वासी हिंदू-मुस्लिम, पंडित-क़ाज़ी, ब्राह्मण आदि सभी की उन्होंने कसकर खबर ली है।[58]

उनका भक्तिमार्ग में प्रवृत्त मानवमात्र के प्रति संदेश है कि वह निष्कुल, राम के उस विशाल कुल में स्थान प्राप्त करने के लिए साधना करे, जिसमें किसी विशेष कुल, जाति, वर्ण तथा धर्म को कोई मूल्य (महत्त्व) नहीं दिया जाता,[59] केवल हृदय की शुचिता, बाह्याचार विवर्जित भावभक्ति, शील, एवं ज्ञान का ही वहाँ महत्त्व है[60]। उस कुल में प्रवेश पा लेने पर हिंदू-मुस्लिम ब्राह्मण-शूद्र सब भेदभाव विगलित हो जाते हैं। किसी भी प्रकार के भेद-भाव का पल्ला पकड़े रहना और भवबंधन से मुक्ति पाना कैसे संभव है?[61]

संतों ने यहाँ तक कहा है कि जो व्यक्ति हिंदू-मुस्लिम आदि भेदभावों को जीवन में स्थान देता है, वह जीवित ही मृत-तुल्य है। जीवन ही उसका सार्थक है, जो किसी भी प्रकार के भेदभाव को महत्त्व नहीं देता।[62]

इस प्रकार संतों ने व्यावहारिक स्तर पर भक्ति की बड़ी ठोस व्याख्या की है।

सगुण भक्तों के राम अथवा कृष्ण का वर्ण, कुल, जाति एवं धर्म से संबंध है। भक्ति के क्षेत्र में इन तत्त्वों का महत्त्व न स्वीकार करते हुए भी, व्यावहारिक स्तर पर उन्होंने इनका विरोध नहीं किया है, अपितु (कुलगत, वर्णगत, जातिगत और धर्मगत आचारों) इन तत्त्वों से संबद्ध आचारों का समर्थन ही किया है।[63]

निर्गुण भक्ति में स्वर्ग-नरक की धारणा को भी कोई महत्त्व नहीं दिया गया। संतों ने स्वर्ग की वांछा एवं नरक के भय को त्यागकर, ज्ञान-समन्वित भक्ति को प्रश्रय दिया है।[64] शास्त्र-पुराण के पारायण के ऊपर स्वानुभव को स्थान दिया है।[65] मुक्तिपद एवं बैकुंठ को ठुकराकर जीवन्मुक्ति को परम काम्य माना है।[66]

घट में ही पीव की सत्ता में निष्ठावान होने के कारण निर्गुण भक्तों की साधना में सख्य और वात्सल्य भाव की भक्ति* को स्थान नहीं मिला। उनकी वृत्ति शांत और दास्यभाव की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्ति में ही अधिक रमी है।

निर्गुणोपासना में माधुर्यभाव की भक्ति प्रायः शांत[67] अथवा दास्य[68] भाव के आनुषंगिक रूप में ही मिलती है। संतवाणी के कुछ अपवाद स्वरूप पदों को छोड़कर माधुर्यभक्ति के अधिकांश पद शांत अथवा दास्यभाव के ही अनुगत कहे जा सकते हैं, जबकि रामभक्त एवं कृष्णभक्तों के इष्टदेव "बाहिरजामी"[69] होने के कारण सगुण भक्ति में शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्य पाँचों प्रकार की भावभक्ति को स्थान मिला है।

इस प्रकार अभेदभक्ति और भेदभक्ति के आधार पर हिंदी में परतत्त्व के निर्गुण और सगुण स्वरूप की भक्ति में स्पष्ट भेद हो जाता है।

(ग). "निर्गुण" और "सगुण" के प्रति समन्वय-दृष्टि

हमारे देश में परतत्त्व के निर्गुण और सगुण, स्वरूपद्वय की भक्ति अनादि काल से होती आई है। मध्ययुग के आरंभ में ही रामानुज, निम्बार्क, मध्व, श्रीकंठ, वल्लभ, रामानंद आदि दर्शनाचार्यों ने बादरायण के सूत्रों की व्याख्या कर, समस्त द्रविड़ देश में भक्ति का प्रचार किया।

मध्ययुग में इस भक्ति-आंदोलन ने और भी व्यापक रूप धारण कर लिया।

"भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानंद।
परगट किया कबीर ने, सप्तदीप नवखंड।"[70]

इस लोक प्रचलित उक्ति के अनुसार 14वीं शताब्दी में द्रविड़ देश में उपजी (आंदोलन प्राप्त, क्योंकि भक्ति का बीज तो श्रुतियों में भी मिलता है) वेदांत भावित भक्ति का मधुमय स्रोत परतत्त्व के निर्गुण-निराकार, निर्विशेष एवं निरुपाधि तथा सगुण-साकार, सविशेष एवं सोपाधि स्वरूप को लेकर "निर्गुण" और "सगुण" इन दो धाराओं में पृथक्-पृथक् रूप से प्रवाहित हुआ और उसने देशव्यापी रूप धारण कर लिया।

उक्त आन्दोलन के परिणामस्वरूप हिंदी-साहित्य के इतिहास में भी "निर्गुण" और "सगुण" भक्ति की परंपरा चल निकली।

जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं, निर्गुण भक्तों ने रूपातीत, प्राकृत-अप्राकृत गुणातीत एवं घट-घटवासी परब्रह्म को अपनी साधना का लक्ष्य बनाया, तो सगुणभक्तों ने परतत्त्व के सगुण-साकार, त्रिगुणातीत किंतु अप्राकृत गुण-संपन्न, श्री-विग्रह, पौराणिक स्वरूप को अपनी प्रेमसाधना का केंद्र बनाया।

उपासना-पद्धति में उक्त भेद को स्थान देते हुए भी निर्गुण भक्तों ने परतत्त्व के उभय स्वरूप के प्रति समन्वय-दृष्टि को अपनाया है; इस विषय का स्पष्टीकरण हमें यहाँ अभिप्रेत है।

निर्गुणियाँ भक्तों ने यद्यपि निर्गुण-ब्रह्म (गुणातीत, रूपातीत) को अपना आराध्य माना है[71], किंतु सगुण-साकार ब्रह्म के पर्याय लगभग प्रत्येक नाम से उन्होंने अपने निर्गुण ब्रह्म को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संबोधित कर, सगुण के प्रति अपनी समन्वयवादी दृष्टि का परिचय दिया है।

यद्यपि उनका निर्गुण पीव अरूप अथवा रूपातीत है, किंतु अरूप की रूप कल्पना कर उन्होंने इस दिशा में भी अपनी समन्वय-भावना का दिग्दर्शन कराया है।[72]

संतों ने अपने निर्गुण इष्टदेव को कृपालु, दयालु, भक्तवत्सल[73] ग़रीबनिवाज[74] आदि अनेक गुणों से विभूषित, चित्रित किया है। उन्होंने सृष्टिकर्ता के रूप में उसका विराट् स्वरूप चित्रित किया है। उस पर-तत्व ने स्वयं कर्त्ता बनकर कुम्हार की भाँति सृष्टि की रचना की और वह स्वयं जीव के रूप में उसके भीतर प्रतिबिंबित हो रहा है। वह इस चित्ररूपिणी सृष्टि का रचयिता एवं सूत्रधार है। वे व्यक्ति बुद्धिमान हैं, जो इस संसार को चित्रवत् समझ लेते हैं।[75] संत दादूदयाल ने अपने निर्गुण पिया के असीम गुणों पर बलिहारी जाने की अपनी मुग्धता भी प्रकट की है।[76] कबीर भी कहते हैं, "कबीर प्रीतड़ी तौ तुझ सौं, बहु गुणियाले कंत।"[77]

संतों के द्वारा किये गए निर्गुण ब्रह्म के इन सोपाधि वर्णनों का अभिप्राय यह है कि उन्हें परतत्त्व के सगुण-साकार रूप से कोई विरोध नहीं है, अपितु वे उसे निर्गुण और सगुण की परिकल्पना से परे मानते हैं। उनके मत में "गुण" और "निर्गुण" परस्पर विरोधी तत्त्व नहीं हैं। "गुण" में "निर्गुण" और "निर्गुण" में "गुण" की स्थिति है अर्थात् जो तत्त्व गुणातीत है, वह गुणों में नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता तथा "निर्गुण" का अर्थ यह नहीं है कि वह अप्राकृत गुणों से बाहर है।[78]

इस परिप्रेक्ष्य में ही संत पदावली में सगुण के प्रति समन्वय भाव दृष्टिगोचर होता है। इस विशेष-अर्थ में उपलब्ध संतों की समन्वयभावना को उनके विचारों में असंतुलन समझना भूल होगी।[79]

संतों ने उक्त व्यापक अर्थ में कहीं परम-ब्रह्म के अवतारों एवं उनके पौराणिक स्वरूप[80] को भी प्रस्तुत किया है।

"जाकै नाभि पदम सु उदित ब्रह्मा, चरन गंग तरंग रे।
कहै कबीर हरि भगति बांछूं, जगत गुर गोब्यंद रे।।"[81]

तथा

नहीं छाड़ौं बाबा रामनाम, मोहि और पढ़न सूं कौन कांम।
प्रह्लाद पधारे पढन साल, संग सखा लीयें बहुत बाल।
मोहि कहा पढावै आल जाल, गेरी पाटी में लिखि दे श्रीगोपाल।
तब संनां मुरकां कह्‌यौ जाइ, प्रहिलाद बंधूयो बेगि आइ।
तूं रामकहन की छाडि बांनि, बेगि छुडाऊँ मेरो कह्यो मांनि।
मोहि कहा डरावै बार-बार, जिनि जल थल गिर को कियो प्रहार।
बांधि मारि, भावै देह जारि, जेहूं रांम छाड़ौं तो मेरे गुरहि गारि।
तब काढि खडग कोप्यो रिसाइ, तोहि राखनहारो मोहि बताइ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खंभा में प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मारयौ नख बिदारि।
महापुरुष देवाधिदेव, नरस्यंघ प्रकट कियौ भगति मेव।
कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद उबारयो अनेक बार।[82]

यद्यपि निर्गुणी संतों का बल घट में ही स्थित पीव की सत्ता के निरूपण पर अधिक रहा है, किंतु कहीं-कहीं उनके द्वारा किये गए ब्रह्म के अवतारों एवं पौराणिक स्वरूप के वर्णनों से यही व्यंजित होता है (यदि ये पद प्रामाणिक हैं तो) कि इनका लक्ष्य घट-घटवासी, गुण-अगुण और रूप-अरूप से अतीत ब्रह्म होते हुए भी उनका परब्रह्म के पौराणिक स्वरूप के प्रति कोई विरोध भाव नहीं है, अपितु उक्त वर्णनों को उनकी समन्वय दृष्टि की विशेषता कहा जा सकता है। इसी विशेषता के अंतर्गत कबीर के निम्न पद को लिया जा सकता है।

"मेरी जिभ्या विस्न, नैन नाराइंन हिरदै जपौं गोविन्दा।"[83]

संतों की समन्वय-भावना उनके अपने निर्गुण-प्रियतम के दर्शनासक्ति[84] वाले पदों में भी दृष्टिगत होती है। निर्गुण कवियों के ये पद सगुण भक्तों से कम मार्मिक नहीं हैं।

निर्गुण एवं सगुण भक्तों की विचारधारा में सर्वप्रथम अंतर है, अपने प्रिय की पूजा-हेतु बाह्यसाधनों में अविश्वास एवं विश्वास को लेकर। निर्गुणियां भक्तों को परतत्त्व के श्री विग्रह की बाह्यअर्चा मान्य नहीं है, क्योंकि वे घट में ही अपने प्रिय की सत्ता में विश्वास रखते हैं; किंतु प्रकृति के विराट्[85] एवं आंतरिक प्रतीकों[86] द्वारा प्रिय की पूजा में आस्था को हम स्थूल दृष्टि से उनकी पूजासक्ति कह सकते हैं। उनके उक्त विषय से संबंधित अनेक पद एवं "आरती" नामक कृतियाँ, इस प्रकार, उनकी सगुण-भक्ति के प्रति समन्वय-भाव की परिचायिका कही जा सकती हैं।

नामसुमिरन में सगुण-भक्तों की ही भाँति संतों की निष्ठा है। हरि-नाम में ही उनके सकल बाह्य उपचार सन्निविष्ट हैं।

"तुम्हारे नांइ लागि हरि जीवन मेरा।
मेरे साधन सकल नांव निज तेरा।
दांन पुंनि तप तीरथ मेरे, केवल नांइं तुम्हारा।
ये सब मेरे सेवा पूजा, ऐसा बरत हमारा।
ये सब मेरे वेद पुरांनां, सुचि संजम है सोई।
ग्यांन ध्यांन येई सब मेरे, और न दूजा कोई।
काम क्रोध काया बसि करणां, ये सब मेरे नांमां।
मुकता गुपता परगट कहिये, मेरे केवल रांमां।
तारण तिरण नांउं निज तेरा, तुम्ह ही एक अधारा।
दादू अंग येक रस लागा, नांउं गहे भौ पारा।[87]

शास्त्रों में ब्रह्म को सच्चिदानंद कहा गया है। चैतन्य चरितामृत में इस संबंध में कहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया है।

"सत् चित् आनंदमय कृष्णेर स्वरूप, अतएव स्वरूप शक्ति होय तिन रूप।[88]

आनंदांश ह्लादिनी, संदशे संधिनी, चिदंशे संवित् जारे ज्ञान करि मानि।"

अर्थात् कृष्ण (ब्रह्म) की स्वरूप शक्ति तीन प्रकार की होती है। एक सत्, दूसरी चित् और तीसरी आनंद। अतः ब्रहा को सच्चिदानंद कहा जाता है। "आनंद" स्वरूप से ह्लादिनी शक्ति की उत्पति होती है तथा "सत्" से संधिनी शक्ति की उत्पत्ति होती है।

इन तीन तत्त्वों में भी ह्लादिनी शक्ति सर्वाधिक मधुर शक्ति है। "चैतन्य चरितामृत" ग्रंथ में ह्लादिनी शक्ति के सारतत्त्व का नाम प्रेम अथवा भक्ति कहा गया है।[89]

वास्तव में भक्ति चित्त की वह आनंदमयी मनोवृत्ति है, जो व्रत के निर्गुण अथवा सगुण किसी भी रूप में परम अनुरक्ति से उत्पन्न होती है और निज आलम्बन के महात्म्य में अभिभूत रहती है।[90]

भक्ति तत्त्व को वेद, उपनिषद, पुराण, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवदगीता आदि सभी प्राचीन ग्रंथों में बहुत महत्त्व दिया गया है। निर्गुण और सगुण उपासना में भी इसे समान स्थान मिला है।

निर्गुणिया भक्तों ने भक्तितत्त्व को ज्ञानतत्त्व के समकक्ष स्थान दिया है। कबीर कहते हैं कि भक्ति के अभ्यास के बिना, भवबंधन के जंजाल से मुक्ति असंभव है।[91] नारदी भक्ति में उनका अटूट विश्वास है।[92]

भक्त को भगवान की अंनायास कृपा प्राप्त होती है, इस बात में भी उनकी अचल निष्ठा है।[93]

शास्त्रों में अनेकविध भक्ति का विशद विवेचन मिलता है। भक्ति के इन सर्वप्रकारों का पर्यवसान शरणागत (प्रपत्ति) भाव में होता है। गीता में—

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।[94]

श्लोक के द्वारा बारम्बार यह स्थापना की गई है कि भक्ति में पूर्ण आत्मसमर्पण प्रमुख तत्त्व है। भगवान ने कहा है कि, "मैं दिव्य हूँ" किंतु अनन्य भक्ति के द्वारा मुझे देखा जा सकता है, जाना जा सकता है और कोई भी मुझ में प्रविष्ट हो सकता है[95] तथा सब कर्मादि को मुझे समर्पित करके अनन्य भाव से जो मेरी भक्ति करता है, उसे मैं भवसागर से पार कर देता हूँ।[96]

निर्गुण संतों ने भी प्रपत्तिभाव से भगवान के अनेक पद गाए हैं। कबीर कहते हैं "मैं भगवान का कुत्ता हूँ" और मेरा नाम मुतिया है। गले में राम की डाली हुई रस्सी है, जिधर वह खींचता है, उधर ही मैं खिंच जाता हूँ।[97] भगवान में सर्वस्व समर्पित कर, वे उनसे रक्षा-हेतु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

याचना करते हैं, "हे भगवान अब मैं तुम्हारी शरण में आ गया हूँ अतः मेरी रक्षा तुम्हें ही करनी है।"[98]

श्रीमद्भागवत[99] तथा गीता[100] में निष्काम भाव से नित्य नैमित्तिक कर्म करते हुए, भगवद्भक्ति में लीन रहने वाले को भक्ति की प्रशंसा मिलती है, निर्गुण भक्तों की सहज साधना इस कोटि की साधना कही जा सकती है।[101]

शास्त्रों में भक्ति के दो प्रमुख भेद मिलते हैं—गौणी भक्ति और प्रेमलक्षणा भक्ति।

गौणी भक्ति में लोकमान्य धर्म तथा शास्त्राचार का पालन होता है और कामना का अंश भी रह सकता है, अतः यह "वैधी" भक्ति के अंतर्गत आती है जबकि प्रेमाभक्ति में शास्त्र अथवा लोकाचार के बंधन नहीं रह जाते। इसमें भक्त अविच्छिन्न भाव से भगवान के प्रति अनुरक्त रहता है। उसकी समस्त चित्तवृत्ति उसी में केंद्रित रहती है।[102]

सगुणभक्तों की भाँति निर्गुण भक्तों ने भी प्रेमाभक्ति को परम साधन माना है। प्रेमाभक्ति में कामना-मात्र का अभाव वांछनीय है। यहाँ तक मुक्ति की इच्छा भी हेय है। निष्काम प्रिय की प्राप्ति, कामना मात्र के त्याग से ही संभव है।[103] इस प्रकार पूर्ण निष्काम भाव से की गई भक्ति में कर्म की भावना के साथ अनुस्यूत अहं का लेश भी नहीं रहता, अतः संतों ने भक्तितत्त्व को श्रेष्ठ पद दिया है।[104] सगुणभक्तों की भाँति उन्होंने कर्ममात्र का (कर्मभावना से संबद्ध अहम्) त्याग कर केवल रामनाम से लौ लगाने का उपदेश दिया है।[105] निर्गुण संतों ने जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में भक्ति में निमग्नता के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है। जाग्रतावस्था हरिकथा, हरिकीर्तन और हरि सुमिरन में व्यतीत हो; स्वप्न में ध्यान की लौ लगी रहे और सुषुप्ति अवस्था में अंतर, प्रेम-मग्न रहे, ऐसी परा अथवा प्रेमाभक्ति ही उन्हें अभीष्ट है और ऐसी भक्ति के साधक को, वे भगवत-तुल्य पूज्य मानते हैं।[106]

संतकवियों ने भक्ति को बहुत महत्त्व दिया है। सुंदरदास ने तो अपने "ज्ञानसमुद्र" ग्रंथ में भक्ति के सर्वप्रकारों का विस्तार से वर्णन किया है। भक्ति में रमे भक्त को न मुक्ति की कामना रहती है, न रिद्धि-सिद्धि, योग-भोग अथवा किसी अन्य सांसारिक पदार्थ की। वह अपने प्रिय को चाहता है, उसे प्यार करता है और उसे पाना चाहता है, बस, इतना ही स्वार्थ उसके भक्ति-कर्म के पीछे छिपा रहता है। प्रिय-दर्शन का प्यासा वह मतवाला प्रिय-मिलन-हेतु संसार के सकल भोगैश्वर्य रिद्धि-सिद्धि, योग-भोग, घर-वन, यहाँ तक कि मोक्ष को भी ठुकरा देता है।[107]

इस प्रकार निर्गुणियाँ संतों ने भक्ति को सगुण भक्तों के समान ही बहुत महत्त्व दिया है। वास्तव में उभय कोटि के उपासकों की भक्ति में गहरी पैठ रही है। अंतर यही है कि सगुण भक्तों के आलंबन दाशरथी राम अथवा वासुदेव कृष्ण हैं, जबकि निर्गुणभक्तों के आलंबन निर्गुण "राम" अथवा निर्गुण "कृष्ण" हैं। निर्गुण उपासकों की दृष्टि से हम सगुण भक्ति को लक्ष्यसिद्धि की साधनावस्था मान सकते हैं, और निर्गुण भक्ति को साध्यावस्था कह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकते हैं;

जहाँ दाशरथी राम अथवा वासुदेव कृष्ण आदि के रूप में स्थूल अथवा सूक्ष्म आलम्बन मात्र का ही त्याग है।[108]

सगुण भक्ति की भाँति शील को भी अपनी उपासना—पद्धति में स्थान देकर निर्गुणी संतों ने सगुण भक्ति के प्रति पूर्ण समन्वय भाव अपनाया है। उन्होंने भक्ति-मार्ग में प्रवृत्त व्यक्तियों को भगवान् की पूजा, आदि बाह्याचारों को त्यागकर, साच-सील का चौका देने तथा भाव-भक्ति की सेवा करने का उपदेश दिया है।[109]

संतों के साथ फाग खेलते हुए ये संत कवि सत्य एवं शील के अरगजा का उपयोग भी नहीं भूले हैं।[110]

भक्ति के क्षेत्र में ज्ञान की खंग से काम, क्रोध आदि रिपुदल एवं बाह्याचारादि का संहार करते समय भी शील के साथ स्नेह को उन्होंने नहीं छोड़ा है।

"एक समसेर इकसार बजती रहे, खेल कोई सूरमा संत खेले।
कामदल जीति करि क्रोध पैमाल करि,परम सुखधाम तहँ सुरति मेले।
सील से नेह करि ज्ञान कौ खड़ग लै, आय चौगान में खेल खेले।
कहे कब्बीर सोइ सन्त जन सूरमा।
सीस को सौंप करि करम ठेले।"[111]

संतों की सच्चे वैष्णव के प्रति श्रद्धा भी उनकी सगुणभक्ति के प्रति समन्वय-भावना की विशेषता कही जा सकती है।

निर्गुणियाँ सन्तों ने वैष्णव को राम के समकक्ष महत्त्व दिया है, क्योंकि वह रामनाम का सुमिरन करवाता है।

"मेरे संगी दोइ जणाँ, एक वैष्णों एक रांम।
वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावे नांम।"[112]

सगुण भक्तों की भाँति निर्गुण भक्तों का भी मुक्ति में विश्वास नहीं है और वे जीवन्मुक्ति को ही अपना लक्ष्य मानते हैं।[113] वे भी अनन्त काल तक अपने प्रिय में रमे रहने की ही कामना रखते हैं।[114]

उनका भगवद्लीला में अटूट विश्वास है। भगवद्लीला के आनन्द-सिन्धु में खूब गहरे में पैठकर, उन्होंने सगुणभक्तों की भाँति ही गोते लगाए हैं। यद्यपि उभयकोटि के भक्तों की लीला के रूप में क्रमशः अभेदभक्ति और भेदभक्ति के आधार पर अंतर अवश्य आ गया है, किन्तु लीला में प्रवृत्ति दोनों की समान रही है।

'फागुन मास आ गया है और अहा! आज फ़ागुन का सुहावना दिन भी आ गया है। भला ऐसे शुभदिन अपने पिया से होरी खेले बिना एवं नाना रंगरेलियाँ किये बिना, भक्तात्मा का मन कैसे माने लो, पियु के साथ होली खेलने का सामान भी तैयार हो गया! उसने अनेक रंग का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञान का गुलाल बनाया है। तन-मन का केसर घोल लिया है। ललन मुख मोड़कर न चल सके, अतः उसपर छिड़कने के लिए उसके पास चित्त का चन्दन भी है। झाँझ, डफ, ताल, मृदंग, उपंग आदि अनहद शब्द के वाद्ययंत्रों का सुंदर 'ऑरकैस्ट्रा'' संगीत भी छिड़ा है। उसकी "प्लैन" (योजना) यह है कि ज्यों ही ललन आएँ, सुमति की भरी हुई पिचकारी लेकर वह उन पर पिल पड़ेगी और उन्हें अपने अंगों में कसकर भर लेगी। उसकी कुछ सखियाँ एक ओर से और दूसरी ओर से वह स्वयं, अपने प्यारे को परस्पर मिलकर घेर लेंगी, ताकि वह कहीं से निकल न भागें और बीच में ही रंग डालकर उनकी खूब 'गत' बनाई जाएगी, तब वह अपने ललन से पूछेगी, क्यों, बहुत शोर कर रहे थे न, देखा अब कौन जीता? प्रिय तुम अपनी नादानी तो देखो, हम तो पाँच-पच्चीस सहेलियाँ हैं और राजा, तुम अकेले हो, भला, जब चारों दिशाओं से घेरा डाल कर हम तुम्हें पकड़ लेंगे, तब हमसे अपना पिण्ड छुड़ाकर कैसे भाग सकोगे? हमने सुना है, तुम अपने आप को बहुत जोरावर समझते हो, और बहुतों के प्रेमपाश को काट कर भागने में सफल भी हो गए हो, किन्तु तब तुम्हें जानें, जो इस बार हमारे हाथ से छूट कर दिखाओ। मैं तो तुम्हारे गले से लिपट जाऊँगी, प्रिय! इस बार ही तो मेरा दाँव बना है और तुम मेरे हाथ आए हो, अतः जी भर तुम्हें गाली देती हूँ। तुम पराई स्त्रियों के साथ जा रमे और मुझे क्यों भुला दिया, बताओ? तुम्हारी न माँ है, न बाप है और निगुसाये (बिना स्त्री का) की तरह इधर-उधर डोलते रहते हो। फाग का त्योहार ही ऐसा है अतः हँसकर ही तुम्हें गाली दे रही हूँ। मेरे प्यारे, दिल में लगा कर कभी नाराज़ न हो जाना! इस फाग के पर्व पर हम तुमसे कुछ नहीं लेंगे, बस अब तुम्हें अपने से विलग न होने देंगे। ऐ मेरे चतुर कंत, तुम्हीं बताओ, तुम्हारी यह सुंदर पतिव्रता पत्नी तुम्हें छोड़कर तुम्हारे बिना कैसे रहेगी? (अथवा ऐ मेरे सुजान कंत, इस सुन्दर पतिव्रता नारी को छोड़कर कैसे जा सकोगे)।"[115]

प्रेम-लीला का कितना सुन्दर निरूपण है निर्गुण भक्तात्मा-रूपा गोपी भी अपने प्रिय कान्हा के साथ जमुना के तीर पर कुंज में परम विलास करती है। संग की सहेलियों के साथ रास रचाती है। विलय-संगीत सुनती है। और वहाँ पर प्रकाश से मंडित अपने प्रिय का दर्शन पाती है। अन्तर इतना ही है कि यहाँ प्रिय, गंगा, जमुना, कुंज, दिव्य संगीत, और विलास की सामग्री सभी घट के भीतर है।

> *"घटि घटि गोपी घटि घटि कांन्ह, घटि घटि रांम अमर अस्थांन।*
> *गंगा, जमना अंतर वेद, सुरसती नीर बहै पर देस।*
> *कुंज केलि तहं परम बिलास, सब संगी मिलि षेलैं रास।*
> *तहँ बिन मैनां बाजैं तूर, बिगसै कँवल चंद अरु सूर।*
> *पूरण ब्रह्म परम परकास, तहँ निज देवे दादू दास।"*[116]

निर्गुण और सगुण ने भक्ति में अभेदभक्ति और भेदभक्ति सम्बन्धी यह प्रमुख अंतर होते हुए भी निर्गुण संतों ने उपास्य के स्वरूप[117] एवं उसकी* साधना[118] में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं माना। उनके समन्वयमूलक दृष्टिकोण की इस विशिष्टता का अल्प में दिग्दर्शन कराने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ प्रयास किया गया है।

(घ). 'संत' शब्द की व्युत्पत्ति

हिन्दी में 'संत' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में विभिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वान् 'संत' शब्द को 'शांत' शब्द का रूपान्तर मानते हैं और इस प्रकार 'शं ब्रह्मानन्दात्मकं विद्यते अस्य' के अनुसार इसका अर्थ 'ब्रह्मानन्द सम्पन्न व्यक्ति'[119] लेते हैं।

कुछ लोग इसे 'सनोति प्रार्थितं फलं प्रयच्छति' के आधार पर बने 'सन्ति' अथवा 'सन्मत्य' शब्द का विकृत रूप मानते हैं और इस प्रकार इसका अर्थ फलदाताओं में श्रेष्ठ[120] मानते हैं।

एक अन्य मत के अनुसार 'सनति सम्भवति लोकाननुगुह्णाति के आधार पर 'संत' शब्द की व्युत्पत्ति मानकर इसका अर्थ 'लोक पर अनुग्रह करने वाला'[121] किया गया है।

डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के अनुसार 'संत' शब्द 'सत्' अथवा 'शांत' इन दो शब्दों में से किसी एक शब्द के द्वारा बना है। इनके अनुसार 'संत' शब्द या तो 'सत्' का बहुवचन हो सकता है, जिसके अनुसार 'संत' का अर्थ होगा, वह व्यक्ति जिसे 'सत्' की अनुभूति हो गई है, अथवा जो 'सत्' है अथवा वह पाली भाषा में विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त 'शांत'' शब्द का विकृत रूप हो सकता है, जिसके अनुसार 'संत' शब्द का अर्थ होगा, वह व्यक्ति जिसकी कामनाएँ शांत हो चुकी हों।[122]

परशुराम चतुर्वेदी 'संत' शब्द की व्युत्पत्ति मूलतः 'अस्' अर्थात् 'होना' धातु से बने 'सत्' शब्द से मानते हैं। इस प्रकार 'संत' शब्द को वे 'शुद्ध अस्तित्त्व' मात्र का बोधक मानते हैं।[123] उनके अनुसार 'संत' शब्द 'सत्य' का पर्यायवाची भी है और संतों की सत्य के प्रति पूर्ण आस्था होने के कारण इस अर्थ में भी यह शब्द-प्रयोग सार्थक सिद्ध होता है।[124]

'संत' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में हम चतुर्वेदी जी से सहमत हैं। 'संत' शब्द 'अस्' धातु से बना है। 'अस्' धातु से शत्र्यंत रूप बनता है, सत् या सन्। इसका पुल्लिंग में प्रथमा-बहुवचन रूप बनता है 'सन्त।' संस्कृत का शंब्द, हिन्दी में तद्भव रूप में आया है।

डॉ. मनमोहन सहगल भी 'संत' को 'सत्' तत्त्व का अंश स्वीकार कर 'संत' शब्द की व्युत्पत्ति 'सत्' से ही मानते हैं।[125]

डॉ. बड़थ्वाल के अनुसार, भी 'संत' एकमात्र सत्तत्त्व को अपने में और अपने को एकमात्र सत्तत्त्व में देखता है, इसीलिए वह 'संत' है।[126]

डॉ. गोपीनाथ कविराज जी के अनुसार परतत्त्व सत्यरूप है और उसका यह गुण जिन महानात्माओं के चरित्र का अभिन्न अंग बन जाता है, उन्हें 'संत' कहा जाता है। उनमें साक्षात् परब्रह्म के 'सत्' स्वरूप के दर्शन होते हैं।[127]

हमारे प्राचीन ग्रंथों में 'संत' शब्द का प्रयोग, ब्रह्म के लिए भी हुआ है।[128] किन्तु ऋग्वेद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के निम्न उद्धरण—

'सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।'[129] में 'संत' शब्द ब्रह्म के विशेष्य रूप में नहीं, अपितु विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है। अतः उक्त पंक्ति का अर्थ है कि, "क्रांतदर्शी विप्र, उस (ब्रह्म) 'एक होते हुए को' (सन्तं) बहुत प्रकार से कल्पित करते हैं, जबकि परशुराम चतुर्वेदी जी ने उक्त पंक्ति में 'सन्तं' शब्द का अर्थ 'अद्वितीय सत्' किया है।[130] और यों 'सन्त' शब्द को उन्होंने उक्त प्रसंग में ब्रह्म का विशेष्य मान लिया है।

"विष्णुसहस्रनाम"[131] में परम ब्रह्म के लिए 'सन्त' शब्द का प्रयोग मिलता है—

"उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः।
वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः।"

(अर्थात् भगवान भवसागर से पार उतारते हैं, अतः 'उत्तारण' हैं। असत्कार्यों का अथवा पापी का नाश करते हैं, अतः 'दुष्कृतिहा' हैं। अपने भक्तों के लिए 'पुण्य' (स्वरूप) हैं अर्थात् जिनका ज्ञान (आत्म या परमात्म तत्त्व का ज्ञान) पुण्यप्रद है अतः वे 'पुण्य' हैं। परम तत्त्व के ज्ञान से दुस्वप्ननाशनः' हैं। (भवबंधन से) मुक्तिप्रदाता हैं, अतः वे 'वीरहा' हैं। भक्तों के रक्षक होने के कारण वे 'रक्षणः' हैं। प्राणियों में 'सत्' रूप से भगवान् स्वयं प्रतिष्ठित हैं, अतः वे 'सन्त' हैं। प्राणरूप से विश्व में स्पंदित होने के कारण वे 'जीवन' हैं और विश्व को सभी ओर से व्याप्त करके स्थित हैं, अतः वे 'पर्यवस्थित' हैं।

'सत्' तत्त्व में अखण्ड रूप से प्रतिष्ठित रहने वाले संत और ब्रह्म में अन्तर भी क्या है? सुंदरदास कहते हैं—

'सुन्दर हरिजन एक हैं, भिन्न भाव कछु नाहिं।
संतनि माहें हरि बसै, संत बसै हरि माँहि।'[132]
संतनि की सेवा किये, हरि की सेवा होइ।
तातें सुन्दर एक ही, मति करि जानै दोइ।'[133]

सच्चे संत अपनी कथनी एवं करनी द्वारा प्राणिमात्र के देवत्व का विकास कर, उसे ब्रह्म-साक्षात्कार कराने की योग्यता रखते हैं, इसीलिए दादू ने संतों का ब्रह्म-निरूपण शैली में ही वर्णन किया है—

'दादू इस संसार में, ये द्वै रतन अमोल।
इक साईं अरु संतजन, इनका मोल न तोल।'[134]
'दादू इस संसार में, ये द्वै रहे लुकाइ।
राम सनेही संतजन, और बहुतेरा आइ।'[135]

(ड.) 'संत' और 'भक्त' की तुलना

हिंदी में निर्गुण और सगुण भक्ति के आधार पर 'संत' और 'भक्त' नाम से साधकों की दो पृथक्-पृथक् कोटियाँ बनाई गई हैं। इस विभाजक-रेखा के आधर पर गुण, आकार और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपाधि से परे ब्रह्म की अभेदभक्ति में श्रद्धानिष्ठ साधकों को 'संत' तथा सगुण, साकार, सविशेष और सोपाधि ब्रह्म की भेदभक्ति में रमे उपासकों को 'भक्त' कहा जाता है।

श्रीमद्भागवत् में परमतत्त्व के ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—इन तीन रूपों का उललेख मिलता है।[136] तत्त्व एक ही हैं, सविशेषत्व क्रम से उसका आविर्भाव त्रिविध है।

भक्त कवियों की प्रवृत्ति एवं अभिनिवेश, परतत्त्व के भगवत्-स्वरूप में अधिक है, जबकि संतों ने परतत्त्व के उक्त तीनों स्वरूपों का बड़ी तल्लीनता से वर्णन किया है। जब वे अपने आराध्य का अरूप, आकार-विहीन तथा पुष्पगंध से भी सूक्ष्म तत्त्व[137] के रूप में वर्णन करते हैं, तब वह 'ब्रह्म' का स्वरूप है। जब वे उसे सृष्टिरचयिता[138] एवं घट-घटवासी[139] मानते हैं तो वह परतत्त्व का 'परमात्म' स्वरूप है और जब वे उसका भक्तों पर अनुग्रहकारी प्रीतिकर तथा भक्तवत्सल-रूप[140] चित्रित करते हैं, तब वह 'भगवान्' का स्वरूप है। संतों का अभिनिवेश परतत्त्व के उक्त त्रिविध स्वरूप में होते हुए भी प्रथम (ब्रह्म) स्वरूप में ही उनकी वृत्ति अधिक रमी है अर्थात् उनका लक्ष्य परतत्त्व का 'ब्रह्म' स्वरूप ही दृष्टिगत होता है, क्योंकि ये घट में ही उसकी सत्ता मानते हैं।[141]

भेदभक्ति के विश्वासी भक्तकवि परमतत्त्व की सर्वव्यापकता का अनुभव करने पर भी उसके श्रीविग्रह में निष्ठा रख; पुष्प, गंध, नैवेद्य आदि बाह्योपचारों से उसकी नवधाभक्ति में आनंद मानते हैं, जबकि अभेदभक्ति में निष्ठावान् संत कवियों का न भगवान् के श्रीविग्रह में विश्वास है और न उसकी भक्ति में किसी भी प्रकार के बाह्य उपचार ही उन्हें मान्य हैं। जब घट में ही प्राणप्रिय का वास है तो उन्हें मन्दिर-मस्जिद, काशी-काबा आदि स्थानों एवं शास्त्रों और पुराणों में खोजने की क्या आवश्यकता है?[142] अतः संत कवि मन में ही अपने 'सहज सरूप' निर्गुण राम की पूजा-अर्चना का विधान करते हैं।[143]

उनके कृष्ण और गोपियाँ घट-घट में बसे हैं और इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ी रूप गंगा, यमुना, सरस्वती तीनों नदियाँ भी शरीर ही में हैं। कुंज भी भीतर है, जहां भक्त और भगवान रास रचाते, केलि करते एवं परम रस लूटते हैं। वहां बिना किसी वाद्य के ही अनहद नाद रूपी सुन्दर संगीत छिड़ा रहता है। नाद-बिन्दु-मिलन के रूप में कमल, सूर्य और चन्द्र तीनों वहाँ विकसित रहते हैं। यों घट में ही ये संतकवि परम प्रकाश से ज्योतित अपने 'पूरण ब्रह्म के घट में ही दर्शन करते, एवं उससे लीला रचाते हैं।[144]

भक्ति में बाह्यसाधनों का बहिष्कार एवं लीला-सम्बन्धी उक्त वर्णन ही संत एवं भक्त कवियों में सर्वप्रमुख सैद्धांतिक अंतर कहा जा सकता है। नाम सुमिरन में ही उनके दान-पुण्य, तप, तीर्थ, सेवा-पूजा, वेद-पुराण आदि सकल साधन समाहित हैं।[145]

तुलसी आदि भक्त कवियों की भांति वे भी अपने राम की आरती उतारते हैं, किंतु बाह्य साधनों से नहीं। तन-मन का चन्दन, प्रेम की माला, अनहद का घंटा, ज्ञान का दीपक, प्राण की बाती, पंचेन्द्रियों को पत्र-पुष्प बनाकर। उनके देव निरंजन हैं, भाव (भक्तिभाव) ही सेवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, मन मंदिर है और आत्मा परम देव है। इस प्रकार निरंतर भक्ति में रमे वे अपने राम पर बलिहारी जाते हैं।[146]

ये अपने निर्गुण राम का पौराणिक स्वरूप भी प्रस्तुत करते हैं, उसे राम, कृष्ण, केशव, बनवारी, मुरारी, कन्हैया, गोपीनाथ आदि अवतार सूचक नामों से भी स्मरण करते हैं, उसके सविशेष एवं सोपाधि रूप पर भी अपनी मुग्धता व्यंजित करते हैं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके विचारों में संतुलन का अभाव है, जैसा कि प्रायः विद्वानों को भ्रम हो जाता है।[147] सत्य तो यह है कि संतों का न परतत्त्व के भगवत् स्वरूप से वैर-विरोध है, न भक्ति-तत्त्व एवं भक्तों से और न ही शास्त्र-पुराण से, अपितु उन्हें अमान्य है; भगवान् की मूर्ति, माला, तिलक, पत्र-पुष्पादि बाह्योपचारों द्वारा अर्चना। उन्हें भगवद्भक्ति में बाह्यसाधन—मात्र के उपयोग से घृणा है। इसके लिए वे क्या अवधू, क्या पंडित और क्या काज़ी किसी को भी क्षमा नहीं करते। अनेकों स्थलों पर उन्हें फटकार भी देते हैं।[148] भक्ति में बाह्यसाधन एवं कर्मकांड आदि का विधान चाहे शास्त्रसम्मत ही क्यों न हो, उन्हें यह स्वीकार नहीं है। इस प्रकार जैसे गोपियों ने कृष्ण-मिलन-हेतु समाज के समस्त आचारों का परित्याग कर दिया था, उसी प्रकार ये संतकवि अपने निर्गुण राम की भक्ति में लोक और वेद की मर्यादा का उल्लंघन कर उससे सच्चे प्रेम का नाता जोड़ लेते हैं।[149]

संतों का भक्तित्व से अतिशय प्रेम है, किन्तु इस भक्ति के साथ ज्ञानतत्त्व भी अनुस्यूत है। दोनों तत्त्वों का गठबन्धन ही उत्तम भक्ति का लक्षण है। इस प्रसंग में भक्तप्रवर तुलसी तथा (निर्गुण) संतकवि एकमत हैं।* कबीर कहते हैं, "जिस मनुष्य ने रामभक्ति सिद्ध नहीं की, वह जन्मते ही मृत्यु को प्राप्त क्यों नहीं हो गया, उसकी मां बाँझ ही क्यों नहीं हो गई? वह कलियुग में सूकर रूप है तथा जिस कुल में पुत्र ने ज्ञानतत्त्व नहीं विचारा, उसकी मां विधवा क्यों नहीं हो गई? मनुष्य सुन्दर और सुरूप होते हुए भी (उक्त ज्ञान समन्वित भक्ति के अभाव में) भक्ति बिना कुचल और कुरूप है।[150] तुलना में तुलसी की 'भक्ति' की परिभाषा द्रष्टव्य है, जो उन्होंने काग्भुशुण्डि के माध्यम से दी है—

'बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइस सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि।[151]

अर्थात् वैराग्य रूपी ढाल से अपने को (विषय वासनाओं में ग्रस्त होने से) सुरक्षित रखते हुए, ज्ञानरूपी तलवार से मद, लोभ-रूपी वैरियों को मारकर जो विजय प्राप्त करती है, वह है, हरिभक्ति, ऐ पक्षिराज! इसे विचार कर देख लो।

किंतु यहाँ भी संत और भक्तकवियों में अभिनिवेश की दृष्टि से स्पष्ट अंतर है। संतों की पदावली में ज्ञान का स्वर भक्तकवियों की तुलना में अधिक प्रखर है। संतों पर हठयोग का प्रभाव भी, ज्ञान के स्वर में अधिक तीव्रता लाने का कारण बना है। संतों ने ज्ञानरूपी शमशेर को साधना के क्षेत्र में क्षणभर के लिए भी रुकने नहीं दिया। वह निरन्तर इकसार बजती रही।[152] उन्होंने शीलरूपी कवच को धारण किये रखा, किन्तु ज्ञान की खड्ग ही उनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह एकमात्र साधन है, जिसके प्रयोग द्वारा उन्होंने न केवल काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओं का ही विनाश किया, अपितु मुद्रा, आसन, सींगी, मूर्त्तिपूजा,जप-तप, माला आदि बाह्याचारों;[153] जातिभेद, वर्ण, कुल, सम्प्रदाय एवं धर्म आदि भेदों पर आधारित कुसंस्कारों तथा श्राद्धकर्म, खतने की प्रथा, तथा छूत आदि से संबद्ध अनेकानेक विवेकहीन सामाजिक रूढ़ियों[154] को साहस से छिन्न-भिन्न कर डाला। इस प्रकार संतों ने ज्ञान का चश्मा पहन कर ही अध्यात्म विषय का अध्ययन किया। ज्ञान[155] के चश्मे द्वारा, जहाँ 'वे मानवतनु को माटी के मंदिर के रूप में देख सके (उसका उपयोग उन्होंने भवबंधन के प्रति वैराग्य धारण करने में एवं मानसिक विकारों को पूरा करने में किया), वहां उस ज्ञान के चश्मे को पहनकर ही वे भक्तिजगत् में बाह्याचार, भेदभाव, स्वर्ग-नरक, की ईश्वरीय-व्यवस्था एवं मोक्ष की धारणा आदि के रूप में समाज के दिलो-दिमाग पर छाये संस्कारों की जड़ता और थोथेपन को देख सके थे। ज्ञान की दृष्टि से संत और भक्त कवियों में यह भी एक महत्त्वपूर्ण अंतर देखा जा सकता है।

संतों ने उपासना के क्षेत्र में ज्ञान और कर्म के साथ-साथ, भक्ति तत्त्व को भी साधन के रूप में अपनाया है।[156] इसका विवेचन हम पीछे कर चुके हैं। उन्होंने हरि के सच्चे भक्त, वैष्णव की, अनेकों बार प्रशंसा की है।[157]

संतों को शास्त्रों एवं पुराणों से भी कोई बैर नहीं है। उन्होंने उनका खण्डन इसी दृष्टि से किया है कि स्वानुभव का आत्मप्रकाश हुए बिना, शास्त्रों के पारायण का अर्थ है, सामान्य-सी बात को दर्शन के भिन्न-भिन्न मतों की क्लिष्ट एवं उनकी भाषा में तर्क-वितर्क द्वारा बयान करने की कला में चतुराई हासिल करना[158] और इस थोथे ज्ञान की नींव पर अहंकारी बनना।[159] क्या वेद-वेदांगों तथा अनेकों शास्त्रों के स्वानुभव-रहित अधिकांश पंडितों का पाण्डित्य, दर्शन की दुर्बोध (सर्वसाधारण हेतु) भाषा में वाद-विवाद करने की योग्यता से कुछ अधिक होता है? और इसी पुस्तकीय-ज्ञान पर उन्हें अभिमान करते देखा जाता है। यही महामारी आज शिक्षित-समाज में फैली है। इसीलिए विवेकशील व्यक्ति के मन में प्रायः यह प्रश्न उठता है कि आज जीवन में शिक्षा की कोई उपयोगिता एवं अपेक्षा है? संतों ने व्यावहारिक स्तर पर इस प्रश्न का बड़ा सुन्दर समाधान दिया है।

विविध शास्त्रों के ज्ञान का एकमात्र लक्ष्य है, भगवत् चरणों में अनुराग सुदृढ़ हो, किन्तु स्वानुभव बिना ऐसा होना असंभव है, यह बात संतों से छिपी नहीं थी। स्वानुभव के लिए, उन्होंने बाह्याचार के त्याग एवं हृदय में ही भगवान् की सत्ता का प्रतिपादन किया। हृदय में भगवान् की अनुभूति पाने के लिये, उन्होंने अन्तःकरण को जाति, वर्ण, कुल और धर्म आदि भेदभावों के स्तर पर बने संस्कारों के त्याग द्वारा, निर्मल बनाने के लिये बल दिया। संतों ने स्वर्गप्राप्ति की इच्छा एवं नरकवास का भय त्याग कर, निर्मल हृदय और भक्तिभाव से राम के गुणगान में परम निधान की स्थिति बतलाई।[160] उन्होंने मुक्ति की स्पृहा को भी हेय बतलाकर, जीवनमुक्ति को ही परम काम्य बतलाया। इस प्रकार, संतों ने सर्वसाधारण को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

बाह्याचार, सर्वप्रकार के भेदभाव, स्वर्ग-नरक और मुक्ति आदि में विश्वास न रख, कर्मठ, ज्ञानमय और भक्तिपूर्ण जीवन जीने का संदेश दिया। उन्होंने जनता-जनार्दन का ध्यान उन मूल तत्त्वों की ओर आकृष्ट किया, जिन्हें जीवन में अपना लेने पर सामान्य व्यक्ति भी अपने हृदय में भगवत्-सत्ता की अनुभूति निश्चयात्मक रूप से पा लेगा। ये ही वे तत्त्व हैं, जिन्हें क्रियात्मक रूप से ग्रहण किये बिना 'स्वानुभव' (स्वात्मा अथवा भगवत् सत्ता का) असम्भव है और स्वानुभव बिना शास्त्रों का पारायण व्यर्थ ही नहीं, उसका परिणाम होता है—अहंकार-वृद्धि, जो उक्त स्थिति में अवश्यम्भावी है।

आधुनिक शिक्षा में भी अहंकार-प्रवेश का यही सबसे बड़ा कारण है। इसीलिये संतों ने शास्त्रों के पारायण की अपेक्षा स्वानुभव पर अधिक ज़ोर दिया।

प्रश्न उठ सकता है कि भक्त कवि भी तो शास्त्रों के कोरे सैद्धान्तिक ज्ञान के कायल नहीं थे, किन्तु अन्तर यही है कि संतों की तुलना में भक्तों ने स्वानुभव पर कम बल दिया है।

अन्य अन्तर यह है कि संतों की दृष्टि में जो उपरिवर्णित तत्त्व स्वानुभव-प्रापक हैं (यथा बाह्याचार, जाति, वर्ण, कुल आदि भेदभाव तथा स्वर्ग-नरक की धारणा आदि को महत्त्व न देना) भक्तों की साधना-पद्धति के वे ठीक उल्टे पड़ते हैं। भक्तों ने उन्हें अपनी साधना-पद्धति में स्थान दिया है और उनका समर्थन भी किया है।[161]

संतकवि जनता-जनार्दन के कवि थे और बहुत बड़े समाज-सुधारक थे। उन्हें यह दृढ़ विश्वास था कि हरि जी ने उन्हें संसार में इसीलिये भेजा है कि वे 'साषी' अथवा आत्मज्ञान के उपदेश द्वारा भवसागर में पड़े जीव अर्थात् धर्म, सम्प्रदाय, जाति, कुल और शास्त्र आदि की रूढ़ियों से आबद्ध जीव को, जीवन्मुक्ति का सच्चा रास्ता दिखाएँ। उन्हें इस बात की चिन्ता और परवाह नहीं कि सभी भवसागर से पार हो जाएँ। यदि एक व्यक्ति भी विषय-वासनाओं से भरे भवसागर की मँझधार से निकल कर तट पर पहुँच सका तो उनका श्रम सार्थक हो जाएगा।[162] जिस प्रकार जब मेघ पृथ्वी पर बरसता है तो उपजाऊ और बंजर भूमि का भेदभाव किये बिना, समभाव से जलवृष्टि करता है, उसी प्रकार संत अपना उपदेश पात्र-कुपात्र का विचार किये बिना समभाव से देता है। जिस व्यक्ति में सत् संस्कारों के बीज होते हैं, वह लाभ ग्रहण कर लेता है और निर्बीज व्यक्ति छूंछा ही रह जाता है, किन्तु संत को इन बातों से कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह तद्वत् अपना उपदेश कायम रखता है। उसमें ढील नहीं आने देता।

कबीरादि सभी संतों ने समाजसुधार-हेतु 'साखियाँ' लिखी हैं। इन साखियों में भी 'उपदेश कौ अंग', 'चितावणी कौ अंग' आदि 'अंग'* इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण रचनायें हैं। किन्तु डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर को सुधारक नहीं मानते। यह तो ज़ाहिर ही है कि उपदेश अथवा चेतावनी का अभिप्राय सुधार के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता परन्तु द्विवेदी जी का अनुमान है कि कबीर यह अनुभव कर चुके थे कि जो पात्र नहीं है, उसे सुधारने का व्रत, व्यर्थ का प्रयास है। इसीलिए वे अपने उपदेश साधु भाई को अथवा स्वयं अपने आपको ही संबोधित करके कह देते थे। द्विवेदी जी के अनुसार कबीर का भक्ति के क्षेत्र में बाह्याचार-विरोध उनकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुधार-भावना का प्रतिपादक नहीं, अपितु भक्तितत्त्व की व्याख्या करते-करते उन्हें बाह्याचार के जंजाल को तोड़ने की ज़रूरत महसूस हुई, क्योंकि जड़ता के कारण, वे उन्हें विशुद्ध चेतन तत्त्व की उपलब्धि में बाधक समझते थे। इस प्रकार यहाँ भी समाजसुधार और साम्प्रदायिक ऐक्य उनका लक्ष्य न था और यहाँ आगत सुधार-भावना फोकट का माल या बाईप्रौडक्ट ही है।[163]

विस्तारभय के कारण तथा विषय की सीमा को ध्यान में रखते हुए उक्त विषय के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचना का हम लोभ संवरण कर रहे हैं, किन्तु संक्षेप में हमारा यही निवेदन है कि अध्यात्म का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और समाजसुधार का क्षेत्र अध्यात्म के क्षेत्र से बाहर नहीं है। भक्ति और समाजसुधार, परस्पर विरोधी तत्त्व नहीं हैं। यह तो समाजसुधारक की निजी प्रवृत्ति पर अवलम्बित है। वह अपनी प्रवृत्ति के अनुसार किसी भी क्षेत्र के माध्यम से समाजसुधार कर सकता है। हाँ, कबीर के सम्बन्ध में हम यह अवश्य कह सकते हैं कि उन्होंने भक्ति के मैदान में उतरकर समाजसुधार किया था।

कबीर तथा अन्य सभी संत रचनात्मक कार्यकर्ता तथा कर्मठ समाजसुधारक थे। उन्होंने भगवद्भक्ति के साथ-साथ अपनी आजीविका चलाना भी आजीवन जारी रख, समाज के समक्ष 'हाथ में काम, मुँह में राम' का प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्हें भक्तितत्त्व के कोरे विवेचक समझना ग़लत होगा।

संतों ने सर्वप्रकार के भेदभावों की भाँति हिन्दू-मुस्लिम-भेदभाव का भी ज़ोरदार भाषा में विरोध किया।[164] हिन्दू और मुस्लिम दोनों ने जिन व्यर्थ के भेदभावों, बाह्याचारों तथा रूढ़ियों को गलती से अपना धर्म समझ लिया है, उनका भी उन्होंने कसकर विरोध किया।[165] वे हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के ज़बरदस्त हिमायती थे।

भक्तकवियों का इस ओर ध्यान नहीं गया। इस प्रकार संतों और भक्तों में यह वैचारिक अन्तर भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

पीछे हमने संत और भक्त कवियों में व्यावहारिक स्तर पर अंतर देखा।

इन उभयकोटि के भगवद्भक्तों की विचारधारा में समानता एवं भेद का अवलोकन करते हुए एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर लक्ष्य करना भी यहाँ परमोपयोगी होगा। जिस प्रकार निरंजनी संप्रदाय तथा गुसाईं गुरुमत[166] आदि मतों के निर्गुणोपासक कवियों की सगुण-साकार भगवान के श्रीविग्रह आदि का सोल्लास वर्णन करने की ओर प्रवृत्ति रही है, उसी प्रकार मीरा के समग्र पदसाहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करने पर, उनका निर्गुण भक्ति की ओर भी यथेष्ट आकर्षण दृष्टिगत होता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, ''सगुणोपासक अव्यक्त की ओर संकेत भर करते हैं, उसके विवरण में प्रवृत्त नहीं होते।[167] किन्तु यह उक्ति मीरा पर चरितार्थ नहीं होती।

निर्गुण और सगुण दोनों भक्तिधाराओं के सम्यक् अनुशीलन द्वारा इन 'संत' और 'भक्त' कहे जानेवाले कवियों में एक कोटि ऐसे साधकों की मिलती है; जिन्हें हम एक साथ 'संत' और 'भक्त' दोनों कह सकते हैं। इन साधकों में प्रमुख स्थान सगुणोपासिका मीरा का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है।

यद्यपि निर्गुण भक्ति का यत्किंचित् प्रभाव अथवा अस्तित्व सूर[168] और तुलसी[169] आदि प्रमुख सगुणोपासक कवियों की कृतियों में भी मिल जाता है, किन्तु वे मूलभूत तत्त्व जिनके आधार पर निर्गुण और सगुण भक्ति-धाराएँ परस्पर भिन्न हो जाती हैं,[170] मीरा की कृतियों में मिल जाते हैं।

मीरा के नाम पर प्रचलित अधिकांश राजस्थानी पदों में उनके आराध्य कृष्ण का रूप भी नाथपंथ से प्रभावित है।[171]

वे संतकवियों की भाँति घट में ही अपने अविनाशी की सत्ता में विश्वास रखती हैं तथा घट में ही गंगा, यमुना (इड़ा, पिंगड़ा नाड़ियाँ) आदि नदियों की स्थिति पाती हैं।[172]

वे अपने इष्टदेव को 'पूरण ब्रह्म अखण्ड अविनासी'[173] नाम से संबोधित करती हैं। त्रिकुटी महल में बने झरोखे से झांकी लगाती हैं, सुन्न महल में सुरत जमाकर, सुषुम्ना की सेज बिछाने का वर्णन करती है।[174] तथा ज्ञान का दीपक जलाकर अगम-अटारी चढ़ने का भी उन्होंने उल्लेख किया है।[175]

अनेक स्थलों पर उन्होंने अपने आराध्य को 'जोगी' कहकर स्मरण किया है।[176] कृष्ण की मुरली के स्थान पर अनहद नाद[177] का वर्णन है और 'मोर मुकुट पीताम्बर' तथा'गल बैजन्ती माल' के स्थान पर सेली, भभूति आदि चिह्न वाले एवं 'आसन माँडकर' समाधिस्थ हो बैठने वाले जोगी का वर्णन किया है।[178]

इस प्रकार मीरा के पदों में निर्गुण-निरंजन[179] अविनाशी,[180] साहेब[181] इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना[182] नाड़ियों, गगनमंडल[183] सुरति-निरति[184] ज्ञान की चौसर[185] आदि निर्गुण भक्ति की पारिभाषिक शब्दावलि को देखकर, भृकुटी-मंडल में हंस विराजने की बात[186] आत्माराम से होली खेलना[187] तथा रैदास का गुरु रूप में उल्लेख[188] इत्यादि अनेक तथ्यों के आधार पर यदि उक्त तत्त्वों से सम्बन्धित पद प्रक्षिप्त नहीं हैं तो उन्हें केवल सगुणोपासिका नहीं कहा जा सकता।

मीरां की पदावली का अध्ययन करने पर, उस पर कबीर का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है।[189] आनन्दस्वरूप महाराज ने भी मीरा पर कबीर का प्रभाव माना है। उनके अनुसार निर्गुणी कवियों की भ्रमणशील प्रकृति के कारण देश में चहुंओर निर्गुण भक्ति का प्रचार हुआ, जिसका प्रभाव राजस्थान पर भी पड़ा। शून्य, शिखर, गगनमंडल, त्रिकुटी, सुरत, समाधि, बंकनाल, सुषुम्ना आदि योगपरक शब्द इसी प्रभाव के परिणामस्वरूप मीरा के पदों में स्थान पा गए हैं।[190]

आनन्दस्वरूप महाराज ने मीरा को संगीत आदि विषयों की शिक्षा मिलने के साथ योग-शिक्षा मिलने का भी उल्लेख किया है।[191] वे उसे भक्ति की आचार्या, ज्ञानी, वेदांती एवं प्रेमयोगिनी एक साथ मानते हैं।[192]

परशुराम चतुर्वेदी, मीरा पर निर्गुण और सगुण दोनों भक्ति परम्पराओं का प्रभाव मानते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं।[193] उनके अनुसार ये संतों की 'सुरत शब्दयोग' साधना के परिचय के अतिरिक्त उसका कुछ न कुछ अभ्यास भी कर चुकी थीं।[194]

शंभुप्रसाद बहुगुणा ने अपने 'जनम जोगिण मीरा' लेख में मीरा को संतप्रणाली की योगिनी कहा है। उनके अनुसार कबीर जन्मजात ज़ोगी थे और मीरा 'जनम जोगण' थी, जिसका उल्लेख मीरा ने स्वयं भी किया है।[195]

प्रो. मुरलीधर श्रीवास्तव मीरा के इष्टदेव 'गिरधर नागर' के आधार पर उन्हें सगुणोपासिका मानते हुए भी, उन पर संतमत का पूर्ण प्रभाव स्वीकार करते हैं।[196]

वास्तव में निर्गुण और सगुण उपासना के आधार पर हिन्दी में बनाई गई 'संत' और 'भक्त' की विभाजक-रेखा संकीर्ण है।

भरतसिंह उपाध्याय के मतानुसार संतों का सम्बन्ध किसी एक धर्म अथवा सम्प्रदाय से नहीं होता, अतः हिन्दी में केवल निर्गुणियां साधकों के लिए यह शब्द-प्रयोग एकांगी तथा संकुचित है। वे निर्गुण और सगुणोपासक उभयकोटि के भगवद्भक्तों को संतों की श्रेणी में स्थान देने का समर्थन करते हैं।[197]

डॉ. ओमप्रकाश[198] डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी[199] तथा डॉ. बड़थ्वाल[200] भी हिन्दी में 'संत' शब्द के उदात्तीकरण पर बल देते हैं।

मराठी में आज 'संत' शब्द के (निर्गुण और सगुण) दोनों वर्ग के उपासकों के लिए व्यापक प्रयोग की चर्चा करते हुए डॉ. प्रभाकर माचवे भी हिन्दी में रूढ़ 'संत' और 'भक्त' का पंक्तिभेद स्वीकार नहीं करते।[201]

डॉ. सत्येन्द्र ने निर्गुणोपासना के आधार पर तथा निर्गुण और सगुण उभयकोटि के साधकों की विचारधारा का विश्लेषण करते हुए 'सन्तमत' शब्द-प्रयोग को संकुचित सिद्ध किया है।[202]

तारकनाथ अग्रवाल ने 'संत' और 'भक्त' दोनों शब्दों का व्युत्पत्तिमूलक भेद दर्शाते हुए, उपासनाभेद के आधार पर दोनों प्रकार के साधकों को पृथक्-पृथक् श्रेणी में स्थान देना अनुपयुक्त माना है।[203]

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने 'संत' शब्द के सामान्य तथा व्यावहारिक स्तर पर आधुनिक प्रयोगों की ओर संकेत करते हुये, हिन्दी-साहित्य में उक्त शब्द के विशिष्ट अर्थ में प्रयोग के प्रति अपनी आपत्ति प्रकट की है।[204]

अगरचन्द्र नाहटा ने विषय की मीमांसा करते हुए, हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों के प्रति सन्त-साहित्य के क्षेत्र को व्यापक बनाने का अनुरोध निवेदित किया है।[205]

परशुराम चतुर्वेदी ने हिन्दी में 'संत' शब्द के विशिष्ट अर्थ में रूढ़-प्रयोग के कारण पर, दृष्टिपात करते हुए लिखा है कि 'संत' शब्द का व्यवहार विट्ठल या वारकरी सम्प्रदाय के ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ तथा तुकाराम आदि मराठी निर्गुणोपासकों के लिए किसी समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष रूप से रूढ़ हो गया था। कदाचित् साधना सम्बन्धी अनेक समानताओं के कारण उत्तरी भारत के कबीर आदि कवियों के लिए भी यह शब्द बाद में व्यवहृत होने लगा।[206]

इस प्रकार, आज हिन्दी के अधिकांश विद्वान साधनाभेद के आधार पर 'संत' और 'भक्त' का संज्ञाभेद स्वीकार करने को तैयार नहीं। वस्तुतः यह विभाजक-रेखा आलोचकों एवं हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों द्वारा खींची गई है। कोटिद्वय के साधकों ने अपने लिए इन विशिष्ट उपाधियों का भेद कदापि स्वीकार नहीं किया।[207]

आचार्य विनयमोहन शर्मा के अनुसार सगुण और निर्गुण में विभाजक-रेखा खींच कर एक को (परमसत्य के साधक) 'भक्त' और दूसरे को 'संत' कहने से इतिहास—लेखन में सुविधा हो सकती है, तथ्य ग्रहण में नहीं।[208]

मैं भी हिन्दी वाङ्मय में निर्गुण और सगुण भक्ति के आधार पर 'संत' और 'भक्त' के बीच में खींची गई विभाजक-रेखा को पारमार्थिक न मानकर, केवल व्यावहारिक मानती हूँ।

प्रस्तुत प्रबन्ध में 'संत काव्य' शब्द का व्यवहार, हिन्दी में प्रचलित पारम्परिक विशिष्ट प्रयोग के आधार पर ही किया गया है।

(च) हिन्दी-निर्गुण सन्तकाव्य की परिधि

हिन्दी के निर्गुण संतकाव्य का बीज विक्रमीय संवत् की 13वीं शताब्दी के संत जयदेव* की कृतियों में सर्वप्रथम मिलता है, जोकि आगे चलकर पल्लवित, पुष्पित एवं फलित कबीर की वाणी द्वारा हुआ। कबीर से पूर्व संत जयदेव तथा नामदेव, त्रिलोचन, सदना, बेनी, रामानन्द, धन्ना, पीपा और सेन, निर्गुण संतकाव्य का बीजारोपण कर चुके थे, किंतु प्रखर व्यक्तित्त्व एवं मौलिक कृतित्व[209] के कारण हिन्दी साहित्य के इतिहास में निर्गुण संतकाव्य की परम्परा वस्तुतः कबीर से ही मानी जाती है। इसका अन्य प्रमुख कारण संभवतः यह भी है कि कबीर के युग से ही उनकी सशक्त विचारधारा से प्रभावित संतों की एक सुदीर्घ परम्परा चली आ रही थी, जोकि आजतक किसी न किसी रूप में साँस अवश्य ले रही है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के कवि संत तुलसी साहेब तक यह धारा अविच्छिन्न रूप से बहती रही है, इसीलिए कुछ विद्वान् हिन्दी-निर्गुण-संतकाव्य की परिधि 14वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्ष तक मानते हैं।[210]

वास्तव में निर्गुण संतकाव्य की परिधि निश्चित करना बड़ा कठिन है, क्योंकि यह धारा अत्यन्त व्यापक है; जोकि निरंजनी सम्प्रदाय, सूफीमत, गुसांई गुरुमत आदि अनेक अध्यात्मधाराओं को अपने में आत्मसात् करती हुई आजतक निर्बाध रूप से चली आ रही है, इसीलिए परशुराम चतुर्वेदी इसकी विस्तृत सीमा 13वीं शताब्दी के जयदेव से लेकर 20वीं शताब्दी के महात्मा गांधी तक मानते हैं।[211]

मैं भी चतुर्वेदी जी के मत से सहमत हूँ। यद्यपि निर्गुण संतकाव्य की परम्परा का आज पूर्वकालीन प्रभावशाली रूप दृष्टिगत नहीं होता, फिर भी वह कहीं-कहीं-कबीरपंथी अथवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कबीर-भक्त साधु-संतों के पास जीवित है, ऐसा देखा गया है अतः हिन्दी-निर्गुण सन्तकाव्य की परिधि विक्रम की 13वीं शताब्दी के संत जयदेव से लेकर आजतक मानी जा सकती है। इस परिधि में ऐसी कोटि के भक्तों को भी स्थान दिया जा सकता है, जो मीरा की भाँति सगुणभक्त होते हुए भी, निर्गुण-भक्ति से बराबर प्रभावित रहे हैं।[212]

प्रस्तुत प्रबन्ध में अपने विषय की निर्धारित सीमा के कारण मैंने 13वीं शताब्दी से लेकर 16वीं शताब्दी तक के संत जयदेव, नामदेव, कबीर, ऩानक, गुरुअर्जुन देव, संत दादूदयाल तथा संत सुन्दरदास इन 7 प्रतिनिधि निर्गुण संतकवियों के साहित्य का ही विशिष्ट अध्ययन किया है। प्रबन्ध के अतिशय विस्तार-भय के कारण इस 400 वर्षों के काल के भी गुरु अमरदास, संत वषनाजी, संत सिंगाजी एवं ग़रीबदास प्रभृति अनेक उच्चकोटि के संगीतज्ञ कवियों के विशिष्ट अध्ययन का लोभ मुझे त्यागना पड़ा है, किन्तु प्रबन्ध में किये गये उक्त सात कवियों के विशेष अध्ययन द्वारा यह संकेत अवश्य कर दिया गया है कि हिन्दी का निर्गुण-संतकाव्य, संगीत की दृष्टि से अति समृद्ध साहित्य है और इस दृष्टि से इस धारा के काव्य को सगुणकाव्य के समकक्ष स्थान मिलना चाहिए।[213]

उक्त परिप्रेक्ष्य में इस सम्पूर्ण काव्यधारा के गहन अध्ययन एवं अनुशीलन की ओर हिन्दी जगत् का ध्यान आकृष्ट हो, यही इस शोध-प्रबन्ध का लक्ष्य है।

संदर्भ

1. "मैं अबला पिउ पिउ करूं, "निर्गुन मेरा पीव।
   शून्य सनेही राम बिन, देखूं और न जीव ॥" (स.क.सा. 27-24)
   " निर्गुण राम जपहु रे भाई" (क.ग्रं., पृ. सं. 49)
   "निरगुन ब्रह्म कथौ रे भाई"—वही, पृ. सं. 375.
2. "एक निरंजन अलह मेरा, हिंदू तुरुक दुहूँ नहिं मेरा।
   राखूं व्रत न महरम जांनां, तिंस ही सुमिरूं जो रहे निदांनां।
   पूजा करूं न निमाज गुजारूं, एक निराकार हिरदै नमसकारूं।
   नां हज जाउं न तीरथ पूजा, एक पिछाण्यां तौ क्या दूजा।
   कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूं मन लागा ॥"
   क.ग्रं., प. सं. 337.
3. पाहण केरा पूतला, करि पूजैं करतार।
   इही भरोसै जे रहें, ते बूड़े कालीधार।" 34/1, क.ग्रं.।
4. "कर पकरैं अंगुरी गिनैं, मन धावै चहुं ओर।
   जाहि फिरांयां हरि मिलै, सो भया काठ की ठौर।" 35/2, वही।
5. "माला तिलक पहरि मनमानां, लोगनि रांम खिलौना जांनां" 153/343 क. ग्रं.।
6. "पाती ब्रह्म पुहपे विष्णु, फूल फल महादेव।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीनि देवौं एक मूरति, करै किसकी सेव। 116/197 वही।

7. "लाडू पेड़ा लापसी, पूजा चढ़ै अपार।
पूजि पुजारी ले गया, दे मूरति के मुहि छार।" वही।

8. "तीरथ करि करि जग मुआ, डूंधै पांणी न्हाइ।
रांमहि रांम जपंतडां, काल घसीट्यां जाइ।" 29/18 वही।

9. "क्या जप क्या तप संजमां, क्या तीरथ व्रत अस्नान।
जो पैं जुगति न जांनियै, भाव भगति भगवान। 96/121 वही।

10. "सो जोगी जाके मन में मुद्रा, राति दिवस न करई निद्रा।
मन मैं आसण मन में रहणां, मन का जपतप मन सूं कहणां।" 118/206 वही।

11. साधो सहज समाधि भली।
आंख न मूंदौं कान न रूंधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नैन पहिचानों हंसि हंसि, सुंदर रूप निहारौं।" आ. भजना. 95/43

12. "हिरदै सींगीं ग्यांन गुंणि बांधौ, खोजि निरंजन सांचा।" 118/208 वही।

13. "जेती औरति मरदां कहिये, सब में रूप तुम्हारा।"
तथाः 131/259 क.ग्रं.।
"जेती देषौं आत्मा, तेता सालिगरांम।
साधू प्रतषि देव हैं, नहीं पाथर सूं काम।" 34/5, वही।
"काया मधे कोटि तीरथ, काया मधे कासी।
काया मधे कवलापति, काया मधे बैकुंठवासी।" 108/171 वही।

14. "बाबा जोगी एक अकेला।
मांगि न खाइ न भूखा सोवै, घर अंगनां फिरि आवे।
पांच जनां की जमाति चलावे, तास गुरू मैं चेला।" 118/207 वही।

15. "जा नरि रांम भगति नहीं, साधी; सो जनमत काहे न मूवौ अपराधी।
गरभ मुचे मुचि भई किन बाँझ, सूकर रूप फिरै कलि माँझ।
जिहि कुलि पुत्र न ग्यांन बिचारी, वाकी बिधवा काहे न भई महतारी। (97/185 वही।)

16. "राता माता नाम का, पीया प्रेम अघाय।
मतवाला दीदार का, मांगे मुक्ति बलाय।" (क.वच. 13/128)
मुक्ति तो धौषै की नीसानी।
सो कतहूं नहिं ठौर ठिकाना, जहां मुक्ति ठहरानी।
× × × ×
जीयत कष्ट करैं बहुतेरे मुये मुक्ति कहैं जाई।"
धौषै ही धौषै भूले, सब, आगै ऊवाबाई।
निज स्वरूप कों जानि अखंडित ज्यों का त्यों ही रहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुंदर कछू ग्रहै नहिं त्यागै, वहै मुक्ति पद कहिये।"

सु. ग्रं. द्वि. खं. 875-76/9

"निर्मल भगति प्रेम रस पीयें, आंन न दूजा भाव धरैं।
सहजें सदा रांम रंगि राते, मुकति बैकुंठे कहा करैं।"

स्वामी दादूदयाल की वाणी, चंद्रिका त्रिपाठी, 474/273.

17. "राम निकुल कुल भेंटि लैं, सब कुल रह्या समाइ।" क.ग्रं 20/45।
"हम वासी उस देश के, जहाँ जाति वरन कुल नाहिं।" (स.क.सा. 64-5)

18. "मैं तैं तजै-तजै अपमारग, चारि वरन उपरांति चढै।
ते नहीं डूबै पार तिरि लंघैं, निरगुण अगुण संग करै।" वही, 112/183।
"पष ले वूडी पृथमीं, झूठी कुल की लार।
अलष बिसारयौ भेष मैं, बूड़े काली धार।" वही, 36/21।
"कवीर कुल तो सो भला, जिहि कुल उपजै दास।
जिहिं कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास।" वही, 41/8।

19. "कवीर इस संसार कों, समझाऊँ कै बार।
पूंछ ज पकड़ै भेद की, उतरया चाहै पार।" वही, 29/20।

20. "सांई सेती साँच चलि, औरां सूँ सुध भाइ।"
भावै लांबे केस करि, भावै घुरडि मुंड़ाइ।" क.ग्रं. 36/11
"हरि जी यहै विचारिया, साषी कहौ कबीर।
भौ सागर मैं जीव है, जे कोई पकड़े तीर।"

वही, 44/1

21. "एकौ देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासाः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।" श्वे.उप. 6/11।

22. "स विश्वकृदविश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः।" तथा
"येनावृतं नित्यमिदं हि सर्व, ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः"
वही 6/14 तथा 6/2 क्रमशः।

23. अजायमानो बहुधा विजायते, यस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः।" प्रे र. सिं. पृ. 34

24. वृ. उप. 2/3/1

25. हिं. की नि. का. धा. और उ. दा. पृ. –पृ. 392।

26. मंत्रि. उप. –श्लो. सं. 2।

27. वही, श्लो. सं. 11।

28. मुंड. उप. 2-1-4।

29. छांदो. उप. 3/14।

30. महा. शांतिपर्व, पंचम खंड, एकोनचत्वारिंशदधिक त्रिंशततमोअध्यायः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

31. गी. 13/14।
32. वृह. उप. 3/8/8 तथा 2/3/6।
33. वही, 3/17 तथा 3/19।
34. वही, 3/14।
35. ईशा. उप. 5।
36. ल.भा. श्रीकृष्ण प्रकरण, श्लो. सं. 50 से 55 तक।
37. द्रष्टव्यः क. ग्रं. 81। 49 तथा सुं.ग्रं. द्वि. खं. 927/14।
38. "संतो धोखा कासूं कहिये।
गुन में निरगुन, निरगुन में गुन, बाट छांडि क्यूँ बहिये।
क.ग्रं. 111/180
39. द्रष्टव्यः स्वा. दा. द. की वा. 361/12, वही, 390/80; क.ग्रं. 36/22 वही, 39/3, वही, 114/191, तथा वही, 128-250।
40. "मैं अबला पिउ पिउ करूं, निर्गुन मेरा पीव।
शून्य सनेही राम बिन, देखूँ और न जीव।"
स.क.सा. 27-24
तथा : "ब्रह्म निरीह निरामय निर्गुन नित्य निरंजन और न भासे।"
सुं. ग्रं. द्वि. खं., पृ. 351/20
41. क.ग्रं. 160/375।
42. "ता साहिब के लागौं साथा। दुख सुख मेटि जो रहे अनाथा।
नां दशरथ घरि औतरि आवा। नां लंका का रांव सतावा।
देवे कूख न औतरि आवा। नां जसवै लै गोद खेलावा।
ना वो ग्वालन के संग फिरिया। गोवरधन ले ना कर धरिया।
बांमन होय नहीं बलि छलिया। धरनी वेद लेन अधरिया।
गंडक सालिगरांम न कोला। मच्छ कच्छ ह्वै जलहि न डोला।
बद्री बैठा ध्यांन नहिं लावा। परसराम ह्वै खत्री न सतावा।
द्वारमती सरीर न छाड़ा, जगननाथ ले प्यंड न गाड़ा।
कहै कबीर विचार करि, ये ऊले व्यवहार।
याही थैं जे अगम है, सो बरति रह्या संसार।" क.-पृ. 120।
43. क.ग्रं. 142/338।
*"भेदलीला" और "अभेदलीला" दर्शनशास्त्र के पारिभाषिक शब्द हैं। "भेदलीला" का अर्थ है, भक्त का लीला के लिए भगवान् को अपने से पृथक् मानना। इसके विपरीत "अभेदलीला" का अर्थ है, लीला के लिए भी भक्त का भगवान् को अभेद रूप में (अर्थात् घट में ही स्थित) देखना।
44. जो कोई सुनै गुरु की बानी, सो काहे कौ भरमै प्रांनी ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घट भीतरि सब दिषलावै, वडभागी होई सु पावै।
जो शब्द माँहिं मन राषै, सौ राम राम रसाइन चाषै।
घट भीतरि विष्णु महेसा, ब्रह्मादिक नारद सेसा।
घट भीतरि इंद्र कुबेरा, घट भीतरि प्रगट सुमेरा।
घट भीतरि सूरज चंदा, घट भीतरि सात समन्दा।
घट भीतरि नौ लष तारा, घट भीतरि सुरसरि धारा।
घट भीतरि है रस भोगी, गोदावरि गोरख जोगी।
घट भीतरि सिद्ध न मेला, घट भीतरि आप अकेला।
घट भीतरि मथुरा काशी, घट भीतरि गृह बनवासी।
घट भीतरि तीरथ न्हांना, घट भीतरि आव न जांनां।
घट भीतरि नाचै गावै, घट भीतरि बेन बजावै।
घट भीतरि फाग बसंता, घट भीतरि कामिनि कन्ता।
घट भीतरि स्वर्ग पताला, घट भीतरि है क्षय काला।
घट भीतरि युग युग जीवै, घट भीतरि अंमृत पीवै।
जब घट सौं परचा होई, तब काल न व्यापै कोई।
जन सुंदर कहि समुझावै, सतगुरु बिन कोई न पावै।

सुं. ग्रं., द्वि. खं. 886/4।

45. सुं. ग्रं., द्वि. खं., 687/1-2।
46. स्वा. दा. द. की वा. 528/407।
47. क.ग्रं. 83/58।
48. करि आचार जु ब्रह्म संतांवा, नांव बिनां संतोष न पावा।
सालिग़राम सिला करि पूजा, तुलसी तोडि भया नर दूजा।
ठाकुर लै पाटे पौढ़ावा, भोग लगाइ अरु आपै खावा।
साच सील का चौका दीजै, भाव भगति की सेवा कीजै।
भावभगति की सेवा मानै, सतगुर प्रकट कहै नहीं छानें।
अनभै उपजि न मन ठहराई, परकीरति मिलि मन न समाई।
जब लग भावभगति नहीं करि हौ, तब लग भवसागर क्यूं तिरिहौ?

क.ग्रं. पृ. 186।

तथाः—
"सो जोगी जाके मन में मुद्रा, राति दिवस न करई निद्रा।
मन मैं आसण मन मैं रहणां, मन का जप तप मन सूं कहणां।
मन मैं षपरा मन मैं सींगी, अनहद बेन बजावै रंगी।
पंच परजारि भसम करि भूका, कहै क़बीर सो लहसै लंका।" वही, 118/206।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

49. "ब्रह्मंडे सो प्यंडे जांनि, मांनसरोवर करि असनांन।
सोहं हंसा ताकौ जाप, ताहि न लिपै पुन्य न पाप।"

क.ग्रं. 149/328।

50. साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन तें लागी, दिन दिन अधिक चली।
जहं जहं डोलौं सो परिकरमा, जो कछु करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दंडवत, पूजौं और न देवा।
कहौं सो नाम सुनौं सो सुमिरन, खावं पियौं सो पूजा
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा।
आँख न मूंदौं कान न रूंधों, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नयन पहिचानौं हँसि हँसि, सुंदर नयन निहारौं।
सबद निरन्तर से मन लागा, मलिन बासना त्यागी।
ऊठत बैठत कबहुं न छूटै, ऐसी तारी लागी।
कह कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट करि गाई।
दुख सुख से कोई परे परमपद, तेहि पद रह्मा समाई।

सं. सं. सु. सा. 49/48।

तथाः—द्रष्टव्यः—क.ग्रं. 775/23।

51. "जिहि कुलि पुत्र न ग्यांन विचारी, वाकी विधवा काहे न भई महतारी।" क.ग्रं. 97/125।
52. वही, 72/10।
53. सुं. ग्रं., द्वि. खं. 921/5।
54. क.ग्रं. 97/125।
55. वही, 72/10।
56. सुं. ग्रं., द्वि. खं. 918/1।
57. वही, 462/21।
58. क. ग्रं. 83/61, 83/59, 78/39।
59. कुल खोयां कुल ऊबरै, कुल राख्यां कुल जाइ।
राम निकुल कुल भेंटि लै सब कुल रह्मा समाइ।" क.ग्रं. 20/45।

और भीः—

"हम वासी उस देश के, जहाँ जाति, बरन, कुल नाहिं।
शबद मिलावा होइ रहा, देह मिलावा नाहिं।" क.ग्रं.
"पष ते बूडी पृथमीं, झूठी कुल की लार।
अलष बिसारयौ भेष मैं, बूड़े काली धार।" क.ग्रं. 36/21।

60. कं. ग्रं. रमैणी पृ. 186।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

61. "कबीर इस संसार कौ, समझाऊँ कै बार।
पूंछ जु पकड़ै भेद की, उतरया चाहे पार।" कं. ग्रं. 29/20।

62. हिंदू मूये रांम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुह मैं कदे न जाइ।, वही–42/7।

63. उ. कां., 100/102।

64. क.ग्रं., 96/121।

65. मेरो तेरो मनुआ कैसे इक होइ रे।
मैं कहता हौं आंखिन देखी, तूं कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावनहारी, तूं राख्यो अरुझाइ रे। सं. सु. सा. 56/67।

66. निर्मल भगति प्रेम रस पीवैं, आंन न दूजा भाव धरैं।
सहजैं सदा राम रंगि राते, मुकति बैकुंठैं कहा करैं।

स्वा. दा. द. की वा. 474/273।

* "हरि जननी मैं बालक तोरा" कबीर के इस पद (क.ग्रं. 94/111)
को कुछ विद्वानों ने वात्सल्य भाव की भक्ति में स्थान दिया है। (द्रष्टव्य हिंदी की नि.का. धा. ओर उ. दा. पृ.-पृ. 412, 553, 554) जोकि आलंबन एवं आश्रय की दृष्टि से वात्सल्य भक्तिभाव का पद न होकर, दास्यभाव का ही पद है। वात्सल्य रस में आश्रय मातृपितृरूप में कवि स्वयं रहता है तथा आलंबन शिशु रूप में भगवान होते हैं। द्रष्टव्यः भ.र.सिं. पृ. 389 दक्षिणाविभागे चतुर्थी वत्सलभक्तिरसलहरी, कारिका सं. 1-4.

67. दुलहनी गावहु मंगलचार।
हम घर आये हो राजा राम भरतार।
तन रत करि मैं मन रत करिहूं, पंचतत बराती।
रांमदेव मोरे पाहुनैं आये, मैं जोबन मैं माती।
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा बेद उचार।
रांमदेव संगि भांवरि लैहूं, धंनि धंनि भाग हमार।
सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनियर सहस अठ्यासी।
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अविनासी।

क.ग्रं., 69/1

68. "संसार समुंदे तारि गोविंदे। तारि ले बाप बीठला।"

सं.कां. 129/14।

69. निगम अगम साहब सुगम राम साँचिली चाह।
अंबु असन अवलोकियत, सुलभ सबहिं जग माहिं।

तथाः-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुनिहै कथा कौन निरगुन की, रचि पचि बात बनावत।
सगुन सुमेरु प्रगट देखियत, तुम तृन की ओट दुरावत।
हि.सा. का इति.पृ. 136 तथा 168 क्रमशः।

70. सं.क.सा.–15/1।

71. "मैं अबला पिउ पिउ करूं, निर्गुन मेरा पीव।
शून्य सनेही राम बिन, देखूँ और न जीव।" स.क.सा. 27-24।
तथा–"निर्गुन निज रूप नियारा।" सु. ग्रं. प्र. खं. 16/12. ज्ञा.स.।

72. मेरो मन लागौ माई री, परम पुरुष गोविन्द।
चितवत नैननि मोहत सैननि, बोलत बैननि मन्द।
अद्भुत रूप अरूप सकल अंग, दुखहरन सुखकंद।
सुंदर प्रभु अति सुंदर सोभित, निरषत नित आनंद।
सुं. ग्रं. द्वि. खं. 869/8।

73. द्रष्टव्यः क.ग्रं. 128/248, वही 114/191। सुं. ग्रं. द्वि. खं. 474/27 3

74. स्वाः दा.द की बा.–483/296।

75. क.ग्रं. रमैणी सं. 5, पृ. 182-83।

76. "दादू निर्गुण गुण कहै, जाऊँ ली हौं बलिहार।" सं.दा.द. की बा. 538/429।

77. क.ग्रं. 14/1।

78. संतो, धोखा कासूं कहिये।
गुण में निरगुंण, निर्गुण में गुण,
बाट छाँडि क्यूं बहिये।" (क.ग्रं. 111/180)

79. द्रष्टव्यः–हिं.सा.का इति.–रामचंद्र शुक्ल, पृ. 14वां सं.पृ. 79।

80. "तुम्ह बिन अैसें कौन करै?
गरीबनिवाज गुसांई मेरो, माथें मुकट धरै।
नीच ऊच लै करै गुसाइं, टारयो हूँ न टरै।
हस्त कवल की छाया राषै, काछूँ थैं न डरै।"
स्वा. दा.द. की वा.–483/296।

81. क.ग्रं. 164/390।

82. क.ग्रं. 161/379।

83. वही, 128/250।

84. "अजहूं न निकसे प्राण कठोर।
दर्सन बिना बहुत दिन बीते, सुंदर प्रीतम मोर।" सं. दा. द. की वा.
"मोहि लागति तालाबेली। बछरे बिनु गाइ अकेली।
पानीआ बिनु मीनु तलफे। अैसे राम नामा बिन बसरो नाझा।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सं. का. 131/22।

"कब देखूं मेरे राम सनेही, जा बिन दुख पावे मेरी देही।
कबरे मिलहुगे अंतरजामी, जैसे जल बिन मीन तलपे। ऐसे हरि बिन मेरा जियरा कलपै।
निसदिन हरि बिन नींद न आवै, दरस पियासी क्यों सचु पावे।
कहै कबीर अब विलम्ब न कीजै, अपनो जानि मोहिं दरसन दीजै।" क. ग्रं. 122/224।

85. "गगन में थाल रवि चंद दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती।
धूपु मलयानलो पवणु चवरो करे, सगल बनराइ फूलंत जोती।
कैसी आरती होई। भवखंडना तेरी आरती। अनहता सबद बाजंत भेरी।
सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरति नना एक तोही।
सहस पद विमल नन एक पद गंध बिनु सहस तब गंध इव चलत मोही ॥
सभ महि जोति जोति है सोई। तिस वै चानणि सभ महि चानणु होई।।
गुरु साखी जोति परगट होई। जोति सुभावे सुआरती होई।
हरि चरण कवल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पिआसा।
कृपा जलु देहि नानक सरिता कउ होइ जाते तेरे नाइ वासा।"

—आ.ग्रं. सोहिला रागु धनासरी, म. 1, पृ. 13।

86. "आरती जगजीवन तेरी, तेरे चरन कवल परि वारी फेरी।
चित चांवरे हेत हरि ढारे, दीपक ग्यानं जोनि बिचारै।
घंटा सबद अनाहद बाजै, आनंद आरती गगन गाजै ॥
धूप ध्यान हरि सेती कीजै, पुहप प्रीति हरि भाँवरि लीजै।
सेवासार आतम पूजा, देव निरंजन और न दूजा।
भावभगति सों आरती कीजै, इहि विधि दादू जुगि जुगि जीजै।"

सं. दा.द. की बा. 543/442।

87. स्वा. दा. दू. की बा. 449/215।

88. द्रष्टव्यः प्रे. र. सि. पृ. 232।

89. वही, पृ. 233।

90. सं. की नि. स. स. सा.—डॉ. विनय मोहन शर्मा, पृ. 24।

91. "कहे कबीर हरि भगति बिन, मूकति नहीं रे मूल।" क.ग्र.पृ. 186।
तथाः"भगति बिन भौजलि डूबत है रे।" वही, 144/310।

92. "भगति नारदी मगन सरीरा, इहि विधि भव तिरि कहे कबीरा।" वही, 136/278।

93. "अनायास प्रभु पारि करत हैं, बाँह गहे की लाज हीं।"

सुं.ग्रं. द्वि. खं. 911/6।

94. श्री. गी., 18/66।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

95. "ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।" वही, 12-6)।

96. "तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेचिशितचेतसाम्।" वही, 12-7।

97. क.ग्रं. 15/14-15।

98. "जन कबीर तेरी सरनि आयौ। राखि लेहु भगवान्।" वही, 142/301।

99. श्री.भा. अ. 21, एकं, 2, श्लो, सं. 15-19।

100. श्री. गी. 18-46।

101. सं. की नि. स. स. सा. - वि.मो. शर्मा का मत, पृ. 30।

102. सं. की नि. स.स. सा. -पृ. 21-22।

103. "जब लगि भगति सकांमतां, तब लगि निर्फल सेव।
कहै कबीर वै क्यूं मिले, निहकांमी निज देव।" क.ग्रं. 15/10।

104. सुं. ग्रं., द्वि. खं. 817/5।

105. क.ग्रं. 155/355 "कहै कबीर कछू आंन न कीजै। रांम नांम जपि लाहा लीजै ॥"

106. "ऐसी भक्ति सुनहु सुखदाई।
तीन अवस्था में दिन बीतै, सो सुख कह्यौ न जाई।
जाग्रत कथा कीरतन सुमिरन, स्वप्नै ध्यान लै ल्यावै।
सुषुप्ति प्रेम मगन अंतरगति, सकल प्रपंच भुलावै।
सोई भक्ति भक्त पुनि सोई, सो भगवंत अनूपं।

सुं. ग्रं. द्वि. खं. 899/8।

107. "दर्सन दे दर्सन दे, हौं तो तेरी मुकति न माँगौं।
सिधि न माँगों रिधि न माँगौं, तुम्ह हीं मांगौं गोविंदा।
जोग न माँगौं भोग न माँगौं, तुम्ह हीं माँगौं राम जी।
घर नहिं माँगौं बन नहिं माँगौं, तुम्ह हीं माँगौं देव जी।
दादू तुम्ह बिन और न माँगौं, दर्सन माँगौं देहु जी।"

स्वा. दा.द. की. दा., 491/313।

108. 'द्रष्टव्य—आचार्य वि. मो. शर्मा का मत—'कहना चाहें तो आप कह सकते हैं कि दाशरथी राम या वासुदेव कृष्ण की भक्ति प्रेमाभक्ति की साधनावस्था है और निर्गुण राम या कृष्ण भक्ति उसकी साध्यावस्था, जहाँ भक्त और भगवान् में कोई भेद नहीं रह जाता—स्थूल और सूक्ष्म आलम्बन की स्थिति ही नहीं रह जाती। सं. की नि.सं सा.पृ.26।

109. क.ग्रं. 22/15।

110. सुं. ग्रं. द्वि. खं. 930/1।

111. शब्दावली, पृ. 106।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

112. क. ग्रं. 39/4।

113. 'निकटि निरंजन लागि रहे, तब हम जीवत मुकत भये।
मरि करि मुकति जहाँ जग जाइ, तहाँ न मेरा मन पतिआइ।
आगैं जन्म लहैं औतारा, तहाँ न मानैं मनाँ हमारा।
तन छूटे गति जो पद होइ, मृतक जीव मिलै सब कोइ।
जीवत जन्म सुफल करि जांनां, दादू रांम मिलै मन मांनाँ।

स्वा.दा.द. की बा. 377/52।

114. 'हिलिमिलि ह्वै करि खेलिएयूँ कदे बिछोह न होइ।'

115. पिय षेलहु फाग सुहावनौ हौ।
अहो यह आयौ है फागुन मास॥
ज्ञान गुलाल करौं नाना विधि, तन मन केसरि घोरि।
चित चन्दन लै छिरकौं ललना, जौं न चलौं मुख मोरि।
अनहद शब्द झाँझ डफ बाजै, ताल मृदंग उपंग।
सुमति पिचक लै धाऊँ ललना, भरहिं परस्पर अंग।
उततैं तुम इततैं हम होइ करि, माँझ करहिं झकझोर।
देषैं अबहिं कथन धौं जीतै, बहुत करत तुम सोर।
हम हैं पंच पचीस सहेली, तुम जु अकेले राइ।
चहूँ दिशा तें पकरि राखिहें, कैसैं के जातु छुड़ाइ।
जोरावर तुम अधिक सुने हो, बहुतनि पै गये भागि।
तौ जानौं जौ अबहि छूटि हो, लपटि रहौं गर लागि।
अबहिं सु मेरौ दाव बन्यौ है, गारी देत हौं तोही।
और और त्रिय कै संग राते, बिसरि गये कहा मोहि?
माइ न बाप कुटुंब नहिं तुम्हरे, निगुसाये हो नाहु।
समय जनि के हंसि बोलत हौं, जिनि कछु जियहि रिसाहु।
फगुआ मारि छाँडिहैं, कैसैं? हो, हो, कंत सुजान।'

सुं. ग्रं. द्वि. खं. 921-22/5।

116. स्वा. दा. द. की बा. 528-407

* यद्यपि सगुण भक्तों ने भी यह तात्त्विक अंतर स्वीकार नहीं किया, किन्तु यहाँ निर्गुणी संतों की सगुण भक्ति के प्रति समन्वय भावना ही लक्ष्य होने के कारण सगुण भक्तों की निर्गुण भक्ति के प्रति समन्वय दृष्टि का उल्लेख नहीं किया गया।

117. 'तूं निरगुण सरगुण सुखदाता' सं. का. 267/5। (गुरु अर्जुन देव) अर्थात् तेरे (ब्रह्म के) दो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरूप हैं, निर्गुण और सगुण दोनों ही सुखदायक हैं।

118. 'सरगुण की सेवा करो, निरगुण का करो ध्यान।' सं. की नि.स.स. सा., पृ. 33।

119. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ. 3।

120. वही।

121. वही, पृ. 4।

122. यो. प्र., प्र. सं. पृ. 158-पादटिप्पणी, तथा हिं. का. में नि. सं. प्रस्तावना पृ. 6 और मूल अंग्रेजी पुस्तक में पृष्ठ 1।

123. उ. भा. की सं. प. पृ. 4।

124. 'संत शब्द 'सत्' शब्द का एक अन्यतम रूप है, जिसका वास्तविक अर्थ अस्तित्व का बोधक है और जो एक प्रकार से 'सत्य' का भी पर्यायवाची है। संतों का प्रधान लक्षण, इस कारण यही हो सकता है कि वे 'सत्य' के प्रति पूरी आस्था रखते हैं और उसी के अनुसार अपने जीवन को भी ढाल लेते हैं।' सं. का., द्वि. खं. भूमिका, पृ. 14।

125. 'वे (मध्यकाल में अवतरित महानात्माएँ) सत् की अंश थीं, इसीलिए 'संत' कहलाईं।'—निर्धन संदेश (पत्रिका), जुलाई 1964।

126. यो. प्र., पृ. 158।

127. 'जो सत्यस्वरूप नित्यसिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुके हों और इस उपलब्धि के फलस्वरूप अखण्ड सत्यस्वरूप में प्रतिष्ठित हो गए हैं, वे 'संत' हैं। भा. सं. और सा. द्वि. खं. पृ. 57।

128. 'संतु निरंजणु सेजि सिउ, तहिं किज्जउ अणुराउ' पा. दो., पृ. 38।

129. ऋग्वेद, 10-114-5।

130. द्रष्टव्य—उ.भा. की सं. प., पृ. 4।

131. वि. स. श्लो. सं. 112

132. सुं. ग्रं., द्वि. सं. 'अथ साधु कौ अंग' साषी 745/48।

133. वही, 745/49।

134. स्वा. दा. द. की वा. 'साध कौ अंग', 224/60।

135. स्वा. दा. द. की वा. ''साध कौ अंग', पृ. 224/61।

136. 'वदन्ति तत्त्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।' भा. 1-2-11।

137. 'जाकै मुंह माथा नहीं, नाहीं रूपक रूप।
पुहुप वास थैं पातला, ऐसा तत्त अनूप।' क. ग्रं. 47/4।

138. 'माही एक सकल संसारा, बहुविधि भाड़ै घड़े कुंभारा।' वही 82/53।

139. 'सब घट अंतरि तूं ही व्यापक, धरै सरूपै सोई।' × वही 82/55।

140. 'तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर, भगत बछल भौ हारी'—वही, 114/191।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

141. 'राम कैं नांइ नीसान वागा, ताका मरम न जानैं कोई।
भूख त्रिषा गुण वाकै नाहीं, घट घट अंतरि सोई।
बेदविवर्जित भेद-विवर्जित पाप रु पुंन्यं।
ग्यानं विवर्जित ध्यान विवर्जित, विवर्जित अस्थूल सुन्यं।
भेष विवर्जित भीख विवर्जित, ड्यंभक रूपं।
कहैं कबीर तिहूं लोक विवर्जित, ऐसा तत्त अनूपं।'

क. ग्रं. 121/220।

142. 'ज्यूं नैनूं मैं पूतली, त्यूं खालिक घट माहिं।
मूरिख लोग न जांणहीं, बाहरि ढूंढण जांहि।'

क. ग्रं. 64/9।

तथाः—'मोको कहा ढूंढे बन्दे, मैं तो तेरे पास मैं।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, न काबै कैलास में'

वही, भूमिका, पृ. 42।

143. 'मन ही पूजा, मन ही धूप, मन ही सेऊं सहज सरूप।'—

144. 'घटि घटि गोपी घटि घटि कान्हं घटि घटि रांम अमर अस्थांन।
गंगा जमनां अंतरवेद, सुरसती नीर वहे परसेद।
कुंज केलि तहँ परम बिलास, सब संगी मिलि बेलैं रास।
तहं विन बैनां वाजैं तूर, विगसै कवल चंद अरु सूर।
पूरण ब्रह्म परम परकास, तहँ निज देवै दादूदास।'

स्वा. दा. द. की वा. 528/407।

145. तुम्हारे नांइ लागि हरि जीवन मेरा,
मेरे साधन सकल नांव निज तेरा।
दांन पुंनि तप तीरथ मेरे, केवल नांउं हमारा।
ये सब मेरे सेवा पूजा, अैसा वरत तुम्हारा।
ये सब मेरे वेद पुरांनां, सुचि संजम है सोई।
ग्यांन ध्यान येई सब मेरे, और न दूजा कोई।'

वही, 449/215।

146. 'इहि बिधि आरती रांम कीजै, आत्मा अंतरि वारणां लीजै।
तन मन चंदन प्रेम की माला, अनहद घंटा दीनदयाला।
ग्यांन का दीपक पवन की बाती, देव निरंजन पांचौं पाती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनंद मंगल भाव की सेवा, मन सा मंदिर आतम देवा।
भगति निरंतर मैं बलिहारी, दादू न जानैं सेव तुम्हारी।'

वही, 543/441।

147. द्रष्टव्य—हिं, सा. का इति., 14वां सं., पृ. 79।

148. द्रष्टव्य—क. ग. पृ. 78-9/39, वही 105/160।
वही, 110/177, वही, 83/58।
*'श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ,
संजुत विरति विवेक।'
तुलसी-उ. कं. 99/100 (ख)
रूपगोस्वामी का उत्तमा भक्ति का लक्षण, सगुणभक्त गोस्वामी तुलसीदास तथा निर्गुण संतों से भिन्न है। उन्होंने उत्तमा भक्ति के लक्षण में ज्ञान और कर्म को स्थान नहीं दिया।
अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्म्माद्यनावृत्तम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।
हिं. भ. र.—1/11 प्रथमा सामान्य भक्ति लहरी।

149. 'जे मरजादा वेद करि ते सन्तनि मेटी।
जैसें गोंपी कृष्ण कौं सब तजि करि मेटी।
एक भरोसे राम कै कछु शंक न आगैं।
जन सुंदर सांचै मते, जग करि नहिं मानैं॥"

सुं. ग्रं. द्वि. सं. 896/2।

150. 'जा नरि रांम भगति नहीं साधी, सो जनमत काहे न मूवौ अपराधी।
गरभ मुचे मुचि भई किन बांझ, सूकर रूप फिरै कलि मांझ॥
जिहि कुलि पुत्र न ग्यांन बिचारी, वाकी विधवा काहे न भई महतारी।
कहै कबीर नर सुंदर सरूप, रांम भगति बिन कुचल कुरूप॥"

क. ग्रं. 97/125।

151. उ. कां. दो. सं. 120 (ख)।

152. 'एक समसेर इकसार बजती रहै, खेल कोइ सूरमा सन्त झेले।
काम-दल जीति करि क्रोध पैमाल करि, परम सुखधाम तहं सुरति मेले।
सील से नेह क़रि ज्ञान कौ खड्ग लै, आय चौगान में खेल खेलै।
कहैं कबीर सोइ सन्त जन सूरमा, सीस को सौंप करि करम ठेलै।"

शब्दा. पृ. 106।

153. क. ग्रं. 153/343, वही, पृ. 186। वही, 96/121। वही, 100/135 वही, 116/198, वही,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

118/206।

154. क. ग्रं पृ. 186। वही, 79/41, वही, 112/183। वही, 156/356।

155. 'माटी का मंदिर, ग्यांन का दीपक, पवन बाति उजियारा।
तिहि उजियारै सब ज़ग सूझै, कबीर ग्यांन विचारा।'

वही, 128/249।

156. 'क्रिया भक्ति हरिभजन है और क्रिया भ्रम जांन।
ज्ञानब्रह्म देषै सकल, सुन्दर पद निर्वान॥ सुं. ग्रं. द्वि.खं. 817/5।

157. क. ग्रं. 41/9 तथा वही, 39/4।

158. 'विद्या न पढूं बाद नहीं जानूं, हरि गुन कथत सुनत बौरानूं।' क. ग्रं. 102/147 तथा 'चतुराई हरि नां मिले, ए वातां की बात। एक निसप्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाथ।' वही, 36/22।

159. 'पढ़ै गुनै उपजै अहंकारा, अधर डूबे वार न पारा।
कहै कबीर सुनहु रे भाई, रांम नांम बिन किन सिधि पाई।'

वही, 99/132।

160. 'स्वर्गवास न बाछियै, डरियै न नरक—निवासु।
होना है सो होइ है, मनहिं न कीजै आसु।
रमइया गुन गाइयै, जाते पाइयै परमनिधानु।'
सं. सं. सु. सा. 47/42 वही पद क. ग्रं. में 96/121।

161. द्रष्टव्य—उ. कां. 96-1-98 (अ. सं. चौ. सं., दो. सं. क्रमशः)
वही, 105-3-107। वही 100-4-102।

162. "हरि जी यहै विचारिया, साषी कहौ कबीर।
भौसागर में जीव है, जे कोइ पकड़े तीर॥' क.ग्रं. 44/1।

* मुख्यतः दोहा एवं सवैया छंद में लिखित संत-वाणी (साखियाँ एवं सवैयों) का विशिष्ट विभाजन ही 'अंग' है।

163. द्रष्टव्यः कबीर, पृ. 219-20-21-22।

164. सुं. ग्रं. द्वि. ख. 'ऐसा सतगुरु कीजिये करनी का पूरा।
उनमनि ध्यांन तहां धरै जहां चंदन सूरा॥
तन मन इंद्री बसि करै फिरि आप सँभालै।
कनक कामिनी देषि कैं कहुं चित्त न चलावै।
द्वै पष हिंदू तुरक की विचि आप सँभाले।
ज्ञान षडग गहि जूझता मधि मारग चालै।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानै सबकौं एक ही पांनी की बूंदा।
नीच ऊंच देषै नहीं कोइं बामण सूदा।
सब संतनि का मत यहै सुमिरै करतारा।
सुन्दर ऐसे गुरु बिना नहिं ह्वै निस्तारा।
(पृ. 863-64/11)
तथा–द्रष्टव्य, क. ग्रं. 83/58।

165. द्रष्टव्य–83/58, क. ग्रं.। तथा
'अरे भाई दोइ कहाँ सो मोहि बतावौ, बिचि ही मरम का भेद लगावौ।
जोनि उपाइ रची द्वै धरनीं, दीन एक बीच भई करनी।
राम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसबी लई।
कहै कबीर चेतहु रे भौंदू, बोलनहारा तुरक न हिन्दू।'
क. ग्रं. 82/56 तथा द्रष्टव्य वही, 96/121, वही, 83/60, वही, 112/183, वही, 156/356।

166. द्रष्टव्य–गु. गु. वा. डॉ. वि. स्नातक का मत, भूमिका, पृ. ङ।

167. द्रष्टव्य–हिं. सा. का इति. पृ. 72।

168. द्रष्टव्य–सू. रत्ना. का. ना. प्र.सं. सन् 1934 ई. पृ.सं. 77।

169. 'जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर सुंदर अति नागर।
जय इंदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर।
बालकांड, 41-2-34।

170. निर्गुण निराकार निर्विशेष और निरुपाधि ब्रह्म की ओर झुकाव, घट में पीव की सत्ता में विश्वास, बाह्याचारों का विरोध, हठयोग का प्रभाव आदि तत्त्व।

171. मी.सु.सिं.–आनन्द स्वरूप महाराज, 813/2।

172. 'घट ही में गंगा, घट ही में जमना, घट घट हैं अविनासी' वही 402/66 तथा वही, 288/55।

173. वही. 188/83।

174. वही, 813/2, तथा वही 391/35।

175. मी. की पदा. : परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 36।

176. मी. सु. सिं. 924/1।

177. मी. स्मृ. ग्रं. 'संतमत और मीरा' (लेख) परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 66।

178. मीरां एक अध्ययन, 115/2।

179. मी.सु. सिं.–931/26।

180. वही, 188/83।

181. वही, 813/2 तथा 169/28 वही।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

182. वही, 515/21।

183. वही, 756/22।

184. वही, 755/22 तथा वही, 875/20।

185. वही, 747/1।

186. वही, 'रामनाम धन खेती मेरी, सुरता प्रभु में रेती।
एक साल मैंने खेती पाई, गंगा जमुना रेती।
राम नाम का बीज पड़ा है, निपजत हीरा मोती।
प्राण अपान मिलाकर साधू, कर ले नेती धोती।
भृकुटी मंडल में हंस विराजे, वहां दरशे एक जोती।
सुरत निरत का बैल बनाया, जब चाहै जब जोती।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, हरि के चरण पर प्रीती।

वही, 875/20।

187. वही, 898/14।

188. 'गुरु मिल्या रैदास, नाम नहीं छोडूं।'' वही, 281/35।

189. द्रष्टव्य—मी.बा. की पदा. पृ. 74-75।

190. द्रष्टव्य—मी.सु. सिं.-पृ. 3।

191. 'मीरा के (भक्ति) भाव को तथा उसकी योग्यता को जानकर दूदाजी ने मीरां को संगीत की शिक्षा देने का निश्चय किया, तदनुसार उसे संगीत व योग की भी शिक्षा दी जाने लगी।' वही, पृ. 17।

192. 'उस प्रेमयोगिनी और भक्ति की आचार्या की योग्यता किसी अनुभवी ज्ञानी, वेदांती और योगी से किसी प्रकार न्यून नहीं थी। उसके ज्ञान व निर्गुण रहस्यवाद के पद इसका सहज प्रमाण हैं।'

वही, भूमिका, पृ.—फ।

193. द्रष्टव्य—मी. स्मृ. ग्रं. लेख 'संतमत और मीरा'—परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 64।

194. वही, पृ. 67।

195. वही, पृ. 55-56।

196. मी. द. : पृ. 103 और 106।

197. 'संतों का सम्बन्ध किसी एक धर्म या संप्रदाय से तो बिल्कुल नहीं होता। हिन्दू धर्म, जैनधर्म और बौद्धधर्म में तो संतों की परम्परा अक्षुण्ण रूप से चली है। * * * * 'संत' शब्द कहते समय हमारे सामने अक्सर मध्ययुगीन निर्गुणी साधुओं का चित्र उपस्थित हो जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में यह शब्द प्रायः इन्हीं निर्गुणवादी संतकवियों के लिए रूढ़ सा हो गया है। परन्तु यह उसका एकांगी और संकुचित प्रयोग ही है। संतों की पंक्ति में हम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्गुणवादी संतकवियों के समान सगुणवादी महात्माओं को भी आसानी से बैठा सकते हैं। निर्गुण-सगुण का भेद करना संतों के लिए ठीक नहीं होगा। दोनों ही उपासना पद्धतियों के अनुसरण करने वाले संत हुये हैं।'

संतसाहित्य विशेषांक—साहित्य संदेश (पत्रिका) पृ. 37 (नाहटाजी द्वारा उद्धृत)

198. हिं. का. और उसका सौं., पृ. 86।

199. सं. म. का स. सं., पृ. 3।

200. हिं. का. में नि. सं., पृ. 7।

201. हिं. और म. का नि. सं. का., पृ. 41।

202. साहित्य संदेश, संतसाहित्य विशेषांक, 1958 'लेख-'संतमत ओर लोक-तत्त्व', पृ. 82-3-4।

203. मी. स्मृ. ग्रं.—लेख—'संतमत और मीरा की भक्ति', पृ. 246-7-8।

204. क. और उनका का., प्र. सं. पृ.—

205. साहित्य संदेश, सं. सा. विशेषांक, लेख—'जैन संतसाहित्य', पृ. 37।

206. उ. भा. की सं. द्वि. सं., पृ., 7।

207. इस प्रसंग में संत नामदेव का निम्न उद्धरण द्रष्टव्य है—

'ढिग ढिग ढूँढै अंध ज्यौं, चीन्है नाहीं संत।
नाम कहै क्यों पाइये, बिन भगतां भगवंत।'

सं. ना. की हिं. पदा. डॉ. भागीरथ मिश्र।

208. हिं. को म. सं. की दे. पृ. 55।

* जयदेव के सम्बन्ध में यह शंका उठ सकती है कि 'गीत गोविन्द' रचयिता जयदेव को निर्गुणी संतों में स्थान किस आधार पर दिया गया है। आदिग्रंथ में संत जयदेव के दो पद मिलते हैं, जिनमें से एक में भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन है और दूसरे में हठयोग का प्रभाव स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त कबीर, सुन्दरदास प्रभृति कवियों ने भी किन्हीं संत जयदेव का अपनी कृतियों में बड़ी श्रद्धा से उल्लेख किया है—

'कलि जागे नांमां जैदेव' क. ग्रं. 163/387।

'महादेव वामदेव ऋषभ कपिलदेव, व्यासदेव शुकहू जैदेव नामदेव जू।'

सुं. ग्रं. द्वि. भा. 'सवैया' 393/24।

इससे ऐसा आभास मिलता है कि संत जयदेव और कवि जयदेव, दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति रहे होंगे और संत जयदेव नामक कोई निर्गुणपंथी महात्मा संत नामदेव के समय के आस-पास अवश्य हुये होंगे। द्रष्टव्य, परशुराम चतुर्वेदी जी का मत, 'संतकाव्य', पृ. 114-15। यथेष्ट प्रामाणिक सामग्री के अभाव में हमें संत जयदेव के सम्बन्ध में मिलने वाले उक्त उल्लेखों के आधार पर ही संतोष कर लेना पड़ा है।

209. साधना में कर्म, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, कुल, जाति, वर्ण और धर्म के आधार पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनी सामाजिक-व्यवस्था का विरोध और भक्ति में भी इन सभी तत्त्वों का बहिष्कार ब्रह्म के लिए राम, कृष्ण, बनवारी आदि अवतारवाचक नामों का ग्रहण, किन्तु परतत्त्व के श्री-विग्रह की बाह्यसाधनों से पूजा-अर्चा में अविश्वास आदि के रूप में कर्तृत्व।

210. द्रष्टव्य—डॉ. त्रिगुणायत का मत, 'हिं., की नि. का. और उ. दा. पृ.—14।

211. उ. भा. की सं. प., द्वि. सं., पृ. 10।

212. इस केंद्रबिन्दु से मीरा की विचारधारा का पीछे संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। संतसाहित्य के संपूर्ण एवं गहन अध्ययन द्वारा भक्तों की इस कोटि में मीरा के अतिरिक्त कुछ अन्य भक्त भी स्थान पा सकते हैं, ऐसी सम्भावना है।

213. वैसे तो सगुणकाव्य का भी अवतक संगीत की दृष्टि से जो थोड़ा-बहुत अध्ययन एवं विवेचन हुआ है, वह विल्कुल अपूर्ण है, किंतु उक्त दिशा में निर्गुणकाव्य के अध्ययन का प्रयास तो दो चार फुटकर लेखों तक ही सीमित है और यों हिन्दी में यह विषय आजतक अस्पृष्ट विषयों की सूची में ही सन्निविष्ट रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋषभ : द्वितीय अध्याय

संगीत के मूल आधार 'नादानुसंधान' की परम्परा में, हिंदी-निर्गुण-संतकाव्य

संगीत और अध्यात्म दो पृथक्-पृथक् शास्त्र होते हुए भी, परस्पर प्रगाढ़-रूप में सम्बद्ध हैं। हमारे यहाँ उक्त दोनों विषयों का अंगांगिभाव सम्बन्ध सदा से मान्य रहा है। संगीत-साधना का मूल आधार नाद[1] है, जोकि अध्यात्म-साधना में भी इसी रूप में स्वीकृत एवं गृहीत है।[2] हिंदी के निर्गुण-संत-कवियों की अध्यात्म-साधना भी नाद की पृष्ठभूमि पर स्थित है।

अध्यात्म एव संगीत दोनों क्षेत्रों में नाद को अपार महत्त्व मिला है। वृहद्देशी का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है—

"न नादेन बिना गीतं न नादेन बिना स्वराः।
न नादेन बिना नृतं तस्मान्नादात्मकं जगत्।
नादरूपः स्मृतो ब्रह्मा नादरूपो जनार्दनः।
नादरूपा परा शक्तिर्नादरूपो महेश्वरः।
यदुक्तं ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मग्रन्थिश्च यः स्मृतः।
तन्मध्ये संस्थितः प्राणः प्राणाद्विह्न समुद्भवः।
वह्नि मारुतसंयोगान्नादः समुपजायते।
नादादुत्पद्यते बिन्दुस्ततः सर्व च वाङ्मयम्।"[3]

तद्वत् आध्यात्मिक वाङ्मय में भी नाद को परम महत्त्व दिया गया है—

शाखापल्लवरूपेण ताल्वादिस्थानघट्टनात्।
अकारादिक्षकारान्तान्यक्षराणि समीरयत्।
अक्षरम्भ्यः पदानि स्युः पदेभ्यो वाक्यसंभवः।
सर्वे वाक्यात्मका मन्त्रा वेदशास्त्राणि कृत्स्नशः।
पुराणानि च काव्यानि भाषाश्च विविधः अपि।
सप्तस्वाराश्च गाथाश्च सर्वे नादसमुद्भवाः।
एषा सरस्वती देवी सर्वभूतगुहाश्रया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वायुना वह्नियुक्तेन प्रेर्यमाणा शनैः शनैः ।
द्वित्रिवर्णप्रदैर्वाक्यैरित्येवं वर्तते सदा ।"[4]

संगीत-शास्त्र के ग्रंथों में नाद को आहत और अनाहत, द्विधा विभाजित किया गया है;

"अनाहतो हतश्चैव स नादो द्विविधौ मतः ।"[5]
(संगीत मकरंद)

"आहतौनाहतश्चैति द्विधा नादो निगद्यते ।
सोऽयं प्रकाशते पिण्डे तस्मात्पिण्डाभिधीयते ।"[6]

इनमें आहत नाद को लोकरंजक, मुक्तिदायक एवं संगीतोपयोगी कहा गया है और अनाहत नाद को चित्त की एकाग्रता की दृष्टि से मनुष्यों के लिए दुष्कर, रक्ति-विहीन एवं योगीजन के लिये उपासना-योग्य कहा है।[7]

आहत नाद, संगीत-शास्त्र का उपादान बना है और अनाहत नाद, अध्यात्म शास्त्र का। निर्गुण संतों ने अपने काव्य में आहत और अनाहत दोनों प्रकारों को अध्यात्म-साधना का अंग बनाया है अतः प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के संदर्भ में संत काव्य का, नाद के उभय पक्षों की दृष्टि से विश्लेषण, अनिवार्य है। संतकाव्य में राग-ताल नामोल्लेख के रूप में उपलब्ध आहत नाद का विश्लेषण चतुर्थ अध्याय में प्रस्तुत किया जाएगा। प्रस्तुत अध्याय में संतों की नाद-साधना में अनाहत नाद के स्थान से सम्बन्धित विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में नाद को साधना का माध्यम बनाकर मूल रूप से संगीत का अवलम्ब ग्रहण किया गया है। इस विषय का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत अध्याय में आगे किया गया है।

संगीत के ग्रंथों में नादब्रह्म को साधना का लक्ष्य स्वीकार किया गया है,[8] तद्वत् उपनिषदों में नादब्रह्म को सिद्धि का कारण माना है और उसका ज्ञान-मात्र ही जन्म-बन्धन से मुक्त करने वाला कहा गया है।[9]

संगीत-रत्नाकर में गीत के माहात्म्य का वर्णन करते हुए उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतुष्फलों का प्रदाता कहा गया है।[10]

इस प्रकार आहत और अनाहत नाद-साधना में विषयगत भेद होते हुए भी दोनों प्रकार की साधनाओं में, लक्ष्यगत कोई अन्तर नहीं है। संगीत और अध्यात्म, उभय साधना-पद्धतियों में यत्किंचित् विषयगत सम्बन्ध भी दृष्टिगत होता है। अध्यात्म-साहित्य में अनाहतनाद के प्रसंग में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, अनाहत और मणिपूर आदि षट्चक्रों, प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान आदि दशविध वायुओं आदि जिन विषयों का वर्णन मिलता है, उनका विवरण मतंगकृत 'वृहद्देशी'[11] तथा शार्ङ्गदेव कृत 'संगीत रत्नाकर'[12] आदि प्रमुख संगीत-ग्रंथों में भी मिलता है। बाद के सभी शास्त्र-ग्रंथकारों ने उक्त दोनों ग्रंथों के अनुसरण पर, उपर्युक्त विषयों का अपने ग्रंथों में उल्लेख किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार संतों की अनाहत नाद साधना का हमारे शोध प्रबन्ध से अप्रत्यक्ष रूप से विशिष्ट सम्बन्ध है।

निर्गुण संतों की नाद-साधना पर पूर्ववर्ती तंत्र, उपनिषद्, हठयोग प्रभृति दर्शनों एवं समकालीन सूफ़ी और सगुण अध्यात्म धाराओं की नाद साधना का भी विपुल प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव कितना एवं किस सीमा तक संत काव्य में मिलता है, इसके अवलोकनार्थ उक्त विविध चिंतन धाराओं के नादयोग का इस अध्याय में क्रमिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

तांत्रिक दर्शन, उपनिषद् हठयोग एवं सूफ़ीमत में संगीत के स्थान पर संक्षेप में दृष्टि-निक्षेप कर चुकने के अनन्तर, 'निर्गुणोपासना-पद्धति में नादसाधना' को प्राप्त महत्त्व पर विचार किया गया है।

इस अध्याय में संतों की नाद साधना के परिप्रेक्ष्य में सगुणोपासना पद्धति से निर्गुण भक्ति का अंतर स्पष्ट करना ही प्रासंगिक प्रतीत हुआ, अतः अंत में उपर्युक्त दर्शन-द्वय में संगीत के विशिष्ट स्थान से सम्बन्धित पार्थक्य-विधायक तत्त्वों का तुलनात्मक दृष्टि से संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार शोधप्रबन्ध के विषयान्तर्गत निर्गुण भक्ति में संगीत के स्थान का सर्वांगीण अध्ययन करने की दृष्टि से प्रस्तुत अध्याय का महत्त्व स्पष्ट है।

(क) तांत्रिक दर्शन में नाद-साधना

भारतीय आध्यात्मिक-धाराओं में तांत्रिक विचारधारा एक अत्यंत प्राचीन एवं सुप्रसिद्ध अध्यात्मधारा है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के दैवी सूक्त में इस मत की उपासना का स्वरूप दिया गया है। अथर्ववेद में तो तांत्रिक मत का पर्याप्त विकास देखने को मिलता है।[13] इस अति प्राचीन भक्ति-धारा में वेद, उपनिषद्, पुराण आदि आद्य ग्रंथों की भाँति नाद की अनन्त महिमा वर्णित है। समस्त तांत्रिक-साधना, नाद योग की ही मूल भित्ति पर प्रतिष्ठित है।[14] तांत्रिक ऋषियों ने स्पष्ट रूप से घोषणा की है कि भक्ति के मार्ग में साधक किसी भी साधन-पथ को अपनाए, नाद का आश्रय ग्रहण करना, उसके लिये अनिवार्य है, क्योंकि यह नाद-तत्त्व ही साधक को परतत्व की ओर अग्रसर होने में साहाय्य प्रदान करता है। यह नाद-साधना ही वस्तुतः ऊंकार की साधना है। इस साधना की पराकाष्ठा में क्रमशः नाद के अतिक्रमण के पश्चात्, मन का अतिक्रमण होता है और साधक को भगवत्साक्षात्कार का फल प्राप्त होता है।[15] तांत्रिक दर्शन में आत्म चैतन्य की अभिव्यक्ति का प्रतीक नाद का आविर्भाव ही साधक की तुरीयावस्था का स्वरूप कहा गया है।[16]

इस प्रकार के नाद की महत्ता के प्रतिपादक अनेक वर्णन संतकाव्य में भी हू-ब-हू इसी रूप में मिलते हैं अतः उक्त प्रसंग में संत काव्य पर तांत्रिक दर्शन का प्रभाव निश्चित रूप से माना जा सकता है। इसी लक्ष्य एवं अभिप्राय से यहां 'तांत्रिक दर्शन में संगीत' जैसे वृहत् विषय पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तंत्रों में सृष्टिकर्ता शिव और शक्ति का प्रथम विकास नाद के रूप में वर्णित है।[17]

शक्ति तंत्रों में कहा गया है कि शिव और शक्ति के संयोग से सृष्टि की कल्पना का उदय होता है। शिव और शक्ति का यह संयोग और उन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध 'नाद' कहलाता है। शिव और शक्ति का यह सम्बन्ध ऐन्द्रिय विषयों से अतीत है, किन्तु जब सिसृक्षा से अभिभूत हो शिव और शक्ति दोनों क्रियाशील होते हैं, तभी नाद का प्रकट्‌य होता है, और इसी नाद से तदनन्तर विश्व का सृजन सम्पादित होता है।[18]

प्रसिद्ध तंत्रग्रंथ 'शारदातिलक' में शिव के दो रूप कहे गये हैं—निर्गुण और सगुण अर्थात् निर्विशेष और सविशेष शिव। निर्गुण शिव का प्रकृति से योग होने पर सगुण शिव का आविर्भाव होता है। सगुण शिव से शक्ति का आविर्भाव होता है तथा शक्ति से परनाद और परबिन्दु की उत्पत्ति होती है। यहां तक कि नाद और बिन्दु अव्यक्त रहते हैं। यहां से अभिव्यक्ति पाने पर परबिन्दु से अपरबिन्दु, बीज और अपरनाद का प्राकट्‌य होता है। इन्हीं तीनों से क्रमानुसार रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा उदित होते हैं। और इस प्रकार सृष्टि चलती है। नीचे स्पष्टता के लिये उक्त सृष्टिक्रम की परिकल्पना, एक चार्ट द्वारा प्रस्तुत की जाती है।

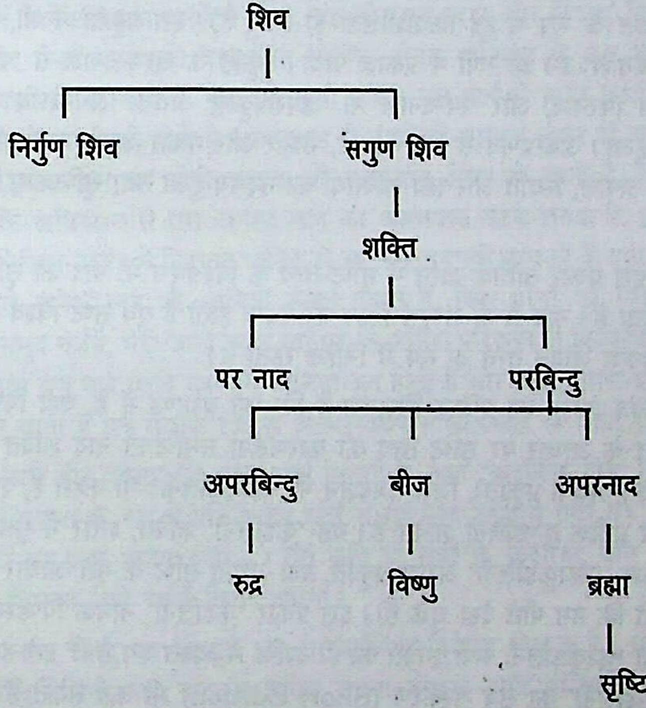

उपरिवर्णित निर्गुण शिव विशुद्ध चैतन्य है और सगुण शिव, उपाधियुक्त चैतन्य है। उपाधियुक्तचैतन्य से उपाधियुक्त शक्ति उत्पन्न होती है। इन दोनों के संयोग से विश्व में एक विक्षोभ (हलचल) होता है, वही नाद है और उस विक्षोभ का क्रियाशील होना ही बिन्दु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। यहाँ नाद और बिन्दु से, तात्पर्य है, सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त विशेषताहीन (निर्विशेष) नाद और बिन्दु, इसी कारण, इन्हें क्रमशः परनाद (निर्विशेष नाद) और परबिन्दु (निर्विशेष बिन्दु) कहा गया है। इन्हें परमनाद और परमबिन्दु भी कह सकते हैं।[19] क्योंकि बिन्दु क्रियाशील है, अतः निर्विशेष अथवा परबिन्दु से परबिन्दु (सविशेष बिंदु) बीज तथा अपरनाद (सविशेष नाद) की उत्पत्ति हुई, जो क्रमशः क्रियां, ज्ञान और इच्छा के प्रतीक हैं। इन्हीं से क्रमानुसार रुद्र, ब्रह्म और विष्णु का आविर्भाव हुआ तथा सृष्टि-चक्र चला।

इसी बात को सरलतापूर्वक यों भी समझा जा सकता है कि सृष्टि के आदि में केवल स्वयंप्रकाश, अखण्ड, एकरस अद्वयसृष्टि में अन्य कोई नहीं था। इस शिवरूप ब्रह्म में 'स्पन्दन' (सगुण) और 'अस्पन्दन' (निर्गुण) नामक दो शक्तियाँ निगूढ़ थीं। ब्रह्म में संकल्प स्फुरित हुआ, 'बहुस्यां प्रजायेय' अर्थात् बहुत होऊँ, सृष्टि करूं। संकल्प के स्फुरण मात्र से ही (योग) ('एक से अनेक होऊं' इस संकल्प का स्फुरणमात्र ही 'नाद' है) ब्रह्म (सदाशिव, विशुद्ध चेतन तत्त्व) की स्पन्दनमयी और 'अस्पन्दनमयी' शक्तियों का संयोग हुआ और उससे एक त्रिगुणात्मिका महाशक्ति का आविर्भाव हुआ (ब्रह्म के उक्त संकल्प की त्रिगुणात्मिका महाशक्ति के रूप में हुई क्रियाशीलता ही बिन्दु है)। इस प्रकृति ने भी 'स्पन्दनांश' और 'अस्पन्दनांश' इन दो रूपों में प्रकाश पाया। प्रकृति के अस्पन्दनांश से 'पराप्रकृति' अथवा परप्रणव (परनाद) और 'स्पन्दनांश' से 'अपराप्रकृति' अथवा 'अपरप्रणव' (अपरबिन्दु) का सृजन हुआ। अपरप्रणव से फिर अकार, उकार और मकार अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश अथवा उत्पत्ति, स्थिति और लय शक्तियों का उद्‌भव हुआ तथा सृष्टिक्रम; विकास को प्राप्त हुआ।[20]

इस प्रकार तांत्रिक-दर्शन में सृष्टि-तत्त्व के विश्लेषण में, नाद को सृष्टि का मूल तत्त्व माना गया है। नाद से ही सम्पूर्ण विश्व की रचना होती है एवं सृष्ट विश्व के अन्दर ही वह प्राण अथवा जीवंत तत्त्व के रूप में निहित रहता है।

तंत्र शास्त्र का प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि 'जो ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड में है।'[21] इस सिद्धान्त के आधार पर सृष्टि तत्त्व की कारणरूपा समष्टिगत नाद शक्ति ही (पीछे वर्णित महाशक्ति अथवा प्रकृति), जिसे तंत्रदर्शन में 'महाकुंडलिनी' भी कहते हैं, शरीरस्थ व्यष्टिगत नाद की प्रतीक कुण्डलिनी शक्ति है। यह 'कुंडलिनी' शक्ति, शरीर में मूलाधार में स्थित है और उधर ''महाकुंडलिनी' अथवा प्रकृति, ब्रह्म अर्थात् सृष्टि के मूल आधार परतत्त्व में निगूढ़ है (जैसी कि हम पीछे देख चुके हैं)। इस प्रकार 'कुंडलिनी' नामक पिण्डस्थ शक्ति ब्रह्माण्ड में व्याप्त महाकुंडलिनी रूपी शक्ति का ही व्यष्टि में व्यक्त रूप है।[22] इसे हम विश्व-व्यापिनी 'महाकुण्डलिनी' का लघु संस्करण (Short Edition) भी कह सकते हैं।[23]

कुण्डलिनी, जीव की वृद्धावस्था में प्रसुप्त रहती है। बद्धजीव श्वास-प्रश्वास के आधीन होकर निरन्तर इड़ा-पिंगला के मार्ग में चल रहा है। उसका सुषुम्ना-पथ प्रायः बन्द रहता है। अतः वह बहिर्मुख है और अंतर्जगत् में ध्वनित होने वाले अखण्ड नाद को सुन नहीं पाता। जीव की इस अवस्था को योग और तंत्रशास्त्रों में 'प्राणों की विक्षिप्तता' अथवा 'मूढ़ दशा'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहा है। जिस समय गुरु के सुयोग्य मार्ग-दर्शन की कृपा से तथा प्राणायाम की क्रिया-विशिष्ट के द्वारा सुषुम्ना मार्ग उन्मुक्त होता है, उस समय प्राण स्थिर और सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त कर उसमें प्रविष्ट होता है तथा साधक शून्य पथ (नाद का अधिष्ठान) से निरन्तर अनाहत-नाद का श्रवण कर पाता है।[24]

शास्त्रों में कुंडलिनी शक्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि यह सर्पिणी के आकार-प्रकार की सी है और साढ़े तीन वलय लेकर मूलाधार स्थित त्रिकोण से लिपटी रहती है। इसके बाईं ओर इड़ा नाड़ी और दाईं ओर पिंगला नाड़ी की स्थिति है तथा इन दोनों के बीच में सुषुम्ना नाड़ी विद्यमान है। कुंडलिनी की व्युत्पत्ति यों है—"कुण्डलेन अस्याः स्तः इति कुण्डलिनी।' अर्थात् वह (शक्ति) जिसके दो कुण्डल हों, कुण्डलिनी है। ये दो कुण्डल इड़ा और पिंगला हैं।[25] सामान्यतः अर्थात् जीव के बहिर्मुखी रहने तक कुण्डलिनी प्रसुप्तावस्था में रहती हैं। अतः तंत्रों में कुण्डलिनी को शब्द ब्रह्म रूपिणी कहा गया है।[26] अतः साधक अनेक प्रकार की विशिष्ट साधनाओं द्वारा इसे जागृत करता है। कुण्डलिनी के क्षुब्ध होकर ऊर्ध्वमुखी होने के समय जो स्फोट होता है, उसी को योग में 'नाद' कहा गया है।

वास्तव में, अनेकविध अभ्यासों से योगी, चंद्र और सूर्य (इड़ा और पिंगला) मार्गों को रोक देता है और उनमें बहनेवाली वायुशक्ति संयमित होकर योनिकंद के मूल में स्थित सुषुम्ना की मध्यवर्तिनी ब्रह्मनाड़ी के मुख को खुला पाकर, उस मार्ग से ऊपर उठती है तो वस्तुतः कुंडलिनी ही ऊर्ध्वमुखी होती है। प्राणायाम से कुंडलिनी-जागरण सुकर हो जाता है। कुंडलिनी का उद्बोध होने पर योगी साधक की प्राण-वायु स्थिर हो जाती है और वह व्यष्टिगत नाद के अधिष्ठान से उस अनहद नाद का श्रवणपान करने लगता है, जो नाद अखण्ड रूप से निखिल ब्रह्मांड में निरन्तर ध्वनित हो रहा है। अनुभवी साधकों के कथनानुसार साधक को पहले अनेक स्तर की ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं, किंतु प्राणों की स्थिरता के साथ-साथ उसे समुद्र गर्जन, भेरी आदि स्थूल ध्वनियों के क्रमिक परिवर्तन से किंकिणी, वीणा, भ्रमर निःस्वन तथा वेणु नाद आदि सूक्ष्मतम ध्वनियां श्रुत होती हैं और अंत में प्राण-ब्रह्म प्रणव नाद में लीन हो जाता है एवं साधक विशुद्ध आत्म-स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।[27]

तंत्रों में नाद और 'बिन्दु' की बहुत चर्चा मिलती है, तथा 'नादबिन्दु योग' तंत्रशास्त्र के एक प्रमुख सिद्धान्त के रूप में प्रसिद्ध है। संतों से पूर्व नाथ संप्रदाय तथा तंत्र दर्शन में नाद, बिंदु शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। संत कवि भी तंत्रों के नाद-बिंदु योग से बहुत प्रभावित थे।[28] जिसका आगे वर्णन किया जाएगा।

तंत्रों में नाद, बिन्दु का विस्तृत रूप से दार्शनिक विवेचन मिलता है। साधक के साधनाक्रम में बिंदु रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, समना, उन्मना आदि पारिभाषिक शब्दों में नाद बिन्दु शब्दों का प्रयोग मिलता है।[29] नाद और बिंदु तत्वतः एक ही हैं। शास्त्रों में कहा भी गया है, 'यो वै नादः स वै बिन्दुः' अर्थात् जो नाद है, वही बिन्दु है।[30] अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त अनाहद नाद का व्यष्टि में अभिव्यक्त होने वाला रूप ही 'नाद' अथवा 'बिंदु'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहलाता है अर्थात् जो नाद अनाहत रूप से समस्त सृष्टि में व्याप्त है, उसी की व्यष्टि रूप में, जब व्यक्ति को अनुभूति होती है, तब उसे 'नाद' अथवा 'बिंदु' कहा जाता है।[31]

तांत्रिक दर्शन में ब्रह्म को नाद रूप माना गया है[32] तथा परतत्त्व की व्याख्या 'नाद' और 'बिंदु' शब्दों द्वारा की गई है। शारदा तिलक तंत्र के अनुसार, आगम शास्त्र के विद्वानों ने बिंदु को शिव, बीज की शक्ति और नाद को उन दोनों (शिव और शक्ति अथवा बिंदु और बीज) का समवेत रूप माना है।[33]

तांत्रिकों ने नाद और बिंदु का वर्णन करते हुये लिखा है कि ये दोनों शक्ति की वे अवस्थाएँ हैं, जो सृष्टि को जन्म देने के लिये उत्सुक रहती हैं।[34] पीछे वर्णन किये गये सृष्टि के आविर्भाव चक्र से यह बात स्पष्ट की गई है।

नाद के पररूप के सम्बन्ध में तंत्रों में कहा है—

"तस्योर्ध्वै तु स्मृतो नादः स किंजल्करजः प्रभुः।

महाद्भिः पुरुषैर्व्याप्तः सूर्यकोट्यंयुतप्रेमः।"[35]

अर्थात् उसके (रोधिनी या निरोधि का शक्ति के) ऊपर नाद की स्थिति है। नाद का धाम कोटि सूर्यों के समान प्रभाव वाले (तेजस्वी) पुरुषों से व्याप्त है।

"नाद इत्त समस्त वाचकाभेदमयपरामर्शसत्वः श्री सदाशिव एव पर रूपः।"[36]

अर्थात् विश्व के समस्त वाचकों (शब्दों) का जिस परतत्त्व में अभेद परामर्श होता है, वही सदाशिव है और वही नाद का पररूप है। इस प्रकार तंत्रों में सदाशिव तत्व का नाद तत्त्व द्वारा वर्णन किया गया है। सदाशिव नाद तत्त्व है और नाद तत्त्व ही सदाशिव है।

नाद तत्त्व की महिमा निम्न पंक्तियों में भी द्रष्टव्य है;

"नदते सर्वभूतेषु शिवशक्तयात्वाधिष्ठितः।"[37]

स च नादो नादाख्यं यत्परं बीजं सर्वभूतेष्ववस्थितम् इत्याम्नायोक्त रीत्या सर्वभूतैष्वव्यक्तध्वनिरूपः अतएव अक्षरः अविचल स्वरूपः।[38]

अर्थात् नाद शिव और शक्ति के रूप में सब प्राणियों में प्रतिष्ठित है।

"नाद" नामक परमबीज सब भूतों में अव्यक्त ध्वनि के रूप में निहित है। वह अक्षर है और अविचल स्वरूप है। नाद और बिन्दु तात्त्विक दृष्टि से एक ही है, अतः नाद की भांति बिंदु को भी तंत्रों में अनंत महत्त्व प्राप्त हुआ है। नाद और ज्योति बिन्दु से ही अभिव्यक्त होते हैं।[39]

हमारा मन त्रिगुणात्मक है। उसमें सत्वगुण की प्रधानता रहने पर भी रजोगुण और तमोगुण की भी स्थिति रहती है। सत्वगुण की सामान्य व्यक्ति में विद्यमानता रहने पर भी उसका विकास एवं अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। साथ ही यह भी अनिवार्य है कि सत्वगुण के विकास के बिना परतत्त्व का साक्षात्कार प्राप्त नहीं कर सकता, अतः 'बिंदु' को 'विशुद्ध सत्व' (वैष्णवों द्वारा प्रयुक्त शब्द) नाम से सत्वगुण का प्रतीक बनाकर तांत्रिकों ने शब्द-ब्रह्म-रूप लक्ष्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की प्राप्ति में इसकी साधना अर्थात् बिन्दु साधना को सोपानवत् माना है। इसी अर्थ में तंत्रों में कहा गया है कि 'बिन्दु क्षुब्ध हुये बिना ऊर्ध्वगति नहीं हो सकती।[40]

तंत्रों में कुंडलिनी को नादरूपा माना है,[41] और बिन्दु को महामाया अथवा कुण्डलिनी का भी पर्याय कहा गया है।[42] तंत्र दर्शन में बिन्दु को वही स्थान प्राप्त है, जो वेदांत दर्शन में ईश्वर को प्राप्त है।[43] अर्थात् बिंदु सृष्टिरचना का सक्रिय तत्त्व है, (यह हम पीछे दिखा चुके हैं)।

तंत्र दर्शन में नाद और बिन्दु शिव तथा शक्ति के पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। योगशिखोपनिषत् में मानव-देह में विद्यमान नाद-बिंदु को विष्णु और लक्ष्मी का प्रतीक मानकर, मनुष्य देह को विष्णु का अधिष्ठान कहा है।[44]

बिन्दु से बैन्दव चक्र (अपरबिन्दु) उत्पन्न होता है और वही परमात्मा, महाबिंदु अथवा सदाशिव है। यह बिन्दु पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी, इन तीन मातृकाओं (इन मातृकाओं का विवेचन आगे किया जायेगा) की समष्टि अथवा तुरीय बिंदु है।[45]

जैसा कि पहले कहा गया है, मूलतः नाद और बिन्दु में कोई अन्तर नहीं है, केवल स्थूल अन्तर है। तांत्रिकों ने नाद से बिंदु की उत्पत्ति मानी है और बिंदु का स्थान सहस्रार माना है। लय योग साधना का लक्ष्य है, "बिन्दु" अथवा नाद स्वरूपा कुण्डलिनी का उसमें लय कर देना।[46] नाद रूपा कुंडलिनी मूलाधार में रहती है तो बिंदु रूपी शब्द-ब्रह्म, सहस्रार में रहता है। ये दोनों क्रमशः शक्ति और शिव कहे गए हैं। इन दोनों का मिलन कराना ही तांत्रिक साधक का ध्येय है।

मानव शरीर में बिन्दु का स्थान सहस्रार कहा जाता है, अतः साधक को बिन्दु का साक्षात्कार, भ्रूमध्य के इस ऊर्ध्व देश में होता है। इस बिंदु रूपिणी ज्योति में समस्त विश्व अभेद रूप से स्थित है, और बिंदु-सिद्धि के अनंतर योगी को त्रिकाल दर्शन हो जाता है,[47] ऐसे वर्णन शास्त्रों में मिलते हैं।

वस्तुतः नाद मूल रूप में एक होने पर भी औपाधिक सम्बन्ध के कारण उसके विभिन्न स्तर दृष्टिगत होते हैं। स्वच्छन्द तंत्र में नाद के 8 प्रकार वर्णित हैं, यथा, घोष, राव, स्वन, शब्द, स्फोट, ध्वनि, झंकार और ध्वंकृत, नवम महाशब्द इन सब में व्याप्त रहता है।[48] आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्व. तंत्र की टीका में नाद के उक्त आठों भेदों की व्याख्या निम्न प्रकार से की है;[49]

"श्रवणं गुलिसंयोगाद्यः शब्दः संप्रवर्तते।
दीप्तवह्निस्वनाभासः स शब्दो घोष उच्यते।
तदंतनुभवो यस्य ईषन्भर्मविसर्पिज।
भिन्नकांस्यनिभो रूक्षः स रावः स्यातंदतगः।
ततो वंशध्वनिष्स्यो निर्वाते सौम्यवषवत्।
स नादः स्वन इतयुक्तस्तत्वरः कथितो ह्यलौ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थः स तु वे शब्दः सर्वशब्दमवारणिः।
आत्मज्ञानं रावयन्नादः रवो यथा प्रेमरीरवः।
वाक्यस्य स्फुटतां धेत् वर्णभेदावभासकः।
स्फोट इत्युदितो नादः पंचमः साश्तृमिस्ततः।
ततो तितानधर्मित्वान्नादः श्रोतुसुखावहः।
विपंच्या पंचमी तंत्रीं हत्वा तीव्रप्रयत्नतः।
यथा व्यज्यत आकाशे स षष्ठो ध्वनिसंज्ञितः।
सर्वतंत्रीसमाघाता द्वीणायामेव साधु यः।
मृदुस्तब्धं निनदति झंकारः सप्तमस्त्वसो।
घंषनिनादानुकृति कदाचिद्व्यज्यते न्यथा।
तुंगघोष्यध्वनिनिमः सौष्टमो ध्वंकृतः स्मृतः।"

अर्थात् कान में अंगुली डालने से जो शब्द श्रुत होता है तथा जो जलती हुई अग्नि सदृश होता है वह 'घोष' कहा जाता है। उस घोष के अन्त में जो शब्द सुनाई देता है, जो फूटे कांसे के शब्द तुल्य रूक्ष होता है, उसे 'राव' कहते हैं और बांस की ध्वनि तुल्य नाद को 'स्वन' कहा जाता है। चतुर्थ प्रकार का शब्द वह है, जो समस्त शब्दों का अरणिस्वरूप (प्रकाशक) है, इसे 'शब्द' कहते हैं। पंचम नाद है 'स्फोट', जिसके द्वारा वाक्य, पद और वर्ण अपने भिन्न-भिन्न रूप में स्फुट प्रतीत होते हैं। नाद का षष्ठ प्रकार, जोकि श्रवण-सुखद होता है, वह वीणा की पंचम स्वर की तार को ज़ोर से बजाने से जो नाद उत्पन्न होता है, उसके सदृश होता है उसी का नाम 'ध्वनि' है। वीणा की सभी तारों पर एक साथ आघात करने पर जो नाद अभिव्यक्त होता है, उसे 'झंकार' कहते हैं। शब्द का आठवां प्रकार है 'ध्वंकृत', जो कभी-कभी घंटे के निनाद-सदृश होता है। अन्यथा सामान्यतः ध्वनि प्रचण्ड घोष अथवा ऊंचे-तीख़े आवाज के समान होती है, उसे 'ध्वंकृत' नाद कहते हैं।

इस प्रकार, तंत्रों में नाद तत्त्व के विवेचन के अतर्गत, संगीत-शास्त्र का विस्तृत एवं सूक्ष्म वर्णन मिलता है।

शास्त्रों में जिसे 'ओंकार' अथवा 'प्रणव' कहा गया है, वही उपाधि रहित शब्द तत्त्व है, जिसे वैयाकरणों एवं किन्हीं साधक संप्रदायों ने 'स्फोट' भी कहा है, यही उपाधि रहित शब्द तत्त्व, ब्रह्म का वाचक है। शास्त्रकारों ने वाचक स्फोट शब्द का 'ब्रह्म' के रूप में तथा वाच्य सत्ता का 'परब्रह्म' के रूप में वर्णन किया है अर्थात् ब्रह्म ही ब्रह्म का प्रकाशक है। शास्त्रों में कहा गया है, 'शब्दब्रह्मणि निष्णातः परंब्रह्माधिगच्छति' अर्थात् शब्दब्रह्म में निष्णात होने पर परब्रह्म की उपलब्धि होती है। शब्दातीत परम पद की प्राप्ति शब्द का आश्रय ग्रहण कर ही सम्भव है। विश्व की रचना शब्द से ही हुई है और वह उसी में विधृत है। शब्द ही सृष्टि का मूल है, अतः यदि सृष्टि से ऊपर उठना हो तो शब्द ही एकमात्र अवलम्ब है, इसीलिये साधकगण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परब्रह्म की उपलब्धि हेतु नादानुसंधान का आश्रय लेते हैं। यह शब्द मूलाधार (पिंडस्थ नाद का उत्पत्तिस्थान) से उठता है और सहस्रारस्थ नाद (बिंदु) में जाकर लीन हो जाता है, इस प्रकार नाद के बिंदु में समा जाने पर साधक को निज चिन्मय आत्मा का ज्ञान एवं अनुभूति हो जाती है।[50]

तंत्र-दर्शन में नाद-बिन्दु योग की चर्चा मन्त्रयोग के अंतर्गत भी मिलती है। तंत्र-शास्त्र की सर्व प्रमुख विशेषता, उसका मंत्र-पक्ष है। तंत्र-दर्शन में शक्ति का व्यक्त रूप नाद बिन्दु के नाम से अभिहित है। वैष्णव-दर्शन का सगुण ब्रह्म, मंत्र क्षेत्र में 'नाद' कहा जाता है।[51] जिस प्रकार सगुण ब्रह्म का विकास शिव और शक्ति के संयोग से होता है, उसी प्रकार यह नाद तत्त्व भी क्रियाशक्ति रूप परबिंदु एवं परनाद रूपी ब्रह्म से संभूत होता है। शिव और शक्ति में नादोदय (उन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध, जो कि 'नाद' कहा जाता है)[52] उस समय होता है, जब उनमें 'बहुस्यां प्रजायेय' अर्थात् विकास की चेतना जागृत होती है, इसीलिए नाद (बिंदु के नाद से) क्रिया रूप माना गया है।

मंत्रयोग का अर्थ है, मंत्र के आश्रय से तुच्छ सांसारिक विषयों में मन की विशुद्ध परम आत्मा में, विलयन हेतु की जाने वाली योग-रूप-साधना। किसी भी नाद रूप बीजमंत्र के चेतन होने पर अर्थात् बीजमंत्र के अर्थ का भावन द्वारा फलतः उसकी आत्मानुभूति हो जाने पर,[53] जीव सत्वपथ में ऊर्ध्वगमन कर पाता है और अंत में शब्द से अतीत, अनिर्वचनीय परमानन्द रूप आत्म तत्त्व अथवा परमब्रह्म तत्त्व को पा लेता है। इस प्रकार तंत्रों की पारिभाषिक शब्दावली में 'वैखरी' तथा 'मध्यमा' वाक् (शब्द की अवस्थाएँ) को पार करते हुये 'पश्यन्ती' एवं 'परावाक्'[54] की सिद्धि प्राप्त करना ही मंत्रयोग का परम उद्देश्य है।

मूलाधार से निरन्तर शब्दस्रोत ऊपर की ओर उठ रहा है। यही शब्द समस्त जगत् के केंद्र में नित्य विद्यमान है। बहिर्मुखी जीव इसे सुन नहीं पाता। साधक (मूल नाद की अनुभूति पाने का परमाभिलाषी, साधना-पथ पर आरूढ़, अंतर्मुखी जीव) बीजमंत्र के जप अर्थात् नादानुसंधान द्वारा समस्त विश्व में अनाहत भाव से व्याप्त उक्त मूल शब्द को सुनने का अभ्यास करता है। सहस्रार के केंद्र-बिन्दु स्थान में प्राण के प्रवेश करने पर साधक को इष्ट मंत्र अथवा इष्ट नाद की सिद्धि मिल जाती है।[55]

मंत्र शास्त्र में कहा गया है कि सभी मंत्रों में परम मंत्र प्रणव अथवा ऊं कार (जो कि परमनाद अथवा मूल नाद है) मंत्र शास्त्र का मंत्र-चैतन्य वस्तुतः इस परम नाद तत्त्व का ही आविर्भाव है।[56]

मंत्र योग का स्वरूप योगशिखोपनिषत् में इस प्रकार दिया गया है;

"हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः॥130॥
हंसह सोतिमंत्रोयय सर्वजीवश्चि-जजप्यते।
गुरुवाक्यात्सुषुम्नायां विपरीतो भावेज्जपः॥131॥
सोहं सोहमिति अः स्यान्मंत्रयोगः स उच्यते।"[57]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् जब मनुष्य श्वास लेता है तो साँस के बाहर जाते समय सकार की ध्वनि होती है और अंदर जाते समय हकार की ध्वनि होती है। ये दोनों ध्वनियाँ मिलकर 'हंस' (हं + स) मंत्र हो जाती हैं। इस मंत्र का जाप प्रत्येक श्वासधारी मनुष्य स्वाभविक प्रक्रिया द्वारा करता ही रहता है, किंतु सद्‌गुरु के आदेश से साधक-शिष्य उक्त 'हंसमंत्र' के विपरीत रूप (सो हं) का जाप करता है। इसका विपरीत रूप है 'सो हं।' यह 'सोऽहं' जाप ही 'मंत्रयोग' है।

यह सोऽ हं मंत्र ही ऊंकार, प्रणव, परमबीज अथवा परम नाद है। संतों ने भी' सोऽहं मंत्र का इस रूप में वर्णन किया है।

मंत्रयोग का अजपाजाप से घनिष्ठ सम्बन्ध है। मंत्रयोग का 'सोऽहं' मंत्र ही 'हंसयोग' अथवा 'अजपाजाप' का मूलमंत्र है। जीव अज्ञानवश इस 'हंसमंत्र' के महत्त्व को नहीं समझता। जब हंसमंत्र के ज्ञान से उसका अज्ञान नष्ट हो जाता है, तब वह इस स्वाभाविक प्रक्रिया को मंत्र रूप में ग्रहण कर लेता है और तभी इस योग मार्ग का नाम 'अजपाजाप' हो जाता है।[58]

योगमार्तण्ड में अजपा गायत्री को मोक्षप्रदायिनी कहा गया है। इसके संकल्प मात्र से मनुष्य पाप से निवृत्त हो जाता है, अतः इसके सदृश न कोई विद्या हो सकती है, न कोई जप और न कोई पुण्य ही।[59]

संत काव्य में भी अजपाजाप को तांत्रिक दर्शन की भाँति बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। अजपाजाप का वर्णन संतों से पूर्व तंत्रों और उपनिषदों में भी खूब मिलता है। अजपाजाप का स्वरूप ब्रह्मविद्योपनिषत् में श्लोक संख्या 78-79-80, योगचूड़ामण्योपनिषत् में श्लो. सं. 31, 32, 33, 34 तथा हंसोपनिषत् में 16, 14, 15 आदि में तथा उपनिषदों में अन्य अनेक स्थलों पर मिलता है।

संतों की निर्गुण ब्रह्म की उपासना, उपासना मार्ग में बाह्याडम्बर के प्रतीक, साधन-मात्र (मंदिर, मस्जिद, धूप, दीप, नैवेद्य, तीर्थ, व्रत आदि) के बहिष्कार की पृष्ठभूमि पर आधारित है, अतः संत कवियों ने नाद बिन्दु योग, मंत्र योग तथा शब्द सुरति योग आदि साधनाओं की भाँति, अजपाजाप को भी अपने सिद्धान्तों से मेल खाने के कारण बड़े चाव से अपनाया, उन्होंने न केवल इस भक्ति पथ का तल्लीनता से वर्णन ही किया, अपितु जन, मानस को सच्चे भक्तिमार्ग की ओर प्रेरित करने के उद्देश्य से उस पर खूब बल भी दिया (इस विषय पर अधिक प्रकाश आगे डाला जाएगा)।

प्रकृत शब्द ही सृष्टि का मूल उपादान है, अतः अजपाजाप-साधन में भी मनुष्य के श्वास-प्रश्वास के द्वारा सहजोत्पन्न शब्द अथवा आत्ममंत्र को ही बीजमंत्र के रूप में ग्रहण किया गया है और इस प्रकार यहाँ शब्द के माध्यम से ही शब्दातीत परब्रह्मपद के अर्जन का आदेश है।[60]

अजपा आत्ममंत्र है। अजपामंत्र का "सः" अंश प्राण रूप में एवं 'हं' अंश अपान रूप में हमारे शरीर में ही निहित रहता है।[61] इस प्रकार जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में जीव ब्रह्म से अभिन्न है।[62] अजपा इन तीनों अवस्थाओं एवं जन्म से मृत्यु पर्यन्त (प्रथम श्वास से लेकर अंतिम श्वास तक) जीव का ब्रह्म से अभेद एवं अभिन्न सम्बन्ध सूचित करता रहता है। जीव बहिर्मुखी वृत्ति के कारण इस सम्बन्ध को समझ नहीं पाता, किंतु अजपाजाप का साधक अजपा गायत्री अथवा हंसमंत्र द्वारा कुंडलिनी शक्ति को जागृत कर बड़ी सरलता से इड़ा पिंगला में प्रवाहित होने वाले वायु को ब्रह्ममार्ग-सुषुम्ना में प्रविष्ट करने में सफल हो जाता है, और परम आत्म तत्त्व को प्राप्त कर लेता है।

तंत्रों में अजपामंत्र के ऋषि, ब्रह्मा (शव्द तन्मात्र), छंद-गायत्री, देवता-आत्मा, शक्ति-स और बीज-ह कहे गये हैं।

जप मुख्यतः दो प्रकार का है, बाह्य जप एवं आन्तर जप।

बाह्य जप, जप की प्रारंभिक क्रिया होने के कारण जप की स्थूल अवस्था है। यह वैखरी जप है। कण्ठ द्वारा मुखरित (किसी भी बीजमंत्र का उच्चार) जप ही वैखरी जप का स्थूल लक्षण है। वैखरी जप के 3, अवांतर भेद हैं; वाचिक, उपांशु तथा मानसिक।[63]

जब मंत्र का स्पष्ट उच्चारण सुनाई दे तो 'वाचिक' जप कहलाता है। 'उपांशु' जप में होंठ ही धीरे-धीरे हिलते हैं, पास बैठा व्यक्ति भी (बीजमंत्र का) जाप नहीं सुन पाता तथा मानसिक जप में मंत्र के पदव अक्षरों की जपक्रिया अंतः मन द्वारा की जाती है, न होंठ हिलते हैं और न जिह्वा।[64]

वैखरी अथवा बाह्य जप की उक्त तीनों अवस्थाओं में साधक के कर्तृत्वाभिमान अर्थात् मैं जप कर रहा हूँ, इस भावना का पूर्णतः क्षय नहीं हो पाता। मानसिक जप में भी यह भाव सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है। मानसिक ज्प के पश्चात् 'आन्तर जप' की अवस्था का उदय होता है।

इस दशा में साधक का कण्ठावरोध हो जाता है। जप क्रिया में निरत सब नाड़ियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं। जप स्वयमेव निष्प्रयास भीतर चलता रहता है। इसे 'जप होना' (जप करना नहीं) अथवा 'स्वभाव का जप' भी कहते हैं।[65]

आन्तर जप की भ. तीन अवस्थायें हैं। प्रथम अवस्था में जप हृदय में होता है, द्वितीयावस्था में नाभिस्थान में तथा अंतिम अवस्था में मूलाधार में होता है।[66]

हृदय जप (मध्यमा मार्ग में प्रवेश) में जप क्रिया निष्प्रयास होने लगती है। इसी अवस्था में साधक अंतर्मुखी होता है और उसे नाद श्रुत होता है। बाह्य जप में साधक का मन विकल्प शून्य नहीं होता। मानसिक जप की अवस्था तक भी उसमें अंतर्मुखता नहीं आ पाती, अतः उसे नाद श्रुति नहीं होती, धीरे-धीरे आन्तर जप में उसमें अन्तर्मुखता की मात्रा बढ़ती जाती है। जप क्रिया का हृदय में होना तथा तदनंतर नाभि एवं मूलाधार तक पहुँचना, आदि प्रतिक्रियाओं से साधक में अंतर्मुखी वृत्ति की उत्तरोत्तर वर्द्धमान तथा गहनतर मात्रा का संकेत मिलता है।

सुधिजन इस तथ्य से भलीभाँति अवगत ही हैं कि पूर्ण अंतर्मुखता अथवा एकाग्रता हुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिना नाद श्रुति नहीं हो सकती, अतः नाद के उत्पत्ति स्थान मूलाधार में 'जप होने' की क्रिया निष्पन्न होने पर ही साधक और जपसिद्धि मिलती है।

इस प्रकार साधन-क्रम में शब्द की गति सृष्टि-क्रम से विपरीत है, अर्थात् जहाँ सृष्टिक्रम में शब्द की गति परावाक् से वैखरीवाक् की ओर रहती है, वहाँ साधन पथ पर अग्रसर वाग्योग के साधक को क्रमशः वैखरीवाक् से परावाक् की ओर जाना होता है।

आगम शास्त्र में वाक् चार प्रकार की कही गई है—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। ऋग्वेद में इस वाक्चतुष्टय के सम्बन्ध में कहा गया है—

"चत्वारि वाक् परिमिता पदानि, तानि विदुर्ब्राह्मण ये मनीषिणः।

गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति, तुरीयं वाचौ मनुष्या वदन्ति।"[67]

अर्थात् वाक् चार भागों में विभक्त है। उसे केवल मनीषी (ब्रह्मतत्त्व के चिन्तक) ब्राह्मण (ब्रह्म के गुणों से युक्त पुरुष) ही जानते हैं। इसके तीन रूप गुह्य हैं। यह चतुर्थ प्रकार ही है, जिसका मनुष्य उच्चार करते हैं, एवं संगीतज्ञ गायन में जिसका उपयोग करते हैं।

"हम लोग जिस वाक् का उच्चारण करते हैं, वह स्पन्दन-रूपा है। इसके तरंगवत् उठने वाले विविध विचित्र स्पन्दनों का अवश्य ही कोई आधार है और वह आधार है ब्रह्माकाश का ज्ञान रूप, तप रूप मूल स्पन्द! यह मूल स्पन्द नाद (अनाहत नाद) अथवा ध्वनि के रूप में सृष्टि में अपना स्वरूप अभिव्यक्त कर रहा है किंतु यह ध्वनि सामान्य ध्वनि नहीं है। 'तद् निष्णोः परमं पदम्' अर्थात् 'विष्णु का परमपद' (आत्मा का परम रूप) उस ध्वनि का पराभाव है।[68] यही परावाक् का स्वरूप है,जो कि विमर्श अथवा मातृका शक्ति भी कही जाती है।[69]

परावाक् परमेश्वर की परम शक्ति एवं उससे अभिन्न है। आगम शास्त्र में शब्द ब्रह्म अथवा नाद ब्रह्म 'परावाक्' के नाम से प्रसिद्ध है।[70] परावाक् की भूमिका में शब्दातीत चैतन्य अथवा अक्षर ब्रह्म में समस्त वाक् लीन हो जाती है। इसके पश्चात् शब्द की गति नहीं है। यह चिन्मय और परम अव्यक्त है।[71] इसका स्थान मूलाधार है, और यही वाक् सृष्टि चक्र का परंनाद अथवा उपनिषद् का ब्रह्मप्रणवसंलग्न नाद है। इसकी अव्यक्तावस्था को स्पष्ट करने के लिए इसकी तूफान के आने से पूर्व के पूर्णतः शान्त समुद्र के साथ उपमा दी है, जिसमें तरंग, फेन अथवा बुलबुले आदि किसी भी प्रकार का परिवर्तन अथवा चांचल्य नहीं होता।[72]

शैव तन्त्रों में परावाक् को 'मयूराण्ड रसवत्' कहा है। जिस प्रकार मयूर के अंडे के रस में 'मयूर शावकों' के शरीर के विभिन्न अवयव तथा उसके विविध वर्ण अलक्षित अवस्था में रहते हैं, उसी प्रकार परावाक् वाक् की अव्यक्त एवं निःस्पंदावस्था है।[73]

उपर्युक्त उपमाओं का अर्थ यह है कि शब्द राशि-मात्र तथा वेदादि (ज्ञानमात्र) परावाक् के गर्भ में पद और वाक्य अथवा सरगम और गीतों की समष्टि रूप में प्रच्छन्नावस्था में पड़े हैं।

परावाक् वाक् सिद्धि, परम नाद तथा शब्द ब्रह्म है।[74] नादानुसंधान की अंतिम भूमिका यही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

सृष्टिक्रम में परावाक् अथवा परम नाद के पश्चात् पश्यन्ती अर्थात् अपर नाद का स्थान है। पश्यन्ती वाक् परावाकोत्पन्न सूक्ष्म व्यक्त नाद रूपिणी है। इसे योगी ही देख पाते हैं, भले ही वह भक्ति-पथ का योगी हो अथवा संगीतयोगी हो। इसका स्थान नाभि कहा जाता है, जोकि नाद मात्र का उत्पत्ति स्थान है, और निखिल ध्वनि-वैचित्र्य का मूल उत्स है।[75] यह ज्योतिषमयी कही जाती है और यही विशुद्ध अथवा निरतिशय नाद है। योगी की भांति संगीतज्ञ को इसका ज्ञान हो जाने पर नाद सिद्धि प्राप्त हो जाती है। पश्यन्ती के कुछ समय पूर्व तक 'कमली नहीं छोड़ता' वाली दशा कटती नहीं[76] अर्थात् बहिर्दृष्टि का पूर्णतः अन्त नहीं हो पाता। पश्यन्ती में शब्द और अर्थ में विल्कुल भेद नहीं रहता।[77] अर्थात् शब्द उच्चारित होते ही उसका वाच्य विषय अथवा अर्थ तत्क्षणात् निर्मित हो जाता है। यही शब्द तन्मात्र अथवा विशुद्ध विरतिशय शब्द है। यही विशुद्ध नाद ध्वनि है। बाइबल में ईश्वर ने कहा 'आलोक हो जाए' आलोक हो गया। दुर्वासा मुनि का शकुंतला को दिया गया शाप और उसका फलीभूत होना, इसी वाक् की सिद्धि का परिणाम है। राग मेघ मल्हार के गायन द्वारा वर्षा होने की बात यदि सच है तो वह भी इसी वाक् की सिद्धि कही जा सकती है। नाद ब्रह्म का साक्षात्कार इसी भूमिका में होता है।

इस प्रकार वस्तु को गढ़कर प्रस्तुत कर देने की शक्ति ही पश्यन्ती वाक् का लक्षण है।[78] यह दिव्य वाक् है, इसीलिए ज्योतिष्मती कही जाती है। प्राचीन काल में मंत्र-साक्षात्कार के फलस्वरूप जो ऋषित्वलाभ, होता था, वह इस पश्यन्ती भूमि की ही सिद्धि है।[79]

अंतर्मुखता से ही वाक् सिद्धि मिलती है, इस दृष्टि से मध्यमा वाक् का, साधना के क्रमानुसार बहुत महत्त्व है, क्योंकि इसी भूमिका में साधक अंतर्मुखता की ओर अग्रसर होता है। इसका स्थान भी हृदय कहा गया है। मध्यमा शब्द का अर्थ है, दो प्रान्तों की मध्यवर्तिनी, मध्यमा वाक् के एक प्रांत में दिव्य पश्यन्ती वाक् तथा अपर प्रांत में पाशव वैखरी (बहिर्मुखी) वाक् है। इन दोनों के बीच संयोजक सेतु स्वरूप मध्यमा वाक् का स्थान है। मध्यवर्तिनी होने के कारण यह वाक् पश्यन्ती की अपेक्षा अधिक व्यक्त तथा वैखरी की अपेक्षा अव्यक्त है। मध्यमा को मंत्रमयी कहा जाता है, क्योंकि मंत्र रूप में ही यह आत्म-प्रकाश पाती है अर्थात् इस वाक् की साधना में ही सिद्धि मिलने पर अनाहत नाद श्रुत होता है।[80]

व्यक्तता की दृष्टि से वाक् चतुष्ट्य में वैखरी वाक् का स्थान प्रथम है, जबकि सृष्टि क्रम में इसका स्थान अंतिम है। इसे शब्द का निम्नतम स्तर तथा 'विश्व विग्रहा' कहा है, क्योंकि इस दशा में मनुष्य बहिर्मुख रहता है। इसका मन विकल्प शून्य नहीं हो पाता। इसका स्थान कण्ठ कहा गया है। जप पुरश्चरण में, लौकिक व्यवहार में तथा संगीत साधना में इसी वाक् का व्यवहार किया जाता है। मन की बहिर्मुखता के कारण वैखरी में चिद्भाव गुप्त एवं प्रच्छन्न रहता है।[81] अतः नाद-ब्रह्म के साक्षात्कार-हेतु साधक के लिये इस भूमि से ऊपर उठकर क्रमशः मध्यमा और पश्यन्ती के स्तर तक पहुँचना अनिवार्य है।

सृष्टि क्रम में उपर्युक्त वाक्चतुष्टय के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती जी द्वारा प्रस्तुत एक व्याख्या को यहां उद्धृत किया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"गंगा रूपी पवित्र शब्द की गोलोक-धाम में उत्पत्ति हुई, यह परावाक् का स्वरूप है। ब्रह्मा के कमण्डल में उसकी स्थिति, पश्यन्ती वाक् की प्रतीक-रूप है। हर जटा-जाल में अवगुण्ठन, मध्यमा वाक् का स्वरूप है तथा अंत में गोमुखी द्वार से उसका भूतल पर अवतरण, वैखरी वाक् का स्वरूप हुआ।"[82]

इस प्रकार तंत्रों में नाद बिन्दु योग, मंत्र योग, अजपाजाप, जप विज्ञान तथा वाग्योग आदि साधना-मार्गों द्वारा नाद ब्रह्म की उपासना की विस्तृत, सूक्ष्म एवं अनेकविध चर्चा मिलती है।

तांत्रिक दर्शन का मूल स्वर है, मूल नाद रूप परम ब्रह्म का संधान। अतः तांत्रिक ऋषियों ने नाद की प्रणतभाव से गद्‌गद एवं अभिभूत हो स्तुति की है। इस सम्बन्ध में "जपसूत्रकार' लिखते हैं;

"परव्योम अथवा परब्रह्माकाश में जो परावाक् रूप मूल स्पन्द है, वह तुम्हीं हो! अखिल रेतस् अर्थात् ओज एवं शक्ति भी तुम्हीं हो! वह परमदेवता सविता, जोकि वरेण्य मार्ग है, वह भी तुम्हीं हो! तुम्हीं सब प्राणों के मध्य में स्थित निगूढ़ होकर, उन सबमें मुख्य एवं भर्त्ता होकर स्थित हो! तुम्हीं समस्त रसों में रसयिता होकर विद्यमान हो। इस प्रकार सब किसी में अनुस्यूत अर्थात् प्रकट रूप में तुम्हीं ब्रह्म हो। हे नाद्! तुम मेरे प्रति प्रसन्न होवो।"[83]

प्रयोगसार तंत्र में कहा गया है—"हे देवि! अंतरात्मा नाद के रूप में ही प्रस्फुटित होती है, वही वायु (जीवों के प्राण वायु) से प्रेरित होकर अक्षरों (अथवा स्वरों) का रूप धारण करती है।"[84]

अन्तरात्मा की सच्ची पुकार क्या है? आनन्द! आनन्द क्या है? 'यो वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति।'[85]

ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना क्यों की? "बहुस्यां प्रजायेय।" अर्थात् इसी आनन्द की भावना से प्रेरित होकर!

ब्रहा को भी सृष्टि की रचना करने में आनन्द मिलता है, क्योंकि "भूमा" ही आनन्द है। सच्चे संगीतज्ञ की साधना का लक्ष्य क्या रहता है? सच्चा साहित्यकार, मूर्त्तिकार अथवा चित्रकार, सर्जन की क्रिया में प्रवृत्त क्यों होता है? इसी "भूमा" की भावना से अभिभूत होकर! इस सम्बन्ध में तुलसी की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं:—

"स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।"[86]

यह भूमा की भावना अथवा आनन्द ही ब्रह्म है, "आनन्दो ब्रह्मेति"[87] और नाद ही परमानन्द या परमरस एवं प्रकट ब्रह्म है, इसीलिए "जपसूत्रम्" के प्रणेता ने नाद तत्व को समस्त रसों में रसयिता होकर विद्यमान रहने वाला[88], साक्षात् ब्रह्म कहा है।[89]

विष्णु के नाभि-कमल में ब्रह्मा रहते हैं। ये ब्रह्मा कौन हैं? वे शब्द तन्मात्र अथवा ब्रह्म की शब्द-प्रवाह रूप में अभिव्यक्ति जिन्हें आधार और आश्रय करके रहती है, वह सर्व-व्यापी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मा अथवा विष्णु निखिल शक्तिव्यूह हैं। शब्दब्रह्म-रूप ब्रह्मा को विष्णु के नाभि कमल (नाभि-नादोत्पत्ति का मूल स्थान) में स्थान देने का व्यंग्यार्थ है कि विष्णु के नाभि-कमल के ऊपर स्थित शब्द ब्रह्म को सृष्टि का स्वामी किया गया है। शब्द का विशेष तत्व हम पीछे देख चुके हैं, इसीलिए ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता हैं। उनके ध्यान में निखिल वेद शब्द आविर्भूत होता है, उसी वेद शब्द (निरतिशय, विशुद्ध शब्द) से सृष्टि की रचना होती है। यह दृश्यमान जगत् उसी शब्द से उद्भूत होता है।[90] स्वामी प्रत्यागात्मानन्दजी द्वारा व्याख्यायित इस सांकेतिक विवरण (Symbolic Representation) से नाद की महान् शक्ति का संकेत ग्रहण किया जा सकता है।

"नाद" शब्द में 'नकार' 'प्राणबीज' है और 'दकार' 'अग्नि' का द्योतक है,[91] अर्थात् नाद की उत्पत्ति नाभिस्थान में प्राण, वायु एवं अग्नि के संयोग से उत्तेजना विशेष द्वारा हो सकती है। इस प्रसंग में ब्रह्मा एवं सरस्वती का वाहन 'हंस' का उदाहरण देते हुए स्वामी प्रत्यागात्मानन्दजी ने उसे शब्दब्रह्म अथवा नाद ब्रह्म रूप ब्रह्मा और सरस्वती की प्राणन क्रिया की शाब्दिक मूर्ति माना हैं।[92] अतः ब्रह्मा शब्द तन्मात्र अर्थात् निरतिशय नाद तत्व हैं। विशुद्ध शब्द-समष्टि ही ब्रह्मा का कलेवर है और वह जिसके ऊपर आश्रयण करके, जिसे बनाकर रहते हैं, वह नाभि-कमल (प्राण वायु का स्रोत) और हंस, स्पंदनात्मक परशब्द के प्रतीक हैं।[93]

तांत्रिकाचार्य सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर व्याप्त चैतन्य को शब्दब्रह्म की संज्ञा देते हैं,

"चैतन्य : सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे मतिः।"[94]

चैतन्यरूपा नादात्मिका शक्ति ही कुण्डलिनी रूपा होकर वाणी के रूप में अभिव्यक्त होती है। वही मूलाधार में परा, नाभि में पश्यन्ती, हृदय में मध्यमा और वागिन्द्रिय में वैखरी वाणी के रूप में प्रकाशित होती है। अकारादि सब वर्ण तथा वेदों का आदि बीज, प्रणव, उसी का स्वरूप है।[95]

इस प्रकार तांत्रिक दर्शन में नाद तत्व को सृष्टि का उपादान कारण स्वीकार कर, उसे सर्वोपरि स्थान दिया गया है।

इसके अतिरिक्त तांत्रिका-चार्यों ने नादबिन्दुयोग, मंत्रयोग, अजपाजाप आदि नाद-साधना के विविध प्रकारों का निरूपण कर, परब्रह्म की प्राप्ति में नाद की प्रकृष्टता को स्वीकार किया है, जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं।

तांत्रिक दर्शन का मूल मंत्र है, "शब्दब्रह्मणि निष्णातः परंब्रह्माधिगच्छति" अर्थात् शब्दब्रह्म में निष्णात व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। यों इस आद्य दर्शन में परमतत्व की प्राप्ति-हेतु नाद साधना के अवलम्बन एवं उसकी कठोर साधना द्वारा, अध्यात्म-पथ के पथिकों के प्रति शाश्वत एवं चिरन्तन संदेश प्रसारित हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ख) उपनिषदों में नाद-साधना

संगीत का अध्यात्म-विद्या से घनिष्ठतम सम्बन्ध है।[96] भक्ति सूत्र के प्रणेता भी नारद हैं तथा गान्धर्व वेद के प्रणेता भी नारद ही हैं। इसके अतिरिक्त वेद, उपनिषद्, तांत्रिक दर्शन आदि अध्यात्म ज्ञान के हमारे भारतीय-संस्कृति के आद्य ग्रंथों में नादानुसंधान का विस्तृत विवेचन मिलता है। शास्त्रों में शब्द, वाक्, नाद, अनाहत नाद, प्रणव, ओंकार, साम, उद्गीथ आदि विभिन्न शब्दों से संगीत के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक पक्ष की विशद व्याख्या तथा महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।

संतों के शब्द-सुरति योग का आधार उपनिषदों के प्रणवयोग, ऊँकार तथा अनाहत-नाद-सिद्धि आदि विषयों के विशिष्ट वर्णनों में खोजा जा सकता है। संतों का नाद-प्रेम उपनिषदों के नादानुसंधान की पृष्ठभूमि पर विकसित हुआ,[97] यह उपनिषदों में वर्णित नादानुसंधान विषयक स्थलों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है, अतः यहाँ संक्षेप में उपनिषदों में की गई नाद-चर्चा पर विचार किया जा रहा है।

उपनिषदों के प्रणवयोग अथवा नादानुसंधान का सारांश मुण्डकोपनिषद् के निम्न श्लोक में मिलता है;

"प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वैद्धव्यं शखत्तन्मयो भवेत्।"[98]

अर्थात् प्रणव धनुष है और आत्मा बाण है, ब्रह्म उसका लक्ष्य बतलाया गया है। उसे अप्रमत्त होकर ही बींधा जा सकता है। बाण से लक्ष्य को वेधकर उसी के साथ तन्मय हो जाए।

इस प्रकार यहाँ स्पष्ट रूप से ब्रह्म (रूपी लक्ष्य) की प्राप्ति के लिए प्रणव (रूपी धनुष) को साधन बनाया गया है, तभी आत्मा ब्रह्म में प्रविष्ट होकर उसके साथ उसी प्रकार एकाकार हो सकेगी, जिस प्रकार तीर अपने लक्ष्य के साथ लीन हो जाता है।

वेद, तंत्र शास्त्र आदि ग्रंथों की भाँति उपनिषदों में भी नाद की अपार महिमा गाई गई है।

वास्तव में नाद ही इस जगत् का आधार रूप है। नाद से ही इस जगत् का व्यवहार चलता है। शारीरिक सुख-दुख, हार्दिक कोमल अनुभूतियाँ, भावनाएँ तथा संवेदनाएँ, बौद्धिक ज्ञानविलास, विचाराभिव्यक्ति तथा आत्मानन्द आदि सभी बाह्य जगत् एवं अंतर्ज़गत् की स्थूल से लेकर सूक्ष्माति-सूक्ष्म विषयों की प्रेषणीयता वाणी द्वारा ही संभव है। यह वाणी स्वर एवं शब्द इन दो रूपों में अभिव्यक्ति पाती है तथा ये स्वर एवं शब्द नाद के अधीन हैं, इसीलिए समस्त जगत् को नादाधीन कहा गया है:—

"नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात् पदाद्वचः।
वचसो व्यवहारौ यं नादाधीनमिदं जगत्।"[99]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् नाद से वर्ण की, वर्ण से पद की और पद से वाणी की अभिव्यक्ति होती है। वाणी से ही यह व्यवहार चलता है, अतः सम्पूर्ण जगत् नादाधीन है।

ज्ञानमात्र शब्द से अनुस्यूत है, अतः शब्द अथवा नाद को ब्रह्म कहा गया है।[100]

नाद को सृष्टि का आदि कारण माना गया है—"वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे वाच इत। स सर्वममृतं यंच मर्त्यमिति श्रुतिः।"[101] अर्थात् वाणी से ही यह सारा विश्व उत्पन्न हुआ है। ये समस्त भुवन वाणी से ही उत्पन्न हुए हैं। इस अमर और मर्त्य संसार की जननी वाणी ही है।

अतः इस संसार को नाद या शब्द का परिणाम कहा गया है।[102]

नाद सर्वव्यापी है। 'शब्दगुणमाकाशं' इस उक्ति के अनुसार शब्द अथवा नाद आकाश का गुण है, अतः आकाश के समान समस्त जगत् में व्याप्त है। ऋग्वेद में नाद के सर्वव्यापकत्व के सम्बन्ध में कहा है;

"यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्।"[103]

अर्थात् वाक् (नाद) का प्रचार वहाँ तक है, जहाँ तक ब्रह्म व्यापक है।

अतः उपनिषदों में परतत्व में तन्मयता प्राप्त करने के लिये नादानुसंधान का मार्ग दर्शाया गया है।

पाशुपतब्रह्मोपनिषद् में कहा गया है, जो तू है सो ही मैं हूँ, सो ही तू है, इस प्रकार की अभेद भावना ही नादानुसंधान रूपी यज्ञ है।[104]

योग साधना में भी नाद को अत्यन्त महत्त्व मिला है। नाद की उत्पत्ति प्राणतत्व एवं अग्नि तत्व के संयोग से मानी गई है।[105] जबकि यौगिक क्रियाओं द्वारा शरीर में प्राण एवं अग्नि तत्व के यथेष्ट संचार द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को उद्बुद्ध किया जाता है तो सुषुम्ना का पथ खुल जाता है और योगी को भीतर से समुत्थित नाद कर्णगोचर होने लगता है, जिसे अनाहत नाद कहा ज़ाता है। अर्थात् जो नाद अनाहत भाव से समस्त विश्व में समष्टि रूप में व्याप्त है, उसी की जब व्यक्ति को व्यष्टि रूप में अनुभूति होती है, तब उसे नाद कहा जाता है। इस प्रकार नादानुसंधान ही योग साधना का मूल है। वराहोपनिषद् में कहा गया है कि जिसे योग साम्राज्य (योगसिद्धि) की इच्छा हो, उसे अन्य सभी प्रकार के चिंतन छोड़कर, सावधान चित्त से नाद का ही अनुसंधान करना चाहिए।[106]

योगशिखोपनिषत् में नादानुसंधान को सबसे बड़ी पूजा कहा है:—

"नास्ति नादात्परो मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परः।
नानुसंधे पराः पूजा नहि तृप्तः परं सुखम्।"[107]

अर्थात्, नाद से बड़ा कोई मंत्र नहीं है, अपनी आत्मा से बड़ा कोई देवता नहीं है, नादानुसंधान से बड़ी कोई पूजा नहीं है और तृप्ति से बड़ा कोई सुख नहीं है।

इस प्रकार उपनिषदों में नाद को भक्ति का सर्वोपरि अंग कहा गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत विद्या का लक्ष्य आत्मस्थित परतत्व की अनुभूति कराना है। छांदोग्योपनिषत्[108] में इस विषय में कहा है कि वीणा वादक वीणा द्वारा जिस विषय को गाता है, वह उस परम पुरुष का ही गायन है।

उपनिषद्-रचयिता ऋषियों ने स्पष्ट रूप से यह घोषणा की है कि प्रणव रूप हंस का अंतर्ध्यान किये बिना मोक्ष-प्राप्ति असम्भव है[109] तथा इस संसार से उद्धार करने वाला भी प्रणव ही है।[110] ऋषियों ने ऊँकार के द्वारा ही अंतरात्मा और परमात्मा के चिंतन का आदेश दिया है।[111]

ब्रह्मोपनिषत् में आत्मा-परमात्मा का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए उन्हें 'नादमय' कहा गया है:–

"शान्ताशान्तादिहीनात्मा नादान्तर्ज्योतिरूपकः।

S S S S

क्षराक्षरविहीनां यां नादान्तर्ज्योतिरेव सः।"[112]

अर्थात्, शांत, अशांत आदि से रहित स्वरूप वाला, नाद के भीतर का ज्योति रूप क्षर तथा अक्षर से भी जो पृथक् है, उसी नाद के भीतर की ज्योति आत्मा है।

"सर्वसंकल्परहितः सर्वनादमयः शिवः।

सर्ववर्जितचिन्मात्रः सर्वानन्दमयः परः।"[113]

अर्थात् परतत्व सर्वसंकल्पों से रहित, सर्वनादमय, शिव सभी से (गुणों, उपाधि आदि से) रहित, मात्र चैतन्य रूप और सर्व आनन्दमय है।

छांदोग्योपनिषत् में उद्गीथ (प्रणव, ऊँ) का परम रस के रूप में वर्णन किया गया है,

"एषां भूतानां पृथिवी रसः। पृथिव्या आपो रसः।

अपाम् औषधयो रसः। औषधीनां पुरुषो रसः।

पुरुषस्य वाग्रसः। वाचः ऋग्रसः। ऋचः साम रसः।

साम्नः उद्गीथो रसः। स एष रसानां रसतमः परमः पराहयोष्टमोयदुद्गीथः।"[114]

अर्थात् पृथ्वी का रस (कारण) जल है, जल का रस औषधियाँ (अन्न) हैं। औषधियों का रस इस मनुष्य का शरीर है। मनुष्य का रस (सार) वाणी है। वाणी का सार ऋचा है। ऋचा का सार साम है। साम का सार उद्गीथ (ऊँ कार, प्रणव) है। यह ऊँकार जो पृथ्वी आदि रसों की गणना में आठवाँ है, वह 'उद्गीथ' सब रसों का सार रूप परतत्व का प्रतीक होने के कारण परम रस है एवं परमात्मा के समान ही उपासना करने योग्य है।

कठोपनिषत् में ऊँ (प्रणव) को साक्षात् परब्रह्म कहा है तथा जो इस अक्षर को जान लेता है वह अपनी अभीप्सित वस्तु पा लेता है।[115]

पूर्ण ओंकार का उपासक साम श्रुतियों द्वारा ब्रह्म लोक को प्राप्त कर लेता है।[116]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार उपनिषदों में परात्पर ब्रह्म की प्राप्ति के लिए नाद का दृढ़ता से अवलम्ब ग्रहण करने का निर्देश है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में ओम् को ब्रह्म कहा है तथा उसी के भजन-चिंतन से परमात्मा की प्राप्ति बतलाई गई है।[117]

छान्दोग्योपनिषत् में कहा गया है कि उद्‌गीथ रूप 'ॐ' अक्षर को समझकर, जो इसकी उपासना करता है, वह यज्ञादि में उसका उच्च स्वर से गान करता है।[118]

इस प्रकार उपनिषदों में नाद-महिमा भरी पड़ी है। नादबिंदूपनिषत्, मण्डलब्राह्मणोपनिषत् योगशिखोपनिषत् तथा अमृतनादोपनिषत् आदि उपनिषदों में नादानुसंधान की विधि का भी स्थान-स्थान पर निर्देश किया गया है।

साधना द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने से साधक को ब्रह्मरंध्र में नाद श्रुत होता है।[119]

मण्डलब्राह्मणोपनिषत् में नादश्रवण की विधि का निम्न प्रकार से उल्लेख मिलता है। प्राण तथा अपान वायु पर संयम करके, कुंभक धारण कर, नाक के अग्र भाग पर दृष्टि रखकर दृढ़ भावना से दोनों हाथों की अंगुलियों द्वारा षण्मुखी मुद्रा धारण करें।[120]

नादबिन्दूपनिषत् में कहा गया है कि जिस प्रकार बादलों के हट जाने पर सूर्य उदय होता है, उसी प्रकार आत्म-ज्ञान के फलस्वरूप प्रारब्ध के समाप्त हो जाने पर तथा आत्मा और परमात्मा की एकता का चिन्तन करने पर कल्याणकारी, ज्योतिस्वरूप परतत्व का नादरूप में साक्षात्कार होता है।[121]

इसी उपनिषद् में योगी को सिद्धासन से बैठकर, वैष्णवी मुद्रा धारण कर, अनाहत ध्वनि को दाएँ कान में सुनने का अभ्यास करने का निर्देश किया गया है, जिससे बाह्य ध्वनियाँ लुप्त हो जाएँगी, प्रणव नाद (मूलनाद) श्रुत होगा तथा साधक को आत्मसाक्षात्कार की फल प्राप्ति होगी,[122] ऐसा कहा गया है।

योगचूड़ामणि उपनिषद् में नाड़ी-शोधन से नाद श्रुत होने का उल्लेख मिलता है।[123]

वास्तव में मन को सभी विषयों से निवृत्त कर, दोनों कर्ण-कुहरों को अंगुलियों से बंद करके, चित्त-वृत्ति को नाद-श्रवण की ओर केन्द्रित कर लेने पर प्रत्येक सामान्य व्यक्ति नाद-श्रवण का लाभ प्राप्त कर सकता है।[124] मुख्य बात है चित्त की एकाग्रता। इसीलिए हमारे ऋषि-मुनियों ने शास्त्रों में नाद-श्रवण हेतु नाड़ी शोधन, कुण्डली शक्ति के उद्‌बोधन द्वारा षट्‌चक्र बेधकर ब्रह्मरंध्र में लौ लगाने का अभ्यास, सिद्धासन से बैठकर, वैष्णवी मुद्रा धारण कर नाद को सुनने का प्रयास आदि चित्त को एकाग्र करने के उपर्युक्त अनेक उपायों का निर्देश किया है।

योग साधना में नाद के दो रूप माने गए हैं, उपाय स्वरूप नाद तथा उपेय स्वरूप नाद। नाद के इन दोनों प्रकारों का हमारे उपनिषदकार ऋषियों ने भी वर्णन किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपाय स्वरूप नाद की अनुभूति साधक को साधना की अवस्था में होती है और उपेय-स्वरूप नाद (ओंकार) की अनुभूति, सिद्धि की अवस्था में एवं उसके पश्चात् होती है।[125]

नाद के इन दोनों प्रकारों का स्वरूप उपनिषदों में मिलता है। उपाय-स्वरूप नाद का स्वरूप नादविन्दूपनिषत् में निम्न प्रकार से दिया गया है।

"सिद्धासने स्थितो योगी मुद्रां संधाय वैष्णवीम्।
शृणुया क्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं सदा।
श्रूयते प्रथमाभ्यासे नादो नानाविधौ महान्।
वर्धमानस्तथाभ्यासे श्रूयते सूक्ष्मसूक्ष्मतः।
आदौ जलधि जीमूतभेरीनिर्झर संभवः।
मध्य मर्दल शब्दाभो घंटा काहलजस्तथा।
अंते तु किंकिणीवंशवीणा भ्रमरनिस्वनः।
इति नानाविधा नादाः श्रूयन्ते सूक्ष्मसूक्ष्मतः।
महति श्रूयमाणे तु महामर्यादिकध्वनौ,
तत्र सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं नादमेव परामृशेत्।
घनमुत्सृज्य वा सूक्ष्म सूक्ष्ममुत्सृज्य वा घनै,
रममाणमपि क्षिप्तं मनौ नान्यत्र चालयेत्।
यत्र कुत्रादि वा नादे लगति प्रथमं मनः,
तत्र-तत्र स्थिरी भूत्वा तन सार्ध विलीयते।
विस्मृत्य सकलं वाह्यं नादं दुग्धाम्बुवन्मनः,
एकीभूयाय सहसा चिदाकाशेविलीयते।
उदासीनस्ततौ भूत्वा सदाभ्यासेन संयमी,
उन्मनीकारकं सद्यौ नादमेंवावधारयेत्।
सर्व चिन्तां समुत्सृज्य सर्वचेष्टाविवर्जितः,
नादमेवानुसंध्यान्नादे चित्तं विलीयते।
मकरंदं पिबन्भृंगो गंधान् नापेक्षते यथा,
नादासक्तं सदा चित्तं विषयं न हि कांक्षते।
बद्धः सुनादगंधेन सद्यः सत्ययक्तचापलम्,
नादग्रहणतश्चित्तमन्तरंङ्ग भुजंगमम्।
विस्मृत्य विश्वमेकाग्रं कुत्रचिन्नहि धावति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनान्मत्तगजेंद्रस्य विषयोपानचारिणः।
नियामनसमर्थो यं निनादौ निशितांकुशः।"

(श्लो. सं. 32 को छोड़कर, 31 से लेकर श्लो. सं. 45 तक)

ना. विं. उप. श्लो. सं. 31, 32-33-34-35-36-37-38-39-40-41-42-43-44-45।

अर्थात् योगी को सिद्धासन से बैठकर, वैष्णवी मुद्रा धारण कर, अनाहत ध्वनि को दाएँ कान में सुनना चाहिए। इस अभ्यास की प्रारंभिक अवस्था में यह नाद कई प्रकार का होता है और बड़ी जोर से सुनाई पड़ता है, परंतु अभ्यास अधिक हो जाने पर वह नाद धीमा होता जाता है। वास्तव में यह नाद समुद्र-गर्जन, भेरी तथा निर्झर की ध्वनि की भांति श्रुतिगोचर होता है। मध्य में मर्दल, घण्टा तथा काहल के शब्द की भांति सुनाई देती है, तया अन्त में किंकिणी, वंशी, वीणा और भ्रमर-गुंजार की भांति ध्वनित होती है। इस प्रकार वह ध्वनि मंद पड़ते-पड़ते कई प्रकार की श्रुति गोचर होती है। भेरी आदि की ध्वनि सुनाई देने पर उसमें धीमे से धीमे नाद का विचार करना चाहिए। साधक को चाहिए कि वह धीमे से घने और घने से धीमे नाद में ध्यान लगाए और मन को इधर उधर न भटकने दे। मन का स्वभाव है कि पहले धीमे या घने जिस भी नाद में वह रुचि लेने लगता है, उसमें स्थिर हो जाता है और उसी के साथ विलीन भी हो जाता है। जब मन समस्त सांसारिक प्रपंचों को भूल जाता है तो जिस तरह दूध में पानी मिल जाता है, उसी प्रकार उस नाद के साथ एक रूप होकर उसका चिदाकाश में लय हो जाता है। संयमी व्यक्ति को चाहिए कि जिस नाद में मन लगे उस नाद को सुनता रहे और उसी का चिंतन करता रहे। चूंकि नाद में चित्त विलीन हो जाता है, अतः समस्त चिन्ताओं एवं चेष्टाओं को त्यागकर नाद की ही खोज करे। जिस प्रकार भ्रमर फूलों का रस ग्रहण करते समय फूलों के गंध की अपेक्षा नहीं करता, उसी प्रकार नाद में रुचि लेने वाला चित्त, विषय वासना की दुर्गन्धि की इच्छा नहीं करता। जिस प्रकार सर्प नाद को सुनकर मस्त हो जाता है, उसी प्रकर चित्त उस नाद में आसक्त होकर सर्व प्रकार की चपलताएं त्याग देता है। विषय वासनाओं के वन में घूमने वाला मन रूपी मस्त गजेन्द्र, नाद के अभ्यास रूपी तेज़ अंकुश से ही नियंत्रण में आता है। यदि मन को हिरन और तरंग की संज्ञा दी जाए तो यह नाद उस हिरन को फँासने के लिए जाल का और तरंग को रोकने के लिए तट का काम देता है।[126]

इस प्रकार यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि मन को भौतिक तुच्छ इच्छाओं से पराङ्मुख कर, परब्रह्म के चिन्तन की ओर अग्रसर करना एवं उसी में उसे एकाकार करने में 'नाद' की क्षमता सर्वोपरि है। अतः साधक को अंदर से उठने वाले नाद को सुनने का अभ्यास डालना चाहिए। उपाय स्वरूप नाद की विशेषता है कि साधना एवं अभ्यास में प्रौढ़ता के साथ-साथ क्रमशः स्थूल से सूक्ष्मतर नाद श्रुति-गोचर होता है और चरमावस्था में यह नाद सूक्ष्मतर होते-होते किंकिणी, वशीं, वीणा तथा भ्रमर-निःस्वन की ध्वनि-सदृश सुनाई पड़ता है। साधना में प्रौढ़ता के अभाव में साधक का चित्त स्थूल और सूक्ष्म नाद में भटकता रहता है, जब मन नाद में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूध और पानी की तरह घुल मिल जाता है, तब मन चिदाकाश में विलीन हो जाता है। उस अवस्था में नादासक्त चित्त, विषय-वासनाओं में अभिरुचि की स्थिति से ऊपर उठ जाता है। इस प्रकार नाद मन को विषय-वासनाओं के पंक से निकालने में पूर्ण समर्थ है।

उपेय स्वरूप नाद को नाद बिन्दूपनिषत् में निम्न श्लोकों में स्पष्ट किया गया है;

"ब्रह्मप्रणव संलग्नो नादो ज्योतिर्मयात्मकः।
मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परम पदम्।
तावदाकाशसंकल्पो यावच्छब्दः प्रवर्तते।
सशब्दश्चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।
सदा नादानुसंधानात्संक्षीण वासना भवेत्।
निरंजनै विलीयते मने वायुर्न संशयः।
नादकोटिसहस्त्राणि बिंदुकोटिशतानि च।
सर्वे तत्र लयं याति ब्रह्मप्रवणनादकै,
सर्वावस्थाविनिर्मुक्तः सर्वचिंताविवर्जितः।
मृतवत्तिष्ठते योगी स मुक्तो नात्र संशयः।
शंखदुंदुभिनादं च न शृणोति कदाचन।।[127]

अर्थात् ब्रह्मप्रणव से संलग्न नाद ज्योतिर्मय होता है। उसमें मन लय हो जाता है। वही विष्णु का परम पद है। मन में आकाश का संकल्प तभी तक रहता है, जब तक कि शब्द उच्चरित एवं श्रुत होते रहते हैं। शब्द से परे शब्दातीत अवस्था में परब्रह्म की स्थिति है अर्थात् ब्रह्म के दो रूप हैं, शब्द ब्रह्म और परब्रह्म, अतः शब्दातीत अवस्था के अनंतर मन परब्रह्म की स्थिति पा लेता है। जब तक नाद उपाय स्वरूप नाद है, तभी तक मन का अस्तित्व है। नाद का अंत होने पर अथवा नाद के क्रमशः मंदतर होने पर मन की उन्मनी (अमन) अवस्था आती है और शब्दों के प्रयोग से श्रुत नाद, अक्षर ब्रह्म में लीन हो जाता है। जब नाद में शब्द (मंत्रजाप के) न दिखाई दें तभी यह समझना चाहिए कि यही परमपद है, जब नादानुसंधान से वासना क्षीण हो जाती है तो निश्चित रूप से मन और प्राण का निरंजन में विलय हो जाता है (उपेयस्वरूप)। हज़ारों नाद (उपायस्वरूप) और कोटिशत बिंदु ब्रह्म प्रणव नाद (उपेयस्वरूप) में लय को प्राप्त हो जाते हैं। सभी अवस्थाओं और चिंताओं से मुक्त वह सिद्धि प्राप्त योगी फिर मृतवत् रहकर अमरत्व को पा लेता है। (जीवन्मुक्ति रूप लेता है) और तब उसके सन्मुख शंख, दुंदुभि आदि (उपाय-स्वरूप) नाद सुनने का प्रश्न ही नहीं रहता।

ध्यानबिंदूपनिषत् में उपेयस्वरूप नाद के सम्बन्ध में कहा गया है कि मूलाधार चक्र से सुषुम्ना का ऊर्ध्वगामी स्वरूप पद्मतंतु सदृश है। उस सुषुम्ना नाड़ी रूपी वीणा-दण्ड में अमूर्त नाद (उपेयस्वरू नाद) रहता है। जब साधक को इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना और घंटिका इन चारों स्थानों से समुत्कथित नाद की कपाल कुहर में अनुभूति होती है तथा जिसकी ध्वनि शंख अथवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मयूर के रव की भाँति होती है, उस व्योमरंध्रगत नाद को सुन लेने पर साधक के समक्ष आकाश में स्थित सूर्य के समान आत्मा का प्रकाश प्रस्फुटित होता है। सुषुम्ना और ब्रह्मरंध्र में स्वात्मा के दर्शन होते हैं। और मन लय को प्राप्त हो जाता है, जो इस नाद, बिन्दु और माहेश्वर पद को जान लेता है, उसे कैवल्य पद की प्राप्ति हो जाती है।[128]

इस प्रकार उपायस्वरूप नाद तथा उपेयस्वरूप नाद में मुख्य अंतर यही है कि उपायस्वरूप नाद साधक को साधवावस्था में सुनाई पड़ता है। इसकी अनुभूति उसे सांसारिक विषयों से ऊपर उठाकर, उसकी चित्तवृत्ति को नाद में दूध और पानी की तरह पूर्णतः लीन करवा देती है, जब कि उपेयस्वरूप नाद की अनुभूति साधक को इससे भी ऊँची स्थिति तक उठा, नादसिद्धि प्रदान करती है, जिसमें उसे ज्योतिष्पुंज आत्मतत्त्व के दर्शन होते हैं। साधक मूलाधार से उत्पन्न होने वाले उस मूल नाद[129] को सुन पाता है, जिसमें सहस्रों कोटि के सुनाई पड़ने वाले इतर नाद (उपायस्वरूप) लय हो जाते हैं और उसे नादब्रह्म, शब्दब्रह्म अथवा परावाक् की स्थिति प्राप्त हो जाती है।

आध्यात्मिक क्षेत्र की भाँति संगीत विद्या में भी मूल नाद की साधना का बहुत महत्त्व है। ध्रुपद-गायन में नाभि से स्वरोच्चार की सिद्धि पा लेना गायक की साधना का चरम लक्ष्य रहता है, इसीलिए ध्रुपद शैली शास्त्रीय संगीत की सर्वाधिक मौलिक एवं सर्वोच्च स्तर की गायन शैली मानी गई है।[130] ख्याल गायकी में भी वे ही कलाकार उत्तम कोटि के माने जाते हैं जो ध्रुपद गायन में सिद्धहस्त होते हैं।

इस प्रकार हमारे ऋषि-मुनि तथा निर्गुण-संत-कवि नादानुसंधान की साधना द्वारा संगीत के मूल रूप के उपासक एवं अनुसंधाता रहे हैं।

जिस प्रकार नादानुसंधान द्वारा उपायस्वरूप नाद का साधक नाना ध्वनियों को ब्रह्मरंध्र में सुनता है, किन्तु मूलाधार-नाद के अधिष्ठान (परावाक् का स्थान) एवं नाभि से अंकुरित होने वाले (पश्यन्ती वाक् का उद्गम स्थान) मूल प्रणव-संलग्न ज्योतिर्मय नाद (शब्द ब्रह्म, नाद ब्रह्म) की अनुभूति उसे नहीं हो पाती। उसकी अनुभूति उसे 'पश्यन्ती' वाक् (उपेयस्वरूप नाद) की सिद्धि पर ही हो पाती है, उसी प्रकार मूलनाद के विज्ञान से शून्य ख्याल गायक रंजक आहत नाद से प्राप्त आनन्द में दूध-पानी की भाँति रम सकता है, किन्तु नाद ब्रह्म (उपेयस्वरूप-नाद) का साक्षात्कार उसे नहीं हो पाता, उसका बोध तो उसे ध्रुपद गायन का तत्वबोध होने पर ही हो पाएगा। ध्रुपद गायक का लक्ष्य भी नाद ब्रह्म की सिद्धि पाना होगा, तभी वह नाभिस्थान से स्वरोच्चार करते समय नाद ब्रह्म की अनुभूति कर सकेगा।

योगशिखोपनिषद् में परमनाद-शब्दब्रह्म अथवा नादब्रह्म का स्वरूप इस प्रकार दिया है;

"यन्नमस्य चिदाख्यातं यत्सिद्धिदीनां च कारणाम्।

येन विज्ञानमात्रेण जन्मबंधात्प्रमुच्यते।

अक्षरं परमौ नादः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।"[131]

अर्थात्, जिसका अनुभव पा योगी जिसे चित्त कहकर वर्णन करते हैं, जो सर्वसिद्धियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का मूल है तथा जिसके ज्ञानमात्र से ही जन्म बन्धन से मुक्ति मिल जाती है, वह अक्षर अथवा परमनाद 'शब्दब्रह्म' कहलाता है।

सो ध्रुपद गायक का लक्ष्य नाद ब्रह्म का साक्षात्कार होगा तो वह जन्म बन्धन से मुक्ति प्रदाता परमनाद नाद-ब्रह्म की अनुभूति पा सकेगा और संगीत विद्या को क्रियात्मक रूप से अध्यात्म विद्या का अंग सिद्ध कर सकेगा।

इस प्रकार संगीत के पक्ष में मूलाधार (परावाक् का स्थान) नाद का अधिष्ठान है, और नाभिस्थान (पश्यन्ती वाक् का स्थान) आहत नाद का उत्पत्ति स्थान एवं ध्रुपद गायन के मन्द्र षड्ज का उद्गम स्थान कहा जा सकता है। यहाँ से प्रकाशित होने वाले नाद (पश्यन्ती वाक्) का विबोध होने पर ही नादब्रह्म की सिद्धि प्राप्त होती है।[132] हृदय तथा कण्ठ (क्रमशः मध्यमा और वैखरी वाक् के स्थान) स्थान से ही अधिकतर ख्याल गायक गाते हैं।

हमारी उपर्युक्त चर्चा का निष्कर्ष यह है कि उपनिषदों में वर्णित उपायस्वरूप और उपेयस्वरूप नाद तथा दूसरी ओर शास्त्रीय संगीत के माध्यम आहत नाद में तुलना की दृष्टि से स्थूल अन्तर यही है कि नादानुसंधान तो उपायस्वरूप एवं उपेयस्वरूप नाद का अनुसंधाता योगी भी करता है, किन्तु वह आहत नाद का आश्रय नहीं लेता। जिस नाद का अनुसन्धान वह करता है (उपायस्वरूप एवं उपेयस्वरूप नाद) उसमें इंद्रिय-जन्य व्यापार का सर्वथा अभाव है, उसे समष्टि रूप में अनाहत नाद भी कहा जाता है (अर्थात् वाग्यंत्र के घर्षण के बिना उत्पन्न होने वाला नाद) जब कि शास्त्रीय संगीत का साधक अपनी साधना के लिए जिस नाद का अवलम्ब ग्रहण करता है, उसमें इंद्रिय-व्यापार अथवा वाग्यंत्र अभिघात अनिवार्य है, इसीलिए वह 'आहत' नाद कहलाता है। इसके अतिरिक्त इंद्रियजन्य व्यापार के अभाव के कारण, प्रथम नाद अव्यक्त नाद है, जबकि आहत नाद इंद्रियजन्य व्यापार की अनिवार्यता के कारण मुखर है, किन्तु मूल लक्ष्य अध्यात्म एवं संगीत, दोनों कोटि के साधकों का एक ही है—शब्दब्रह्म, नादब्रह्म अथवा परावाक् के माध्यम नाद की सिद्धि। उस के रूप अथवा प्रकार मात्र (अनाहत और आहत) में अंतर है।

यही वह विभेदक तत्व है, जिसके आधार पर हमारे ऋषि मुनियों को अध्यात्म तथा संगीत दो पृथक्-पृथक् शास्त्र बनाने की आवश्यकता पड़ी, अन्यथा मूलोद्देश्य उक्त दोनों शास्त्रों का एक ही है।

वास्तव में अध्यात्म विद्या और संगीत विद्या में परस्पर अंगांगी-भाव सम्बन्ध है। अंगी अध्यात्म-शास्त्र का, संगीत-शास्त्र घनिष्ठ अंग है। भारतीय संगीत, आध्यात्मिक-साधना का अभिन्न अंग है, यह निर्विवाद सत्य है, किन्तु दोनों कोटि की साधनाओं के इस घनिष्ठ सम्बन्ध को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करने की ओर अभी तक अध्यात्म और संगीत, उक्त कोटिद्वय के साधकों का ध्यान बहुत कम आकृष्ट हुआ है। इस प्रकार उपर्युक्त दोनों क्षेत्रों में यह विषय सामान्यः उपेक्षित ही बना रहा है। हमारे उपनिषद्कार ऋषि-मुनियों एवं (उपनिषदों से प्रभावित) संत कवियों ने क्रमशः उपनिषदों तथा अपने काव्य में नादानुसंधान के विवेचन द्वारा, अध्यात्म एवं संगीत के इसी सुदृढ़ सम्बन्ध की ओर संकेत किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ग) हठयोग में नाद-साधना

हिन्दी की निर्गुणोपासना-पद्धति में संगीत का स्थान निर्धारित करने के लिए निर्गुण संत मत को प्रभावित करने वाली पूर्ववर्ती प्रमुख आध्यात्मिक धाराओं की नाद-साधना सम्बन्धी मान्यताओं से परिचित होना नितान्त आवश्यक है। इसी सन्दर्भ में पीछे हमने तन्त्रों और उपनिषदों में वर्णित नादानुसंधान का स्वरूप देखा और यहाँ हठयोग में स्वीकृत नाद की महत्ता की संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत की जा रही है।

हमारे विवेच्य निर्गुण संत कवि, नाथ-पंथ से बहुत प्रभावित थे[133] और हठयोग में नाद को बहुत उच्च स्थान दिया गया है।

ओंकार आदि नाद है, जो कि अनाहत और अखण्ड है। यह नाद अन्य नाद स्रोतों का कारण है, मूल है, किन्तु इसमें तथा अन्य नाद-प्रकारों में अन्तर यही है कि विश्व के सभी नाद खण्डित हैं, किन्तु यह अखण्ड है। यह नाद मानव-मात्र के अंतस् में निर्सगतः विद्यमान रहता है। अंतस् में इसकी सत्ता ही ब्रह्म की अंतःकरण में सत्ता है, किन्तु साधक सांसारिक मायाजाल में आबद्ध रहने के कारण उक्त नाद को नहीं सुन पाता।[134] इसके लिए उसे अपने लक्ष्य में चित्त का लय करना होता है अर्थात् चित्त को नाद में पूर्णतः लीन कर देना होता है। इस प्रकार हठयोग में नाद की अपार महिमा वर्णित है। हठयोग में नादानुसंधान को भवबंधन से मुक्ति और ब्रह्म प्राप्ति के प्रकृष्ट साधन के रूप में ग्रहण किया गया है।

हठयोग-प्रदीपिकाकार के अनुसार आदिनाथ (शंकर) ने चित्त के लय के सवा करोड़ प्रकार कहे हैं, किन्तु उनमें नादानुसंधान ही प्रमुख एवं सर्वोत्तम है।[135]

जिनका तत्वज्ञान अशक्य हो, ऐसे मूढ़ों के लिए भी हठयोग में नादानुसंधान, संभव कहा गया है।[136]

यह नाद व्यष्टि में प्राणायाम द्वारा अथवा शरीर में वायु के यथेष्ट धारण द्वारा अनल के प्रदीप्त होने पर अभिव्यक्त होता है।[137] सुषुम्ना नाड़ी इस नाद का अधिष्ठान है, जिसके छिद्र को जीव की वृद्धावस्था में कुण्डलिनी ढंके रहती है। साधक प्राणायाम, सिद्धासन, मुक्तासन, नाड़ी-शोधन एवं शांभवी मुद्रा आदि नाना हठयौगिक साधनाओं के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को उद्बुद्ध करता है। जब कुण्डलिनी सुषुम्ना के छिद्र से हटकर ऊपर की ओर उठती है तो स्फोट होता है, उसी को 'नाद' कहते हैं। यह नाद ही 'अनहद' नाम से शास्त्रों एवं संतकाव्य में प्रसिद्ध है।

'अनहद' शब्द संस्कृत के 'अनाहत' शब्द का तद्भव है, जिसका अर्थ है (वाग्यंत्र के) अभिघात के बिना उत्पन्न होने वाला नाद। इस अनाहत नाद का प्रसार अनन्तगुणा है, इसी से जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय कही गई है।[138] इसी से शंकर ने 'योगतारावली' में नादानुसंधान की स्तुति की है।[139] यद्यपि यह नाद ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्याप्त है तथापि गोरखनाथ ने इसे गगन (ब्रह्मरंध्र) में खोजने का उपदेश दिया है।[140]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ह. प्र. में नादानुसंधान हेतु शाम्भवी मुद्रा (अर्थात् भीतर लक्ष्य और बाहर दृष्टि) का विधान बतलाया है।[141]

हठयोग में पराङ्मुखी नाड़ी से भी नादानुसंधान का वर्णन किया गया है।[142] समस्त इन्द्रियों का निरोध कर एकाग्रचित्त हो, प्राणायामों द्वारा सुषुम्ना का मार्ग खुलने से नाद श्रुत होता है। नादाभ्यास से चित्त की चंचलता नष्ट हो जाती है और योगी को आत्मानंद की प्राप्ति होती है।[143] अतः योग-सिद्धि के इच्छुकों को नादानुसंधान का आदेश दिया गया है।[144] यह नाद हृदय की चंचलता के लिए अंकुश सदृश है।[145] नादानुसंधान से पापक्षय होता है, वासना क्षीण होती है एवं मन, प्राण—दोनों निर्गुण चैतन्य में लीन हो जाते हैं।[146] नादसिद्धि से समरसता की स्थिति प्राप्त होती है[147] और चित्त समाधि में पूर्णतः लीन हो जाता है।[148]

वास्तव में नाद में महान् शक्ति निहित है। 'नाद' वाचक शब्द है और सत्ता (ब्रह्म) वाच्य है। इस प्रकार वाच्य (ब्रह्म) को प्रकाशित करने वाला वाचक (नाद) भी ब्रह्म ही है। 'योग-दर्शन' में प्रणव (मूल नाद) को ईश्वर का वाचक कहा गया है।[149]

हठयोग-प्रदीपिकाकार के अनुसार इन्द्रियों का स्वामी मन है, मन का मारुत (प्राण), मारुत (प्राण) का मन का लय और लय (मन), बुद्धि की साम्यावस्था का नाद है अर्थात् मन का लय नाद में होता है, चित्त का यह लय ही मोक्ष रूप अथवा जीवन्मुक्ति रूप है।[150] योगवासिष्ठ में मनोराज्य जीतने तथा समाधि अवस्था की प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय यह 'ओंकार' जप ही कहा गया है।[151] अतः नाद ही परात्पर ब्रह्म का वाचक है। गोरक्षसिद्धान्त संग्रह में ब्रह्म को पक्षपात् विनिर्मुक्त कहकर प्रणव से अभिन्न माना गया है।[152] मंत्रशास्त्रानुसार परब्रह्म अथवा उपास्य का नादमय विग्रह है।[153] नाथपंथ में नाद को सर्वशक्तिमान कहा गया है।[154]

नाद-साधना की प्रारंभिक अवस्था में प्रणव जप को उपाय रूप में स्वीकार किया गया है। साधक को नाद पर ही ध्यान केन्द्रित करना होता है, तत्पश्चात् इस नाद का ध्यान अनाहत चक्र में किया जाता है और अंतिम अवस्था में विभिन्न चक्रों से होता हुआ प्राण-वायु ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करता है, इस अवस्था में योगी को नादसहस्रार में श्रुत होता है। यहीं नादानुसंधान की क्रिया समाप्त होती है और योगी को उसके लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है।[155]

वस्तुतः मूल रूप से तो नाद एक ही है, किन्तु उसके औपाधिक सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए उसे विभिन्न स्तरों में विभक्त किया गया है।[156]

साधना की प्रथमावस्था में साधक को समुद्र गर्जन, मेघ गर्जन, भेरी आदि विविध प्रकार के स्थूल एवं भारी नाद कर्णगोचर होते हैं, किन्तु अभ्यास के बढ़ने पर उसे क्रमशः सूक्ष्मतर नाद श्रुत होते हैं।[157] सुषुम्ना में प्राणवायु के स्थिर होने पर मर्दल, शंख, घंटा, काहल आदि वाद्यों की ध्वनियाँ सदृश अपेक्षाकृत सूक्ष्म नाद श्रुत होते हैं।[158]

अंत में प्राण वायु के ब्रह्मरंध्र में स्थिर हो जाने पर किंकिणी, वंशी, वीणा, भ्रमर निःस्वन के शब्द नाद तुल्य श्रुत होते हैं।[159]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः योगशास्त्र में मेघ, भेरी आदि के स्थूल नादों को त्यागकर सूक्ष्म नाद में चित्त लय करने का आदेश दिया गया है।[160]

ह. प्र. में नाद की चार अवस्थाओं का वर्णन किया गया है, जोकि क्रमशः आरम्भावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था एवं निष्पत्ति अवस्था नाम से वर्णित हैं एवं चित्तवृत्ति के पूर्ण निरोध रूप योगों अथवा शाम्भवी मुद्रा आदि में प्रकट होती हैं।[161]

'आरम्भावस्था' में, अनाहतचक्र स्थित ब्रह्म ग्रंथि का भेद होता है और प्राणायामों के अभ्यास से हृदयाकाश रूप शून्य में अनेक भूषणों की 'क्वण' ध्वनि सदृश नाद सुनाई पड़ते हैं।[162]

द्वितीयावस्थाः 'घटावस्था' में प्राण और अपान वायु तथा नाद-बिन्दु को स्थिर करके कण्ठ स्थान में स्थित विष्णुग्रंथि का कुंभक प्राणायामों से भेद करने पर साधक को परमानन्द का सूचक अनेक नादों का सम्मर्द एवं भेरी नाद सुनाई देता है।[163]

तृतीयः 'परिचयावस्था' में आज्ञाचक्र स्थित रुद्रग्रंथि का भेदन होने पर साधक को भ्रूमध्यगत आकाश में मर्दल नामक वाद्य की ध्वनि कर्णगोचर होती है।[164]

चतुर्थः 'निष्पत्ति अवस्था' में प्राण का ब्रह्मरंध्र में संचार होने पर साधक को वेणु अथवा वीणा का नाद सुनाई देता है।[165]

शून्य की दृष्टि से आरम्भावस्था शून्यावस्था है। दूसरी अवस्था अतिशून्यावस्था है। तीसरी महाशून्यावस्था है तथा चतुर्थ विशुद्ध अथवा परमशून्यावस्था कहलाती है।[166]

निष्पत्ति अवस्था में विषय-विषयी का अभेद होने से साधक को राजयोग सिद्धि मिलती है और योगी नादानुसंधान द्वारा रचना और संहार का कर्त्ता भगवान् रूप शक्तिवान् हो जाता है।[167]

यही अवस्था नादानुसंधान की सिद्धि अवस्था है, किन्तु नादानुसंधान की विधि का ज्ञान एवं उससे प्राप्त होने वाला आनन्द गुरु की कृपा से ही संभव है।[168]

ह.प्र. में उपरिवर्णित नाद की चार अवस्थाओं में से प्रथम तीन अवस्थाएँ, उपनिषदों में वर्णित उपाय स्वरूप नाद की साधकावस्था का बोध कराती हैं और अंतिम निष्पत्यावस्था को उपेयस्वरूप नाद की स्थिति का द्योतक समझा जा सकता है।

हठयोग में भी उपनिषदों के 'प्रणव' की भाँति, सूक्ष्म नाद के चिन्तन का उपदेश दिया गया है, क्योंकि वही सूक्ष्मातिसूक्ष्म, अखण्ड एवं चिरन्तन नाद है और वही साधक को स्थिरमति प्रदान करता है।[169]

अनाहत ध्वनि के अंतर्गत ज्ञेयरूप ज्योतिष्पुंज चैतन्य की स्थिति है। उस ज्ञेयरूप में मन का लय होने पर विष्णु (आत्मा) के परमपद (विशुद्ध स्वरूप) की प्राप्ति होती है।[170]

हठयोगियों के अनुसार, साधक को अनाहत ध्वनिरूप जितने सूक्ष्मतर नाद सुनाई पड़ते हैं, उतनी ही आकाश (मन) की कल्पना स्पष्ट होती है, क्योंकि शब्द आकाश का गुण है और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुण एवं गुणी का अभेद (लय स्थान) भी वहाँ होता है। सम्पूर्ण वृत्तियों का विलय होने पर, जिस सर्वशुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है, वही परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप है।[171]

इस प्रकार हठयोग में नाद को परतत्त्व प्राप्ति के लिए सर्वोपरि माध्यम के रूप में ग्रहण किया गया है।

नादानुसंधान के प्रसंग में हठयोग में 'नाद बिन्दुयोग' की भी चर्चा मिलती है, जिसका उल्लेख संतों ने भी किया है।

नाद-बिन्दु-साधना का प्रारम्भ सम्भवतः सर्वप्रथम तांत्रिकों द्वारा हुआ। बौद्ध, शैव, शाक्त तथा वैष्णव आदि तन्त्रों में अनेक स्थलों पर 'नादबिन्दुयोग' की चर्चा मिलती है। तंत्रों के पश्चात् यह साधना परवर्ती मत्स्येन्द्रनाथी हठयोग की विविध शाखाओं में प्रचलित हुई। सिद्धों में वामपंथियों का बाहुल्य था, अतः 'बिन्दु' साधना (ब्रह्मचर्य) का उन्होंने विरोध किया, फलतः सिद्धों में इसका अधिक प्रचार न हो पाया, किन्तु तात्त्विक नाथपंथ में इस साधना-विशेष को उच्च स्थान मिला। नाथ-पंथियों ने बौद्ध तांत्रिकों एवं योगियों से इस साधना को अपनाया।[172]

नादबिन्दूपनिषत् में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। वास्तव में शिव और शक्ति की कल्पना, नाद और बिन्दु के रूप में हठयोगी तथा तांत्रिक संप्रदायों में बहुत पहले से चली आ रही थी, जिसमें नादतत्व या शब्दब्रह्म को समस्त सृष्टि का मूल कारण माना गया है।[173]

'नादबिन्दु' शब्दों का अर्थ विद्वानों ने कई प्रकार से किया है। 'नाद' का अर्थ तो 'प्रणव' (उपनिषदों में वर्णित) स्पष्ट ही है। किन्तु 'बिन्दु' वीर्य अथवा ब्रह्मचर्य साधना, जीवात्मा आदि का वाचक मान भिन्न-भिन्न प्रसंगों पर पृथक्-पृथक् अर्थों द्वारा संगति बिठाई है। 'बिन्दु' शब्द यद्यपि अनेक स्थलों पर 'वीर्य' का बोधक है, परन्तु 'नाद-बिन्दु' शब्दों का जहाँ भी संयुक्त प्रयोग हुआ है, वहाँ ये दोनों शब्द प्रायः नाद के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं, यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है।

अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त अनाहत नाद का व्यष्टि में अभिव्यक्त होने वाला रूप ही 'नाद' अथवा 'बिन्दु' कहलाता है अर्थात् जो नाद अनाहत भाव से समष्टि रूप में समस्त विश्व में व्याप्त है, उसी की व्यष्टि रूप में जब व्यक्ति को अनुभूति होती है, तब उसे 'नाद' या 'बिन्दु' कहा जाता है।

'नाद' और 'बिन्दु' मूल रूप में एक ही तत्त्व के वाचक हैं। शास्त्रों में कहा भी गया है, 'यो वै नादः सवै बिन्दुः।[174] अर्थात् जो नाद है, वही बिन्दु है।

किन्तु तत्वतः एक होते हुए भी, 'नाद' और 'बिन्दु' में कुछ स्थूल अन्तर अवश्य है, जिसका संकेत निम्नलिखित कतिपय 'सबदियों' से समझा जा सकता है–

1. *"अमावस के घरि झिलिमिलि चंदा, पूनिम के घरि सूरं।*
   नाद के घरि व्यंद गरजै, बाजंत अनहद तूरं।"[175]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् 'सहस्रार' में अमृतस्रावक चन्द्रमा स्थित है उसके अमृतस्राव को मूलाधार स्थित सूर्य सोख लेता है, अतः साधक अथवा जीवमात्र उसके पान से वंचित रह जाता है। चन्द्रमा के अमृतस्राव से जीव का यह वंचित रह जाना ही यहाँ 'अमावस' से अभिप्रेत है। साधक की हठयौगिक क्रियाओं से अमावस (चन्द्रमा के प्रभाव से रहित जीव) के स्थान पर चन्द्रमा झिलमिलाने (चमकने) लगा है, अतः 'नाद' में 'बिन्दु' समा गया है और अनाहत नाद का तूर्य बजने लगा है।

2. *'अवधू काया हमारी नालि बोलिये, दारू बोलिये पवनं।*
अगनि पलीता अनहद गरजै, व्यंद गोला उड़ि गगनं।''[176]

अर्थात् 'हे अवधूत! यह शरीर बन्दूक है, पवन बारूद है, अनहद रूपी आग देने से धड़ाका होता है और बिन्दु रूपी गोला ब्रह्मरंध्र में चला जाता है।

3. *'उन मन जोगी दसवें द्वार। नाद व्यंद ले धुंधकार*
दसवें द्वारे देइ कपाट। गोरख खोजी औरे बाट।[77]

अर्थात् 'योगी दशम द्वार (ब्रह्मरंध्र) में समाधिस्थ होता है और नाद तथा बिन्दु के मेल से वह धूधूकार अथवा महा शब्द अनाहत नाद को सुनता है, किन्तु गोरखनाथ ने दशम द्वार को भी बन्द करके, अन्य बाट से परब्रह्म की खोज की है अर्थात् बाह्याडम्बरों को त्यागकर सूक्ष्म चिंतन एवं आडम्बरहीन पथ का अवलम्ब लेकर परतत्त्व की खोज की है।

4. *'नाद बिंद बजाइले दोऊ, पूरि ले अनहद बाजा।*
एकंतिका वासा सोधि ले भरथरी, कहै गोरष मछिंद्र का दासा।''[178]

अर्थात् नाद और बिन्दु दोनों को बजा लो (दोनों की साधना करो) अनाहत रूप वाजे को भरो (फूंकवाद्य की भाँति, अनहद का रूपक फूंकवाद्य से बाँधा है)। हे भर्तृहरि एकांत का वास ढूँढ़ो, यह मछिन्द्र के दास (शिष्य) गोरख का कथन है।''

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट ध्वनित होता है कि 'नाद' और 'बिन्दु' मूलतः एक ही तत्त्व होते हुए भी स्थूलतः भिन्न हैं और मानव-शरीर में उनका स्थान भी पृथक्-पृथक् हैं।

'नाद' और 'बिन्दु' का अन्तर निश्चित करने के लिए यहाँ तान्त्रिकों की वहुचर्चित 'नाद-बिन्दु योग' पर भी विहंगम दृष्टि से विचार करना स्थानीय होगा, क्योंकि हठयोग में उक्त दोनों शब्दों का प्रयोग सम्भवतः तांत्रिक वाङ्मय के अनुसार ही हुआ है।

तन्त्रों में 'प्रणव' की व्याख्या 'नाद' और 'बिन्दु' के नाम से मिलती है। तांत्रिकों ने नादरूपा कुण्डलिनी की स्थिति मूलाधार में मानी है और बिन्दु रूपी शब्द ब्रह्म को सहस्रार में वर्तमान माना है।[79] हठयोग प्रदीपिका की पीछे उद्धृत की गई सबदियों से भी उक्त दोनों शब्दों का यही अर्थ व्यंजित होता है।

तांत्रिकों के अनुसार साधक को मंत्रों के जाप द्वारा कुण्डलिनी को प्रबुद्ध कर, षट्चक्रों का भेदं करते हुए, नाद को क्रमशः मुखरित करके सहस्रारस्थ बिन्दु में लीन करना होता है।[180]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इससे यह ध्वनित होता है कि हठयौगिक साधनाओं के द्वारा मूलाधार में प्रसुप्तावस्था में वर्तमान कुण्डलिनी शक्ति के प्रबुद्ध होने पर स्फोट से जो ध्वनि उत्पन्न होती है, वह 'नाद' कहलाती है और जब कुण्डलिनी षट्चक्र को भेद लेती है तो प्राण का ब्रह्मरंध्र में संचार होने से जो ध्वनि साधक को कर्णगोचर होती है, वह 'बिंदु' कहलाती है। नाद और बिन्दु में यही स्थूल अन्तर है।[181] तत्त्वतः कोई अन्तर न होने से ही दोनों को एक कहा गया है। 'बिन्दु' को हम ह. प्र. में वर्णित निष्पत्यावस्था में साधक को प्राण के ब्रह्मरंध्र में संचार होने पर श्रुत होने वाला नाद कह सकते हैं।[182]

हठयोग-प्रदीपिका के टीकाकार ने 'नाद' और 'बिंदु' की व्याख्या इस प्रकार की है—

"कांस्यघंटानिहदिवदनुरणनं नादः।

बिंदुरनुस्वाखतरभावी ध्वनिः।"[183]

अर्थात् कांसी के घण्टे के सदृश जो अनुरणन अथवा ध्वनि है, वह 'नाद' है और अनुस्वार के अनन्तर जो (सूक्ष्मतम) ध्वनि होती है, वह 'बिन्दु' है।[184]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि 'बिंदु' नाद की अपेक्षा सूक्ष्म ध्वनि है। तांत्रिकों की भांति हठयोगियों ने भी परमात्मा का स्वरूप, नाद, बिन्दु और कला रूप माना है।[185]

हठयोग में नाद और बिन्दु के योग से ही जगत् की उत्पत्ति मानी गई है,[186] जैसी कि तांत्रिकों की मान्यता है।

नाद बिन्दु की साधना द्वारा योगी सिद्धि प्राप्त करता है, इस सम्बन्ध में गोरख ने कहा भी है—

'नाद बिंद है फीकी सिला। जिहिं साध्या ते सिधैं मिला।"[187]

अर्थात् नाद-बिन्दु साधना शुष्कता में पाषाण की भाँति है किन्तु उसे साध लेने पर साधक को सिद्धावस्था प्राप्त हो जाती है।

'नाद और 'बिन्दु' की भांति हठयोगियों और संत कवियों ने 'सुरति' और 'निरति' शब्दों का भी पृथक्-पृथक् एवं संयुक्त प्रयोग किया है।

विद्वानों ने 'सुरति' और 'निरति' शब्दों के अनेक अर्थ कल्पित किए हैं, किन्तु इनके अर्थ का अतिरिक्त ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो सका[188] है।

बड़थवालजी ने 'सुरति' का अर्थ 'स्मृति' माना है। उन्होंने इस शब्द का उद्भव स्रोत' से माना है और 'स्रोत' का अर्थ उन्होंने 'चित्त प्रवाह' किया है।[189] सिद्धों ने इस शब्द को 'प्रेम क्रीड़ा' के अर्थ में प्रयुक्त किया है।[190] डॉ. सम्पूर्णानन्द 'सुरति' को 'स्रोत' का अपभ्रंश रूप मानते हैं।[191] हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'सुरति' को 'अंतर्मुखी वृत्ति' और 'निरति' को 'बहिर्मुखी वृत्ति' माना है।[192]

इस प्रकार सुरति, निरति शब्दों के अनेक अर्थ कल्पित किए जा सकते हैं, किन्तु उनका मेरे विषय से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होने के कारण हमने उनके विवेचन की ओर ध्यान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं दिया। हाँ, जहाँ इन शब्दों का संयुक्त रूप से प्रयोग हुआ है, वहाँ वे निश्चित रूप से नादपरक अर्थों के वाचक हैं, अतः वहां उनसे नादपरक अर्थ लेना ही उचित होगा।

'अमरौध शासन' में शब्दसुरतियोग को सहज समाधि अवस्था प्राप्ति का वह मार्ग कहा गया है, जिसमें शब्द (नाद) की साधना होती है।[193] यह अर्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस अर्थ के आधार पर 'सुरति' को हम 'श्रुति' का भी अपभ्रंश मान सकते हैं।[194] संभवतः गोरखनाथ ने उक्त शब्द के मैथुनपरक अर्थ को त्यागकर, इसके नादपरक अर्थ प्रचलित किए थे।[195]

आचार्य क्षितिमोहन सेन द्वारा किया गया 'सुरति' का अर्थ 'प्रेम' और 'निरति' का अर्थ 'वैराग्य' अधिक संगत है। इस प्रकार 'सुरति' नाद की वह अवस्था है, जब वह चित्त को दूध में पानी की तरह लीन कर देती है, तब नादासक्त मन सांसारिक स्थिति से ऊपर उठकर नाद में ही पूर्णतः लीन हो जाता है। यह उपनिषदों का 'उपायस्वरूप' नाद ही है, जिसका हम पीछे वर्णन कर चुके हैं। यही 'उपायस्वरूप' नाद, हठयोगियों और संतों की सुरति-योग की सिद्धि है।

इस प्रकार 'सुरति' का अर्थ हुआ नाद में पूर्णतः लीनावस्था[196] (प्रेम की भी यही परिभाषा होगी, 'अपने विषय में पूर्ण लीनावस्था) किन्तु 'निरति' इससे भी उच्च स्तर की अवस्था है, जो सहज होने के कारण निरालम्ब है। 'सुरति' के 'निरति' में समाने की बात योगियों एवं निर्गुण संतों ने अनेक स्थलों पर कही है।

'निरति' वास्तव में उपनिषदों का उपेयस्वरूप नाद है अर्थात् ब्रह्मप्रणवनाद की तुरीयावस्था है, जिसमें कोटिशत नाद और बिन्दु (उपायस्वरूप नाद अथवा सुरति) विलीन हो जाते हैं, द्रष्टव्य—

"निरंजन विलीयते मनोवायू न संशयः।
नादकोटिसहस्राणि बिन्दुकोटिशतानि च।"[197]

तुलना कीजिए—

"सुरति समानी निरति में, निरति खड़ी निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खुले स्वयम्भू द्वार।"[198]

'निरति' नादानुसंधान की वह अवस्था है, जिसके लिए उपनिषदों में कहा गया है—

"सशब्दश्चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।"[199]

और भी—

"चित्तं स्थिरं यस्य बिनावलम्बं।
स ब्रह्मतारान्तरनाद रूपः।"[200]

ह. प्र. की भी निम्न पंक्ति उक्त संदर्भ में द्रष्टव्य है—

"निःशब्दं तत्परं ब्रह्म परमात्मेति गीयते।"[201]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपर्युक्त उद्धरणों का सारांश यह है कि साधना की इस परिपक्वावस्था में नादासक्त चित्त (उपायस्वरूप नाद की स्थिति) अन्त में नाद में ही लीन हो जाता है तब न नाद रहता है, न बिंदु, शब्द भी निःशब्द हो जाता है, यही विष्णु का परम पद (आत्मा का विशुद्ध स्वरूप, उपेयस्वरूप नाद की स्थिति) है।

इस प्रकार हठयोग में 'सुरति' (उपायस्वरूप नाद) हठयौगिक साधनाओं द्वारा प्राप्त मन की नाद गें नीर-क्षीर की भाँति पूर्णतः लीनावस्था है। 'शब्द' 'अनहद' नाद का बोधक है और 'निरति' (उपेयस्वरूप नाद) साधक की वह दशा है, जब मन सहित शब्द का विलय हो जाता है, तब नाद से भी वैराग्य हो जाता है अर्थात् निःशब्द अवस्था का उदय होता है। मन की स्थिति तक ही नाद की भी स्थिति रहती है, जब मन से अमन होने की स्थिति आती है तो नाद की भी स्थिति नहीं रहती, अर्थात् तब मन और प्राण का पूर्णतः परब्रह्म (अथवा प्रणव) में विलय हो जाता है अथवा साधकावस्था में श्रुत विभिन्न नाद (उपायस्वरूप) प्रणव संलग्न ज्योतिर्मय नाद (उपेयस्वरूप) में समा जाते हैं, 'सुरति' के 'निरति' में लीन होने की यही दशा है।

हठयोग में यही अवस्था नादानुसंधान की सिद्धिवस्था है और संगीत शास्त्र की दृष्टि से भी यही अवस्था नाद-ब्रह्म के साक्षात्कार की अवस्था कही जा सकती है।

नाथपंथ में 'सुरति निरति' साधना का बड़ा प्रचार रहा है। हठयोग का एक अति प्राचीन नाम 'शब्दसुरतियोग' भी कहा जाता है।[202] संतों ने भी इस साधना को बहुत महत्त्व दिया है। कबीर-पंथियों के अनुसार 'शब्दसुरतियोग' कबीर की मुख्य साधना थी। नाद के प्रसग में हठयोगियों ने 'शून्य' शब्द का भी उल्लेख किया है, जिसे संतों ने भी उसी अर्थ में ग्रहण किया है, अतः विहंगम दृष्टि से इस शब्द पर भी विचार करना यहां अप्रासंगिक न होगा।

नाथ साहित्य में 'शून्य' शब्द का प्रयोग ब्रह्मरंध्र तथा शिवलोक के अतिरिक्त परम ज्ञान, परम स्वभाव और परम नाद, इन अर्थों में हुआ है।[203]

डॉ. धर्मवीर भारती के मतानुसार 'शून्य' वह शब्द (नाद) है, जो (नादानुसंधान के समय) साधक के हृदयाकाश में साधना की प्रारंभिक अवस्था में प्रकाशित होता है।[204]

ह. प्र. में नाद को पूर्णता का द्योतक मानकर 'शून्य' तथा पूर्ण शब्दों का एक ही अर्थ में प्रयोग किया गया है।[205]

हठयोगियों ने 'अनहद' नाद के अर्थ में 'शून्य की गर्जना' का भी उल्लेख किया है, द्रष्टव्य—

"अलेख लेषंत अदेषं देषत, अरस परस ते दरस जांणीं।

सुनि गरजत बाजन्त नाद, अलेष 'लेषंत ते निज प्रवांणीं।'[206]

अर्थात् जो लिखा नहीं जा सकता, उसका लेखा करने वाले, जो अदृश्य हैं, उसे देखने वाले, स्पर्श से ब्रह्मा का साक्षात् दर्शन करने वाले तथा ब्रह्मरंध्र को शून्य से अर्थात् अनाहत नाद से गर्जित करने वाले भगवद् भक्ति निज प्रमाण से अथवा स्वानुभव से ब्रह्म को जानते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार हठयोग में संगीत अथवा नाद को कितना उच्च स्थान मिला है, यह उक्त, संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है।

सिद्धों की भाँति हठयोगियों के रागबद्ध पद भी, उनके संगीत-प्रेम के परिचायक हैं। सिद्धों के चर्यापद तो गेय होते ही थे और उनके साथ रागनामों का भी शीर्षक रूप में उल्लेख मिलता है।[207]

सिद्धों के साहित्य की उक्त परम्परानुसार ही हठयोगियों ने भी अपने पदों में अनेक रागों का व्यवहार किया है। गो बा. में उनके पदों के अंतर्गत रामग्री, (रामकली?), आसावरी तथा रामगरी (?) इन तीन राग नामों का उल्लेख मिलता है।[208] हमारे साहित्य-भण्डार में दुर्भाग्य से भारतीय-संगीत के विकास से सम्बन्धित सामग्री इतनी अल्प है कि इन रागों के तत्कालीन गेय रूप को निश्चित करना अति कठिन है फिर भी इससे हठयोग में संगीत के स्थान के लिए तो निर्देश मिल ही जाता है।

योगियों की बाह्य वेष-भूषा में नाद, किंगरी और सिंगी आदि वाद्यों का स्थान भी उनके संगीत प्रेम का परिचायक है। कहा जाता है कि नाद तत्त्व की अभिव्यक्ति-हेतु ये योगी 'सिंगी'[209] धारण करते थे और उसे सिंह नाद का प्रतीक मानकर बजाया करते थे। सिंह नाद शब्द की व्याख्या चर्या पदों के टीकाकारों ने गोरखनाथ को मान्य पारम्परिक अर्थ में की है। एक स्थान पर सिद्ध-साहित्य में प्रचलित 'शून्यता के कलकल नाद' शब्द को उन्होंने 'शून्यता सिंहनाद' कहा है और उससे समस्त शत्रुओं (काम, क्रोध,मोहादि?) को भयभीत बतलाया है तथा इस अर्थ की पुष्टि हेतु किसी पूर्ववर्ती श्लोक का भी प्रमाण दिया गया है।[210]

साधना के प्रसंग में हठयौगिक ग्रंथों में नाद के विविध स्तरों एवं स्वरूप-विशिष्ट का उल्लेख मिलता है। साधनारत योगी को भेरी, झांझ, मर्दल, मृदंग, शंख, घंटा, काहल, वंशी, वीणा आदि विभिन्न वाद्यों की ध्वनियां कर्णगोचर होती हैं। उक्त वाद्य नामों के उल्लेख से तत्कालीन प्रचलित सभी वाद्यों का बोध होता है।

हठयोगियों की बानियों में मिलने वाले विभिन्न वाद्यों के उल्लेख के लिए देखिए गोरखबानी में पृ. सं. 19 सबदी सं. 51, पृ. सं. 118 प. सं. 25, पृ. 121 पं. सं. 27, पृ. 124 पं. सं. 30, पृ.सं. 134 प. सं. 39, पृ. सं. 153 प. सं. 57 पृ.सं. 160 (सिष्या दरसन), और पृ. सं. 173 छं. सं. 14 (नरवै बोध)

नादानुसन्धान के प्रसंग में हठयोगियों द्वारा उल्लिखित उक्त सभी वाद्य-नामों का निर्गुण संत कवियों ने प्रायः ग्रहण किया है, जिसका विवरण आगे प्रस्तुत है।

इस प्रकार शोधप्रबंध की मर्यादानुसार पीछे हठयोग में नाद-साधना के द्विविध पक्षों (अनाहत एवं आहत) को मिले उच्च स्थान का दिग्दर्शन कराने का यथासंभव प्रयास किया गया है। आगे निर्गुण संतों की नादोपासना-पद्धति को तांत्रिक, औपनिषदिक एवं हठयौगिक विचारधाराओं की भाँति यत्किंचित् प्रभावित करने वाली सूफ़ी अध्यात्म धारा में नाद साधना को प्राप्त स्थान का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(घ) सूफ़ीमत में नाद साधना

हिन्दी के निर्गुण संतकाव्य पर सूफ़ी मत का प्रभाव निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है। सूफ़ी संतों की नाद-साधना का अस्तित्व भी हमारे विवेच्य निर्गुण कवियों की कृतियों में मिलता है। वास्तव में सूफ़ी साधना-पद्धति पर तांत्रिक दर्शन तथा हठ योग का प्रभाव बराबर रहा है और उक्त आध्यात्मिक धाराद्वय में संगीत का अपना एक विशिष्ट स्थान है, यह हम पीछे देख चुके हैं।

प्रस्तुत संदर्भ में मैंने सूफ़ीमत का वही पक्ष लिया है, जो नादानुसंधान से सम्बन्ध रखता है, क्योंकि उसी का मेरे प्रकृत विषय से सीधा सम्बन्ध है।

सूफ़ी मत का उदय अरब में और विकास फ़ारस में बहुत कुछ भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि पर ही हुआ है।[211] सूफ़ी कवियों ने मौलाना रूमी की मसनवी के ढंग पर भारतीय आदर्श जीवन से सम्बन्धित अनेक आदर्श प्रणय-कथाओं का आधार ग्रहण कर अन्योक्ति रूप में भारतीय-दर्शन एवं भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल रूप प्रस्तुत किया है।

प्रेम, सूफी काव्य का प्रधान स्वर है, जिसके आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी निर्गुण भक्तिवादी सूफ़ी काव्यधारा को 'प्रेमाश्रयी शाखा' का अभिधान दिया था। अपने प्रेम के आलम्बन से एकत्व प्राप्त करने के लिये सूफ़ी कवियों ने 'ज़िक्र' (जपविधान) का महत्त्व स्वीकार किया है और उनके अनुसार इष्टदेव के प्रेम पूर्वक जाप से अज्ञान निद्रा दूर हो जाती है। नूर मुहम्मद कवि के अनुसार जब तक हृदय में प्रेम व्याप्त नहीं हो पाता, तभी तक अज्ञान निद्रा का अस्तित्व है। जब साधक प्रेम पूर्वक 'जाप' करने लगता है, अज्ञान-निद्रा का विनाश हो जाता है।[212]

'ज़िक्र' का मूल मन्त्र है, 'ला इलाह इलल्लाह।' इसके जाप के लिए सूफ़ियों में अनेक विधान प्रचलित हैं, जिनमें प्रमुख दो हैं—

ज़िक्र जली और ज़िक्र ख़फ़ी।

यद्यपि उभय जप-प्रकारों का मूल मंत्र एक ही है, किन्तु उनकी प्रक्रिया भिन्न-भिन्न है। 'जली' में तुच्छ ऐंद्रिय इच्छाओं के दमन हेतु समष्टि या व्यष्टि रूप में मूलमंत्र की जप क्रिया निष्पन्न होती है। 'खफ़ी' में मन की एकाग्रता-हेतु योगसाधना द्वारा श्वास-संयमन आवश्यक है।[213]

इस प्रकार 'जली' का सम्बन्ध वाणी से है और ' ख़फ़ी' का हृदय अथवा मन से है। जली स्तवन है तो ख़फ़ी योग।

'जली' और ख़फ़ी' जप क्रियाओं का नामांतर से तांत्रिकों, हठयोगियों तथा निर्गुण संतों में भी प्रचलन रहा है।

सूफ़ी साधकों में जप की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं। जप के समय कोई घुटनों के बल से और कोई पालथी मारकर विशेष आसनों की विधि से बैठता है। कोई बैठकर बाँई ओर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से श्वास लेते हुए अल्लाह का नाम जपता है तो कुछ साधकगण पालथी मारकर बैठते हैं तथा प्रथम दाईं ओर से, पुनः बाईं ओर से श्वास लेते हुए मन में जप करते हैं। कतिपय अन्य साधक 'ला' पर ध्यान केन्द्रित करते हुए श्वास लेते हैं और 'इलल्लाह' कहते हुए छोड़ते हैं अथवा श्वास द्वारा 'ला इलाह' ध्वनि को निष्कासित करते हैं और 'इलल्लाह' को अन्दर खींचते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ भक्तगण आंखें बन्द करके मौन जप करते हैं और कुछ ध्यान में चिन्तन पक्ष पर ज़ोर देते हैं, किन्तु उपर्युक्त सभी जप-भेदों में जप पुरश्चरण का मुख्य विषय सर्वत्र यही रहता है कि 'ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं।[214]

ख़फ़ी के रूपान्तर को 'फ़िक्र' कहते हैं, जिसमें चिंतन प्रधान तत्त्व रहता है।

सूफ़ी सन्तों में कुछ ऐसी कोटि के भी भक्त मिलते हैं, जो तंत्रों में वर्णित 'मंत्रयोग' की भांति आंखें बन्द कर, मौन धारण करके, अपने श्वास-प्रश्वास पर ध्यान लगाये रहते हैं तथा श्वास लेने पर वे 'ला इलाहा' और निःश्वास के साथ 'इल्लाह' स्वाभाविक उच्चारण की प्रक्रिया का अनुभव करते हैं।

कतिपय साधक वर्ग के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति जाने या अनजाने श्वास-प्रश्वास लेते समय 'अल्लाह' शब्द का स्वाभाविक उच्चार करता है। श्वास लेते समय 'अल्' शब्द सतत स्वयमेव ही उच्चरित होता रहता है तथा उसी प्रकार 'लाह' शब्द का भी प्रश्वास के समय स्वयं ही उच्चारण होता रहता है। अर्थात् 'अल्' और 'लाह' शब्द के स्वाभाविक उच्चार की क्रिया क्रमशः श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक प्रक्रिया के साथ सम्बन्धित है।[215]

सूफ़ियों की जप क्रिया की उक्त मान्यताएँ तन्त्रों में वर्णित ठीक 'हंसमंत्र' की भाँति हैं।

सूफ़ियों की नाद साधना में 'जप' के अतिरिक्त 'समा' अर्थात् 'संगीत' को भी प्रकृष्ट साधन के रूप में स्थान मिला है। प्राचीन अरबी भाषा में समा शब्द का प्रयोग 'संगीत' के अर्थ में हुआ है।[216] सूफ़ी मत के अनुसार भावाविष्टावस्था की प्राप्ति में जप, ध्यान आदि प्रक्रियाओं की भांति 'समा' (संगीत) भी एक सशक्त माध्यम सिद्ध होता है।[217] 'समा' अथवा 'संगीत' तत्त्व को सूफ़ी संत 'जिक्र' का सर्वाधिक प्रचलित एवं क्रियात्मक रूप मानते हैं।[218] इस प्रकार सूफ़ियों के मत में समवेत स्वर से अथवा अकेले सस्वरमंत्र-पाठ के प्रभाव द्वारा भावा-विष्टावस्था की स्थिति को प्राप्त करना 'समा' है। सूफ़ी-दर्शन में 'समा' का उक्त अर्थ धीरे-धीरे विकास को प्राप्त हुआ, ऐसा कहा जा सकता है।

समा के सम्बन्ध में सामान्यतः ऐसा समझा जाता है कि जीव के ईश्वरोपासना में पूर्णतः लीन होने मर उसके अन्तस् में जो पाप-पुण्य का द्वंद्व छिड़ जाता है, साधक की उसी द्वन्द्वावस्था की स्थिति को समा कहा जाता है, किन्तु 'समा' के समस्त अंगों पर विचार करने पर विदित होता है कि यह एक प्रकार का संकीर्तन है। कहा जाता है कि किसी सूफ़ी भक्त-मण्डली में जब 'समा' का सुमधुर प्रयोग किया जाता है और कव्वाल अपनी कला का प्रदर्शन करता है, तब भक्तगण भावोद्रेक के कारण सचेत हो जाते हैं, उन्हें 'हाल' (ईश्वर में तादात्म्य अथवा पूर्णतः लीनावस्था की दशा) आ जाता है और 'इल्हाम' (देववाणी) भी होने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगता है।[219]

यह 'समा' की चरमावस्था है, जिसमें साधक को अपने लक्ष्य की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार, साधना पद्धति में 'संगीत' का विशिष्ट स्थान है।[220]

प्राचीन धर्मपुस्तक में अनेक संगीत-प्रिय नबियों का उल्लेख मिलता है।[221] एलीशा ने यहोवा की प्रसन्नता हेतु मन्दिर में संगीत का विधान किया था। दाऊद का महोवा के सम्पुट के सन्मुख नृत्य करने का उल्लेख मिलता है। सूफ़ियों के प्रेमगीतों का मुख्य वाद्य 'उग' नामक कहा जाता है, जिसका धात्वर्थ है, उत्कंठित करना, अतः भक्तों को उत्तेजित करने के लिए सूफ़ियों में प्रेमगीतों के गायन के साथ-साथ सुरा का भी प्रचार था।[222]

सूफ़ी-साधकों में कतिपय सम्प्रदाय 'समा' के पक्के प्रतिपादक हैं और कुछ विरोधी भी हैं। सूफ़ियों में अबू सईद[223] की समा पर गहन श्रद्धा थी। उसके अनुसार 'समा' विषय वासना-विनाशन हेतु एक अद्वितीय साधन है।[224]

इस्लाम में 'समा' की अधिक प्रतिष्ठा न होने पर भी सूफ़ी संतों ने इसे अंतर्दृष्टि खोलने में सशक्त साधन माना है। अलगज़ाली के अनुसार संगीत सुनने से हृदय पवित्र होता है और हृदय की शुद्धि परमज्योति अथवा आध्यात्मिक प्रकाश के लिए अनिवार्य है। संगीत की दिव्य शक्ति से हृदय, ईश-भक्ति में तल्लीनता हेतु वह अटूट शक्ति प्राप्त कर लेता है, जो कि उसके उपयोग पूर्व उसे प्राप्त न थी।[225]

जुन नून के अनुसार, एक श्रेष्ठ ध्वनि हृदय को ईश्वर की खोज के लिये प्रेरित करती है और मनुष्य को सत्य की ओर अग्रसर करने में एक सशक्त साधन बनती है।[226]

11वीं शताब्दी के प्रसिद्ध सूफ़ी दार्शनिक अल-हुजवीरी तथा अलगज़ाली ने संगीत से प्रभावित व्यक्तियों को दो श्रेणियों में विभक्त किया है, प्रथम भौतिक ध्वनि को सुनने वाले तथा द्वितीय उस ध्वनि का आध्यात्मिक अर्थ ग्रहण करने वाले।

सूफ़ी दार्शनिकों के अनुसार द्वितीय कोटि के भक्तों को स्वर तथा ताल गति सुनाई नहीं पड़ती और न ही उन्हें राग अथवा लय-गतियां सुनाई देती हैं, अपितु वे इससे भी उच्च कोटि का एक दिव्य संगीत सुनते हैं।[227]

वास्तव में 'समा' (संगीत) का प्रचलन, सूफ़ियों में बहुत पहले से रहा है और वह उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। कुछ संकीर्ण हृदय के मुस्लिमों ने इसकी निन्दा अवश्य की है और इसे गर्हित भी कहा है, किन्तु अनेक सम्प्रदायों में इसे अत्यंत महत्त्व मिला है। 'समा' को साधना के अंग के रूप में स्वीकार भी किया गया है।

कुरान में परमात्मा के महान् नाम को गाने का आदेश किया गया है।[228] हुजवीरी ने, जिनका समय 11वीं शताब्दी है, अपनी पुस्तक 'कश्फ़-अल-महजुब' में 'समा' के गुण-दोष दोनों पक्षों पर विचार किया है। उनके अनुसार 'समा' में कोई विषयगत दोष नहीं है, किन्तु उसके सदुपयोग पर ही उसका महत्त्व निर्भर है। हुजवीरी के मतानुसार यदि 'समा' से साधना में भावाविष्टावस्था की प्राप्ति हो सके, तभी वह ग्राह्य एवं अपेक्षित है। यदि उसका लक्ष्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनोरंजन-मात्र है, तब वह त्याज्य है।[229]

संगीत को धर्मानुमोदित सिद्ध करने के लिए अबू अब्दुल रहमान-अल-सुलमी ने अपनी पुस्तक 'किताब अल समां' में बहुत सी हदीसों का संग्रह किया है।[230] इस प्रकार स्पष्ट है कि अनेक सूफ़ी और दरवेश सम्प्रदायों ने 'समा' को न केवल अपनाया ही, अपितु साधना में एक विशिष्ट स्थान भी दिया। भारत में 'चिश्ती' सम्प्रदाय में इसे बहुत महत्त्व प्राप्त है।[231] इसके अतिरिक्त उलेमाओं के विरोध के बावजूद रिफ़ाई, मौलवी, बदावी, सादी तथा अशरफी सम्प्रदायों में इसे बहुत महत्त्व मिला है। उन्होंने धीरे-धीरे अनेक वाद्य यंत्रों को भी स्वीकार किया। रोज़ के अनुसार 'कादिरी' सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक अब्दुल कादिर ज़िलानी के उत्तराधिकारी साद शम्सुद्दीन ने साधना में आत्म-विभोर साधकों के लिए संगीत के साथ-साथ नृत्य को भी विहित माना है।[232] संकीर्तन से आनन्दित उन्मत्त सगुण भक्तों की भाँति संगीत, वाद्यादि के उपयोग से भावोल्लास उत्पन्न होने पर सूफ़ी साधक अकेले अथवा सम्मिलित रूप से नृत्य करते हैं, जिसे 'रक़्स' कहा जाता है। हुजवीरी के कथनानुसार नृत्य न धर्मानुमोदित है और न ही उसे सूफ़ी साधना में स्थान दिया गया है, किन्तु भावविभोरावस्था में जब हृदय अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव कर उन्मत्त हो जाता है, उस समय विहित-अविहित का कोई प्रश्न ही नहीं उठता तथा तब साधक का अहंभाव पूर्णतः तिरोहित हो जाता है, उसे अपने नृत्य करने का स्वयं भान भी नहीं होता, अतः इस उच्चदशा को नृत्य नहीं कहा जा सकता।[233]

सूफ़ी मत में भी तांत्रिकों की भांति नाद से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानी गई है। नूर मुहम्मद के अनुसार—

"है जेहि नाद जगत यह करो।"[234]

'समा' के सम्बन्ध में यह महत्त्वपूर्ण है कि सूफ़ी इसे एक सहज भाव का प्रकाशन मानते हैं, समस्त सौर मण्डल आकाश के रंगमंच पर 'समा' का सम्पादन कर रहा है। सृष्टि का कण-कण उसी के उल्लास में नृत्य कर रहा है। हमारा उल्लास व्यापक समा के सागर में शुक्ति सदृश है।[235] सूफ़ियों का विश्वास है कि सृष्टिकर्ता ने सृष्टि के सभी प्राणियों को अपनी-अपनी भाषा में उसका गुणानुवाद करने की सामर्थ्य प्रदान की है। इस प्रकार सृष्टि की समस्त ध्वनियां स्तुति वादन अथवा स्तुति गान का रूप हैं। परमात्मा ने जिन्हें आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान की है, वे सर्वत्र उसी मूल ध्वनि को सुनते हैं। इसी कारण वह लय, सुर से सम्पन्न संगीत का श्रवण कर अथवा वायु की स्वाभाविक ध्वनि, पक्षियों के कलरव आदि प्राकृतिक ध्वनियों के श्रुतिगोचर होते ही भावाविष्टावस्था को प्राप्त हो जाता है।[236]

सूफ़ी साधक यह भी मानते हैं कि जन्म ग्रहण करने से पूर्व, जब आत्मा परमात्मा से विलग न था, उस समय जीव ने जो स्वर्गीय संगीत सुना था, उसे इस संसार का संगीत जागृत कर देता है। उच्च कोटि का आध्यात्मिक संगीत सुनकर, मनुष्य इस भौतिक जगत् से ऊंचा उठकर उस अलौकिक स्वर्गीय संगीत को सुनने की योग्यता प्राप्त कर लेता है और उसे वही पूर्वभुक्त अभेदावस्था की प्राप्ति हो जाती है, फिर जब तक वह संसार में रहता है, पिंजरे में क़ैद पक्षी की भांति सांसारिक बन्धन से उन्मुक्त हो, अपने इष्टदेव से मिलन-हेतु छटपटाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहता है। उसकी कुप्रवृत्तियों एवं तुच्छ इच्छाओं का मूलोच्छेदन हो जाता है।[237]

इस प्रकार सूफ़ी मत में अनेक प्रकार से संगीत को उच्च स्थान दिया गया है।

सरोज, कुशेरी और हुजविरी 'समा' को अल्हड़ शिष्य के लिये हितकर नहीं मानते, किन्तु साधना पथ पर अग्रसर प्रौढ़ बुद्धि शिष्य के लिए वे कल्याणप्रद धार्मिक संगति को आत्म जागृति अथवा आत्मोत्थान का संबल माध्यम मानते हैं।[238]

दुल-नून-अल-मिस्त्री के अनुसार संगीत से उत्पन्न सहजानन्द हृदय को परतत्त्व की खोज के लिए प्रेरणा देने वाला एक दैवी दूत है और जो इसका आध्यात्मिक अर्थ ग्रहण करके इसे सुनता है, वह भगवान् को पा लेता है।[239]

अब्दुल हुसैन सर्राज़ के मतानुसार संगीत को सुनने से जो आनन्दानुभव होता है, सहजानन्द (वज्द) उसी की अभिव्यक्ति है और संगीत उन्हें उस उच्च स्थान पर ले जाता है, जहाँ सौन्दर्य का निवास है तथा उन्हें ईश्वर का चिंतन करने की क्षमता प्रदान करता है।[240]

समा के माध्यम से साधक के लिए 'हाल' (भावाविष्टावस्था, ईश्वर में तन्मयता) की अवस्था बहुत सुगम हो जाती है। 'समा' (संगीत अथवा नादानुसंधान) के अन्तर्गत सूफ़ी साधक ग़ज़ल तथा कव्वाली का गान करते हैं और इस प्रकार उक्त दोनों गायन-शैलियों के गायन द्वारा सूफ़ी संत अनेक साधकों को बड़ी सुगमता से हाल की अवस्था की प्राप्ति करवा देते हैं।

इस्लाम में भी 'समा' का पूर्णतः बहिष्कार नहीं है। 'वही' (समाधि) की दशा में स्वयं मुहम्मद साहब को घण्टी का सा कल निनाद स्पष्ट सुनाई पड़ने का उल्लेख मिलता है।[241]

कहा जाता है कि कुरान के सुमधुर सस्वर पारायण से मुहम्मद साहब मुग्ध हो जाते थे।

इस प्रकार 'समा' (संगीत) की प्रतिष्ठा इस्लाम में भी रही है और उसका प्रभाव भी सूफ़ी मत पर पड़ा हो, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।[242]

हठयोगियों के अनुसार जब साधक की प्राण-शक्ति का ब्रह्मरंध्र में संचार होता है तो उसे अनाहद नाद श्रुत होता है, सूफ़ी साधकों के भी इस कोटि के वर्णन मिलते हैं। मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' में सिंहलगढ़ को शिवलोक चित्रित करते हुए अनाहद नाद का वर्णन किया है—

'नव पौरी पर दशम दुआरा। तेहि पर बाज राज घरियारा।'[243]

अर्थात् नौ सीढ़ियों से ऊपर दशम द्वार (ब्रह्मरंध्र) में राजघड़ियाल अथवा अनाहत शब्द बज रहा है।

नूर मुहम्मद ने सिद्ध पुरुष को ही अनाहत नाद के श्रवण योग्य कहा है।[244]

परम तत्त्व के ध्यान का पूर्व रूप जाप है तो अन्तिम समाधि है। इस समाधि अवस्था में दशम द्वार खुलने पर प्रियतम का साक्षात्कार हो जाता है और इस मिलन की अवस्था में ब्रह्मरंध्र में 'अनहद' नाद कर्णगोचर होता है, फलतः सर्वत्र प्रकाश (ईश्वरीय) ही प्रकाश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दृष्टिगोचर होता है। उपनिषदों में भी इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं, जिनका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। 'पद्मावत' में रत्नसेन और पद्मावती के मिलन के प्रसंग पर मिलने वाला उक्तकोटि का वर्णन द्रष्टव्य है।

"आजु इन्द्र अछरी सों मिला। सब कविलास होहि सोहिला।
धरती सरग चहुं दिसि। पूरि रहे मसियार।
बाजत आवै मंदिर। जहँ होइ मंगलाचार।[245]

सूफ़ी संतों ने मिलन की इसी अवस्था को चरम लक्ष्य की सिद्धि माना है।

इस प्रकार सूफ़ी संतों की नाद-ब्रह्म की उपासना, उनके संगीत-प्रेम की द्योतक है। सूफ़ी मत पर हठयोग के प्रभाव के कारण सूफ़ी संतों ने नादानुसंधान के प्रसंग में हठयोगियों एवं कबीर, नानक, सुंदरदासादि ज्ञानाश्रयी शाखा के निर्गुणी कवियों की भांति सिंगी, नाद, किंगरी आदि अनेक वाद्य यंत्रों एवं 'पांचों सबद' आदि का भी खूब वर्णन किया है।[246]

मध्य युग में संगीत के क्षेत्र में बहु प्रचलित छः राग और छत्तीस रागिनी वाले राग-वर्गीकरण-सिद्धान्त का भी सूफ़ी भक्तों ने वर्णन किया है।[247]

मंदर, तूर, भेरी, झांझ, वंशी, वीणा, बीन, मृदंग आदि अनेक वाद्य यंत्रों का भी उन्होंने स्थान स्थान पर बड़ी तन्मयता से वर्णन किया है।[248]

सूफ़ी संतों में ग़ज़ल एवं कव्वाली इन दो गायन शैलियों का प्रचार रहा है, इसका उल्लेख हमने पीछे किया है।

सूफ़ी काव्य में रूबाई, मसनवी आदि छन्दों का प्रयोग विशेष हुआ है, संभव है, इन छन्दों का पहले कभी गायन में प्रचार रहा हो, किन्तु आज तो इनका छंदोगान के रूप में ही अस्तित्त्व एवं प्रचलन है। शुक्लजी ने जायसी के जीवनकाल में ही 'पद्मावत' के गायन के अत्यधिक प्रचार का उल्लेख किया है, किन्तु उक्त ग्रंथ का गायन रामचरितमानस एवं आल्हा-ऊदल की भाँति प्रबन्ध-गान के रूप में होता था अथवा किसी स्वतंत्र गायन-शैली में उसके गान का प्रचार था, इस सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं मिलता।

अस्तु, सूफ़ी मत में स्वीकृत संगीत के महत्त्व के सम्बन्ध में किए गए उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से यह संकेत अवश्य मिल जाएगा कि उक्त विचारधारा में संगीत का स्थान हमारी विवेच्य अन्य प्रमुख आध्यात्मिक धाराओं की तुलना में कम महत्त्व का नहीं और यह अनुमान करना भी सम्भवतः ग़लत न होगा कि ज्ञानाश्रयी शाखा के हमारे विवेच्य संत कवि मूलतः हठयोग एवं तांत्रिक दर्शन से प्रभावित होते हुए भी सूफ़ीमत में मान्य नादानुसंधान विषयक मान्यताओं से यत्किंचित् प्रभावित अवश्य थे अथवा यह भी संभव है कि हमारे प्रतिपाद्य निर्गुणी संतों के नादानुसंधान सम्बन्धी सिद्धान्तों से सूफ़ी संत प्रभावित हुए हों। उभय-दृष्टि से प्रस्तुत अध्याय के संदर्भ में सूफ़ी साधना-पद्धति में 'नाद' की प्रतिष्ठा का उक्त अल्प विवेचन महत्त्व रखता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ङ.) संतों की उपासना-पद्धति में नाद-साधना

नाद साधना द्वारा नाद ब्रह्म की सिद्धि ही संत दर्शन का मूल सिद्धान्त है। संगीतशास्त्र की भाँति संत दर्शन में नाद ही साधना का माध्यम अथवा साधन है और सिद्धि भी वही है। अर्थात् नाद, ब्रह्म का प्रकाशक और साक्षात् ब्रह्म, दोनों है।

संतों ने शब्दसुरतियोग, नादबिंदुयोग, अजपाजाप, नाम सुमिरन और कीर्तन आदि नादोपासना विधियों का अवलम्ब ग्रहण कर नादानुसंधान को प्रकृष्ट भक्ति मार्ग स्वीकार किया है, यद्यपि उक्त नादोपासनाविधियां दर्शन जगत् में संतों से बहुत पूर्व से ही बहु प्रचलित रही हैं, (जैसा कि हम पीछे दिखा आए हैं) अतः संतों पर पूर्ववर्ती प्रभाव तो निश्चय ही है, फिर भी उनकी सर्वथा मौलिक ब्रह्मोपासना विषयक उद्‌भावना के अनुरूप उनकी नादोपासना-पद्धति में भी एक अपूर्व नवीनता दृष्टिगोचर होती है।

संतों की अध्यात्म-साधना नाद योग (नादानुसंधान) के आधार पर प्रतिष्ठित है। नाद-ब्रह्म की धारणा भारतीय-दर्शन-शास्त्र में अति प्राचीन है। ऋग्वेद[249] में इसका बीज मिलता है। वेदों के अंतर्गत तीन प्रकार के अद्वैत सिद्धांत प्रचलित हुए हैं, विज्ञानाद्वैत, सत्ताद्वैत तथा शब्दाद्वैत।

इनमें विज्ञानाद्वैत और सत्ताद्वैत का प्रसार क्रमशः गौतम बुद्ध तथा शंकराचार्य ने किया और शब्दाद्वैत का भर्तृहरि ने।

भर्तृहरि ने अपने 'वाक्यपदीय' ग्रंथ के अंतर्गत शब्दाद्वैत सिद्धांत का विस्तृत वर्णन किया है, यद्यपि इस सिद्धान्त की व्याख्या ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्य संहिताओं उपनिषदों, पाणिनीय सूत्रों एवं कात्यायन के वार्तिक पतंजलि के महाभाष्य आदि अनेक ग्रंथों में की गई है, किन्तु भर्तृहरि ने ही सर्व प्रथम इसे शास्त्रीय रूप दिया है।

भर्तृहरि के पश्चात् भी उक्त विषय पर पुष्पराज, कैयट तथा नागेश भट्‌ट आदि 'विद्वानों' ने अपने ग्रंथों में विस्तृत विचार किया है, किन्तु भर्तृहरि का विवेचन ही सर्वाधिक मौलिक माना जाता है।

शब्दाद्वैत-मतानुयायियों के अनुसार 'स्फोट' रूप शब्द (प्रणव, ऊंकार या नाद) ही एकमात्र अद्वैत तत्त्व है और यह सम्पूर्ण जगत् उसी स्फोट रूप अद्वैत तत्त्व का परिणाम है।[250]

इस प्रकार शब्दाद्वैत मत में सृष्टि की उत्पत्ति स्फोट से हुई है। यह 'स्फोट' ओंकार, प्रणव अथवा नाद का पर्यायवाची है। संतों से पूर्व उपनिषद्, तांत्रिक-दर्शन हठयोग एवं सूफ़ीमत में भी जगत् का उद्‌गम 'ओंकार' 'शब्द या 'नाद' से माना गया है। तद्वत् संतकाव्य में भी 'ओंकार' से जगत्‌रचना के प्रतिपादक अनेक पद मिलते हैं—

'ऊंकार जग ऊपजै'[251]

'प्रथमहिं कीनौ (इ) ओंकारा। ताते भयो सकल विस्तारा।
जावत यह ही से ब्रह्मण्डा। सातों सागर अरु नव खंडा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चन्द सूर तारा दिन राती। तीनहुं लोक सृजे वहु भांती।
चारि बांनि करि सृष्टि उपाई। चौराशी लष जाति बनाई।
ब्रह्मा विष्णु सु सृजे महेशा। गण गंधर्व असुर सुर सेसा।
भूत पिशाच मनुष्य अपारा। पशु पक्षी जल थल संसारा।[252]
'राम नाम जपु एकंकारू।'[253]
'ओंकार एक धुनि एकै। एकै रागु अलापै।
एकादेसी एकु दिखावै। एको रहिआ बिआपै।'[254]
आदि ग्रंथ के मूल मंत्र का आदि शब्द ऊंकार ही है।[255]

शास्त्रों में इस 'ओंकार' अथवा शब्द की उत्पत्ति, शक्ति का शिव के साथ संयोग होने पर मानी गई है। शब्द की उत्पत्ति को स्पष्ट करने के लिये अब इस शक्ति की थोड़ी व्याख्या करते हैं।

'प्रत्येक शक्ति के दो रूप सम्भव हैं—गुप्त और प्रकट। जब तक किसी तत्त्व अथवा मनुष्य में स्वयं कोई शक्ति गुप्त रूप में रहती है, मनुष्य को उसका कोई ज्ञान नहीं हो पाता। वह उसी प्रकार अरूप और अगुण रहती है, जिस प्रकार क्रियावती शक्ति के संयोग से पहले शिव की शक्ति अव्यक्त, निर्गुण स्थिति में रहती है। जब शक्ति क्रियावती होती है, अर्थात् अभिव्यक्ति अथवा प्रकटावस्था में आने के समय उसकी अनेक धाराएं चतुर्दिक् फैलकर अपना मंडल बांधती हैं और ऐसी प्रत्येक धारा के साथ एक शब्द की धारा प्रवाहित होती है। सूर्य की किरणों के द्वारा जो सौर शक्ति वायुमण्डल में विकीर्ण होकर पृथ्वी पर उतरती है, उससे भी, ध्वनि उत्पन्न होती हैं, किन्तु हमारी श्रवणेन्द्रिय इस सूक्ष्म शब्द को ग्रहण करने में अशक्त है, अतः हम उसे सुन नहीं पाते, अन्यथा वह शब्द होता है अवश्य! श्रवणेन्द्रिय की भांति हमारी सभी ज्ञानेंद्रियों की गति सीमाबद्ध है। हम नेत्रों से जिस बल की बूंद को स्वच्छ और निर्मल पाते हैं, सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा हमें उसी जल बिंदु में कोटिशः कीटाणु विचरते हुए दृष्टिगत होते हैं। इसी प्रकार हमारे शरीर में विद्यमान आत्म शक्ति की धाराओं से भी अनेक ध्वनियां उत्पन्न होती हैं, किंतु हमारी स्थूल श्रवणेन्द्रिय उन्हें ग्रहण करने में असमर्थ हैं। साधना द्वारा अपनी सूक्ष्म और चेतन श्रवणेन्द्रियों को जागृत कर लेने पर मनुष्य अपनी इन आभ्यन्तरिक, अति-सूक्ष्म और चेतन ध्वनियों को सुनने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार अनाहद नाद का साधक अंतस् में निगूढ़ गुप्त रूप में विद्यमान अपनी दिव्य शक्तियों को जागृत अथवा प्रकट करने की साधना करता है। जब साधक को 'अनाहत नाद' नाम से दर्शन शास्त्र में अभिहित सूक्ष्म, चेतन शब्द कर्णगोचर होने लगते हैं, तब उसे अपने जीवन में दिव्यता का आभास होने लगता है, क्योंकि यह सृष्टि का एक नियम है कि प्रत्येक शब्द अपने उद्‌गम स्थान का प्रभाव लिये रहता है, अतः नाद साधक को श्रवण गोचर होने वाले अनहद नाद अपने मूल स्रोत स्थान (मूल नाद ओंकार, प्रणव या स्फोट) के गुणों से युक्त होने के कारण चेतन शब्द कहे जाते हैं और उनके प्रभाव से साधक चेतन तत्त्व (आदिनाथ ओंकार) की अनुभूति पाकर गद्‌गद् हो उठता है।[256] संक्षेप में यही है शब्द का विज्ञान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह 'शब्द' अथवा 'नाद' अव्यक्त परम-तत्त्व की अभिव्यक्ति सूचक का आदि शब्द है, जो पहले 'परा' शब्द के रूप में सूक्ष्म दशा में रहता है, फिर शक्ति के प्रकट होने पर 'अपरा' हो अनुभवगम्य बनता है। वही ब्रह्माण्ड व सृष्टि का मूल तत्त्व प्रणव अथवा ओंकार है, जिसका मानव शरीर में अवस्थित 'शब्द' प्रतिनिधित्व करता है, और जिसे बहिर्मुखता के कारण हम सुन नहीं पाते। इसका अनुभव कुण्डलिनी शक्ति के जागरण एवं प्राण-वायु के सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करने पर होता है।[257]

संतों ने शब्द की अनंत महिमा गाई है। गुरु अर्जुन के अनुसार एक 'शब्द' के साथ बँध जाने पर अथवा मन को केन्द्रित कर देने पर जीव का आवागमन का चक्कर सदा के लिये समाप्त हो जाता है।[258] दादू ने शब्द की अपार शक्ति का वर्णन करते हुये कहा है–

"सब्दैं ही सुषिम भया, सबदैं ही सहज समान।
सबदै ही निर्गुण मिलै, सबदै निर्मल ज्ञान।"[259]

अर्थात्, शब्द-साधना द्वारा ही मन सूक्ष्म होता है, शब्द द्वारा ही मनुष्य सहज में समा जाता है, शब्द से ही निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति होती है और शब्द से ही निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है।

गुरु नानक ने शब्द को भवजल से पार उतारने वाला और मन को लय करने का उत्तम साधन कहा है, अतः उन्होंने अवधू को पाखण्ड छोड़कर शब्द की साधना करने का उपदेश दिया है।[260]

हरि की प्राप्ति 'शब्द' के विचार द्वारा ही सम्भव है–

"पंच ततु मिलि काइआ कीनी, तिस महि राम रतनु लै चीनी।
आतम रामु, रामु हे आतम, हरि पाइए सबदि विचारा है।"[261]

इस 'शब्द' की चोट ऐसी है कि जब सतगुरु शब्द का तीर अपने शिष्य के हृदय में मारते हैं तो उसके प्रभाव से सारा तन बिंध ज़ाता है और वह साहेब के रंग में रंग जाता है–

"सतगुरु हो महाराज, मो पै साई रंग डारा।
सब्द की चोट लगी मेरे मन में, बेध गया तन सारा।
औषध भूल कछू नहिं लागै, क्या करे वैद बेचारा।
सुर नर मुनिजन पीर औलिया, कोई न पावै पारा।
साहब कबीर सर्व रंग रंगिया, सब रंग से रंग न्यारा।"[262]

'शब्द' कान में पड़ते ही अज्ञान नष्ट हो गया और वज्र कपाट की भांति सूक्ष्म ध्वनि, श्रुति में अवरोधक कर्ण की स्थूलता का अंत हो गया–

"सब्द सुनत संसा सब छूटा, श्रवन कपाट बजरथा तूटा।"[263]

यह शब्द-बाण सद्गुरु भक्त के मर्मस्थान में निशान बैठाकर ऐसा मार देता है कि दसों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिशाओं में भागने वाले मन की गति ही पंगु हो जाती है। रोम-रोम से राम-राम की ध्वनि उठने लगती है।[264]

यह शब्द-रूप किंगरी घट-घट में बजती रहती है, किन्तु किन्हीं विरलों को ही इसका ज्ञान हो पाता है और वह भी गुरुगम्य है। अर्थात् गुरु की कृपा द्वारा ही संभव है, अतः नानक का आदेश है कि हरि नाम कभी विस्मृत न हो क्योंकि शब्द-साधना द्वारा ही भवमुक्ति संभाव्य है।

"घटि घटि बाजै किंगुरी, अनदिनु सबदि सुभाइ।
बिरले कउ सौम्मी पई, गुरुमुखि मनु समुझाइ।
नानक नामु न बीसरे, छूटे सबदु कमाइ।[265]

दादू ने शब्द की गुणावली का निम्नलिखित ढंग से वर्णन किया है–

'सबदैं बंध्या सब रहे, सबदें ही सब जाय।
सबदैं ही सब ऊपजै, सबदैं सबै समाय।
सबदैं ही सचु पाइये, सबदैं ही संतोष।
सबदैं ही अस्थिर भाया, सबदैं ही भागा सोक।
सबदैं ही सूषिम मया, सबदैं सहज समान।
सबदैं ही निर्गुण मिलै, सबदैं निर्मल ज्ञान।
सबदैं ही मुकता मया, सबदैं समझै प्राण।
सबदैं ही सूझै सबै, सबदैं सुरझै जाण।
एक सबद सों ऊनवै, वर्णन लागै आह।
एक सबद सौं वीखरै, आप आप कों जाइ।
सबद बाण गुर साध के, दूरि दिसंतर जाइ।
जेहि लागे सो ऊबरे, सूते लिये जगाइ।"[266]

सुन्दरदास के अनुसार जिस प्रकार आकाश से शब्द पृथक् नहीं होता, (शब्द, आकाश का गुण है) उसी प्रकार अंतःकरण में भी विचार करना चाहिए।[267] कबीर कहते हैं–

"कबीर सबद सरीर में, बिनि गुण बाजै तंति।
बाहरि भीतरि रमि रह्या, ताथैं छूटि भरंति।[268]

शब्द की अंतःकरण में विद्यमानता का ज्ञान हो जाने पर साधक, शब्द का ज्ञान कराने वाले सद्गुरु के चरण पकड़ लेता है और इस प्रकार परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।[269]

गुरु अर्जुनदेव ने तो इस ब्रह्म-मिलापक शब्द तत्त्व को गुरु कहा है, जिसमें मन पूर्णतः लीन हो जाने पर नाम-निधान की प्राप्ति हो जाती है।[270] अतः नानक एकमात्र शब्द में लौ लगाने वालों पर बलिहारी हैं–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"नानक तिनकै सद बलिहारी। जिन एकु सबदु लिव लाई॥"[271]

इस प्रकार संत काव्य में शब्द की अनंत महिमा मिलती है। शब्द अथवा 'नाद' के शास्त्रों में दो भेद कहे गए हैं—आहत और अनाहत।[272]

आहत शब्द वह है, जो आघात अर्थात् दो तत्त्वों से घर्षण से उत्पन्न हो और अनाहत वह है, जो आघात के बिना अर्थात् स्वतः ही उत्पन्न हो, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है।

अनाहत नाद के लिए 'संगीत मकरंद' में कहा गया है—

"आकाशसंभवो नादौ यः सो ऽनाहतसंज्ञितः।
तस्मिन्नहते नादे विरामं प्राप्य देवताः।"[273]

अर्थात् वह अनाहत नाद बिना आघात के सहज ही उत्पन्न होता है। उसे केवल योगीजन ही सुनते हैं और उसके द्वारा मुक्ति पाते हैं।

अनाहत नाद को सुनने के लिए जिज्ञासु को अंतर्मुखी होना पड़ता है। इंद्रियों का बाह्य विषयों से संचार रोकना होता है। कबीर ने इस संबंध में कहा भी है—

"आंख कान मुंह बंद कराओ। अनहद झिंगा नाद सुनाओ।" तथा—
"मूंद लिए दरवाजे। बाजिले अनहद बाजे।"

अर्थात् अंतर्मुखी होने पर तथा इंद्रियों की प्रवृत्ति बाह्य विषयों की ओर से पूर्णतः निरुद्ध कर लेने पर ही अंतस्थ अनहद नाद को सुना जा सकता है।

जिस आभ्यंतरिक ध्वनि को सुनकर मन लय को प्राप्त हो जाता है, वह अनहद नाद है। हरि की कथा सुनकर भक्त का ही नहीं सामान्य व्यक्ति का मन भी लय को प्राप्त हो जाता है, अतः गुरु नानक ने हरि कथा को 'अनाहद वाणी' कहा है। गुरुवाणी को भी इसीलिये गुरुजी ने नाद कहा है, क्योंकि वह नाद-रूप ब्रह्म का ज्ञान करवाती है।

प्राण का ब्रह्मरंध्र में प्रवेश होने पर अनहद नाद श्रुत होता है और साधक का मन तज्जन्य आनन्द में सराबोर हो जाता है—

'मनवा जाइ दरीबे बैठा, मगन भया रसि लागा।
कहै कबीर जिय संसा नाहीं, सबद अनाहद बागा।'[274]

गुरु नानक योगी को आडम्बर मात्र के प्रतीक बाह्य साधनों का त्याग कर अनहद नाद रूप सच्चे योग की साधना करने का आदेश देते हैं—

"जोगु न खिंथा जोगु न डंडे, जोगु न भसम चढ़ाईऐ।
जोगु न मुंदी मूंड मुंडाईऐ, जोगु न सिंगी वाईऐ।
अंजन मांहिं निरंजन रहीऐ, जोग जुगति इव पाईऐ।

$ $ $ $

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सतिगुरु मेटे ता सहसा टूटै, धावतु बरजि रहाईअै।
निझरु झरे सहज धुनि लागै, घर ही परचा पाईअै।
$ $ $ $
नानक जीवतिआ मरि रहीअै, ऐसा जोगु कमाईअै।
बाजै बाझहु सिंगी बाजै, तउ निरभउ पदु पाईअै।'[275]

इस अमृतमय अनहद नाद का व्यष्टिगत स्थान, यह मानव-देह है और इस वर्णनातीत दिव्य-नाद का समाधि-अवस्था में ही सुन पड़ना संभव है—

'नउ निधि अंमृत प्रभु का नामु, देही महिं इसका विस्राम।
सुन्न समाधि अनहत तहं नाद, कहनु न जाई अचरज बसमाद।'[276]

जब यह अनाहद रूपी सूर्य हृदय में प्रकाशित हो जाता है तो दीपक के समान प्रज्वलित वासनाएँ क्षार हो जाती हैं, जीव का सहज रूप परमपद में प्रवेश पा जाता है, किन्तु इस उच्चस्थिति की प्राप्ति गुरु की कृपा का ही फल है—

"जह अनहत सूर उजारा, तह दीपक जलै छंछारा।
गुरु परसादी जानिआ, जनु नामा सहज समानिआ।'[277]

इस अनहद नाद की महिमा निराली है, सभी साधनों का बहिष्कार कर, सभी सीमाओं को लांघकर इस चेतन नाद की स्थिति है।[278]

साधक को अनहद नाद की आनंदानुभूति के प्रतीक अनेक प्रकार के मधुर वाद्यों की ध्वनियाँ ब्रह्मरंध्र में सुनाई पड़ती हैं। ढोल, दमामा, भेरी, मंदल, वेणु, वीणा, मृदंग , तूर्य, किंगरी, निशान आदि वाद्ययंत्रों की ध्वनियों का संतों ने उल्लेख किया है।[279]

संतकाव्य में नादानुसंधान के प्रसंग में 'पांच शब्दों' की भी अनेक स्थलों पर चर्चा मिलती है—

"पंच सबद धुनि अनहद बाजे,
हम घरि साजन आये।"

इन पाँच सबदों का सम्बन्ध अनेक विद्वानों ने तत, वितत, घन और सुषिर आदि पांच प्रकार के वाद्यों की ध्वनियों के साथ जोड़ा है, किन्तु निर्गुण संतों के उक्त 'पांच शब्द' सम्भवतः अनहद नाद के पांच स्तरों के प्रतीक हैं।

नादानुसंधान के प्रसंग में संतों ने पांच 'सबदों' शब्द के अतिरिक्त भेरी, मंदल, दमामा, ढोल, वेणु, किंगरी, तूर, सिंगी, नाद, ताल, बांसुरी, जंत्र, बीन आदि अनेक वाद्यों का उल्लेख किया है, किन्तु जिस प्रकार तंत्रों, उपनिषदों और हठयोग के ग्रंथों में नादानुसंधाता योगी को कर्णगोचर होने वाले स्थूल एवं सूक्ष्म नादों के वर्णनों में तारतम्य मिलता है, उस प्रकार संतों के तद्विषयक उल्लेखों में न तो स्थूल एवं सूक्ष्म वाद्य-ध्वनियों का तारतम्य ही है और न ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनकी निश्चित संख्या है। सुन्दरदास ने 'ज्ञानसमुद्र' ग्रंथ में, 'नाद वर्णन' के अन्तर्गत साधक को सुनाई पड़ने वाले दशविध अनहद प्रापक नादों का क्रमानुसार वर्णन किया है।[280] जिनमें स्थूलता एवं सूक्ष्मता की दृष्टि से कोई क्रम नहीं मिलता।

संतों के द्वारा उल्लिखित 'पांच सबदों' का भी किन पांच वाद्य-ध्वनियों से आशय है, इस सम्बन्ध में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

संतों की 'बानियों' में नादानुसंधान सम्बन्धी स्थलों पर 'शून्य' शब्द का प्रचुर प्रयोग मिलता है। इस शब्द का प्रयोग संतों ने हठयोगियों द्वारा प्रचलित अर्थ में ही किया है और उन्होंनें सामान्यतः ब्रह्मरंध्र तथा सहस्रार के लिए उक्त शब्द का प्रयोग किया है, जहाँ कि योगी की विभिन्न अनहद प्रापक नादों अथवा नादब्रह्म (उपेयस्वरूप नाद) की अनुभूति होती है। दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

"सुनि मंडल में मंदला बाजै, तहां मेरा मन नाचै।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमना काछै।"[231]

सहजि सुंनि में जिनि रस चाष्या, सतगुरु में सुधि पाई।
दास कबीर इहि रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई।[282]

संतों की शब्द साधना के प्रसंग में 'शब्द सुरतियोग' का सिद्धांत बहुत प्रसिद्ध है। यह संतों के प्रमुख सिद्धांत के रूप में ख्यात है। 'सुरत' को शब्द रूप ब्रह्म अर्थात् नादब्रह्म में लय कर देना ही 'सुरतशब्द योग' कहलाता है।[283]

वास्तव में 'सुरति' उपनिषदों का 'उपायस्वरूप' नाद है और 'निरति' उपेयस्वरूप' नाद है। साधक को साधकावस्था में सुनाई पड़ने वाले नाद 'सुरति' अर्थात् उपायस्वरूप नाद की अवस्था के द्योतक हैं तथा सिद्धि (नादसिद्धि) अवस्था में कर्णरंध्रगत होने वाला ब्रह्म प्रणवनाद 'निरति' अथवा उपेयस्वरूप' नाद का वाचक.है। संतों ने उक्त दोनों शब्दों को हठयोगियों के अर्थ में ही ग्रहण किया है।

डॉ. त्रिगुणायत ने 'चित्त की शब्दोन्मुखी' अवस्था को सुरति और चित्त की निरालम्ब अवस्था को 'निरति' कहा है।[284] हम भी डॉ. त्रिगुणायत के उक्त मत से सहमत हैं।

सुरति रूप उपायस्वरूप नाद को निरति रूप उपेयस्वरूप नाद में लीनकर शब्द-ब्रह्म का साक्षात्कार करना ही 'शब्द सुरतियोग' का लक्ष्य है।[285] अब इस अर्थ की प्रामाणिकता हेतु संतों के निम्नलिखित पद ध्यातव्य हैं–

"सुरति ढीकुली लेजल्यौ, मन नित ढोलणहार।
कंवल कुवां मैं प्रेम रस, पीवै बारम्बार।[286]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"देवै किरका दरद का,टूटा जोड़ै तार।
दादू साधै सुरति कूं, सो गुर पीर हमार।"[287]
"सुरति समानी निरति में, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तव खुले स्वम्भू दुआर।"[288]

"जैसे पानी लौन मिलावै,
ऐसे ध्वनि महिं सुरति समावै।"[289]

जैसे जाप "अजपा' में समा जाता है, उसी प्रकार सुरति निरति में समा जाती है--

"सुरति समांणी निरति मैं, अजपा माहैं जाप।
लेख समांणां अलेख में, यूं आपा माहैं आप।"[290]

इस प्रकार संतों ने सुरति-निरति शब्दों का प्रयोग हठयोग में मान्य अर्थों में ही किया है जैसा कि पीछे कहा जा चुका है। तांत्रिक दर्शन एवं उपनिषदों में इन शब्दों का व्यवहार नहीं हुआ। संभवतः गोरखनाथ आदि योगियों ने ही सुरति शब्द के मैथुन-परक अर्थ का बहिष्कार (नादानुसंधान के प्रसंग में) और नादपरक अर्थों को प्रचलित कर उक्त शब्द का उदात्तीकरण किया है, और उसी के अनुकरण पर सुरति से ऊंची अवस्था के बोध हेतु 'निरति' शब्द का व्यवहार किया। संतों ने उक्त शब्दों को सामान्यतः इन्हीं अर्थों में ग्रहण कर लिया।[291]

संतों ने 'सुरति' शब्द को ऐसी दुलहिन के रूप में भी प्रस्तुत किया है, जो अपने दूल्हा-परमात्मा से मिलने के लिये आतुर हो नामस्मरण के साधन से अनहद शब्द के साथ गंठ-बंधन जोड़ रहती है।

इस प्रकार संतों ने भक्ति मार्ग के कीर्तन तथा ज्ञान मार्ग के अनहदनाद का सामंजस्य कर सर्वसाधारण के लिये एक सरल मार्ग का प्रवर्तन किया।

सुरति-निरति की भांति संतों ने नाद-बिंदु शब्दों का प्रयोग भी हठयोगियों के अर्थ में ही किया है।

नाद, बिंदु एक ही हैं। 'बिंदु' नाद का क्रियाशील रूप है तथा 'नाद' प्रायः शब्द कुण्डलिनी के जागृत होने पर मूलाधार से उठने वाली ध्वनि के लिये प्रयुक्त होता है तथा 'बिंदु सहस्रास्थ अंतर्ध्वनियों के लिये। इस विषय का स्पष्टीकरण हम 'हठयोग में संगीत' शीर्षक आलेख में कर चुके हैं।

संतों ने नादबिंदु साधना को बहुत महत्त्व दिया है। कबीर के अनुसार नाद बिन्दु में ध्यान या चित्त को लीन कर देने पर परम पद की प्राप्ति हो जाती है।[292]

"नाद" शब्द का पर्याय होने के कारण "बिन्दु" वह तत्त्व है, जिसके द्वारा अव्यक्त व्यक्त के रूप में आया और सृष्टि की रचना हुई। वही नाद मानव शरीर में व्यष्टि रूप में

—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्तमान है और हमारे शरीर में इसकी विद्यमानता परमात्म तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि इसकी साधना बहुत कठिन है, परन्तु एक बार सिद्ध कर लेने पर योगसिद्धि मिल जाती है।[293] चाहे नाद में बिंदु की स्थिति मानी जाये अथवा बिन्दु में नाद की, नाद बिंदु की साधना से गोबिन्द की प्राप्ति हो जाती है।[294] अतः कबीर ने अवधूत को बाह्याडम्बरों को तजकर मानव देह में स्थित इस नाद बिन्दु की साधना का उपदेश दिया है।[295] कबीर कहते हैं कि नाद बिंदु के भी लीन हो जाने पर परब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है।[296] यद्यपि 'संतों की नाद-बिंदु-साधना पर तांत्रिक एवं हठयौगिक प्रभाव स्पष्ट है, किंतु उनकी साधना केवल ज्ञान मार्ग से बोझिल नहीं है, उसमें भक्ति की रसार्द्रता भी विद्यमान है–

"नाद बिंदु की नाव री, राम नाम कनिहार।
कहै कबीर गुण गाह ले, गुरु गमि उतरै पार।"[297]

कबीर ने स्पष्ट कहा है कि भक्ति भाव के बिना मात्र बिन्दु साधना के आधार पर परम गति पाना उसी प्रकार असम्भव है, जिस प्रकार खुसरे का काम नाचना, गाना होने पर भी उसके लिए परमपद की प्राप्ति असम्भव है।[298]

संतों ने "नादबिंदु मिलन" योग को भी हठयोगियों के ही अर्थ में ग्रहण किया है।

कहते हैं ब्रह्मरंध्र से उल्टी और विकसित सहस्रार के मध्य स्थित किसी चंद्राकार बिन्दु से एक मंद स्राव हुआ करता है, जिसे 'अमृत' कहते हैं और जो ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता हुआ मूलाधार के सूर्याकार स्थान तक आकर सूख जाता है, किन्तु यदि इसे अभ्यास द्वारा ऊपर ही रोक लिया जाए और इसका रसास्वादन किया जाए तो उसे अमरत्व मिल सकता है। यह रुकावट तब हो पाती है, जब अभ्यास द्वारा निम्न स्थित सूर्य का ऊर्ध्व स्थित चन्द्र के साथ मिलन करा दिया जाए, इसे ही 'नाद बिन्दु का मिलन' कहा जाता है।

निर्गुण संतों ने गोरख आदि अवधूतों के अनुकरण पर ही नाद-बिंदु-मिलन का वर्णन किया है। कबीर कहते हैं कि चंद्र और सूर्य का मिलन होने पर अनहद बाजा बज उठता है और परमपद की प्राप्ति हो जाती है–

"ससिहर सूर मिलावा, तब अनहद बेन बजावा।
जब अनहद बाजा बाजै, तब सांई संग बिराजै।"[299]

सुन्दरदास के अनुसार चन्द्र और सूर्य की गति उलट देने पर, सुषुम्ना में प्राण का संचार हो जाता है, और इस प्रकार नाद-बिंदु का गठबंधन (मिलन) हो जाने पर, मानव-देह अमरत्व को प्राप्त कर लेती है–

"चन्द सूर दोऊ उलटि अपूठा, सुषमनि के घर लीजै।
नाद बिन्द जब गांठि परै तब, काया नैंकु न छीजै।"[300]

संतों के नादानुसंधान के अन्तर्गत मन्त्रयोग का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुंदरदास ने इसका शास्त्रीय वर्णन भी किया है।[301]

मंत्रयोग का स्वरूप हम पीछे दिखा चुके हैं। यहां संतों के मंत्रयोग पर पूर्ववर्ती दर्शनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का प्रभाव एवं मौलिकता का दिग्दर्शन कराना ही अभीष्ट है।

संतों का मंत्रयोग सहजयोग के नाम से भी प्रसिद्ध है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

'सहजे चूप सहजे ही जपना।''[302] सहज सुभाइ बोलै हरिबाणी।''[303] अर्थात् सहज ही मौन रहकर जाप करना है तथा सहज स्वभाव ही हरिनाम का उच्चार करना है। दादू कहते हैं—

''दादू सबद अनाहद हम सुन्या, नषसिख सकल सरीर।
सब घट हरि हरि होत है, सहजें ही मन थीर।''[304]

संतों की सहज साधना का प्राणभूत तत्त्व है, नामजप और संतों के इस सुमिरन को हम मंत्रयोग भी कह सकते हैं।[305] मंत्रयोग की व्याख्या संत कवियों ने सोहं, हंसा आदि स्वाभाविक बीजमंत्रों के अतिरिक्त श्वास-प्रश्वास के साथ हरि गुणगान के आधार पर भी की है—

''सोहं हंसा ताकौ जाप, ताहि न लिपै पुन्य न पाप।''[306]

''मन सी न माला कोउ, सोहं सों न जाप और आत्मा सों देव नहिं देह सों न देहरा।''[307]

''श्वासोश्वास रात दिन सोहं सोह होय जाप,
यही माला बार दृढ़ के धरत हैं।
देह परे इंद्री परे अंतःकरण परे,
एक ही अखण्ड जाप ताप को हरत है।''[308]

''सोहं हंसा एक समान, काया के गुण आनहिं आन।''[309]

''जैतै सास ग्रास मनु लेता। तेते ही गुन गाईअ।''[310]

अर्थात् मनुष्य जितने श्वास-प्रश्वास लेता है, उन्हीं के संग-संग उतने ही हरि गुणों का गान करना चाहिये।

''सा मति दीजै जितु तुधि धिआई। सास सास तेरे गुण गावां।
ओट नानक गुर चरणा जीउं।''[311]

अर्थात् हे हरि, मुझे वह बुद्धि दीजिये, जिससे कि मैं तुम्हारा सुमिरन करूं और श्वास प्रश्वास के साथ-साथ तेरे गुणों का गान करूँ।

अजपा जाप का मंत्र योग से घनिष्ठ सम्बन्ध है। संतों ने अजपा जाप को महामंत्र कहा है। बीजमंत्र की सहज रूप में परिणति ही अजपाजाप है। तांत्रिक ऋषियों के मतानुसार मनुष्य 24 घंटे में 21, 600 बार श्वास लेता है, इस श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया के साथ 'हंसमंत्र' का स्वाभाविक उच्चार होता रहता है, यही सहज जप 'अजपा' है। इस अजपाजाप में भगवन्नाम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वदा सहज ही निस्पंदित होता रहता है, मानो यह शरीर परमेश्वर का नाम कीर्तन किया करता है। इस शरीर का प्राणन् व्यापार, भगवन्नाम ही उसकी जीवंत शक्ति है। श्वास-प्रश्वास से हरि नाम उद्गत एंव प्रकाशित होकर जीव को यह सूचना देता है कि रोम-रोम में हरि का वास है।[312]

संतों की निर्गुण भक्ति में सभी आडंबरपूर्ण बाह्य साधनों का बहिष्कार है, अतः उन्होंने अजपाजाप का बड़ी तल्लीनता से वर्णन किया है और इसे अपने सहजयोग में स्थान दिया है।

कबीर के अनुसार अजपाजाप को आभ्यंतर में सुनकर ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है और रामनाम से तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित होता है।[313]

अजपा वह साधन है, जिसमें जिह्वा, माला अथवा किसी भी बाह्य प्रयत्न की अपेक्षा नहीं रहती और मन, पवन सहज में ही स्थिर हो जाते हैं। तुच्छ वासनाएं शमित हो जाती हैं और अनहदनाद की उपलब्धि द्वारा अमर लोक की प्राप्ति हो जाती है, अतः संतों ने इसे 'सहज धुन' भी कहा है–

'जाप अजपा सहज धुन, परख गुर गम धारिए।
मन पवन थिर कर शब्द निरखे, कर्म मन्मथ मारिए।
होत धुन रसना बिना कर, माल बिन निर्वारिए।
सब्द सार विदेह निरखत, अमरलोक सिधारिए।'[314]

यह अजपा रूप किंगरी सहज स्वाभाविक रूप से घट-घट में बजती रहती है, किन्तु सुयोग्य गुरु के मार्गदर्शन बिना इसका ज्ञान नहीं हो पाता, अतः नानक कहते हैं कि कभी भी हरि नाम का विस्मरण नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस सहज शब्द अथवा नाद अजपा के ज्ञान द्वारा भवबंधन से मुक्ति मिल सकती है।

'घटि घटि बाजै किंगुरी, अनदिनु सबदि सुभाई।
बिरले कउ सोझी पई, गुरमुखि मनु समुझाइ।
नानक नामु न बीसरै, छूटै सबद कमाइ।'[315]
सुंदरदास ने इसीलिए कहा है, ''जाप वही जपिए अजपा।''[316]

संतों ने इस प्रकार जप-साधना को नादानुसंधान के अंतर्गत बहुत महत्त्व दिया है, किन्तु उन्होंने एक लाख बीस हज़ार की श्वास-प्रश्वास की संख्या का उल्लेख बहुत कम किया है। उन्होंने प्रणव या ओंकार के अजपाजाप के स्थान 'पर' सो हं' तथा 'राम' नाम को अजपा बीजमंत्र के रूप में ग्रहण करने का आदेश दिया है और उसे बहुत महत्त्व दिया है।[317]

राम-मंत्र में निष्ठा के सम्बन्ध में सुंदरदास का निम्न दोहा द्रष्टव्य है।

''राममंत्र सबके सिरमौरा। ताहि न कोई पूजत औरा।
राममंत्र सब महिं ततसारा। और आहि जग के व्यौहारा।'[318]

संत कवियों की नाद-साधना के अंतर्गत उनकी कीर्तन-निष्ठा का विशेष महत्त्व है। ब्रह्म के नाम, रूप, गुण और चरित आदि का श्रद्धाभाव से गान करना 'कीर्तन भक्ति'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहलाता है।[319]

निर्गुण संतों ने सगुण भक्तों की ही भांति बड़े गद्गद् हृदय से कीर्तन भक्ति को अपनाया है। संत नामदेव, कबीर, नानक, गुरु अर्जुन आदि संतकवियों की कीर्तन-निष्ठा सुप्रसिद्ध ही है। संकीर्तन द्वारा परमपद की उपलब्धि में संतों का अटूट विश्वास था, पुष्टि हेतु कुछ उद्धरण नीचे दिए जाते हैं।

"मिलि हरि जसु गाइए हां। परमपदु पाइए हां।"[320]

"करि करि तनु मन सीतल भए। जनम जनम के किलविख गए।

\+ \+ \+ \+ \+

साध संगि हरि गाईऐ। कहु नानक वडभागी पाईऐ।"[321]

"नानक सुखु पाइआ हरि कीरतनि। मिटिऔ सगल कलेसा।"[322]

"गीत नाद कीरतन गावंता जीअ। हरि निरभिउ नाम छिपाई जीअ।"[323]

"दिन भी गावउ, रैनी गावउ। गावउ ससि ससि रसना री।"[324]

"गाइ गाइ रस लीन भये हैं, कछू न मागैं संत जनां।

\+ \+ \+ \+ \+

दादू मगन रहैं रसमाते, ऐसें हरि के जन जीवैं।"[325]

"भगति भजन हरि नाउं है। दूजा दुक्ख अपार।"[326]

"आठ पहरि गोविंद गुण गाईऔ। बिसरु न कोई सास जीउ।"

(आ. ग्रं., पृ. 108)

अर्थात् एक श्वास भी खाली मत जाने दो, आठों पहर गोविंद के गुण गाओ।

"ऊठत बैठत हरि हरि गाईऔ। जिसु सिमरत वरु निहचल पाईऔ।"

(वही, पृ. 109)

अर्थात् उठते बैठते, हर घड़ी हरिनाम का गान करो,उसके सुमिरन से निश्चित ही प्रिय मिल जाएगा।

"नानकदास कीय प्रभि अपुने। हरि कीरतन रंस गाके जीउ।"

(वही, पृं. 106)

अर्थात् नानक ने प्रभु को हरि कीर्तन के रंग में रंगकर अपना बना लिया है। कबीर का अटूट कीर्तन प्रेम निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है।

"हज्ज हंमारी गोमती तीर, जहां बसै पीताम्बर पीर।

बाहु बाहु क्या खूब गावता है, हरि का नाम मेरे मन भावता है।"[327]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरि-कीर्तन के रस में पगे संत नामदेव कहते हैं,

'मोहि लागति ताला-बेली, बछरै बिनु गाय अकेली।
पानिआ बिनु मीन तलफे, ऐसे राम नाम बिनु बापुरो नामा।'[328]

इस प्रकार संतकाव्य में संतों की हरिकीर्तन के प्रति अचल निष्ठा व्यक्त हुई है।

हमारे शास्त्रों में स्पष्ट रूप से घोषणा की गई है कि नामोपासना अथवा भगवन्नाम के जप के अतिरिक्त मन को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करने का अन्य कोई उपाय नहीं है। भगवान् के नाम का कीर्तन एवं उनके गुणों का भजन भगवच्चरणों में मन की पूर्ण लीनावस्था का श्रेष्ठतम साधन है।[329]

नाम संकीर्तन एक प्रकार का योग है। योग साधना का लक्ष्य है, बहिर्मुखता का उन्मूलन कर मन को भगवच्चरणों में एकाग्र करना। मन की एकाग्रता के लिए संगीत से बढ़कर कोई साधन नहीं है। इसीलिये हमारे यहां संगीत को अध्यात्मसाधना का अभिन्न अंग माना गया है। निर्गुणी, सगुणी, सूफ़ी सभी प्रकार के भक्तों ने इसे निर्द्वन्द्व भाव से स्वीकार किया है और भगवान् के नाम-सुमिरन का अनंत यश गाया है।[330]

भगवन्नाम सुमिरन की क्रिया और हम त्रिधा विभाजित कर सकते हैं—

(1) जाप—जो कि बाह्य क्रिया होती है। कीर्तन इसी के अंतर्गत आएगा।

(2) अजपाजाप—साधना की वह उच्चतम दशा जिसमें साधक बहिर्मुखता का पूर्णतः त्याग कर, आभ्यंतरिक जगत् में लवलीन हो जाता है और जप क्रिया (किसी भी बीजमंत्र की) निष्प्रयास एवं स्वयमेव (autamatic) ही होती रहती है।

(3) अनाहत नाद साधना—जिसमें साधक की चित्त वृत्ति अनहद (घर्षणहीन, अखण्ड) नाद में नीर-क्षीर की भांति तदाकार हो जाती है और वह आत्म स्वरूप में पुनः प्रतिष्ठित होता है। अनाहत नाद के भी विलय हो जाने पर शब्दातीत अवस्था का आविर्भाव होता है, जोकि अमरत्व की अवस्था क़ही जाती है।[331]

"जाप मरे अजपा मरे, अनहद हू मरि जाइ।
सुरति समानी शब्द में, ताहि काल नहिं खाई।"[332]

संतों की नाद-साधना में जाप की उक्त तीनों कोटियों को स्थान मिला है। जप (बाह्य क्रिया) की परिणति अजपा (आभ्यन्तर जप) में अनिवार्य है और एक अखण्ड, ज्योतिर्मय (ऊं) अनहद नादविश्रुति हेतु अजपा की भी लयावस्था तक पहुंचना निर्गुण संतों के नादयोग का लक्ष्य है।

संतों ने तंत्रों में वर्णित वाक् चतुष्टय का वर्णन प्रायः नहीं किया। सुन्दरदास के काव्य में एक स्थान पर चतुर्वाक् का लक्षण मात्र मिलता है।[333]

इस प्रकार सुरति-निरति, नाद-बिन्दु, मंत्रयोग तथा अजपाजाप आदि नादानुसंधान के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभिन्न साधना प्रकारों की दृष्टि से हमने पीछे देखा कि संतों की नादोपासना पद्धति पर तंत्रों और उपनिषदों की अपेक्षा हठयोग का अधिक प्रभाव पड़ा है। किंतु यहां एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि अपनी उपासना पद्धति की विशिष्टता के अनुरूप संतों ने (नादानुसंधान के प्रसंग में भी) हठयौगिक प्रभाव के साथ-साथ सगुणोपासना में नादानुसंधान के स्वीकृत तत्त्वों कीर्तन आदि का भी यथासंभव ग्रहण एवं समन्वय किया है। यथा–

"कीरतन निरमोलक हीरा। आनंद गुणी गहीरा।
अनहद वाणी पूंजी। संत हथि राखी कूंजी।"[334]

योग के साथ-साथ भक्ति तत्त्व का समाहार भी संतों के नादयोग से सम्बन्धित पदों में मिलता है–

"नाद व्यंद की नाव री, राम नाम कनिहार।
कहै कबीर गुंण गाइ ले, गुर गंमि उतरौ पार।"[335]

पिछले अध्याय में हम दिखा चुके हैं कि संतों का सगुण भक्ति पद्धति से कोई विरोध नहीं है, अपितु सगुणोपासना से उनकी उपासना-पद्धति का अन्तर मुख्यतः बाह्याचारमात्र के निषेध से एवं ज्ञान के साथ भक्ति की समान महत्ता स्वीकार करते हुए भी, ज्ञान तत्त्व की प्रमुखता दिखाने से माना जा सकता है, तद्वत् नादानुसंधान के क्षेत्र में भी इन दोनों अध्यात्म-धाराओं में अन्तर उपर्युक्त दो तत्त्वों के आधार पर लक्षित होता है, जिसका विवेचन प्रस्तुत अध्याय-खण्ड में किया गया है।

दोनों उपासना-पद्धतियों में नाद-साधना को मिले महत्त्व के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा उक्त अन्तर को स्पष्ट करने का आगे प्रयास किया गया है।

(च) निर्गुण और सगुण उपासना में नाद-साधना — एक तुलनात्मक दृष्टि—

निर्गुण और सगुणोपासना में परस्पर सैद्धांतिक अन्तर होते हुए भी दोनों भक्ति-पद्धतियों में नाद को समान महत्त्व मिला है। साधना के लक्ष्य ब्रह्म प्राप्ति हेतु नाद को दोनों अध्यात्म धाराओं में प्रकृष्ट एवं अनिवार्य साधना के रूप में ग्रहण किया गया है। यही नहीं, नाद को परमज्योति एवं साक्षात् ब्रह्म माना गया है।[336]

नाद अनादि तत्त्व है। वही सृष्टि का उपादान कारण है। सृष्टि के आदि में जब परमात्मा का शब्दात्मक संकल्प होता है कि "मैं एक से अनेक हो जाऊं" तभी इस बीज रूप अनादि नाद की, आदि, जागृति होती है एवं उसका सृष्टि के रूप में संप्रसारण होता है। अतः यह मूल नाद परब्रह्म नाद परब्रह्म स्वरूप है और 'नादब्रह्म' के नाम से अभिहित है। यह नाद ब्रह्म ही शब्द-ब्रह्म का बीज है। वेद, उपनिषद्, पुराण, संगीत और गाथादि समस्त विधाओं का उद्गम इस नाद से ही हुआ है,[337] जिसकी महिमा निर्गुण और सगुणोपासना में समान रूप से स्वीकृत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सगुण भक्तों ने भी नाद ब्रह्म से शब्द-ब्रह्म की उत्पत्ति निर्गुण भक्तों की ही भाँति स्वीकार की है—

"सच्चिदानन्दविणवात् सकलात्परमेवश्वत् ।
आसीच्छक्तिस्ततो नादस्तस्माद् बिन्दुसमुद्भवः ।
नादो बिन्दुश्च बीजश्च स एव त्रिविधो मतः ।
भिधमानात् पराद्विन्दा रूभयात्मारवो भवत् ।
स रवः श्रुतिसम्पन्नः शब्दो ब्रह्माभवत् मरम् ।"[338]

अर्थात् 'सच्चिदानन्द रूप वैभवयुक्त पूर्ण परमेश्वर से उनकी स्वरूपा शक्ति आविर्भूत हुई, उससे नाद प्रकट हुआ और नाद से बिन्दु का प्रादुर्भाव हुआ। वही बिन्दु, नाद बिन्दु तथा बीज रूप से तीन प्रकार का माना गया है। बीजरूप बिंदु जब भेद को प्राप्त हुआ, तब उससे अव्यक्त और व्यक्त द्विविध शब्द प्रकट हुए। व्यक्त शब्द ही श्रुति सम्पन्न श्रेष्ठ शब्द ब्रह्म हुआ।'

इस प्रकार, नाद ब्रह्म से ही शब्द-ब्रह्म का आविर्भाव हुआ। यहाँ शब्द ब्रह्म-प्राणी-मात्र के हृदय में अनहदनाद के रूप में प्रकाश पाता है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं,[339] "वेद शब्द ब्रह्म है। वे मेरी मूर्त्ति हैं, इसी से उनका रहस्य दुर्बोध है। शब्द-ब्रह्म, परा, पश्यन्ती और मध्यमा वाणी के रूप में प्राण, मन और इन्द्रियमय है। समुद्र सदृश असीम और गहन है। उसकी थाह पाना अति कठिन है। उद्धव! मैं अनन्त शक्ति-सम्पन्न एवं स्वयं अनंत ब्रह्म हूँ। मैंने ही वेदवाणी (शब्द ब्रह्म) का विस्तार किया है। जिस प्रकार कमल-नाल में पतला सा सूत होता है, उसी प्रकार वेद वाणी रूप शब्द ब्रह्म प्राणियों के अंतःकरण में अनाहत नाद के रूप में प्रकाशित होता है। भगवान् हिरण्यगर्भ स्वयं वेदमूर्ति हैं। उनकी उपाधि है, प्राण और स्वयं अनाहत शब्द के द्वारा उनकी अभिव्यक्ति हुई है। जैसे मकड़ी मुख द्वारा जाला उगलती है, और फिर निगल लेती है, वैसे ही वे स्पर्शादि वर्णों का संकल्प करने वाले मन-रूप निमित्त कारण के द्वारा हृदयाकाश से अनन्त विविध मार्गों वाली वैखरी रूप वेद वाणी को स्वयं ही प्रकट करते हैं और फिर उसे अपने में लीन कर लेते हैं। वह वाणी हृद्गत सूक्ष्म शब्द ओंकार के द्वारा अभिव्यक्त स्पर्श ('क' से 'म' तक—25 वर्ण) स्वर ('अ' से 'औ' तक—9 वर्ण) ऊष्मा (श, ष, स, ह—4 वर्ण) और अंतःस्थ (य, र, ल, व—4) कुल 42 वर्णों से विभूषित है। उसमें ऐसे छंद हैं, जिनमें उत्तरोत्तर चार-चार वर्ण बढ़ते जाते हैं और उनके द्वारा विचित्र भाषा के रूप में वह विस्तृत हुई है।

गुरु नानक ने भी कहा है कि गुप्त वाणी (परा अवस्था में शब्द की स्थिति) जो प्रकट रूप धारण करती है (वैखरी रूप में अभिव्यक्त स्वर या शब्द) उसे सत्य रूप ब्रह्म का स्वरूप ही जानना चाहिए।[340] नाद से सृष्टि की रचना सगुण दर्शन में निर्गुण दर्शन के अनुरूप ही मानी गई है। सगुणोपासकों के अनुसार नाद ब्रह्म का स्थूल रूप ही समस्त जगत् में व्याप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। आदि नाद रूप बीज से पंच भूतों में सर्वप्रथम भूत आकाश का गुण भी शब्द कहा गया है।[341]

नाद सभी प्राणियों के अन्दर निगूढ़ भाव से विद्यमान है।[342] व्यष्टि में स्थूल नाद की उत्पत्ति अग्नि और वायु के संयोग से होती है। 'न' कार 'प्राणवायु' का प्रतीक है और 'द' कार 'अग्नि' का। ब्रह्म ग्रंथि (मूलाधार के पास) में स्थित प्राणवायु को अग्नि से उत्तेजना मिलती है। अग्नि में यह उत्तेजना अथवा प्रेरणा आत्मा द्वारा प्रेरित चित्त के द्वारा होती है। इस प्रकार प्राणवायु अग्नि से प्रेरणा पाकर नादाभिव्यक्ति करता है। कहते हैं, यह नाद नाभि के अति -सूक्ष्म हृदय में सूक्ष्म, कण्ठ में पुष्ट, मस्तक में अपुष्ट और मुख में कृत्रिम रूप से अभिव्यक्ति पाता है।[343]

योगीजन इसी नाद की उपासना द्वारा अंत में नादब्रह्म रूप परब्रह्म को प्राप्त करते हैं। संतों की उपासना का लक्ष्य अनहद नाद रूप यह नाद ब्रह्म ही है। सगुणभक्तों का उपास्य भी यह नाद ब्रह्म ही है।[344] मुरली मनोहर, बांसुरीबजैया कृष्ण की सच्चिदानन्दमयी मुरली अथवा बांसुरी का मधुर निनाद यह नाद ब्रह्म ही है।[345]

भागवत में कहा गया है कि "जब भगवान् ने वेणु को अपने अधरों पर रखा और निनादित किया तो सर्वज्ञ होकर भी ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवतागण तत्त्व निर्णय न कर सके–सभी मुग्ध हो उठे।[346] वेणुनिर्गत नाद से 'क्लीं' पद की सिद्धि कही गई है। यह 'क्लीं' कामबीज है अर्थात् मुरली ध्वनि रूप भगवान् का सृष्टि संकल्प ही काम बीज है। भगवत् लीला का विकास "क्लीं" रूप मुरली नाद से ही होता है। इस प्रकार सगुण दर्शन में भी मुरली नाद अथवा नाद तत्त्व को निर्गुण दर्शन की भाँति जगत् का उपादान कारण माना गया है। यह मुरली नाद चिन्मयनाद है, सच्चिदानन्द रूप अर्थात् साक्षात् ब्रह्म है।

किन्तु इस मुरली नाद (नाद तत्त्व, प्रणव अथवा ओंकार), का श्रवण लाभ सहजोपलब्ध नहीं है। उसके लिये साधक को कठोरतम साधना करनी होती है, जोकि योग-साधना से किसी भी प्रकार कम कठोर तपस्या नहीं है।[347]

मुरली कृष्ण से अभिन्न है। उसके सौभाग्य पर एक गोपी मुरली से पूछती है, "ऐ मुरली! तूने ऐसा क्या तप किया है कि तू गिरधर के मुख से लगी, उनके अधरामृत का पान किया करती है। नंदनंदन तुझे अपने हाथों से स्पर्श करते हैं और तुझ पर तन, मन न्यौछावर किये हुए हैं? सूरदास कहते हैं कि गोपाल को तूने वश में किया है और जगत् में यश लिया है।[348]

मुरली उत्तर देती है, "मैंने बहु विध तप किये हैं। आजीवन सिर पर हिम और वर्षा सही। ग्रीष्म की असह्य चिलचिलाती घाम में अपने शरीर को जलाया। अपने आपको कटवाया। सप्त स्वरों के स्थान अपने शरीर पर छिदवाए। हृदय को रिक्त करवाया, फिर तुम गोपियों को (जो कि मुझे अपनी सौत कहती हो) बुलाने के लिए लाल (गिरधरलाल) ने मुझे अपने होठों पर रखा। इतने तप मैंनें किये, तब कहीं जाकर गिरधर ने मेरा वरण किया है।" सूर कहते हैं कि मुरली कहती है कि गोपाल की सेवा में ही मेरी साधना सफल है।[349]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार समस्त सुखों और भोगों को ठुकराकर, अपने अहं को पूर्णतः विगलित कर, अपना सर्वस्व कृष्णार्पित कर, निष्काम भाव से उनकी सेवा में ही आनंद की दशा प्राप्त हो जाने पर कृष्ण से अभिन्न पद प्राप्त हो पाता है।

गोपियां अपने समस्त सुखों का परित्याग कर परिजनों के प्रति मोहासक्ति को जीतकर मुक्ति पद तक की अवहेलना कर तथा मुरलीनाद-रूप-नाद ब्रह्म में पूर्णतः रसलीन हो जाने पर ही कृष्ण से अभिन्नत्व प्राप्त कर सकी थीं।

सगुण दर्शन में मुरली नाद (नादतत्त्व) की अनंत महिमा गाई गई है। यह मुरली ध्वनि कृष्ण-मिलन हेतु जड़-चेतन, दोनों में तड़पन भर देती है।[350] जैसे ही मोहन की मनोहारिणी मुरली की ध्वनि गोपियों के कानों में पड़ती है, वे कुररी पक्षी के समान विरहातुर हो, हा कृष्ण! कृष्ण! चिल्लाने लगती हैं।[351] जैसे मानसजाप में योगी के सात्विक भावों का उदय हो जाता है,[352] उसी प्रकार गोपियों में भी वंशीं-ध्वनि को सुनते ही कंप, अश्रु तथा स्तम्भ आदि सात्विक भावों का उदय हो जाता है।[353]

''विदग्ध माधव' नाटक में वेणु माधुर्य के लिये कहा गया है कि, ''मेघों को रोकता हुआ (अर्थात् गगन व्यापी) तुम्बरू (देवताओं के प्रसिद्ध गायनाचार्य) को आश्चर्य में डालता हुआ सनक, सनन्दन आदि मुनियों की समाधि को भंग करता हुआ, ब्रह्मा को चकित करता हुआ, अनंत उत्कण्ठाओं द्वारा बलि को विकल बनाता हुआ, शेषनाग को (ध्वनिमाधुर्य द्वारा) झुमाता हुआ, ब्रह्माण्ड की सीमा को तोड़कर वंशी-नाद लोक-लोकान्तरों में व्याप्त हो गया है।[354]

मुरली महिमा अथवा नाद-माहात्म्य के लिए भागवत का 'वेणुगीत' प्रसिद्ध ही है। चेतन जगत् तो क्या जड़ जगत् भी कृष्ण-मुरली पर मुग्ध हो, मिलन-हेतु आतुर है।[355]

यह मुरली नाद भी कैसा जादू भरा है! इसके जादू से गोपियां आनन्द सिन्धु में डूब जाती हैं। इस नाद रसामृत सिन्धु में जिसे एक बार भी गोता खाने अथवा पैठने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है, फिर वह संसार के किसी काम का नहीं रह जाता। उसे संसार से विरक्ति हो जाती है। उसे यदि कुछ अच्छा लगता है तो मात्र प्राण प्यारे का मुरली नाद! नाद ब्रह्म के आनंद में छका वह दीवाना अपनी सांसारिक स्थिति की सुध-बुध बिसरा बैठता है। उसके कान हरदम प्रियतम की मुरली से निसृत तान सुनने को तरसते रहते हैं।[356] वंशी नाद का स्मरण होते ही प्रियतम का स्वरूप उसके नेत्रों के समक्ष साकार हो जाता है। इस नाद ब्रह्म का वर्णन नहीं किया जा सकता। गोपियों ने जब उसके निराले प्रभाव का वर्णन करने का प्रयास किया तो उनकी वाणी पंगु हो गई, मन से अ+मन की स्थिति हो गई।[357]

यह मुरली नाद साक्षात् ब्रह्म है। गोपियों ने ज्यों ही मुरली-नाद सुना, मनमोहन कृष्ण को भी पा लिया और उन्हें आलिंगन करने लगीं।[358]

इस प्रकार निर्गुण और सगुण दोनों कोटि के भक्त, नाद-ब्रह्म के उपासक हैं। दोनों का साध्य अनहद नाद है। क्या मुरली अनहद नाद नहीं है? गोपियां स्पष्ट कहती हैं कि कृष्ण के अधरों पर विराजित मुरली की जो अलौकिक ध्वनि हमें कर्णगोचर होती है, वह अनहदनाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है–

"मुरली अधर स्रवन धुनि सो सुनि,
सबद अनाहद कानै।"[359]

वास्तव में उभयकोटि के भक्तों ने नाद-साधना को समान महत्त्व दिया है! नाद को दोनों ने साक्षात् परम तत्त्व-रूप माना है, नाम सुमिरन और संकीर्त्तन को दोनों ने नादानुसंधान के अंतर्गत उच्च स्थान दिया है।

नारद के "भक्ति सूत्र" में कहा गया है कि नाम के कीर्तन से प्रसन्न हो भगवान् भक्तों को शीघ्र दर्शन देते हैं।[360]

सगुण भक्तों के अनुसार, जो जन भगवन्नाम का संकीर्तन करते हैं, उन्होंने ही यथार्थ में सम्पूर्ण तत्वों का, सस्वर वेद का, विधिवत् हवन का और सभी तीर्थों का फल प्राप्त किया है।[361]

पद्म पुराण में कृष्ण कहते हैं कि "मैं न बैकुण्ठ में रहता हूं और न योगियों के हृदय में ही रहता हूं। अपितु मेरे भक्त जहां मेरा गान करते हैं, मैं वहीं निवास करता हूँ।"[362]

भागवत में कहा गया है कि लाज छोड़कर उच्च स्वर से गान करने और नृत्य करने से समस्त भुवन का कल्याण होता है।[363]

निर्गुण भक्तों ने भी नाम सुमिरन, संकीर्तन एवं उच्च स्वर से लाज छोड़कर भगवन्नाम-गान को बहुत महत्त्व दिया है। सूर और मीरा की भांति संत नामदेव, कबीर और नानक आदि निर्गुणी-संतों का हर समय हरिनाम कीर्तन में तल्लीन रहना प्रसिद्ध ही है। कबीर का कीर्तन-प्रेम निम्न पद्यांश में द्रष्टव्य है–

"हज्ज हमारी गोमती तीर। जहां बसहिं पीताम्बर पीर।
वाहु वाहु क्या खूब गावता है। हरि का नाम मेरे मन भावता है।"[364]

गुरु अर्जुनदेव के अनुसार हरिनाम सुमिरन में अनहद नाद की झंकार गुंजरित होती है।

"प्रभु के सिमरनि अनहद झनकार।"[365]

क्योंकि हरिनाम में अनहद नाद निश्चित है–

"हरि की कथा अनाहद बाणी"[366]

सगुण भक्तों की भांति निर्गुण भक्तों की भी लाज छोड़कर उच्च स्वर से भगवन्नाम गान के प्रति श्रद्धा व्यक्त हुई है। इस प्रसंग में गुरु अर्जुनदेव की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं।

"सो हरिजन हरि प्रभ भावै। अहिनिसि भगति करे दिनु राती।
लाज छोड़ि हरि के गुण गावै।"[367]

वास्तव में नाम-कीर्तन अथवा नाम-सुमिरन योग है। योग साधना का लक्ष्य है, बहिर्मुखी चित्त-वृत्तियों का विरोध कर, मन को एकाग्र करना। चित्तवृत्ति-निरोध एवं मानसिक एकाग्रता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिए संगीत का महत्त्व सर्वोपरि है, अतः हमारे यहां संगीत को अध्यात्म-साधना के अनिवार्य अंग के रूप में ग्रहण किया गया है। स्वर, लय से युक्त भगवन्नाम का कीर्तन मन को जीतने का उत्तम उपाय है, क्योंकि यह मन ही है, जो मनुष्य को अध्यात्म की ओर उन्मुख नहीं होने देता, अतः संगीत द्वारा मन शीघ्र ही वश में हो जाता है और भगवद्दर्शन हो जाते हैं।

नारद कहते हैं, "मेरे जीवन का व्रत भगवद्भजन अखण्ड रूप से चलता रहता है। भगवान की दी हुई इस स्वर-ब्रह्म से विभूषित वीणा पर तान छेड़कर जब मैं उनकी लीलाओं का गान करने लगता हूं, तब वे प्रभु, जिनके चरण-कमल समस्त तीर्थों के उद्गम स्थान हैं, और जिनका यशोगान मुझे बहुत प्रिय है, आमंत्रित की भांति तुरंत मेरे हृदय में आकर दर्शन द देते हैं।[368]

इस प्रकार पीछे हमने निर्गुण एवं सगुण उभय कोटि की भक्ति-पद्धतियों में हरिनाम संकीर्तन एवं नाम सुमिरन का समान महत्त्व देखा। स्थूल दृष्टि से देखने पर निर्गुणी भक्तों की तांत्रिक-दर्शन एवं हठयोग से प्रभावित नाद-साधना में कीर्तन का स्थान तथा उच्च स्वर से लाज छोड़कर भगवद्यश के गान में उनकी प्रवृत्ति की बात नितान्त विरोधी प्रतीत होती है, किन्तु संतों की उपासना-पद्धति का यह वैशिष्ट्य है कि उन्होंने सगुणोपासना के उन सभी तत्त्वों को अपनाया है, जिनमें बाह्य साधनों का बहिष्कार है, तदनुसार उनकी नाद-साधना में भी सगुणोपासना के बाह्यायाडम्बर विनिर्मुक्त तत्त्वों का समावेश मिलता है, परन्तु कीर्तन के प्रसंग में भी कोटि-द्वय की उपासना-पद्धतियों में एक सूक्ष्म अंतर अवश्य रहता है।

सगुण भक्त को कीर्तन की चरमावस्था में जबकि आध्यात्मिक चेतना के जागृत होने पर भगवन्नाम जहाँ पर स्वयमेव नृत्य करने लगता है और अश्रु, मूर्च्छा, स्वरकम्प आदि सात्विक भावों का उन्मेष होता है, तभी नादब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है, परन्तु निर्गुण भक्त के लिए कीर्तन अथवा वाचिक जप नादसाधना की प्रथमावस्था है। नादब्रह्मं के साक्षात्कार की स्थिति तक पहुँचने के लिए उसकी मानस जाप अथवा अजपाजाप[369] की दशा अनिवार्य है। इससे भी आगे उसे नाद (सो हं मंत्र)—मात्र का अवलम्ब त्यागना होता है।[370] इस प्रकार अवलम्ब-मात्र (बीजमंत्र) का पूर्णतः परित्याग करने पर ही वह नादब्रह्म की अनुभूति पाता है।[371] इसी बात को दार्शनिक शब्दावली में यों भी कह सकते हैं कि "सुरति" के "निरति" में पूर्णतया समा जाने पर निर्गुणी साधक, परतत्त्व रूप परम नाद का साक्षात्कार कर पाता है।[372]

नाद का अवलम्ब तो निर्गुण भक्त भी सगुण भक्त की भांति लेता है। किंतु बीजमंत्रादि के रूप में अवलम्ब को भी त्यागकंर जब उसका चित्त निरालम्ब अवस्था में स्थिर हो जाता है, तब उसे नादब्रह्म की अनुभूति होती है। नादानुसंधान के समय वह नादानंद के प्रतीक अनेक वाद्यों की ध्वनियां सुनता है, किन्तु ब्रह्म प्रणवनाद में सभी पूर्व श्रुत ध्वनियां विलीन हो जाती हैं,[373] फिर वह शंख, दुंदुभि आदि नाद नहीं सुनता।[374] अनेक श्रुत वाद्य ध्वनियों में जो उसे मुरलीनाद सुनाई पड़ता है,[375] वह भी सगुण दर्शन के अनुरूप स्वयं नाद ब्रह्म न होकर, नादब्रह्म रूप लक्ष्य तक पहुंचने की एक अवस्था विशेष के आनन्द का प्रतीक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्गुण भक्त का यह विश्वास है कि अखण्ड नाद प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में ध्वनित होता रहता है। आंख, कान तथा मुख के छिद्रों को बंदकर, बहिर्जगत् से चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाने पर, चित्त अंतर्मुखी हो गया और इस प्रकार सामान्य व्यक्ति भी अंतःस्थित नाद-ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकेगा।[376] सुन्दरदास ने भी कहा है–

"सुनि अनहद सींगी बाजै, धुनि माहिं निरंजन गाजै।

× × × ×

अभि अंतरि जोति जगावै, तहां उनमनि ताली लावै।
यह गंग जमुन बिचि षेला, तहां परम पुरुष का मेला।"[377]

निर्गुण भक्त का नाद की धारणा के प्रसंग में सगुणभक्त से एक प्रमुख अन्तर यों भी माना जा सकता है कि जिस प्रकार वह अपने भीतर रमे परमात्मा का उपासक है, उसी प्रकार नादब्रह्म की खोज भी वह अपने आभ्यन्तर में करता है, जबकि सगुण भक्त, अभेद में भेद की भावना द्वारा श्रीकृष्ण का मुरली नाद सुनता है।

कबीर कहते हैं, "ऐ मनुष्य, यदि तुझे हरि का ध्यान करना है तो अनहद शब्द का चिंतन करो।"[378] कौन से अनहद नाद का? जो प्राणीमात्र के हृदय-कमल में विद्यमान है, और ब्रह्म स्वरूप है।[379] उस नाद का स्वरूप क्या है? वह नाद बड़ा विचित्र है। बिना ही शब्द किये, वह नाद ध्वनित होता रहता है। उसके साथ कोई ताल नहीं बजाता, फिर भी अंतर्वृत्तियों की साम्यावस्था रूप ताल उसके साथ बजती रहती है। केवल एक ताल ही नहीं, अपितु पटताल (एक से अधिक ताल, संभवतः पांच ताल) बजती है और वह भी मंदल वाद्य के बिना (अर्थात् वाद्य यंत्रों के अभाव में अनेक स्वर व ताल श्रुत होते हैं) और इस अद्भुत नाद के साथ गोपाल नृत्य करते हैं।[380] समस्त बहिर्वृत्तियों का क्षय हो जाता है। आन्तर जगत् में विशुद्ध निर्मलता व्याप जाती है। रोम-रोम आनन्द से स्निग्ध हो जाता है। फिर सांसारिकता की ओर जाना नहीं बनता। साधक की सहज समाधि लग जाती है। अखंड शब्द में उसका मन लीन हो जाता है, सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, वह नाद सदा उसके हृदय को रसमय करता रहता है।[381] इसी असीमानन्द में पगा, वह निज को सांसारिक स्थिति से न्यारा पाता है।[382] वही नाद तो बाहर व्याप्त है, अतः निर्गुण भक्त अपनी साधना पद्धति के अनुरूप आभ्यन्तरस्थ नाद का ही संधान करता है।[383]

निर्गुण दर्शन में श्वास-प्रश्वास को भी नाद का सूक्ष्म रूप माना गया है। सुन्दरदास के अनुसार,

"मन सी न माला कोउ,
सोहं सों न जाप,
और आत्मा सों देव नाहिं,
देह सों न देहरा।"[384]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा–

"श्वासोश्वास रात दिन सोहं सोहं होय जाप।
याही माला बारबार दृढ़ के धरत है।
देह परे, इन्द्री परे, अन्तःकरण परे।
एक ही अखण्ड जाप ताप को हरत है।"[385]

सगुण भक्त अभेद में भेद की भावना द्वारा भगवान् के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित कर उसकी दिव्य अप्राकृत लीला में रस लेता है, अतः सगुण भक्ति में नादानुसंधान का स्वरूप भी तदनुसार ही है।

इस प्रकार निर्गुण और सगुणोपासना में नादानुसंधान सम्बन्धी प्रमुख अन्तर उक्त अध्यात्म धाराद्वय के लीला सम्बन्धी विचार-भेद पर आधारित है।

सगुण भक्त, अभेद में भेद के भावन द्वारा भगवान् के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करता है और प्रकृति में उसकी दिव्य अप्राकृत लीला का रस लेता है, जबकि निर्गुण भक्त अपने ही आभ्यंतर में विराजित भगवान् के साथ प्रेममयी लीलाएं रचता है और उनसे प्राप्त आनन्द में सराबोर रहता है। निर्गुण और सगुण साधना-पद्धति में नादोपासना का स्वरूप भी तदनुरूप ही है, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है।

निर्गुण भक्ति में ज्ञान तत्त्व एवं हठयोग के साथ-साथ भक्ति तत्त्व को भी महत्त्व दिया गया है। कबीर ने एक स्थान पर कहा है कि यदि नाद साधना के साथ भक्ति भाव संश्लिष्ट नहीं है तो कुण्डलिनी योग, षट्चक्र भेदन, प्राण का संयम एवं अनहद-नाद-विश्रुति आदि सभी यौगिक साधनाएं व्यर्थ हैं।[386]

किन्तु इस संदर्भ में ध्यातव्य है कि भक्ति तत्त्व को ज्ञान तत्त्व के समकक्ष स्थान देते हुए भी संतों ने ज्ञान तत्त्व पर विशेष बल दिया है, प्रमुखता उन्होंने ज्ञान को ही दी है। हठयौगिक प्रभाव के कारण संतों की नाद साधना भी एक वीर्यवती साधना बन पड़ी है। नादोपासक निर्गुण भक्त को ज्ञान रूपी असि को सदा सक्रिय रखना होतां है। शील से नेह रखते हुए भी ज्ञान की खड्ग को वह हाथ से नहीं छोड़ता और उसी के द्वारा वह कामदल पर विजय पाकर, क्रोध ा का मूलोच्छेदन करता है, तब परम सुखधाम में (निरति रूप उपेयस्वरूप नाद में) सुरति रूप उपाय स्वरूप नाद को वह लीन करता है। कबीर कहते हैं कि शील से सतत प्यार रहते हुए, ज्ञान की तलवार को हाथ में लेकर भक्ति के मैदान में शीशार्पण करने वाला कोई विरला ही शूरवीर, नाद साधक संत हो सकता है।[387]

इस प्रकार निर्गुण और सगुण दोनों अध्यात्म धाराओं के साधकों ने नाद को अध्यात्म साधना के साधन और साध्य दोनों रूपों में महत्त्व दिया है, नाद से सृष्टि की रचना दोनों ने अंगीकार की है। कीर्तन, संकीर्तन, नाम सुमिरन आदि को दोनों ने नाद ब्रह्म की प्राप्ति में सहायक माना है, मुरली नाद को दोनों ने ही ब्रह्मानन्द का प्रतिपादक कहा है, किन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सगुणभक्त अभेद में भेद की भावना द्वारा मुरली नाद सुनता है, जब कि निर्गुण भक्त आभ्यन्तर में नाद रूप ब्रह्म की स्थिति मान, आभ्यन्तस्थ प्रसुप्त शक्तियों को जागृत करता है और देह के भीतर ही मुरली नाद एवं अन्य नाद सुनता है। सगुण भक्त की नाद साधना का विशुद्ध भक्तिमयी है, जब कि निर्गुण भक्त नाद ब्रह्म की प्राप्ति हेतु नाम संकीर्तन एवं वाचिक जप आदि तत्त्वों के साथ-साथ योग और ज्ञान के सामंजस्य तथा ज्ञान की प्रमुखता को अनिवार्य मानता है। सगुण क्षेत्र में साधक को उच्च स्वर से संकीर्तन करने में अथवा जप-विधान की चरमसीमा में नाद ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है, परन्तु निर्गुण भक्त को वाग्यंत्राभिघात के साहायूय के बिना उत्पन्न होने वाले सहज नाद-अनहद की साधना द्वारा वाचिक जप से आगे मानस जाप तक क्रमशः "आरोहण करना होता है अर्थात् वैखरी अवस्था को प्राप्त करके क्रमशः परा अथवा पश्यन्ति वाक् की अवस्था प्राप्त करनी होती है।

अतः उपर्युक्त सभी तत्त्वों के आधार पर निर्गुण और सगुण उपासना-पद्धति में नाद-साधना सम्बन्धी अन्तर समझा जा सकता है।

संदर्भ

1. "गीतं नादात्मकं वाद्यं नादव्यक्त्या प्रशस्यते।
तद्वयानुगतः नृत्तं नादाधीनमतस्त्रयम्।" —सं. र.—1. 2. 1.

2. "नास्ति नादात्परो मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परः।
नानुसंधेः परा पूजा न हि तृप्तेः परं सुखम्।
गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वदा सिद्धिमिच्छता।" —यो. शि. उप.—पृ. 431।

3. सं. र.—टीका, पृ. 23।

4. यो. शि. उप. पृ. 433—34।

5. प्र. भा. पृ. 5 से उद्धृत।

6. सं. र. 1. 2. 3.

7. "ध्यानमेकाग्रचित्तैकसाध्यं न सुकरं नृणाम्।
तस्मादत्र सुखोपाय श्रीमन्नादमनाहतम्।
गुरूपदिष्टमार्गेण मुनयः समुपासते।
सोऽपि रक्तिविहीनत्वान्न मनोरञ्जको नृणाम्।
तस्मादाहतनादस्य श्रुत्यादि द्वारतोखिलम्।
गेयं वितन्वतो लोकरंजनं भवभंजनम्।
उत्पत्तिमभिधास्यामस्तथा श्रुत्यादिहतुताम्।" —सं. र. 1. 2. 165—66—67

8. 'चैतन्यं सर्वभूतानां विवृत्तं जगदात्मना।
नादब्रह्म तदानन्दमद्वितीयमुपास्महे।" —वही—1. 3. 1.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

9. "यन्नमस्य चिदाख्यातं यत्सिद्धिदीनां च कारणम्।
येन विज्ञान मात्रेण जन्मबन्धात्प्रमुच्यते
अक्षरं परमो नादः शब्दब्रह्मेति कथयते।" —यो. शि. उप.—पृ. 431।
10. "तस्य गीतस्य माहात्म्यं के प्रशंसितुमीशते।
धर्मार्थकाममोक्षाणाभिदमेकैक साधनम्।" —सं. र.—1. 1. 30.
11. वृ. दुंद.—पृ. 38।
12. सं. र.—1. 2. 120 से 163 तक।
13. हिं. की नि. का. धा. और उ. दा. पृ.—डॉ. गो. त्रिगुणायत, पृ. 197।
14. द्रष्टव्य : डॉ. गो. त्रिगुणायत का मत, वही, पृ. 204।
15. भा. सं. और सा., प्र. खं.—डॉ. गो. कविराज, पृ. 417-418।
16. तां. वां. में शा. दृष्टि—डॉ. गो. कविराज, पृ. 287।
17. तं. दे. फि. एंड ओ. सी.—डी. एन. बोस, पृ. 119।
18. द्रष्टव्य : गा. आ. ले.—आर्थर ऐलन, पृ. 108 उद्धृत—हिं. की नि. का. और उ. दा. पृ —डॉ. गो. त्रिगुणायत, पृ. 212 से।
19. क.—ह. प्र. द्विवेदी, छं. सं., पृ. 41-42 के आधार पर।
20. "योगांक" ('कल्याण' का विशेषांक) लेखः लययोग (नाद और बिंदु का रहस्य) —सुंदरलाल नाथालाल जोशी, पृ. 618-20 के आधार पर।
21. "स. पा.—आर्थर एवेलन, पृ. 50।
22. द्रष्टव्य : ना. सं.—डॉ. ह. प्र. द्विवेदी का मत, पृ. 124।
23. द्रष्टव्य : श. ए. दी शा.—आर्थर एवेलन, पृ. 698।
24. भा. सं. और सा.—वृ. 386 के आधार पर।
25. क. की वि. धा.—डॉ. गो. त्रिगुणायत, पृ. 303।
26. शा. ति. तंत्र, संपा. आर्थर एवेलन प्र. खं., द्वितीय पटल, पृ. 108 (टीका)।
27. द्रष्टव्य : ना. सं. पृ. 126 के आधार पर।
28. द्रष्टव्य : डॉ. त्रिगुणायत का मत, हिं. की नि. का. धा. और उ. दा. पृ.—पृ. 416।
29. प्र. भा.—पं. ओंकारनाथ ठाकुर, पृ. 10।
30. वही पृ. 7 तथा 'यो. शि. उप.' पृ. 462।
31. वही।
32: त. सं.—1 हिं. की नि. का. धा. और उ. दा. पृ.—415 से उद्धृत।
33. 'बिंदुः शिवात्मको बीजंशक्तिर्नादः तयोर्मिथः। समवायः समख्यातः, सर्वागम विशारदेः। —शा. ति. तंत्र, प्र. खं., प्रथम पटल, पृ. 17—श्लो. सं. 9।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

34. वही, प्र. खं. प्र. पटल, श्लो. सं. 26 से 30 तक।
35. द्रष्टव्य : स्व. तंत्र 10/1224।
36. स्व. तन्त्र की क्षेमराज कृत टीका–प्र. भा. पृ. 1. से उद्धृत।
37. स्व. तंत्र, 10/1236।
38. वही, क्षेमराजकृत टीका। प्र. भा., पृ. 11 से उद्धृत।
39. तां. वां. में शा. दृ. – पृ. 187।
40. द्रष्टव्य : तां. वां. में शा. दृ.–पृ. 105 के आधार पर।
41. गा. आं. लै.–आर्थर एंवेलन, पृ. 130।
42. तां. वां. में शा. दृ.–पृ. 128।
43. गा. आं. ले.–द्रष्टव्य : पृ. 111, 116, 122।
44. अष्टो. शतो. पत्सु–महादेव शास्त्री–पृ. 441।
45. तां. वां. में शा. दृ. पृ. 184।
46. गा. आं. लै. पृ. 204।
47. द्रष्टव्य : भा. सं. और सा.–खंड प्र.–पृ. 416–17।
48. स्व. तंत्र 11 । 5-80।
49. वही, क्षेमराजकृत टीका–
50. द्रष्टव्य : भा. सं. और सा.–प्र. खं. पृ. 386-87 तथा तां. वां. में शा. दृ. पृ. 280।
51. प्रिं.–आफ तं.–आर्थर एवेलेन, पृ. 594 तथा गा. आं लै. पृ. 112।
52. "So it is said in the Shakti Tantras from the union of Shiva and Shakti arises creative ideation. This union and mutual relation is called"

    हिं की नि. का. धा. और उ. दा–पृ. 212 पर उद्धृत, आर्थर एवेलन का कथन।
53. महर्षि पतंजलि ने प्रणवमंत्र रूप परम बीज मंत्र की आत्मानुभूति-हेतु उसके अर्थ के भावन पर बल दिया है, तज्जपस्तदर्थभावनम्।

    –पा. यो. द., टीकाकार–हरिकृष्णदास गोयन्दका, ष.सं. पृ. 37 सूत्र सं. 28।
54. चतुर्वाक् का विश्लेषण एवं स्पष्टीकरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।
55. द्रष्टव्य : भा. सं. और सा., प्र. खं.–पृ. 383।
56. द्रष्टव्य : वही, पृ. 415-16।
57. यो. शि. उप.–श्लो. सं. 130-131।
58. हिं. की नि. का. धा. और उ. दा. पृ.–पृष्ठ 497।
59. यो. मा.–23-24।
60. तां. वां. में शा. दृ.–पृ. 280।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

61. भा. सं. और सा.—पृ. 347।
62. वही, पृ. 350।
63. भा. सं. और सा. प्र. खं.—पृ. 335।
64. 'कल्याण' जनवरी, 1965 'नाम जप की अपार महिमा' (लेख)—शुकदेवानन्द सरस्वती, पृ. 75-76।
65. वही।
66. द्रष्टव्य : तां. वां. में शा. वृ.—297।
67. ऋ. वे. : प्रथम मंडल, ऋचा सं. 164, पाद सं. 45।
68. ज. सू. (बंगला संस्करण) चि. खं. स्वामीप्रत्यात्मानन्द, परिशिष्ट (क) 'नादानुसन्धान', कारिका सं. 4, पृ. 335।
69. 'दि जरनल ऑफ़ दी म्यूज़िक एकेडमी', मद्रास, भाग 34. 1963 लेख 'ट्रैडीशनल इंडियन म्यूज़िक एस्थैटिक्स—डॉ. प्रेम लता शर्मा, पृ. 91।
70. द्रष्टव्य : ज. सू., द्वि. खं., परिशिष्ट (क),कारिका सं. 16।
71. भा. सं. और सा.—प्र. खं.—पृ. 333।
72. दि. ज. आ. दी म्यू. एके.—पृ. 93।
73. वही।
74. "यन्नमस्य चिदाख्यातं यत्सिद्धीनां च कारणम्।
येन विज्ञानमात्रेण जन्मबन्धात्प्रमुच्यते॥1॥
परावाक् 'अक्षरो परमो नादः' शब्दब्रह्मेति कथ्यते।"
मूलाधार गति शक्तिः स्वाधारा बिन्दुरूपिणी॥2॥

—यो. शि. उप., पृ. 431

75. ज. सू.—खं. प्र., द्रष्टव्य, पृ. 40-41।
76. वही, पृ. 135 भाग 2, 2 द्वि. खं.।
77. तु वां. में श. दृ.-पृ. 299।
78. ज. सू.—प्र. खं., पृ. 27-28-29-30।
79. भा. सं. और सा.—पृ. 333 प्र. खं.।
80. वही—पृ. 331।
81. भा. सं. और सा., प्र. खं.—पृ. 332।
82. ज. सू.—प्र. खं. (बं. सं.) पृ. 27-28-29-30 के आधार पर। (हिन्दी संस्करण अभी प्रेस में)
—पृ. 26-27-28, तथा पृ. 48।
83. ज. सू.—भा. 2, कारिका सं. 16, परिशिष्ट (क)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

84. गा. आं. ले. पृ. 114।
85. छां. उप. अध्याय सप्तम, त्रयोविंश खंड, श्लो. सं. 1।
86. बालकाण्ड, श्लो. सं. 7।
87. तै. उप. -भृगुवल्ली, षष्ठ अनुवाक्।
88. "नास्ति नादात्परो मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परं।20।।
नानुसन्धे परा पूजा न हि तृप्तेः परं सुखम्।"
यो. शि. उप. पृ. 431 नादानुसंधानमहिमा।
89. द्रष्टव्य : ज. सू. -भाग 2, परिशिष्ट (क) कारिका सं. 16।
90. द्रष्टव्य : ज. सू. (हिंदी संस्क.) - प्र. खंड पृ. 40-41।
91. "नकार : प्रणववीज : स्यात् दुकारो वन्हिरुच्यते।" — प्र. भा. पृ. 5।
92. ज. सू. प्र. खंड, पृ. 41-42।
93. वही, पृ. 42।
94. शा. ति.— 1।13।
95. कल्याण का 'भगवन्नाम महिमा और प्रार्थना अंक' जन. 1965 लेख—'भगवन्नाम की शक्ति तथा तद्विषयक शंकाओं का समाधान'-रामनारायण दत्त शास्त्री, पृ. 242।
96. "Indian Musical Theory has a hidden and inner aspect also which is related to spiritual Aestheties": दि जरनल ऑफ म्यूज़िक एकेडेमी, मद्रास, भाग 34, पृ. 85।
लेख : Traditional Indian Musical Aesthetics डॉ. प्रेमलता शर्मा, पृ. 85।
97. डॉ. त्रिगुणायत का मत, द्रष्टव्य, 'हिं. की नि. का. धा. और उ. दा. पृ., पृ. 111।
98. मुण्डक. उप. 2।4।
99. सं. द., 1।14।
100. द्रष्टव्य : प्र. भा., ओंकारनाथ ठाकुर, पृ. 3।
101. वही, पृ. 4 से उद्धृत।
102. 'शब्दस्य परिणामौ यमित्याम्नायविदो विक्षुः।' अर्थात् वेद के ज्ञाता जानते हैं कि यह जगत् शब्द का ही परिणाम है। — वही, पृ. 4।
103. ऋग्वेद, 20।114।8।
104. 'मानसो हंसः सो हं हंस इति तन्मयं यज्ञां नादानुसंधानमू।'
पा. पं. ब्रह्म. उप. -पूर्वकाण्ड, श्लो सं. 12।
105. 'नकारः प्रणवीजः स्यात् दुकारो वन्हिरुच्यते।' —प्र. भा., पृ. 4 से उद्धृत
106. 'सर्वचिंतां परित्यज्य सावधानेन चेतसा।
नाद एवासुनसंधेयो योगसाम्राज्यमिच्छता व. उप. - 3।83।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

107. योगशिखोपनिषद् 2।20-21।

108. 'तथ इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति।' — छांदोग्योपनिषत् 7।6।

109. 'प्रणवहंसान्तर्ध्यानप्रकृतिं बिना न मुक्तिः।' — पा. प. ब्रह्म. उप., पूर्वकाण्ड, श्लो. सं. 26।

110. 'प्रणवस्तारकः।' —वही, पूर्व काण्ड, श्लो. सं. 32।

111. 'ओमित्येवं ध्यायथा आत्मानं स्वस्ति वः पराय तमसः परस्तात्।' — मुं. उप. 2।6।

112. ब्रह्म. उप. 5।5-6।

113. वही, 5।2।

114. छां उप.।

115. एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म एतद्धयेवाक्षरं परम्।
एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यौ यदिच्छति तस्य तत्। — कठ. उप. 1।2।16

116. प्र. उप. 5।6।

117. तै. उप., शिक्षावल्ली, अष्टम अनुवाक्।

118. छां. उप. 4।1।

119. ब्र. उप., 74-75-76।

120. मं. ब्रा. उप., श्लो सं. 30।

121. ना. बिं. उप., श्लो. सं. 30।

122. वही, 31-32।

123. यो. चू. म. उप., श्लो. सं. 99।

124. इसका वर्णन शास्त्रों में स्थान-स्थान पर मिलता है। द्रष्टव्य, ह. यो. प्र., 82, 187 संस्क. 1962।

125. द्रष्टव्य : प्र. भा., पृ. 7।

126. '108 उपनिषद' ज्ञानखंड, संपा. श्रीराम शर्मा, पृ. 550-51-52 द्वि. सं.।

127. ना. विं. उप., 46-52।

128. मूलाधारात्सुषुम्ना च बिसतन्तुनिभा शुमा।
अमूर्ता वर्तते नादो वीणादण्डसमुत्थितः।
शंखनादादिभिश्चैव मध्यमैव ध्वनिर्यथा।
व्योमरंध्रगतो नादौ मायूरं नादमेव च।
कपाल कुहरे मध्ये चतुर्द्धारस्य मध्यमे।
तदात्मा राजते तत्त यथा व्याम्नि दिवाकरः।
कोदण्ड द्वय मध्य्य तु ब्रह्मरंध्रेषु शक्ति च।
स्वात्मानं पुरुषं पश्येन्मननस्तत्र लयं गतम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रत्नानि ज्यात्स्निनादं तु बिंदुं माहेश्वरं पदम्।

य एवं वेद पुरुषः स केवल्यमश्नुते।" — ध्या. बिं. उप., 101-6।

129. मूलाधारगताः शक्तिः स्वाधारा बिन्दुरूपिणी। त्स्यामुत्पद्यते नादः—सूक्ष्मबीजादिवांकुरः। अर्थात् मूलाधार में जो स्वाश्रित बिन्दुरूपिणी शक्ति स्थित है, उसमें से नाद की उसी प्रकार उत्पत्ति होती है, जिस प्रकार बीज में से अंकुर की।

— यो. शि. उप. 3-1-10।

130. द्रष्टव्य : प्रस्तुत प्रबन्ध के 'पंचम अध्याय' का 'ग' खण्ड।

131. यो. शि. उप. - 3 /1-2।

132. 'तां पश्यन्तीं विदुर्विश्व यमा पश्यंति योगिनः।' अर्थात् नाभि-स्थान से उत्पन्न होने वाले नाद की अभिव्यक्ति हो को 'पश्यन्ती' वाक् कहते हैं, जिसके द्वारा योगी आत्म दर्शन लाभ प्राप्त करते हैं। — यो. शि. उप. - 3।3

133. द्रष्टव्य : डॉ. त्रिगुणायत का मत, 'मध्यकालीन धार्मिक साधनाओं में नाथ पंथ बहुत प्रसिद्ध है। हिन्दी के निर्गुण कवियों का इस सम्प्रदाय से सीधा सम्बन्ध है। यदि इन दोनों धाराओं का तुलनात्मक सूक्ष्म अध्ययन किया जाए तो निर्विवाद रूप से यह स्वीकार करना पड़ेगा कि निर्गुण संतों का सम्प्रदाय, नाथपंथ का ही एक परिष्कृत वैष्णव रूपान्तर है।

हिं. की नि. का. धा. और उ. दा. पृ.—पृ. 326।

134. द्रष्टव्य : ना. और सं. सा. का तु. अ.—नथेन्द्रनाथ उपाध्याय।

शोध प्रबन्ध की अप्रकाशित, टंकित प्रति, पृ. 400।

135. "श्री आदिनाथेन सपादकोटिलयंप्रकाराः कविता जयंति। नादानुसंधानकमेकमेव मन्याम्हे मुख्यतमं लयानाम्।"

—ह. प्र.—स्वात्मारामयोगीन्द्र विरचित, भाषा टीका सहित 180/66 सं. सं. 2019।

136. वही, 180, 65।

137. गो. सं. 1. 96-100।

138. "भारतीय संगीतशास्त्र में मार्ग तथा देशी का विभाजन 'लेख—डॉ. प्रेमलता शर्मा, अप्रकाशित लेख। (डॉ. प्रेमलता शर्मा के सौजन्य से प्राप्त)।

139. "नादानुसंधान नमोस्तु तुभ्यं, त्वां मन्यहे तत्वपदे लयानाम्।

भवत्प्रसादात् पवनेन साक, विलीयते विष्णुपदे मनो मे।"

—कल्याण (पत्रिका) का 'योगांक' श्रावण भाद्रपद 1992, पृ. 271 लेख—"नादानुसंधान"—स्वामी एकरसानन्द सरस्वती।

140. गो. बा. बड़थ्वाल, 2/4 तथा 5/12।

141. ह. प्र.—181/67 तथा 182/68।

142. वही 182/68।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

143. वही 205/83।
144. वही 191/93।
145. वही 191/94।
146. वही 197/105।
147. वही 198/109।
148. वही 193/97।
149. यो. द.—पतंजलि 'तस्य वाचकः प्रणवः' 37/ 27।
150. ह. प्र.—163/29 तथा 164/30।
151. यो. वा.—5/78/21।
152. ना. और सं. सा. का तु. अ.—पृ. 395।
153. वही—पृ. 399।
154. "सब्दहिं" ताला सब्दहिं कूंजी,सब्दहिं सब्द जगाया।
सब्दहिं सब्द सूं परचा भयो, सब्दहिं सब्द समाया। —गो.बा. 8/21।
155. ना. और सं. सा. का तु. अ.—(अप्रकाशित प्रति में से) पृ. 400।
156. वही, पृ. 518।
157. ह. प्र. 188/84।
158. वही 188/85।
159. वही, 189/86।
160. वही, 189/88।
161. वही, 182/69।
162. वही 182/70।
163. वही, 183-84/72-73।
164. वही—184-85, 74-75।
165. वही—185/76।
166. वही—185 से 85 तक। 70 से 77 तक।
167. वही—185/77।
168. वही—187/81।
169. वही—189/87।
170. वही—195/100।
171. वही—195/101।
172. क. की वि. धा.— डॉ. गो. त्रिगुणायत, पृ. 451।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

173. सि. सा.—डॉ. धर्मवीर भारती—पृ. 338।
174. द्रष्टव्य : प्र. मा.—पृ. 7।
175. गो. वा.—20 ।54।
176. वही—33 ।95।
177. वही—47 ।135।
178. वही—62 ।184।
179. हिं. की नि. का. धा और उ. दा. पृ.—पृ. 542—524।
180. द्रष्टव्य : वही, पृ. वही।
181. द्रष्टव्य : ह. प्र. में गोरख, महिन्द्र (शिष्य, गुरु) के यह प्रश्नोत्तर— गोरख—स्वामी कहां बसै चंद कहां बसै सूर। कहां बसै नाद बिंद का मूर।
मछिन्द्र—अवधू उरछैं बसैं चंद, अरथैं बसै सूर। हिरदे बसै नाद, बिंद का मूर।
—ह. प्र. 190 ।33-34।
182. ह.प्र. 185 ।76।
183. वही—पृ. 137।
184. वही—पृ. 138।
185. वही—पृ. 4.1.137।
186. हिं. सा. का इति.—रामचंद्र शुक्ल—पृ. 20।
187. गो. वा.—61 ।181।
188. द्रष्टव्य : सि. सा. में पृ. 409 पर विद्वानों के विभिन्न मत।
189. यो.प्र. पृ. 27-24 क्रमशः।
190. सि. सा.—प. 409।
191. हिं. की नि. का. धा. और उ. दा. पृ.—533।
192. वही।
193. गो. ना.—मोहन सिंह, पृ. 25, सि. सा. पृ. 409 से उद्धृत।
194. डॉ. धर्मवीर भारती का मत, सि. सा.—पृ. 409।
195. वही।
196. ना. बिं. उप.—'श्लो. सं. 23 से 39 तक द्रष्टव्य'।
197. वही—श्लोक सं. 50।
198. क. ग्रं. 11/22
199. ना. बिं. उप.—श्लो. सं.—49।
200. वही—श्लो. सं. 56।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

201. ह. प्र.—195 ।101 ।
202. सि. सा. पृ. 409 ।
203. सि. सा.—पृ. 340 ।
204. वही—पृ. 352 ।
205. ह. प्र.—176 ।56 ।
अन्यः शून्यो बहिः शून्यः शून्यः कुंभ इवांबरे। अन्तः पूर्णा बहिपूर्णः कुंभ इवार्णवे।
206. गो. बा.—32/91 ।
207. सि. सा. पृ. 298 द्रष्टव्य।
208. गो. बा.—85 से 156 तक द्रष्टव्य।
209. "सिंगी" वाद्य के विवरण के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध का' वाद्याध्याय देखिये।
210. द्रष्टव्य : टीका बौ. गा. और दो.—67-68 ।44, सि. सा. पृ. 339 से उद्धृत।
211. द्रष्टव्य : डॉ. बड़थ्वाल का मत, "हिं का. में नि.सं.—पृ. 82 ।
212. "जब लगि प्रेम न व्यापै, तब लगि स्वाप
स्वाप जात जब आवत, पाढ़त जाप।"
द्रष्टव्य : अ. बां.—पृ. 22 ।
213. सू. मं. और हिं सा.—डॉ. विमल कुमार जैन, पृ. 60 ।
214. वही ।
215. द्रष्टव्य : सू. म. सा. और सा.—रामपूजन तिवारी, पृ. 366 तथा 372 ।
216. सू. म. सा. और सा.—पृ. 373 ।
217. वही—पृ. 372 ।
218. त. अथवा सू. म.—चन्द्रबली पाण्डे—पृ. 88 ।
219. त. अथवा सू. म.—पृ. 89-90 ।
220. वही, पृ. 22 ।
221. वही, पृ. 23 ।
222. वही, पृ. वही ।
223. मृत्यु सं. 1106 ।
224. त. अथवा सू. म.—पृ. 55 ।
225. सू. म. और हिं. सा.—पृ. 61 ।
"Listening to Music As Ghaszali says again results in the purification of the heart and purification is the cause of revelation for by the power of Music the heart is roused to activity and is strengthened for the contemplation of what was previously beyond its power."

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

226. "Acoording to Zun-Nun, A good sound stirs the heart to seek God and becomes a means of penetrating into reality."
आ आफ. इ. क., भाग 2, पृ. 502 सू. म. और हिं. सा.–पृ. 61 पाद टिप्पणी से उद्धृत।

227. दि न्यू. आं. डि. आंफ म्यू.–संपा. एगन वेलीज़, पृ. 440।

228. कुरान, 56, 96, 'कल्याण' (पत्रिका) भगवन्नाम महिमा और प्रार्थना अंक, जनवरी, 1965 पृ. 154 से उद्धृत।

229. द्रष्टव्य : क. अ. म.–पृ. 402।

230. द्रष्टव्य : सू. का.–पृ. 401।

231. वही,पृ. 113।

232. सू. म. सा. और सा.–पृ. 374–75।

233. सू. म. सा. और सा.–पृ. 375।

234. अ. बां.–पृ. 46 त. अथवा सू. म.–पृ. 151 से उद्धृत।

235. त. अथवा सू. म.–पृ. 89।

236. सू. म. सा. और सा.–पृ. 373।

237. सू. म. सा. और सा.–पृ. 373।

238. द्रष्टव्य : सू. म. और हिं. सा.–पृ. 61।

239. "Dul-Nun-al-Misri said of the ecstasy produced by music that it was a divine messanger, urging to the heart to seek god and who listens to it, seeking its spiritual meaning will find God." –अ. दि. मि.–पृ. 89।

240. "So, too, abdul Hussayn At Sarraj; : Ecstasy (Wazd) is an expression for what is experienced in Listening to music and music carries the place where beauty dwells and enables me to contemplate God,"
–अ. दि. मि.–पृ. 89।

241. द्रष्टव्य : दि रि. ए. एंड ला. इन इ.–मैक्डोनल्ड, पृ. 46 त. अथवा सू. म.–पृ. 88 से उद्धृत।

242. द्रष्टव्य : चन्द्रबली पाण्डे कामत, त. अथवा सू. म.–पृ. 88।

243. जा. ग्रं., पद्मावत–पृ. 16।

244. "नाद अनाहद अहद, सुनै अनाहद कौन।
सिद्ध होइ अपने. गुन, सुनै अनाहद तौन।" –इं.–पृ.।

245. जा. ग्रं.–पद्मावत–पृ. 122।

246. पद्मावत, संपा. वासुदेव शरण अग्रवाल, अध्याय सं. 20, वसन्तखंड, 215/189, अध्याय सं. 42 राजा बादशाह युद्ध खण्ड 687, 527, 142, 126 तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

187/164।

247. वही, 693/528।

248. वही, 215, 189, 400 /232, 687 /527।

249. ऋ. वे. सं.—1 /164 /10।

250. द्रष्टव्य : सुं. द.—त्रिलोकीनारायण दीक्षित, पृ. 129-29-30-31 तथा हिं. की नि. का. धा. और उसकी दा. पृ.—पृ. 136-37।

251. क. ग्रं. पृ. 96 /121।

252. सुं. ग्रं., प्र. खं., पृ. 100, सुं. द.—पृ. 131।

253. आ. ग्रं. म. 5, पृ. 185।

254. वही, म. 5, पृ. 885।

255. "ओ सतिनामु करता पुरख निरभउ निर्वैर अकाल मूरत अजूनी सैभं गुरुप्रसादि।"
—आ. ग्रं.

256. योगांक, सं. 1992 लेख "सुरतशब्दयोग"—आनन्द स्वरूप साहेब महाराज, पृ. 79 के आधार पर।

257. द्रष्टव्य : हिं. वि. को. खं. 1, ना.प्र. स.0—पृ. 1।

258. "फेरी फेरू न होवै कबही, एकु सबदु बंधि पालै।"
आ. ग्रं. पृ. 885 म. 5।

259. दा. बा., भाग 1, पृ. 199 तथा सं.बा. सं., भाग 2, पृ. 165।

260. "गुरमुख जोगु कमाबै अउधूं। जतु सतु सबदि बीचारी।
सबदि महै मनु मारै अरधू। जोग जुगति बीचारी।
गइआ मोह भवजल है अवधू। सबदि तरै कुल तारी।
सबदि सूर जुग चारे अउधू। वाणी भगति बीचारी।
आपे बखशे मेलि मिलाऐं। नानक सरणि तुमारी।" —आ. ग्रं., म.1, पृ. 908।

261. "कल्याण', जन. 1965, पृ. 320।

262. श.—5, पृ. 9।

263. क. ग्रं. पृ. 168।

264. सुं. ग्रं., द्वि. खं., 900/2।

265. सं. का., द्वि. खं., 218/16।

266. दा. बा., भाग 1 पृ. 199।

267. "व्योमरु शब्द जुदे नहिं होवत।
ऐसेहि अन्तःकरण विचारो।"—स. वि., पृ.96।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

268. क. ग्रं. 49 /611।

269. "गुर चरणी सेबकु लागा,
गुरि सतगुरि मरमि चुकाइआ,
कहु नानक सबदिमिलाइआ।"—आ.ग्र. म. 1, पृ. 879।

270. "नामु निधानु तिसहि परापति।
जिसु सबदु गुरु मनि बुठा जीउ।—वही, म. 5 पृ. 101।
तथा—सबदि रवै मनु हरि सिद्ध लागा।" वही, पृ.221।

271. वही, म. 1, पृ.879।

272. "आहतो नाहतश्चेति द्विधानादो निगद्यते।"—सं. र. 1. 2. 3।

273. क. वा. पृ. 104, हिंदी का. में नि. सं. पृ. 298।
क. ग्रं. पृ. 325।—हिं. की नि. का. और उ. दा. पृ.—पृ. 522
"हरि की कथा अनाहद वाणी"—आ. ग्रं. 483।31।
गुरमुखि नादं "सं. सं. सु. सा. पृ. 129, जपुली में से।

274. क. ग्रं. पृ. 110।

275. सं.का. पृ. 215/10 म. 1।

276. सं.सं. सु. सा. 224/17।

277. दीपक बिन जोति,जोति बिन दीपक,हद बिन अनाहद सबद बागा।
चेत न होइ सु चेति लीज्यौ, कबीर हरि के अंगि लागा।'
—हिं सं. का. सं.—संपा. गणेशप्रसाद द्विवेदी, द्वि. सं., पृ. 106।

278. द्रष्टव्य :सं. ना. की हिं.प.—51/122, 81/170, क. ग्रं. 115/195, 86/72, 103/153, 105/159, आ. ग्र.—पृ. 240 तथा पृ. 351।

279. आ. ग्रं.—म. 1 पृ. सं. 764।

280. 1. दोहा—जबहिं अष्ट कुम्भक सधहिं, बाजै अनहद नाद।
दश प्रकार की धुनि सुनहिं, छूटहि सकल विषाद।
छप्पय—प्रथम भ्रमर गुंजार शेष धुनि दुतिय कहिज्जै।
त्रितिय बजहिं मृदंग, चतुर्थ ताल सुनिज्जै।
पंचम घंटा नाद, षष्ट वीणा धुनि होई।
सप्तम बज्जहिं भेरि, अष्टमं द्वन्द्वभि दोई।
अब नवमैं गर्ज्जं समुद्र की, दशम मेघ घोषहिं गुनै।
कहि सुन्दर अनहद नाद कौं, दश प्रकार योगी सुनै।"
सुं. ग्रं.—प्रथम खण्ड—पृ. 49।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

281. क. ग्रं.–86/72।

282. वही–86/74।

283. द्रष्टव्य : योगांक, "सुरत शब्द योग"– आनंदस्वरूपजी महाराज, पृ. 79।

284. हिं. का. नि. का. धा. और उ. दा. पृ.–711।

285. वही, द्रष्टव्य : डॉ. त्रिगुणायत का मत, पृ. 539, हिं. का. में नि. सं.–डॉ. बड़थ्‍‍याल, पृ. 275 सिद्ध साहित्यकार का मत, सि. सा., पृ. 409-10 तथा द्रष्टव्य, "क. एक वि."–डॉ. सरनाम सिंह का मत, पृ. 298।

286. क. ग्रं. 14/181।

287. सं.सं. सु. सा., पृ. 274।

288. क. ग्रं. पृ. 11।

289. सुं. ग्रं., प्र. खं. "ज्ञान समुद्र ग्रंथ, पृ. 100 तुलना हेतु द्रष्टव्य
"विस्मृत्य सकलं बाह्य नादे दुग्धाम्बुवन्मनः।
एकीभूयाथ सहसा चिदाकाशेविलीयते।"

290. क. ग्रं. 11/23 तुलनीय ना. बिं. उप. का निम्न श्लोक–
"नादकोटिसहस्राणि बिन्दु कोटिशतानि च।
सर्वतत्र लयं यान्ति ब्रह्मप्रणवनादके। "ना बिं. उप., श्लो. सं. 50-51।

291. द्रष्टव्य : डॉ. बड़थवाल का मत, "हिं. का. नि.सं.–पृ. 286 तथा चतुर्वेदी जी का मत", क. सा. कीप., पृ. 251।

292. "नाद बिंद की सुरति समाइ। सतिगुरु सेवि परम पदु पाइ।"
(सं.का. 214/8 द्वि. सं.)

293. "नाद बिंद है फीकी सिला। जिहि साध्या ते सिद्धि मिला।"
–गो. बा.पृ. 61/181।

294. "नादहिं व्यंद कि व्यंदहिं नाद, नादैं व्यंद मिलें गोबिन्दं।"
–क. ग्रं., पृ. 148।

295. "अवधू नादैं व्यंद गगन गाजै सबद अनाहद बोलै।
अंतरगति नहि देखै नेड़ा–ढूंढत बन बन डोलै।" –वही–115/196।

296. "जहां नाद न व्यंद दिवस नहीं राती, नहीं नरनारि नहीं कुल जाती।
कहै कबीर सरब सुख दाता, अविगत अलख अभेद बिधाता।"
क. ग्रं. 141/297।

297. वही पृ. 94।

298. "बिंदु राख जो तरवैं गाई। खुसरै क्यों न परमगति पाई।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वही पृ. 300।

299. क. ग्र. 115/195।

300. सुं. ग्रं., द्वि.खं.–पृ. 871।

301. "मंत्रयोग अब सुनियहु भाई। सतगुरु विना न जान्यो जाई।
(सं. यो. प्र.द्वितीयोपदेश, सुं. द.–पृ. 116 से उद्धृत)।

302. आ. ग्रं. पृ. 236।

303. वही, पृ. 191।

304. सं. का. पृ. 260।

305. द्रष्टव्य : डॉ. बड़थवाल का मत, हिं. का. में नि. सं.–पृ. 274।

306. क. ग्रं. पृ. 149।

307. सुं. वि. 83/20।

308. वही 83/21।

309. क. ग्रं. 82/53।

310. आ. ग्रं. पृ. 213।

311. वही, म. 5 पृ. 100।

312. कल्याण, जनवरी, 1965 पृ. 331।

313. "अजपा जपत सुंनि अभिअंतरि, यहु तत जानै सोई।
कहै कबीर स्वाद जब पाया, बंकनालि रस खाया।
अमृत झरै ब्रह्म परकासै, तब ही मिलैं रांमराया।"

—क. ग्रं. पृ. 119।

314. अ. रा. सा.,पृ. 13 भाग 2।

315. सं. का. 218/ 16 द्वि. सं.।

316. सु. वि. 56/4।

317. द्रष्टव्य : डॉ. त्रिगुणायत का मत, हिं. की नि. का. धा. और उ. दा. पृ.–पृ. 489-90।

318. स. यो. प्र. द्वितीयोपदेश : तथा सुं. द. पृ. 136।

319. सुं. द.–पृ. 102।

320. गु. अ. दे. की वा.–पृ. 180।

321. वही, पृ. 42-43।

322. वही, 75/153।

323. वही, पृ. 79।

324. वही, पृ. 181।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

325. स्वा. दा. द. की वा.–

326. कल्याण, जन. 1965, पृ. 315।

327. क. ग्रं. 253/215।

328. सं. का. 131/22।

329. कल्याण, जन. 1965, पृ. 201।

330. द्रष्टव्य :वही।

331. हिं. का. में नि. सं.–पृ. 271-72 के आधार पर।

332. सं. बा. सं.–पृ. 87।

333. "नाभि विष मिलि सप्त किये स्वर, पुरुष संयोग पश्यन्ति बखानी।
नादसंयोग हृदय पुनि कण्ठ, जो मध्यम याही विचार तें जानी।
अक्षरमंद मिलै मुखद्वार सों, बोलत सुन्दर वैखरी बानी।"
–सुं. वि.–96।8।

334. आ. ग्रं.–पृ. 834-84, म. 5।

335. क. ग्रं.–74/18।

336. "नाद, रूपं परंज्योतिर्नाद रूपी परो हरिः।"
–श्री रा. मा. चिं.–हनुमान प्रसाद पोद्दार, पृ. 715।

337. "सर्वे वाक्यात्मका मन्त्रा षटशास्त्राणि कृत्स्त्रशः।
पुराणानि च काव्यानि भाषाश्च विविध अपि।
सप्तस्वराश्च गाथाश्च सर्वेनाद समुद्भवाः।"
–अष्टो. शतो. षत्सु.–यो. शि. उप.–पृ. 433-34।

338. श्री रा. मा. चिं.–पृ. 715 से उद्धृत।

339. द्रष्टव्य, श्री. भा.–11. 21–श्लो. सं. 36 से40 तक।

340. "गुपती वाणी परगटि होई। नानक परखि लए सचु होई।"
–आ. ग्रं. रामकली, म. 1 सिद्धिगोष्टि।

341. श्री. रा. मा. चिं.–पृ. 715।

342. "एषा सरस्वती देवी सर्वभूतगुहाश्रया॥8॥"
अ. श.–यो. शि. उप.–पृ. 433-34।

343. श्री रा.मा. चिं.–द्रष्टव्य, पृ. 715-16।

344. वही, पृ. 716 और 722 द्रष्टव्य।

345. द्रष्टव्य, वही।

346. भागवत, 10 35, 14-15।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

347. एक गोपी कहती है—"हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ।
मन क्रम, बच हरि सौं धरि पतिव्रत, प्रेम जोग तप साध्यौ।
मातु,पिता हित प्रीति निगम पथ, तजि दुख सुख भ्रम नाथ्यौ।
मान अपमान परम परितोषी, सुस्थल थिति मन राख्यौ।
सकुचासन कुल सील कुरषि करि, जगतबंध करि बंदन।
मौन पवाद पवन आरोहन, हित क्रम काम निकंदन।
गुरुजन कानि अगिनि चहुं दिसि, नभ तरनि ताप बिनु देखे।
पिवत भ्रम उपहास जहां तहं, अपजस स्रवन अलेखे।
सहज समाधि सरि बपु बानक, निरषि निमेष न लागत।
परम ज्योति प्रति अंग माधुरी,
धरति यहे निसि जागत।
त्रिकुटी संग भ्रू.—भंग तराटक, नैन-नैन लगि लागैं।
हंसनि प्रकास सुमुख कुंडल मिलि, चंद सूर अनुरागैं।
मुरली अधर स्रवन धुनि सो सुनि, सबद अनाहद कानैं।"

—सू. सा.—द्वि खं., सं. 1448/3530/4148।

348. "मुरली कौन तप तैं कियौ।
रहत गिरधर मुखहिं लागी, अधर कौ रस पियौ।
नंद नंदन पानि परसै, ताँहि तन मन दियौ।
सूर श्रीगोपाल बस किये, जगत में जस लियो।"

— श्री. रा. मा. चिं.—पृ. 720 से उद्धृत।

349. "तप हम बहुत भांति कर्‌यौ।
हेम वरषा सही सिर पै, घाम तनहिं जर्‌यौ।
काटि बेधी सप्त सुर सों, हियौ छूछौ कर्‌यौ।
तुमहिं बेगि बुलायबे कों, लाल अधरन धर्‌यौ।
इतने तप मैं किए तबहीं, लाल गिरधर धर्‌यौ।
सूर श्रीगोपाल सेवत, सकज कारज सर्‌यौ।"

—वही, पृ. 721

350. द्रष्टव्य : भागवत का वेणुगीत, 10. 21।

351. हिं. भ. र. सिं.—201/432।

352. द्रष्टव्य : भा. सं. और सा., प्र. खं., पृ.।

353. हिं. भ. र. सिं.—218/478।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

354. वही, 163/353।

355. श्री. भा. 10, 21/ 1 से 20 श्लोक सं. तक द्रष्टव्य।

356. "कौन ठगौरी भरी हरि आजु, बजाई है बाँसुरिया रंगभीनी।
तान सुनी जिनहीं तिनहीं, तबहीं कुल-लाज विदा करि दीनी।
घूमै घरी घरी नंद के द्वार, नवीनी कहा कहूं बाल प्रवीनी।
या ब्रजमंडल में रसखानि, सु कौन भटू जो लटू नहिं कीनी।
बजी सु बजी रसखानि, सुनि के अब गोकुल बाल न जीहैं।
न जीहैं कदाचित कानन कौं, अब कान परी वह तान अजी है।
अजी है, बचाओ, उपाय नहीं, अबला पर आनि के सैन सजी है।
सजी है हमारो कहा बस है, जब बैरिन बांसुरी फेरि बज़ी है।
आजु चली एक गोपलली भइ बावरि, नैकु न अंग सँभारै।
मातु अघात न देवन पूजत, सासु सयानि सयानि पुकारै।
यों रसखानि फिरी सगरे ब्रज, आन कुआन उपाय बिचारै।
कोउ न कान्हर के कर तें, बैरन बांसुरिया गहि डारै।"
—श्री रा. मा. चिं.—पृ. 719 से उद्धृत।

357. श्री. भा., 10, 21. 4।

358. वही, 10. 21. 6।

359. सू. सा.—पृ. 3530।

360. "संकीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति च भक्तान्।" —म. सू.—पृ. 80।

361. श्री. श्री. चै. च.—खं. 2, पृ. 146।

362. "नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद।"
श्री. भा.—प्र. एक.—श्लो. सं. 32-33-34।

363. "विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।"—श्री.भा. 11/14।

364. क. गूं.—253/215।

365. आ. गृं.—गौड़ी सुखमती, म. 5, पृ. सं.।

366. वही—पृ. 483।

367. वही—पृ. 879।

368. श्री. भा.—प्र. स्वं. श्ला. सं. 32, 33, 34।

369. "जाप अजपा हो सहज धुन, परखि गुर गम धारिए।
मन पवन थिरकर शब्द निरखे, कर्म मन्मथ मारिए।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बो. सा.—भाग 2, पृ.सं.—13।

370. "जपौं न जाप हतौं नहिं गूगल, पुस्तक ले न पढ़ाऊँ।
कहैं कबीर परमपद पाया, नहीं आऊं नहिं जाऊं।" —क. ग्रं.—116/196।

371. "दृष्टिः स्थिरा यस्य बिना सदृश्यं, वायुः स्थिरो यस्य बिना प्रयत्नम्।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बं, स ब्रह्मतारान्तरनाद रूपः।" —ना. बि. उप.श्लो.—56।

372. "सुरति समांणी निरति में, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खुले स्यंमू दुआर।" —वही—11।11।

373. "नाद कोटिसहस्राणि बिन्दुकोटिशतानि च।
सर्वे तत्र लयं यान्ति ब्रह्मप्रणवनादके।" —ना. विं. उप., श्लो. सं.।

374. शंखदुन्दुभिनादं च न शृणोति कदाचन।"—वही,श्लोक सं.52

375. मुरली शब्द सुनि मन आनंद भयौ। जोति बरै दिन राती। क. पृ. 199।

376. "अन्तरपट दे खोल, शब्द उर लाव री।
दिल बिच दास कबीर, मिलें तोहि बावरी।"
क. बच., पृ. 141-42, क.—पृ.198 से उद्धृत।

377. सुं. ग्रं., द्वि. खं., पृ. 887।

378. "ऐसा ध्यान धरो नरहरी।
सबद अनाहद च्यंतन करी।—क. ग्रं. 148/325।

379. अनहद सबद उठे झणकार, तहां प्रभु बैठे समरथ सार।
कदली पुहुप दीप परकास, रिदा पंकज में लिया निवास।
वहीं149।328।

380. "बिनहीं तालां ताल बजावै, बिन मैदल पटताला।
बिनहीं सबद अनाहद बाजै, तहां निरतत है गोपाला।
वही, 105/156।

381. वही, "साधो सहज समाधि भली।
सबद निरंतर से मन लागा, मलिन वासना त्यागी।
ऊठत, बैठत, कबहुँ न छूटै, ऐसी तारी लागी।" —क. पृ. 67।

382. सुं. ग्रं. दि. खं. पृ. 829।

383. कबीर सबद सरीर में, बिन गुण बाजैं तंति।
बाहरि भीतरि रमि रह्या, तातैं छूटि भरंति। —क. ग्र.—49।1।

384. सुं. वि.—83/20।

385. वही—83/21।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

386. "गगन नगरि इक बूंद न वरषे, नाद कहा जु समाना।
पारब्रह्म परमेसरु माधव, परमहंस ले सिधाना।
× × × ×
सुरति माहि जो निरते करते, कथा वार्ता कहते।
बजावनहारो कहां गयों, जिन इहु मंदर कीना।
× × × ×
कहत कबीरा जो हरि ध्यावै, जीवन बंधन तोरे।"
—क.ग्रं. 214/57

387. "एक समसेर इकसार बजती रहे, खेल कोई सूरमा संत झेले।
कामदल जीति करि क्रोध पैमाल करि, परम सुखधाम तहँ सुरति मेले।
सील से नेह करि ज्ञान को खंग ले, आय चौगान में खेल खेले।
कहैं कबीर सोइ सन्त जन सूरमा, सीस को सौप करि करम ठेले।
—क. सा. की श.—भाग पृ. 106, पृ. 185 से उद्धृत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गंधारः तृतीय अध्याय

विवेच्य संतकवियों का संगीत-ज्ञान-संबंधी परिचय

हिन्दी का निर्गुण संतकाव्य अधिकांशतः निबद्ध गान का साहित्य है, अतः यह स्वाभाविक ही है कि संतकवियों को संगीत का सुदृढ़ ज्ञान रहा होगा। संत नामदेव का पंढरपुर में विठोबा के मंदिर में नियमित रूप से गायन में तल्लीन रहना तथा गुरुनानक का मर्दाना से रबाब बजवाकर, नित्यप्रति नई-नई पदरचना कर, गायनरत रहना, प्रसिद्ध ही है। विराट् ग्रंथराज 'आदिग्रंथ' के संपादक गुरु अर्जुनदेव को महाकवि, महान् समाजसेवी, भक्त और योद्धा आदि के साथ-साथ उच्चकोटि के गायक[1] भी कहा जाता है। इनके सम्बन्ध में कहा गया है कि ये बाल्यावस्था से ही प्रभुभक्ति के गीत बना बनाकर गाया करते थे।[2] सामान्यतः पहले गुरु-दरबार में मिरासी, भाट आदि ही वाणी का गायन किया करते थे, किंतु गुरु अर्जुनदेव जी ने अपनी भक्तमंडली को संगीत सीखाकर, स्वयं पूर्वकालिक गुरुओं के पदों का गान करने के लिए प्रेरित किया। गुरु अर्जुनदेव के सम्बन्ध में ऐसा भी प्रसिद्ध है कि 'सरंदा' नामक वाद्यथंत्र का आविष्कार भी इन्होंने ही किया था और वे स्वयं 'सरंदा' बजाकर 'बानी' का गान किया करते थे।[3] उन्होंने लगभग 30 राग रागिनियों, 17 घरों एवं लोकगीतों की अनेकों विविध शैलियों में अपने पदों को निबन्द्ध किया है। यह सब कार्य एक कुशल संगीतज्ञ द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

इसी प्रकार दादूपंथियों में संगीत को परम्परागत रूप से स्थान मिलने का भी उल्लेख मिलता है।[4]" संत सुन्दरदास को भी गायन कला में प्रवीण कहा गया है।[5]

निर्गुण कवियों ने संगीत की शिक्षा आध्यात्मिक गुरुओं से प्राप्त की अथवा अलग से संगीत-गुरुओं से या फिर उक्त ज्ञान उन्हें परम्परागत रूप में मिला आदि अनेक प्रश्न उक्त संदर्भ में विचारणीय हैं। संक्षेप में, निम्नांकित प्रमुख तत्त्वों के आधार पर संतकाव्य में संगीत के स्थान की दृष्टि से, संतों का जीवन-परिचयात्मक-अध्ययन उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

1. संतों के जीवन में संगीत का स्थान अर्थात् संतों ने अध्यात्म के साथ संगीत-साधना को जीवन में क्या स्थान दिया है? सूरदास, कुम्भनदास आदि अष्टछाप के कवियों की भाँति उन्होंने अध्यात्म और संगीत-साधना को जीवन में क्रियात्मक रूप से समान महत्त्व दिया है अथवा साधनाद्वय को पृथक्-पृथक् स्थान दिया है। अभिनवगुप्त विभिन्न विषयों के अधिकारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्वान् थे। उनके हर विषय के अलग-अलग गुरु थे, ऐसा कहा जाता है; इसी प्रकार, संतों के भी आध्यात्मिक एवं संगीत-गुरु पृथक् पृथक् रहे हों, ऐसा भी संभव है।

2. इसके विपरीत, यह भी संभाव्य है कि संतों के कुछेक अथवा सभी आध्यात्मिक गुरु संगीत का ज्ञान रखते हों और इस प्रकार उनके संगीत-गुरु भी रहे हों।

3. निर्गुण संत-परम्पराओं में अथवा संतों के निजी विशिष्ट पदों में संगीत का पारम्परिक रूप से स्थान बना रहा हो, ऐसा भी अनुमान किया जा सकता है यथा दादूपंथ,[6] बाबरी पंथ[7], तथा सिक्ख-पंथादि[8] में संगीत की परम्परागत प्रतिष्ठा के उल्लेख भी मिलते हैं।

ऐसा भी संभव है कि निर्गुण मत के अधिकांश कवियों ने प्रथम संगीतज्ञ के रूप में अपना जीवन प्रारम्भ करके, बाद में आध्यात्मिक गुरु धारण किया हो। यथा, संत वषना जी के सम्बन्ध में 'जनगोपाल की जन्मलीला' में उल्लेख आया है कि ये उच्च कोटि के गायक थे। एक बार जब दादू परिभ्रमण करते-करते नराणे पहुंचे तो वहाँ उन्होंने वषनाजी को भौतिक सुख-दुखादि विषयों से सम्बन्धित होरी गाते सुना। स्वरमाधुर्य से प्रभावित हो, उन्होंने उन्हें अपना लिया और कहा कि "भगवान ने यह दुर्लभ मानवदेह बनाई है, अतः अपने मधुर कंठ से राम और निरंजन का गुणगान करो।" वचन को सुनकर वषनाजी ने तुरंत गुरुदीक्षा ले ली[9] और उनकी आज्ञानुसार भविष्य में आध्यात्मिक पद-गायन का संकल्प किया।[10]

5. उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त यह भी संभव है कि निर्गुण संतों की परम्परा में कोई संगीतज्ञाता शिष्य रहे हों, जोकि आध्यात्मिक गुरु के पदों को राग-तालबद्ध कर लेते हों अथवा यह भी संभाव्य है कि पद-गायन की इच्छा प्रबल होने पर गुरु ने स्वतः स्फूर्त आवेग से, किसी धुन की रचना कर ली हो, और बाद में उसके संगीतज्ञ शिष्यों ने उस धुन-विशिष्ट को शास्त्रीय रूप देकर, राग-तालबद्ध कर लिया हो।

इस प्रकार संतों के काव्य में उक्त अनेक तथ्यों के आधार पर संगीत को स्थान मिला होगा, ऐसा माना जा सकता है। यद्यपि यह सत्य है कि निर्गुण संतकाव्य में संगीत का प्रवेश उक्त तत्वों के आधार पर ही संभाव्य है; परंतु इन तत्त्वों में से कौन सा तत्त्व किस संतकवि की निबद्ध रचनाओं पर चरितार्थ हो सकता है, प्रामाणिक सामग्री के अभाव में एवं संतों द्वारा अपने विषय में कुछ न लिखने की प्रवृत्ति आदि कारणों से इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है अतः संगीतज्ञान के परिप्रेक्ष्य में संतों के जीवन का अध्ययन किन तथ्यों के आधार पर किया जा सकता है, प्रस्तुत आलेख में ऊपर वे कतिपय तथ्य रूपी दिशाएँ मात्र ही दिखा कर, संतोष कर लेना पड़ा है। इस अध्याय में उन तत्त्वों के आधार पर संतकवियों के जीवन का अध्ययन प्रस्तुत करना संभव हो सका है। इस प्रकार प्रस्तुत संक्षिप्त वक्तव्य के पश्चात् अपने प्रतिपादय काल (13 वीं से 16वीं शताब्दी) के प्रतिनिधि 7 कवियों (संत जयदेव,नामदेव, कबीर, नानक, गुरु अर्जुनदेव, दादू, सुंदरदास) का सामान्य जीवन-परिचय देकर ही प्रस्तुत अध्याय को समाप्त कर देना पड़ा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(क) संत जयदेव

जन्म, जीवनकाल तथा विचारधारा

संत जयदेव का नाम कबीर[11] तथा सुन्दरदास[12] प्रभृति संतों ने अपनी रचनाओं में बड़ी श्रद्धा से लिया है और इनके निर्गुण-भक्तिपरक दो पद भी आदि ग्रंथ में संगृहीत हैं, अतः इन्हें निर्गुणभक्तों में स्थान दिया गया है। यदि ये गीतगोविंदकार जयदेव ही हैं तो इनकी जन्मभूमि 'किंदुविल्व' नामक ग्राम है, जिसका 'गीतगोविंद' में भी उल्लेख है।[13] तदनुसार इनका समय विक्रम संवत् की 13वीं शताब्दी है और ये संगीतशास्त्र के पंडित थे। उड़ीसा के राजा प्रताप रुद्र (सं. 1464-1598) के समय के एक शिलालेख से* प्रकट होता है कि सं. 1556 की 17 जुलाई बुधवार को आदेश निकाले गए थे कि उक्त मंदिर में प्रतिदिन संध्याकाल से लेकर भगवान के शयनकाल तक नृत्य होगा और प्रत्येक नर्तकी या वैष्णवगायक को केवल 'गीतगोविंद' के पदों का गान करना अनिवार्य है, दूसरे गीतों का गान निषिद्ध घोषित किया गया।[14] इस तथ्य से इनका काव्यशास्त्र, संगीतशास्त्र एवं भक्तिशास्त्र तीनों शास्त्रों के मर्मज्ञ होने का संकेत मिलता है।

यदि ये गीतगोविंदकार जयदेव ही हैं तो हम ऐसा भी मान सकते हैं कि बाद में नाथपंथ से प्रभावित होकर इन्होंने संत नामदेव की भांति निर्गुण भक्ति का आश्रय ग्रहण किया हो अथवा ये उक्त जयदेव से भिन्न कोई निर्गुणपंथी संत रहे हों, ऐसा भी सम्भव है; क्योंकि 'गीतगोविंद' में शृंगाररस ही अंगीरस है और कबीर तथा सुन्दरदास आदि निर्गुणपंथी संतों के सिद्धांतों को देखते हुए यह सम्भव नहीं प्रतीत होता कि उन्होंने गीतगोविंदकार जयदेव का उपर्युक्त विशिष्ट प्रसंगों में श्रद्धापूर्वक स्मरण किया हो, अतः यह भी सम्भव है कि निर्गुणपंथी जयदेव, गीतगोविंदकार जयदेव से कोई भिन्न व्यक्ति रहे हों। यथेष्ट प्रामाणिक सामग्री के अभाव में इनके सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है। हमने आदिग्रंथ में प्राप्त इनके दो पदों की विचारधारा को देखते हुए इन्हें निर्गुणभक्ति में स्थान दिया है।

कृतियाँ

निर्गुण भक्ति की दृष्टि से आदिग्रंथ में इनके दो पद 'गूजरी' तथा 'मारू' रागनामों के अंतर्गत मिलते हैं। एक पद में हठयौगिक क्रियाओं की व्याख्या है और दूसरे पद में निर्गुन-संतों की सी उपदेशात्मक शैली देखने को मिलती है। ग्रंथ में गायन शैली के निर्देश हेतु 'राग गूजरी' वाले पद के साथ 'घरु 4' का उल्लेख है। निर्गुणभक्ति की काव्य-परम्परा के अंतर्गत उक्त दो पद ही इनके नाम से अब तक उपलब्ध एवं सुरक्षित हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ख) संत नामदेव

जन्म तथा व्यवसाय

संत नामदेव जाति के छीपी थे और इनका जन्म कार्तिक सुदी 11, सं. 1326 को सतारा जिले के नरसी बमनी गाँव में हुआ था। भगवद्भक्ति की ओर बाल्यावस्था से ही प्रवृत्ति होने के कारण इन्होंने अपने जातिगत व्यवसाय को छोड़कर अल्प-वय से ही भगवन्नाम के कीर्तन को अपना मनभाता व्यवसाय चुन लिया था। जिस प्रकार गुरु नानक अपने साथ मर्दाना को सदा रखते थे और परिभ्रमण अथवा देशाटन के समय उससे रबाब बजवाकर गाया करते थे, उसी प्रकार संत नामदेव के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि वे पंढरपुर में तथा अपनी अन्य यात्राओं में भी सदा करताल लिये रहते और भजन गाया करते थे। अधिंकाशतः ये विट्ठलदेव के मंदिर में संकीर्तन करने में ही लीन रहा करते थे। इस प्रकार ये एक उच्चकोटि के संगीतज्ञ संत थे।

आध्यात्मिक गुरु

इनके गुरु विसोबा खेचर नामक एक संत थे एवं संत ज्ञानेश्वर के प्रति भी इनकी गहन निष्ठा थी। पंढरपुर के विट्ठल इनके आराध्यदेव थे। कहा जाता है कि पहले ये सगुणोपासक थे, किन्तु बाद में निर्गुण भक्ति से प्रभावित होकर इन्होंने विसोबा खेचर को अपने आध्यात्मिक गुरु के रूप में स्वीकार किया। भक्ति-भावना के व्यापक होने पर पंढरपुर के 'वीठल' इन्हें सृष्टि के अणु-अणु में व्याप्त दृष्टिगत होने लगे।[15]

कृतियाँ

इनकी अधिकांश कृतियां मराठी भाषा में अभंगों के रूप में मिलती हैं, किन्तु हिन्दी भाषा के भी इनके विपुल मात्रा में पद प्राप्त होते हैं। आदि ग्रंथ में इनके हिन्दी भाषा विरचित 61 पद संगृहीत हैं, जिनमें मराठी औरं पंजाबी भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट है। इनके हिंदी पद अनेक संतबाणी-संग्रहों में संकलित मिलते हैं, परन्तु इधर संत नामदेव की 'हिंदी पदावली' शीर्षक पुस्तक इनकी रचनाओं का बड़ा वैज्ञानिक सम्पादन डॉ. भगीरथ मिश्र द्वारा किया गया है।

अन्तिम समय

संत नामदेव की मृत्यु का समय आश्विन बदी 13 सं. 1407 कहा जाता है।[16] इनकी समाधि पंढरपुर में विट्ठल के मंदिर की सीढ़ियों के अधरभाग में स्थित है। कबीर, नानक, दादू आदि आगे आने वाले निर्गुणमार्गी संतों के लिए पथप्रदर्शन करने वाले संतों में संत नामदेव का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ग) कबीर

जन्म तथा जीवनकाल

निर्गुण संतकवियों में सर्वाधिक जनप्रिय कवि कबीर के जन्म से लेकर जीवनकाल -पर्यंत तथा मृत्यु-स्थान आदि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद भी सम्भवतः सर्वाधिक हैं। इनका जन्म काशी में अथवा उसके आसपास ही हुआ था और इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग भी वहीं पर व्यतीत किया था, ऐसा इनकी कृतियों के अध्ययन से प्रतीत होता है। ये जाति के जुलाहे थे, जिसका उल्लेख इन्होंने अपनी रचनाओं में अनेक बार किया है।[17] इनकी मृत्यु का संवत् यदि 16वीं शताब्दी के प्रथम चरण में किसी समय मान लें तो इनकी जन्म तिथि को भी अधिकांश विद्वानों को मान्य सं. 1455 से कुछ पूर्व 15वीं शताब्दी के द्वितीय अथवा प्रथम चरण तक मानना होगा। ये महामानव होने के साथ-साथ एक महान् कवि,महान् भक्त एवं ज़बरदस्त समाजसुधारक थे। इन्होंने अपना पैतृक व्यवसाय कपड़ा बुनना, गृहस्थी और ईशभंक्ति का जीवन में पूर्णतः निर्वाह किया था। 'काम में राम' इनके जीवन का मूल स्वर था। इनके माता-पिता के सम्बन्ध में अनेक विवाद हैं। कुछ लोग इन्हें 'नीरू' और 'नीमा' नामक जुलाहा-दंपति के औरस पुत्र मानते हैं तो कुछ पौष्यपुत्र। इसी प्रकार 'लोई' को इनकी पत्नी भी कहा जाता है और शिष्या भी।

आध्यात्मिक गुरु

इनके गुरु रामानन्द कहे जाते हैं और पीपा, रैदास, धन्ना आदि को इनके गुरुभाई कहा जाता है, किन्तु इसके लिए भी ठोस प्रमाणों का अभाव है। सत्संग, देशाटन आदि की ओर इनका बाल्यावस्था से ही झुकाव था, अतः इनके कोई एक दीक्षा-गुरु होने की अपेक्षा अनेक गुरु रहे होंगे, ऐसा कहा जा सकता है।

कृतियाँ

कबीर ने, शास्त्र की अपेक्षा स्वानुभव पर अधिक बल दिया है, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने शास्त्रों के परायण की अपेक्षा देशाटन में अपने सामसामयिक सभी प्रसिद्ध धार्मिक नेताओं, साधु-संतों के सत्संग से, स्वानुभव द्वारा अधिक ज्ञान प्राप्त किया था। कबीर के नाम से अधुना प्राप्त रचनाओं में फुटकर पद, साखी, रमैनी, बेलि, चांचर आदि अनेक काव्यविधाओं एवं लोकगीतशैलियों का समावेश है। ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर के निधन के पश्चात्, समय के साथ-साथ कबीर की रचनाओं में उनके नाम से नई-नई कृतियां जोड़ी जाती रहीं, अतः कबीर की कौन सी रचनाएँ प्रामाणिक हैं, आज यह कहना अति कठिन है। डॉ. पारसनाथ तिवारी ने अपनी पुस्तक 'कबीर ग्रंथावली' में अनेक हस्तलिखित प्रतियों की प्रामाणिकता को भलीभाँति जांचकर इनके 200 पद, 20 रमैनियां, 1, चौंतीसी एवं 700 साखियों को प्रामाणिक माना है। डॉ0 पारसनाथ तिवारी को कबीर के नाम से प्रचलित 1600

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद, 4,500 साखियां और 134 रमैनियां मिली थीं, जिनमें से उन्होंने उनकी रचनाओं की उपरिलिखित संख्या को प्रामाणिक माना है।

कबीर के नाम से लगभग 225 पद तथा 250 'सलोकु' अथवा साखिंयां' आदिग्रंथ में संगृहीत हैं। इन्हें काफी हद तक प्रामाणिक माना जा सकता है, क्योंकि पंचम गुरु ने सं. 1661 में जब उक्त ग्रंथ का संपादन किया था, उसके बाद से सिक्खपंथ में ग्रंथ की साक्षात् गुरु रूप में प्रतिष्ठा हो जाने के कारण उसके पाठ में, अधिक परिवर्तन, प्रक्षेप अथवा विकृति की सम्भावना नहीं है।

इसी प्रकार 'कबीर ग्रंथावली' का प्रकाशन सं. 1561 तथा 1881 को दो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा किया गया। सं. 1561 वाली प्रति के प्रथम तथा अंतिम पृष्ठ की प्रतिलिपि भी पुस्तक में दी गई है। यद्यपि अंतिम पृष्ठ की प्रतिलिपि में जो 'संपूर्ण संवत् 1561" आदि लिखा है, वह दूसरी लेखनी का एवं कालांतर में लिखा प्रतीत होता है, फिर भी भाषा एवं कबीर के सिद्धांतों की दृष्टि से उक्त पुस्तक का बहुत बड़ा अंश प्राचीन एवं प्रामाणिक प्रतीत होता है।

'कबीर बीजक' कबीरपंथियों द्वारा कबीर की सर्वाधिक प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है। किन्तु इस पुस्तक में भाषा, सिद्धांत आदि की दृष्टि से बहुत से ऐसे तत्त्व मिलते हैं, जिनसे उसकी प्रामाणिकता में संदेह होता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि कबीर के शिष्य धर्मदास ने सर्वप्रथम सं. 1521 में कबीर की रचनाओं का एक संग्रह 'बीजक' नाम से तैयार किया था, परन्तु यह कृति बहुत बाद में तैयार की गई ऐसा प्रतीत होता है।[18] फिर भी कबीरपंथ में यह ग्रंथ सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है और इसमें बेलि, कहरा, चांचर, बिरहुली आदि अनेक गीत-प्रकारों के शीर्षक वाली रचनाएँ मिलती हैं, अतः प्रस्तुत प्रबन्ध में इस पुस्तक का उपयोग किया गया है।

बे.प्रे. से प्रकाशित 'कबीर साहेब की शब्दावली' (4 भाग) में भी बहुत से पद सैद्धांतिक दृष्टि से विचार करने पर कबीर के नहीं कहे जा सकते हैं, परन्तु उन्हें सर्वांशतः अप्रामाणिक भी अबतक सिद्ध नहीं किया गया है।

इस प्रकार, कबीर के नाम से, आज अनेक पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी हैं। 'सत्य कबीर की साखी' बम्बई से प्रकाशित हुई है तथा 'कबीर' नामक डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की पुस्तक में भी कबीर के लोक में प्रचलित अनेक पदों का संग्रह है। संगीत के विश्वकोष रूप वृहत् ग्रंथ (3 भाग) 'रागकल्पद्रुम' (कृष्णानन्द व्यासदेव द्वारा सम्पादित) में अन्य संतकवियों की भाँति कबीर के भी अनेक राग-तालबद्ध-पद समाविष्ट हैं। 'कबीर' तथा 'रागकल्पद्रुम' पुस्तकों में संकलित कबीर के पदों का मिलान करने पर, दोनों में, एक से, अनेक पद मिल जाते हैं तथा पाठसाम्य की दृष्टि से भी यह तुलनात्मक अध्ययन उपयोगी है, अतः प्रामाणिकता की दृष्टि से कबीर की रचनाओं का गंभीर अध्ययन अपेक्षित है। डॉ. पारसनाथ तिवारी ने 'कबीर ग्रंथावली' पुस्तक में इस ओर काफ़ी खोजपूर्ण कार्य किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(घ) गुरु नानक

महान् भगवद्भक्त, कवि, दार्शनिक और समाजसुधारक महामानव गुरु नानक, सर्वप्रथम एक उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे। मानसिक-विकास में बाधक व्यक्तिगत एवं सामाजिक कुप्रवृत्तियों, कुसंस्कारों, रूढ़ियों तथा बद्धमूल अंधविश्वासों का उन्मूलन करने के लिए संगीत कला को ही उन्होंने अपनी दिव्य 'बानी'के प्रकाशन एवं प्रचार का माध्यम बनाया। उन्होंने न केवल स्वदेश में ही, अपितु हिन्द की सीमा से भी आगे लंका, बगदाद, मक्का-मदीना आदि स्थानों की यात्रा कर, घूम-घूम कर अपने रामनाम से अभिमंत्रित मधुर गीतों को सुरीले कण्ठ से गा, उन-उन प्रदेशों के निवासियों को अज्ञान की तंद्रा से जगाया। अपने उच्च भावभीने मधुर गीतों के जादुई प्रभाव से, उन्हें देश के आध्यात्मिक रस के दर्शन कराए तथा सज्जण ठग, कौडा राक्षस आदि अनेक कुमार्ग-प्रवृत्त व्यक्तियों का हृदय-परिवर्तन किया।

एस.एस. अमोल के मतानुसार आप जहाँ भी जाते थे, उस स्थान की प्रचलित लोकधुन और भाषा में ही निज संदेश देते थे।[19]

यदि उक्त तथ्य प्रामाणिक हैं तो यह स्पष्ट ही है कि हर प्रदेश के लोकप्रिय स्वर-संदर्भ और भाषा में अपनी विचाराभिव्यक्ति करना एक कुशल गायक के ही वश की बात है।

संगीतज्ञ : बहिर्साक्ष्य

प्रायः सभी विद्वान् एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि नानक संगीत कला में निष्णात थे। डॉ. जयराम मिश्र[20], परशुराम चतुर्वेदी[21] डॉ. रामकुमार वर्मा[22], डॉ. तारन सिंह[23], मोहन लाल मैत्रेय[24], डॉ. सुरेन्द्र सिंह कोहली,[25] प्यारा सिंह पद्म[26], भाई समुंदसिंह रागी[27] आदि विद्वान् नानक को संगीत-विद्या के अच्छे ज्ञाता मानते हैं।

'श्री गुरुनानक चमत्कार' पुस्तक में 'बगदाद फेरी' नामक एक प्रासंगिक कथा में भाई वीर सिंह ने लिखा है कि देश-देशान्तर परिभ्रमण करते-करते जब गुरुनानक बगदाद पहुंचे तो उनके क्रांतिकारी स्वतंत्र विचारों के प्रति असहिष्णु होकर पीर ने उन पर इस्लाम धर्म के सिद्धांतों के विरुद्ध प्रचार-कार्य करने का दोषारोपण कर, वहां के लोगों को गुरु जी को (संगसार करने) पत्थरों से मारने का आदेश दिया। वह नमाज़ का समय था, परन्तु लोग यह भूलकर पत्थर उठाकर गुरुजी को मारने के लिए आ गए। ऐसी विकट परिस्थिति में गुरुजी ने कानों पर हाथ रखकर, आकाश की ओर मुँह करके उसी सुर में बाँग देनी शुरू की जिस सुर में मुसलमान लोग बाँग देते हैं। उन्होंने अतीव मधुर कण्ठ द्वारा बाँग देकर उपस्थित व्यक्तियों को ऐसा प्रभावित किया कि क्रोधाभिभूत समस्त जनता जड़वत् हो गई। हाथों से पत्थर गिर पड़े। प्राण लेने के लिए जुटे उन व्यक्तियों की 'तन मन धुनत सरीर' की सी स्थिति हो गई।[28]

उक्त उद्धरण से गुरु नानक के संगीत-ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तःसाक्ष्य :

गुरुनानक ने अपनी 'वानी' में अपने लिए 'ढाढी' शब्द का बारम्बार प्रयोग किया है। प्यारा सिंह 'पद्म' जी के अनुसार 'नानक ने अपने लिए यदि कोई मनभाता विशेषण प्रयुक्त किया है तो वह शायर या ढाढी ही।[29], नानक को आध्यात्मिक गीत गाना ही इष्ट था, अतः उन्होंने स्वयं को अपने प्राणप्रिय प्रभु के दरबार का 'ढाढी' कहा है।[30]

उस खालक के आदेश से ही नानक ढाढी बनकर हरि-यश गाता है।[31]

उस प्रीतम के गुण गा-गाकर नानक ने अपना जन्म सार्थक कर लिया है और सत्यरूप परमतत्त्व को अपने हृदय में धारण कर लिया है।[32]

गुरु नानक ने स्वयं को अपने प्रिय का कितना विनीत ढाढी कहा है, यह निम्नांकित पंक्तियों में द्रष्टव्य है।

हउँ ढाढी का नीच जाति, होरि उत्तम जाति सदाइदे।
तिन्ह गंगा जि तुझै धिआइदे।[33]

इस प्रकार नानक ने अपनी 'बानी' में स्वयं को अनेक बार 'ढाढी' कहा है, किन्तु तुलसी की भाँति रामनाम से रहित गीत उन्हें बिल्कुल नहीं सुहाते। जैसे तुलसी ने कहा है—

"भनिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ।
राम नाम बिनु सोह न सोऊ।[34]

उसी प्रकार नानक कहते हैं—

"गावहि गीते चीति अनीते, राग सुणाइ कहरवहि बीते।
बिनु नावै भगति झूठ अनीते[35]।

गुरु नानक ने ऐसे गायकों और नर्तकों की खूब भर्त्सना की है, जो न नादब्रह्म का ज्ञान रखते हैं, न आध्यात्मिक पदावली का गान करते हैं और गीत के रस की भी अवहेलना करते हैं, फिर भी अपनी कला पर गर्व करते हैं।[36]

गुरु नानक ने एक स्थान पर कहा है कि जो व्यक्ति सुरीला गायक होने पर भी मायापाश में आबद्ध रहता है, वह अमूल्य मानवदेह को अकारथ ही गँवा देता है।[37] जीवन में रामनाम को आत्मसात् किये बिना, वह नाना दुख सहता है।[38]

नानक ने एक स्थान पर स्वयं को 'तबलबाज' कहा है।

'फुरमानी है कार, खसमि पठाइआ।
तबलबाजि बीचारू सबदि सुणाइआ।"[39]

इस प्रकार गुरु नानक की रचनाओं के अध्ययन से यह व्यंजित अवश्य हो जाता है कि गुरु नानक को संगीतकला का अच्छा ज्ञान था और वे हरिभक्ति के रंग में रँगे सच्चे गायक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है कि साधना की उच्चतम अवस्था में भक्त रससरोवर में स्नान करता है। न बोलता है, न प्रलाप करता है, केवल हरिगुण गाता है।[10]

हरिभक्त नानक ने आनन्दातिरेक की अवस्था में गाए अपने आध्यात्मिक गीतों को पाठ्य तक ही सीमित नहीं रखा और न ही अनियमित स्वरों में ही निबद्ध किया है, अपितु उच्चकोटि के शास्त्रीय संगीत (रागरागिनियों के रूप में) का दिव्य रूप प्रदान किया है।*

जन्म

गुरु नानक की जन्मतिथि, जन्मस्थान, माता-पिता, गृहस्थी और मृत्यु-संवत् आदि के सम्बन्ध में डॉ. रामकुमार वर्मा, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, परशुराम चतुर्वेदी, डॉ. मोहनसिंह, डॉ. सुरेन्द्रसिंह कोहली, डॉ. तारनसिंह तथा मैकालिक आदि सभी विद्वान् एकमत हैं। हस्तलिखित पुस्तक 'गुरु बंसावली'* से गुरु नानक का जीवन-परिचय नीचे उद्धृत है।

'पातसाही पहिली सिरी गुरु नानकदेवजी वेदीआं की वंस विच जाति खतरी। जनम राइभोए की तिलवंडीन के गए। सम्मत 1556, कतक सुदी पूरनमासी कतको 18 पिता भाई कालू जी माता तृप्ताजी। महलमाता सुलक्खणी जी। बेटे। बाबा स्रीचंदजी। बाबा लखमीदास जी। पातिसाही कीती ।69 वरेह। 10 महीने 10 दिन अवस्था की गिनती भी इही जानणी। जोती जनेनी जोति समाणे। रावी दे किनारे करतारपुरजी। देहरजी साहिबु। संमत 1596 अस्सू बदी 10 तिथ। बादशाह बाबरशाह।

अर्थात् पहली पातशाही के श्री गुरु नानकदेव बेदी वंश के थे और वे जाति से क्षत्रिय थे। इनका जन्म सं. 1526 में कार्तिक सुदी पूर्णिमा कार्तिक 18 को राइभोए के तलवंडी नामक स्थान पर हुआ। उनके पिता का नाम भाई कालूजी तथा माता का नाम तृप्ता जी था। बेटे का नाम श्रीचंद तथा बाबा का नाम लक्ष्मीदास जी था। वय 69 वर्ष 10 मास 10 दिन थी। मृत्यु को प्राप्त हुए सं. 1596 में, उस दिन असौज वदी की 10 तारीख थी। बाबर उस समय बादशाह था।

आध्यात्मिक गुरु

गुरु नानक के आध्यात्मिक गुरु के संबंध में अभी तक कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिला। विद्वानों ने उनके आध्यात्मिक गुरु के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की हैं, किन्तु इन कल्पनाओं के पीछे तर्क का कोई ठोस आधार नहीं है। वास्तव में गुरु नानक सच्चा ज्ञान पाने की पिपासा में तत्कालीन सभी सुप्रसिद्ध ज्ञानी, प्रकाण्ड पंडितों एवं धार्मिक नेताओं से भेंट करते रहते थे अतः उनका भी कबीर की भाँति एक गुरु नहीं, अपितु अनेक गुरु रहे होंगे। दीक्षा गुरु' इस सामान्य अर्थ में उनका कोई विशेष गुरु न रहा होगा, अन्यथा जहाँ उन्होंने अपनी बानी में अथाह गुरुस्तुति की है, वहां अपने दीक्षा-गुरु का भी श्रद्धापूर्वक स्मरण अवश्य किया होता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत-गुरु

नानक जैसे महान् संगीतज्ञ जिन्होंने अपने उच्चकोटि के संगीत के प्रभाव द्वारा अनेक आसुरी वृत्तियों वाले व्यक्तियों का जीवन ही पलट दिया था, 19 राग-रागिनियों में जिनकी रचनाएँ मिलती हैं, जिन्होंने लोकसंगीत की विविध शैलियों के आधार पर अपने भक्तिपदों की रचना की, उनके संगीत-गुरु के सम्बन्ध में अभी तक हम अंधकार में हैं। इस सम्बन्ध में विद्वानों के निम्नांकित मत मिले हैं।

(1) कुछ विद्वानों के मतानुसार मर्दाना (गुरु नानक के गीतों के साथ रबाब द्वारा संगत करने वाला उनका साथी) मीरासी जाति का था, अतः संगीतकला सम्बन्धी ज्ञान नानक को मर्दाना से ही प्राप्त हुआ होगा।[41]

(2) उक्त मत के सर्वथा विपरीत कुछ विद्वानों के अनुसार नानक से मरदाना ने संगीत शिक्षा प्राप्त की।[42] 'पोथी जनमसाखी भाई बालेजी की' पुस्तक में भी यह उल्लेख मिलता है कि नानक, मर्दाना के संगीत-शिक्षक थे और उन्होंने मर्दाना को ऐसी उच्चकोटि की संगीत शिक्षा दी थी कि उसे सुनकर वे स्वयं समाधिस्थ हो जाते तथा जंगल के पशु-पक्षी आदि सभी बेसुध हो जाते।[43] किंतु स्वयं गुरु नानक के संगीत-शिक्षक कौन थे, इसका उल्लेख उक्त मत के समर्थन में नहीं दिया।

(3) कतिपय विद्वानों के मतानुसार नानक को संगीत कला का ज्ञान परमात्मा की ओर से निसर्गतः ही प्राप्त था।[44]

उपर्युक्त सभी मत अनुमान मात्र पर अवलम्बित हैं, उन्हें ठोस प्रमाण का आधार प्राप्त नहीं है। नानक के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व से सम्बन्धित प्रकाशित पुस्तकों एवं अप्रकाशित हस्तलिखित पोथियों में भी जहाँ तक मैंने देखा है, अन्य संत-कवियों की भांति संगीत-शिक्षक के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता।

कृतियाँ

गुरु नानक की सम्पूर्ण 'बानी' आ.ग्रं. में संगृहीत है। उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नांकित हैं—जप, सोदरु, सोपुरख सोहिला, पहरे, पट्टी, दखिणी ओंकार, आसा दी बार, अलाहुणियां, आरती, राइसा, कुचज्जी, सुचज्जी, थिंती, सिध गोष्ठ, काफ़ियां, बारहमाहा आदि।

उक्त रचनाओं में उपलब्ध होने वाले संगीत-तत्त्वों का अध्ययन शोधप्रबन्ध में यथास्थान प्रस्तुत कर दिया गया है।

निष्कर्ष

गुरु नानक की रचनाओं के अध्ययन-विशिष्ट द्वारा स्पष्ट है कि संगीत के क्षेत्र में उनका योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उन्होंने अलाहुणीआं, राइसा, छंत, सोहिला, बारहमाहा आदि विभिन्न लोकगीत-शैलियों को, उच्चकोटि के आध्यात्मिक पद-साहित्य एवं विविध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग-रागिनियों, घरों आदि के रूप में शास्त्रीय-संगीत का आधार प्रदान किया। उनकी यह संगीत-सेवा महान् है। उनके लोकगीतों के आधार पर रचे अनेक गीतों को समाज में आदरणीय स्थान प्राप्त है। 'हम घर साजन आये'[45], 'ना-भैणां भरजाइयां'[46] आदि गीत आज विवाह इत्यादि सामाजिक संस्कार गीतों में शीर्षस्थान पाए हुए हैं।

कहा जाता है कि गुरु नानक ने अपने आध्यात्मिक संघ में भजनगान की परम्परा चलाई थी। जिस प्रकार वैष्णव मंदिरों में आंठों याम सूरदास आदि अष्टछाप के वैष्णव भक्तों के पदों के गायन की प्रथा है, उसी प्रकार करतारपुर में गुरु नानकदेव के निवास स्थान पर प्रतिदिन 'जपुजी' तथा 'आसा दी वार' का पाठ होता है; तदनंतर उनके अन्य भजनों का गान होता है। भजनगान एवं पदों की व्याख्या के पश्चात् 'गगन में थाल रविचंद दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती' 'धनासरी' राग में निबद्ध यह आरती होती है, तब जलपान किया जाता है। तीसरे पहर फिर गान होता है और संध्या समय 'सोदर' का पाठ हो जाने पर सभी भक्त एक साथ भोजन करते है, इसके अनतर पद-गायन एकबार फिर होता है। अंत में 'सोहिला' वाणी का पाठ होता है और तब सब सोने जाते हैं।[47]

गुरु नानकआदि सिख गुरुकवियों द्वारा पदगायन की चलाई गई यह विशिष्ट परम्परा, वैष्णव मंदिरों की भांति गुरुद्वारों में आज भी कायम है।

(ड.) दादू दयाल

जन्म व जीवन काल

इनका जन्म फाल्गुन सुदी 8 बृहस्पतिवार, सं. 1681 (सन् 1544 ई. को हुआ। वे जाति के धुनियां थे। अपना जातिगत व्यवसाय करते हुए एवं एक सामान्य गृहस्थ का जीवन व्यतीत करते हुए भी सत्संग, देशाटन तथा सर्वसाधारण में अपने विचारों के संप्रसारण द्वारा धार्मिक जागृति लाना आदि गतिविधियाँ इनके जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी थीं। इनका जीवनकाल बादशाह अकबर के जीवनकालं सं. 1599-1662 के बीच में पड़ता है। इनकी मृत्यु ज्येष्ठ वदी 8, शनिवार, सं. 1660 को नराणे (नारायणा ग्राम) में हुई। वहां दादूपंथियों का मुख्य दादू-द्वारा विद्यमान है। प्रधान मठ एवं तीर्थभूमि के कारण यहां प्रति वर्ष फाल्गुन मास की शुक्ला चतुर्थी से लेकर पूर्णिमा तक एक मेला होता है। वहाँ की गद्दी पर पंथ का प्रमुख मान्य ग्रंथ दादू का 'बानी ग्रंथ' रखा रहता है और उसकी विधिवत् पूजा होती है।[48] सांभर के निकट नराणे की गुफ़ा में उनके बाल, चोला और खड़ाऊं के साथ उनका तूंबा (संभवतः गायन के लिए वाद्य विशेष अथवा वाद्य का कोई खंडित भाग?) भी पड़ा है।[49]

आध्यात्मिक गुरु

दादू के आध्यात्मिक गुरु कौन थे, इस सम्बन्ध में अभी तक प्रामाणिक रूप से कोई जानकारी नहीं मिली। इनके विद्याध्ययन के सम्बन्ध में भी अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यद्यपि इनकी रचनाओं में गुजराती, सिंधी, पंजाबी, मराठी और फ़ारसी आदि अनेक भाषाओं के प्रचुर उदाहरण मिलते हैं। इनके 52 शिष्य कहे जाते हैं, जिनमें उच्चकोटि के संगीतज्ञ वषनाजी तथा ग़रीब-दासजी (गायक तथा बीनकार भी) का भी नाम शामिल है।

कृतियाँ

संत दादूदयाल की समस्त रचनाओं की संख्या प्रायः 20 सहस्र कही जाती है, जिनमें इनके पद, साखियाँ एवं अन्य बानियाँ भी संगृहीत हैं, किंतु इन सभी कृतियों का अभी तक कोई संग्रह प्रकाश में नहीं आया, जिसे सर्वथा प्रामाणिक कहा जा सके। दादू के शिष्य संतदास और जगन्नाथदास ने इनकी रचनाओं का संग्रह "हरडे वाणी" नाम से तैयार किया था। रज्ज़बजी ने अपने गुरु की बानी को 37 भिन्न-भिन्न अंगों तथा प्रकरणों में विभक्त करके, संग्रह का नाम "अंगबंधु" रखा है। इस समय दादू के प्रधान प्रकाशित संग्रहों में सुधाकर त्रिवेदी, राय दलगंजन सिंह, बा. बालेश्वरी प्रसाद, स्वामी मंगलदास तथा चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी के संस्करण सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इन सब में चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी का "स्वामी दादूयाल की बाणी" नामक संग्रह सर्वाधिक प्रामाणिक है। प्रयाग के वे. प्रे. से भी दादू की रचनाओं का एक संस्करण प्रकाशित हुआ है, जिसमें त्रिपाठी जी की पुस्तक से अधिक अन्तर नहीं है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी से, परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित एक नूतन संस्करण, अधिक प्रामाणिक रूप से प्रकाशित होने वाला है।[50]

(च) गुरु अर्जुन देव

जन्म, बाल्यावस्था तथा विवाह

गुरु अर्जुन देव का जन्म चतुर्थ गुरु रामदास की पत्नी बीबी भानी के गर्भ से मिती बैशाख कृष्ण 7, मंगलवार, सं. 1620 (सन् 1563 ई.) को गोइंदवाल ज़िला अमृतसर में हुआ था।[51] बाल्यावस्था में ही इनके गुणों से प्रभावित होकर इनके नाना गुरु अमरदास ने इनके लिए भविष्यवाणी की थी कि "मेरा यह दोहित्र पानी का बोहित होगा"।[52] अर्थात् भविष्य में यह बच्चा माया-ग्रस्त त्रितापदग्ध जीवों को भवसागर से पार उतारने का महत् कार्य करेगा। बाल्यकाल में ये अपने नाना के ही सहवास में रहे अतः उन महामानव के व्यक्तित्व की छाप बचपन से ही इन पर पड़ी थी। आगे चलकर इन्होंने आदिग्रंथ के संपादन एवं अन्य महत् सेवाकार्यों द्वारा अपने नाना की भविष्यवाणी को सत्य सिद्ध कर दिया। इनका विवाह जालंधर जिले के कृपाचन्द्र की पुत्री "गंगा" से हुआ था और उसी के गर्भ से इनके एकमात्र पुत्र "हरगोविन्द" का जन्म हुआ, जिसे आगे चलकर इन्होंने अपना उत्तराधिकारी बनाया था।

शिक्षा

भाषा-वैविध्य, सारल्य एवं माधुर्य आदि की दृष्टि से गुरु कवियों में इनकी कृतियाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बेजोड़ कही जा सकती हैं, परंतु इनकी शिक्षा-दीक्षा के बारे में अधिक उल्लेख नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी शिक्षा इनके नाना गुरु अमरदास, पिता गुरु रामदास के पास हुई तथा इसके अतिरिक्त इनका पांडित्य और समृद्ध ज्ञान अन्य संतकवियों की भाँति स्वाध्याय एवं तत्कालीन विद्वान् साधु-जनों के संसर्ग का प्रतिफल है।

कर्तृत्व

गुरु अर्जुन एक महापुरुष थे। लोकसेवा ही इनके जीवन का मूल स्वर था। उन्होंने एक ओर स्थूल कायिक आवश्यकताओं के लिए लंगर, ताल, अस्पताल आदि बनवाए, व्यापार आदि को प्रोत्साहन दिया तो दूसरी ओर जनसामान्य के आत्मिक-विकास के उद्देश्य से साहित्य, संगीत आदि सूक्ष्म कलाओं को प्रोत्साहन दिया। 1588 ई. में "दरबार साहिब" की नींव रखकर एक सरोवर के आधार पर उन्होंने अमृतसर नगर का निर्माण किया।

इन्होंने गुरु नानक, अंगद देव, अमरदास, रामदास, तथा अपनी बानी कबीर, रामानन्द, सेन, रैदास, पीपा, धन्ना, सधना, नामदेव, त्रिलोचन, जयदेव, सूरदास, परमानन्द, शेख फ़रीद, भीखन, सुंदर, सत्ता तथा बलवंत, मरदाना और कुछ भाटों की बानी लेकर, आदि-ग्रंथ नाम से एक बृहद् ग्रंथ का सम्पादन किया। इस ग्रंथ का सम्पादन उन्होंने बड़ी योग्यता से किया है और राग-रागिनियों तथा "घरों" को, उन्होंने "बानी" के वर्गीकरण का मुख्य आधार बनाया है। ग्रंथ में सर्वाधिक "बानी" गुरु अर्जुन की ही है। पहरे दिनरैणि, बारहमाहा, बावन अखरी, थिंती, बिरहडे, वार, जैतसरी आदि काफ़िया गुणवंती, संती, अंजुलीआँ, रहिरास, फुनहे, सुखमणी आदि इनकी अनेक रचनाएँ हैं। "सुखमणी" इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना कही जाती है। उक्त कृतियों में प्राप्त संगीत तत्त्वों के अध्ययन सम्बन्धी निष्कर्ष मैंने "प्रबन्ध" में यथास्थान प्रस्तुत किए हैं। आदिग्रंथ में सबसे अधिक रागों और घरों की संख्या एवं गीतशैलियों की विविधता गुरु अर्जुनदेव की पदावली में मिलती है। इस प्रकार वे एक महान् संगीतज्ञ थे, यह उनकी पदावली के सूक्ष्म अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है।

अन्तिम समय

गुरु रामदास ने अर्जुन-देव में महानता एवं देश के एक सच्चे रचनात्मक सेवक के संस्कार देखकर, अपने अंतिम समय में उन्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। पिता की मृत्यु के पश्चात् उनका बड़ा भाई विशेषतः प्रिथिया उनसे बहुत ईर्ष्या करने लगा और उसने चंदूशाह नामक बादशाह के दीवान तथा अर्थमंत्री से मिलकर, समय-समय पर इनके विरुद्ध अनेक षड़यंत्र रचे और अंत में जहाँगीर के समय में इन्हें राज्यद्रोही सिद्ध करवाकर बंदी बनवाया।[53] इनके उदार विचारों के प्रति वह असहिष्णु तो था ही, अतः उन्हें उसकी आज्ञा से बंदीगृह में अनेक कष्ट दिए गए। इनके ऊपर जलती हुई रेत डाली गई, जलती हुई कड़ाही में बिठाया गया, उबलते हुए गर्म-जल से नहलाया गया, तथा आदि ग्रंथ से अनेक पंक्तियाँ निकाल देने को कहा, इस प्रकार इन्हें अनेक प्रकार से शारीरिक एवं मानसिक यंत्रणाएँ दी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गईं, किंतु वे अपने उदात्त सत्य-पथ पर अडिग रहे।[54] कहा जाता है कि एक दिन इन्होंने अपने पाँच साथियों सहित रावी नदी में स्नान करने की अनुमति माँगी। इनके शरीर में बादशाह द्वारा दी गई कायिक यंत्रणाओं के कारण फफ़ोले पड़ गए थे, पैरों के तलवे बुरी तरह से ज़ख्मी हो चुके थे, ऐसी क्षत-विक्षत हृदय विदारक स्थिति में, ये बादशाह से आज्ञा पाकर अपने एक प्रेमी सज्जन "पीराना" के कंधों पर हाथ रखकर, धीरे-धीरे नदी तट पर पहुँचे। यहाँ इन्होंने थोड़ी देर बैठकर भगवन्नाम का जाप किया, नदी में स्नान किया, तदुपरान्त अपने मित्रों को, अपने पुत्र हरगोविंद को अपना उत्तराधिकार देने का संकेत किया और वहीं पर जेठ सुदी 4, सं. 1663 (16 जून, सन् 1606 ई.) को भौतिक शरीर त्याग दिया।[55] कुछ लोग ऐसा भी मानते हैं कि इन्होंने रावी नदी में जल-समाधि ली थी। इस प्रकार 43 वर्ष की अल्प वय में ही, इस आदिवेद ऋग्वेद की भाँति पवित्र "आदिग्रंथ" के रचयिता एवं संपादक, देश के महान् रचनात्मक कार्यकर्ता, महाकवि एवं महामानव का दुखद पार्थिव अंत हो गया।

(छ) संत सुन्दरदास

जन्म तथा मृत्यु

दादू के योग्यतम शिष्य और विविध शास्त्रों के प्रकाण्ड पंडित सुन्दरदास का निर्गुण संतकाव्य में मौलिक स्थान है। इनका सुन्दरदास नाम, संभवतः दादू ने ही रखा था। ये "छोटे सुंदरदास" के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। दादू के "सुंदरदास" नामक एक अन्य शिष्य भी थे, अतः ये "छोटे सुंदरदास" के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म जयपुर राज्य के अंतर्गत द्यौसा नगरी में "बूसर" गोत के खंडेलवाल वैश्य कुल में वि. सं. 1653 की चैत्र शुक्ला नवमी को हुआ था।[56] इनके पिता का नाम चोखा, अपर नाम परमानन्द और माता का नाम सती था। इनका जन्म-स्थान यद्यपि खंडहर के रूप में आज तक विद्यमान है, परंतु वहाँ एवं सारे शहर में, बूसर गोती वैश्य अब कोई नहीं रहते[57]। ये 93 वर्ष की आयु में सं. 1746 में परलोकगामी हुए। स्वामी जी की निम्न साखी से भी उनके मृत्यु संवत् का निश्चय हो जाता है—

"सात बरस सौ में घटै, इतने दिन की देह।
सुन्दर न्यारो आत्मा, देह खेह की खेह।"[58]

आध्यात्मिक गुरु एवं शिक्षा

सुन्दरदास केवल छः वर्ष की आयु में दादू के शिष्य बन गए थे। जब दादू का सं. 1658-1659 में द्योसा में शुभागमन हुआ था तो इनके पिता ने इन्हें दादू के चरणों में समर्पित कर, दीक्षा देने का अनुरोध किया। इनकी प्रखर प्रतिभा को देखते हुए सं. 1663-64 में जब ये केवल 11 वर्ष के थे, इन्हें लेकर जगजीवन जी तथा रज्जबजी काशी पहुँचे। काशी में इन्होंने साहित्य एवं दर्शन का विशेष रूप से गहन अध्ययन किया और वहाँ लगभग सं. 1682 तक ठहर कर इन्होंने विविध शास्त्रों में पांडित्य प्राप्त कर लिया। संस्कृत, हिंदी, फ़ारसी आदि अनेक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाषाओं का इन्हें न केवल अच्छा ज्ञान था, अपितु इन भाषाओं के वे अधिकारी विद्वान् भी थे। इन्हें देशाटन से अतिशय प्रेम था। पूर्व में बंगाल, उड़ीसा तक, पश्चिम में पंजाब के लाहौर आदि शहरों और दादू पंथियों के स्थानों का दक्षिण में गुजरात, मध्यप्रदेश, मालवा और द्वारका तक तथा उत्तर में बद्रिकाश्रम और हिमालय के दुर्गम स्थानों तक इन्होंने परिभ्रमण किया था। राजस्थान, उत्तरप्रदेश और पंजाब के अनेक नगरों एवं दिल्ली की तो इन्होंने कई बार यात्रा की और सत्संग हेतु, ये वहाँ ठहर भी जाते थे। देशाटन के दौरान इन्होंने हर प्रांत की भाषा सीखने का प्रयत्न किया और तत् तत् प्रांतीय भाषाओं में इन्होंने काव्यरचना भी की।

कृतियाँ

सुन्दरदास ने छोटे-बड़े मिलाकर कुल 42 ग्रंथों का प्रणयन किया, जोकि पुरोहित हरिनारायण शर्मा की गहन खोजपूर्ण प्रवृत्ति एवं अथक प्रयास के कारण सभी "सुन्दर ग्रंथावली" दो खंडों में प्रकाशित हो चुके हैं। इनका रचना काल सं. 1664 से 1742 तक कहा जाता है। कई ग्रंथों में उनके प्रणयनकाल का भी इन्होंने उल्लेख किया है। इनके ग्रंथों में "ज्ञानसमुद्र" तथा "सवैया" या "सुंदर विलास" ग्रंथ अत्युत्तम हैं। "सवैया" ग्रंथ सर्वाधिक लोकप्रिय है। निर्गुण कवियों में इनकी भाँति सर्वशास्त्रों का अध्ययन अन्य किसी कवि ने नहीं किया था, अतः पदलालित्य, भाषा-शैली, अनेक विषयों के ज्ञान आदि की दृष्टि से इनका हिन्दी के निर्गुण संतकाव्य में सर्वोपरि स्थान कहा जा सकता है। संगीत की विविध शैलियों की दृष्टि से भी इनका काव्य अत्युत्तम है।

संदर्भ

1. गु. अ. की बा.—प्यारा सिंह, पद्‌म, भूमिका, पृ. 1।
2. वही, पृ. 2।
3. वही, पृ. 5।
4. सुं. ग्रं. प्र. खं. पृ. 176 परिशिष्ट उ. (भूमिका)
5. वही, पृ. 70 भूमिका।
6. "दादूपंथियों में बड़े-बड़े गायनाचार्य हो गए हैं और अब भी हैं। स्वयं दादू जी के पुत्र और शिष्य ग़रीबदास जी नारद और तुम्बरू के समान गाने वाले थे। फिर हमने भी इनमें बीणाकार और ध्रुपदी देखे हैं। नारायणे के मेले पर समाजों में अच्छे-अच्छे गाने वाले दादूपंथी संत आते हैं।" सुं. ग्रं., प्र. खं., भूमिका, परिशिष्ट, "ड." पुरोहित हरिनारायण शर्मा का अभिमत, पृ. 176।
7. "बावरी पंथ के प्रायः सभी प्रमुख संतों के चित्र गायकों के ही रूप में अंकित किये गये दीख पड़ते हैं।"
8. गु. अ. दे. की बा. प्राक्कथन, प्यारासिंह पद्‌म का मत, पृ. 5।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

9. "स्वामी गये सबनि सुख पाये। रमते नर नराणें आये।
बषनौं होरी गावत देष्यो। गुरु दादू अपनों करि पेष्यो।।
कृपा करी तब अैसी स्वांमी। बचन बोलिया अंतरजामी।।
अैसी देह रची रे भाई। राम निरंजन गावौ आई।।
अैसा बचन सुन्या है जब ही। वचनों दष्या लीन्हीं तब ही।।
...सुं. ग्रं. प्र. खं., "जीवनचरित्र" भूमिका, पृ. 88 तथा सं.सं.सु.सा. पृ. 314।

10. "म्हारे गुरां कह्यो सोई करस्यूं हो।
खार समंद मैं मीठी बेरी, कर सूधै घडले मरस्यूं हो।" सं. सं. सु. सा., पृ. 314।

11. "ता मन कौं खोजहु रे भाई, तन छूटे मन कहाँ समाई।।
सनक सनन्दन जैदेव नामां, भगति करी मन उनहुँ न जाना।।" क. ग्रं., 77/33।

12. महादेव वामदेव ऋषभ कपिलदेव, व्यासदेव शुक हू जैदेव नामदेव जू।
सुन्दर सकल संत प्रगट जगत माँहि। तेसैं गुरु दादूदास लागे हरि सेव जू।
सुं. ग्रं., दि. खं., 393/24।

13. द्रष्टव्य, गी. गो. तृ. स. श्लो. सं. 8।
*यह शिलालेख जगन्नाथ जी के मंदिर के जगमोहन की बाईं ओर वर्तमान है।

14. उ. भा. की सं. परं., पृ. 95।

15. आनीले कुंभ भराईले ऊदक, ठाकुर कउ इसनान करउ।
बइआलीस लष जी जल महि, होते वीठलु मैला काइ करउ।।1।।
जत जाउ तत बीठलु भैला, महा अनंद करे सदकेला।। रहाउ।।
आनीले फूल परोईले माला, ठाकुर की हउ पूज करउ।
पहिले बासु लई है भवरह, बीठलु भैला कउइ करउ।। 2।।
आनीले दूधु रीधाइले षीरं, ठाकुर कउ नैवेद करउ।
पहिले दूधु विहारिउ बघरै, बीठलु मेला काइ करउ।। 3।।
ईभै बीठलु ऊभै बीठलु, बीठलु बिनु संसार नहीं।
थान थानंतिर नामा प्रणवै, पूरि रहिउ तूं सरब मही।। 4।।
सं. का. 124/2

16. उ. भा. की सं. परं., पृ. 120।

17. क. ग्रं. 135/270; 100/134 वही।

18. उ. भा. की सं. परं., पृ. 175।

19. "आप जिस थां उत्ते भी जांदे रहे, उथों दे राग ते उथों दी बोली विच उपदेश करदे रहे।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बा. बा. स.- प्र. सं., पृ. 4।

20. ना. वा., पृ. 42, तथा परिशिष्ट (क) पृ. 820।
21. सं. का. द्वि. सं., पृ. 92।
22. हिं. सा. का आ. इति., च. सं., पृ. 271।
23. गु. ना. चिं. ते क. पृ. 233।
24. सप्तसिंधु (पत्रिका) नवं. 1933, पृ. 82 लेख "हिन्दी का संतकाव्य"।
25. "ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ़ आदिग्रंथ" पृ. 66।
26. पं. दु. (पत्रिका) पृ. 281 लेख "सरबत्त दा भला", तथा रबाबवाला (पुस्तक) पृ. 5।
27. "गुरु नानक संसार विच इक ही रब्बी कलास दे अनुभवी गवइये सन"। (पत्र व्यवहार द्वारा प्राप्त विचार)।
28. सिरी गुरु नानक चमत्कार, उत्तरार्द्ध (दूजा अध)। द्रष्टव्य-पृ. 160-167।
29. "जित्थे किते उन्हां आपणे बारे जिकर कीता है, उत्थे आपणे लई जेकर कोई मनपसंद विशेषण वरतिआ है तां उह शाइर जां ढाढी वरतिआ है।" रबाब वाला, पृ. 7।
30. "हउ ढाढी हरि प्रभु खसम का, हरि के दरि आइआ।" आ. ग्रं. पृ. 91।
31. "खालक कउ आदेसु, ढाढी गावणा।
    नानक जुगु जुगु एक, मंनि वसावणा।" ना.वा., पृ. 194।
32. "ढाढी गुण गावै नित जनमु सवारिआ।
    गुरमुखि सेवि सलाहि, सचा उर धारिआ।" वही, पृ. 470।
33. ना.वा. पृ. 338।
34. बा. कां, पृ. 19।
35. आ. ग्रं. पृ. 414।
36. ना. वा., पृ. 742।
37. "सुरिनर सुघड सुजाण गावहि जो तेरै मनि भावहे।
    माइआ मोहे चेतहि नाही, अहिला जनमु गवावहे। आ. ग्रं. पृ. 566।
38. "वादु पड़े रागी जगु भीजै। जै गुण बिखिआ जनमि मरीजे।
    रामनाम बिनु दुखु सही जै।" वही, पृ. 905।
39. वही, पृ. 142।
40. उतरि अवघट सरवरि नावै। बकै न बोले हरिगुण गावै। "आ.ग्रं. पृ. 412।

    *गीतों के शास्त्रीय संगीत के स्तर की दृष्टि से अपने अध्ययन संबंधी निष्कर्ष मैंने "रागाध्याय", "प्रबन्धाध्याय", तथा "गायनशैली के स्तर" वाले अध्यायों में प्रस्तुत किए हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

*गुरु प्रनाली जां गुरु बंसावली (गुरुमुखी लिपि में) ह. लि. पुस्तक नं. 96 पं. वि. वि. चंडीगढ़, पृ. 1, 2, 3, 4।

41. "गुरु ने संगीतज्ञान कहाँ से प्राप्त किया? यह भी खोज का विषय है। संभवत : इस क्षेत्र में नित्य का साथी मरदाना उनका सहायक सिद्ध हुआ हो।"

श्री गु. ग्रं. ए. परि. - डॉ. धर्मपाल मैनी, प्र.सं., पृ. 47।

42. "गुरु नानक साहिब जी आप गांदे सन, उन्हां तों दात पाके, भाई मरदाना रबाब वजागवाला होइआ।"

– सरदार ज्ञान सिंह (पत्र-व्यवहार द्वारा प्राप्त विचार)

43. द्रष्टव्य "पोथी जनमसाखी भाई बालेजी की, पृ. 115 तथा पृ. 116।

44. सरबहित्त समाचार, "कविता" विशेषांक, लेख "गुरुकाव्य दा संगीतक पक्ख" गुरदेव सिंह, पृ. 295।

45. आ. ग्रं., पृ. 764।

46. वही, पृ. 1015।

47. उ. भा. की सं. परं., पृ. 363।

48. उ. भा. की सं. परं. पृ. 491।

49. वही, पृ. 499।

50. उ. भा. की सं. पंर. पृ. 500-1।

51. उ. भा. की सं. परं., पृ. 376।

52. वही।

53. सं. का., पृ. 264-65।

54. उ. भा. की सं. परं., पृ. 380-81।

55. वही, पृ. 381।

56. सुं. ग्रं., प्र. खं., भूमिका, खंड, 3, पृ. 1।

57. उ. भा. की सं. परं., पृ. 507।

58. सुं. ग्रं., द्वि. सं., पृ. 1008।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्यम : चतुर्थ अध्याय

संतकाव्य का राग, ताल और वाद्य-वैविध्य-वैभव

प्रस्तुत अध्याय में निर्गुण-संतों का शास्त्रीय-संगीत की दृष्टि से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय को "क", "ख" और "ग" तीन भागों में विभक्त किया गया है। "क" भाग में रागनाम, "ख" भाग में तालनाम तथा "ग" भाग में निर्गुण-संतकाव्य में प्राप्त विभिन्न वाद्यनामों के वैविध्य का क्रमशः मूल्यांकन किया गया है।

(क) 'राग'-खंड

हिन्दी के निर्गुण संतकाव्य में रागों का केवल नामोल्लेख मात्र मिलता है। स्वरलिपि के अभाव में मुख्यतः रागनामोल्लेख को ही अध्ययन का आधार बनाया गया है। इस संबंध में एक बात विशेष महत्त्व की है कि आदिग्रंथ में संकलित गुरु एवं भक्तकवियों के पदों को ग्रंथ में निर्दिष्ट रागों के अनुसार गायन की; रागियों एवं रबाबियों में जो सुदीर्घ परम्परा (संभवतः गुरुकवियों के समय से) "सीने-ब-सीने चली आ रही है, उसी पुरातन गायन-परम्परा की रक्षा एवं प्रचार हेतु[1] इधर पंजाबी भाषा में एक ग्रंथ "गुरबाणी संगीत" नाम से प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ का प्रस्तुत अध्याय में संतों के पदों का स्वरूप जानने के लिए यथोचित उपयोग किया गया है। संत नामदेव, कबीर, नानक और गुरु अर्जुनदेव के पदों के स्वरूप का परिचय पाने में, उक्त पुस्तक द्वारा मुझे पर्याप्त सहायता मिली है।

निर्गुणियाँ कवियों की रचनाओं में प्राप्त विभिन्न रागनामों की पृथक्-पृथक् तालिकाएँ प्रस्तुत अध्याय के इसी भाग के अंत में संलग्न हैं।

उक्त तालिकाएँ बनाने में मैंने संतों के प्रामाणिक ग्रंथों का ही उपयोग किया गया है, यथा, संत नामदेव की पदावली के लिए "संत नामदेव की हिन्दी पदावली,"[2] "आदिग्रंथ"[3], "सेवादासजी की बानी'' तथा "राग कल्पद्रुम" का आधार ग्रहण किया है।

कबीर की कृतियों में प्राप्त रागनामोल्लेख के लिए कबीर ग्रंथावली, आदिग्रंथ तथा रागकल्पद्रुम, आधार-ग्रंथ हैं। रागकल्पद्रुम में पूरा "कबीरबीजक" स्वतंत्र शीर्षक रूप से संगृहीत एवं विभिन्न राग-ताल में निबद्ध है, अतः तालिका में "कबीर-बीजक" के रागों को पृथक् रूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से चिह्नित किया है।

गुरु नानक तथा गुरु अर्जुनदेव की रागनाम संबंधी तालिकाओं में केवल "आदिग्रंथ" का उपयोग किया गया है, क्योंकि उक्त कविद्वय की पदावली से संबंधित हिंदी में प्रकाशित सभी पुस्तकों का आधार-ग्रंथ "आदिग्रंथ" ही है। 'रागकल्पद्रुम' में इन गुरुकवियों का कोई भी पद नहीं मिलता। "नानक" नामांकित जो कतिपय पद उक्त ग्रंथ में मिलते हैं, उन्हें ग़लती से प्रायः "नानक" के पद समझ लिया जाता है[4], परंतु उक्त पदों का आदिग्रंथ से मिलान करने पर मैंने देखा कि उनमें से अधिकांश पद म. ९ अर्थात् गुरु तेगबहादुर के हैं तथा दो पद ऐसे हैं, जो आदिग्रंथ में किसी भी गुरुकवि की बानी के अंतर्गत स्थान नहीं पा सके।

संत दादूदयाल की बानी में उल्लिखित रागनाम की सूची तैयार करने में "श्री स्वामी दादूदयाल की बाणी"[5] का उपयोग किया गया है। रागकल्पद्रुम में इनका कोई भी पद संगृहीत नहीं किया गया।

सुंदरदास जी की पदावली से सम्बंधित रागनामोल्लेख के लिए मैंने "सुंदरग्रंथावली"[6], तथा 'रागकल्पद्रुम' को आधार माना है। सुंदरग्रंथावली में सुंदरदास के 231 पदों के साथ 27 रागनामों का उल्लेख मिलता है, किंतु उनके "सवैया" ग्रंथ में राग-ताल का उल्लेख 'रागकल्पद्रुम' के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलता। रागकल्पद्रुम में सुंदरदास जी की "सवैया" नामक कृति "ज्ञानतत्वसार" शीर्षक के अंतर्गत संगृहीत है और वह लगभग 44 विभिन्न रागनामों में निबद्ध है अतएव संतकवि सुंदरदास की कृतियों में नामोल्लेख के रूप में प्राप्त रागनाम की तालिका तैयार करने में उक्त दोनों ग्रंथों का उपयोग किया गया है। राग-कल्पद्रुमकार का स्वयं उच्चकोटि का गायक होना[7] तथा ग्रंथ का संकलन भी गायक वर्ग में से ही प्रस्तुत होने के कारण, उसमें इतने अधिक रागनामों का उल्लेख स्वाभाविक है।

रागकल्पद्रुम, कबीर-ग्रंथावली, आदिग्रंथ, संत नामदेव की हिंदी पदावली सेवादास की बानी, सं. सं. सु. सा. तथा सुंदरग्रंथावली आदि पुस्तकों में निर्गुणियाँ कवियों की रचनाओं में पाए जाने वाले रागनाम के उल्लेख के विषय में भी उक्त पदों का किसी न किसी प्रकार उल्लिखित रागों के अनुसार गाया जाना प्रचार में रहा होगा, ऐसा माना जा सकता है। ये पद्य या तो उस समय सामान्य गायक-वर्ग में विशेष प्रचलित रहे होंगे अथवा कोई निर्गुणपंथी ही विशेष गायक रहे होंगे, जिन्होंने संप्रद्राय के अनुराग से, सब पद्यों को शास्त्रीय रागताल में निबद्ध किया होगा[8]।

अस्तु, निर्गुण संतकवियों की पदावली में प्राप्त रागनामों की तालिकाओं के अध्ययन से निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है :

(1) इन रागनामों में से अधिकांश राग आज के प्रचलित रागों में से हैं, यथा, आसावरी, कल्याण, टोड़ी, तिलंग, परजीयौ, अथवा परज, बसंत, भैरव, मलार, रामकली, ललित, सारंग, एमन, केदार, काफ़ी, झिंझोटी, देश, पीलू, भूपाली, विहाग, सूहा, सोहनी, सिंदूरा, श्री, अडाणौ, खमाज, छायानट, बागेश्वरी, बहार, हमीर, भीमपलासी, मालकोश, सुघराई तथा सिंधु-भैरवी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदि।

संतों के पदों की स्वरलिपियों के अध्ययन के द्वारा मैंने देखा है कि रागों का शास्त्रीय स्वरूप अधिकांशतः अधुना प्रचार के अनुसार ही है, जहाँ भिन्नता पाई गई है, वहाँ उन पदों की स्वरलिपियों को इसी अध्याय में संतों की रागनाम-सूचक तालिकाओं के पश्चात् उद्धृत कर, उन पर विचार किया गया है।

(2) निर्गुणोपासक कवियों की पदावली में प्राप्त रागनामों की सूची में कई रागनाम ऐसे हैं, जो आज या तो अज्ञात हैं अथवा अप्रचलित हैं, जैसे तुखारी, माझ, वैराडी, बिहारी-बिहाग, भांणमली, हुसैनी बंगाली, कल्हेरो, मधुमास आदि।

आज शास्त्रीय संगीत में नितांत अप्रचलित तुखारी, माझ, और बैराडी रागों में निबद्ध संतों के कतिपय पदों की स्वरलिपियाँ "गुरबाणी संगीत" पुस्तक में मिलती हैं। यें स्वर-लिपियाँ उक्त रागों के स्वरूप का परिचय पाने में सहायक होंगी, और गुरुमुखी लिपि में होने के कारण वैसे भी बहुत कम संगीत-प्रेमियों में इनके प्रचार की संभावना है, अतः इन्हें "रागनाम-तालिकाओं" के पश्चात्, देव-नागरी लिपि में उद्धृत कर दिया गया है। तत्संबंधी संक्षिप्त टिप्पणियाँ भी उसी स्थल पर आवश्यक एवं उपयोगी समझकर दे दी गई हैं।

आधुनिक प्रचार के आधार पर बने शास्त्रीय-संगीत के ग्रंथों[9] में "तुखारी" राग का उल्लेख नहीं मिलता। "मांझ" राग की भी यही स्थिति है। शास्त्रीय-संगीत में हमें बहुत से राग-रागिनियों के नाम विशिष्ट प्रदेशों के नामानुकरण पर अभिहित मिलते हैं, यथा; जौनपुरी, सिंधु, गौड़ी, बंगाल-भैरव, मुलतानी आदि। ठीक इसी प्रकार "माझ" नामक प्रदेश में प्रचलित लोकध्वनि के आधार पर ही संभवतः "माझ" राग बना हो, ऐसा अनुमान किया ज़ा सकता है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार पुरातन ग्रंथों में जिस "मध्यदेश" का उल्लेख मिलता है, वही "मध्य" पंजाबी भाषा में "मद्ध" होकर "मज्झ" अथवा "माझा" बन गया है। "ध" के स्थानापन्न रूप में "झ" शब्द का प्रयोग पंजाबी भाषा में सामान्यतः दृष्टिगत होता है, जैसे "गुद्धा" (आटा आदि मलने के भाव में, गहरा, गुह्य, अप्रत्यक्ष आदि) का "गुज्झा" "रिद्धा" (साग, सब्जी आदि को आग पर पकाना) का "रिज्झा" आदि। आज भी पंजाब के एक प्रदेश-विशेष का नाम "माझा" है, जोकि संभवतः प्राचीन् "मध्यदेश" का ही नामान्तर है। यह भी संभव है कि इस प्रदेश की कोई विशेष लोकतर्ज़ (tune) ही शास्त्रीय रूप धारण कर "माझ" राग के नाम से प्रसिद्ध हो गई हो।[10] एक अन्य मत यह है कि पंजाब में अहीर लोग भैंस आदि ढोर चराते समय एक विशेष ढंग से गीत गाते थे, जिसे कि "माझ" कहा जाता था, इसी छंदोगीत के अनुकरण पर लिखी गई काव्यरचना "माझ" कही जाने लगी।[11]

किंतु "माझ" का काव्यरूप में प्रयोग 17 वीं शताब्दी से लक्षित होता है।[12] और आदिग्रंथ में "माझ" शब्द विशिष्ट काव्यशैली के रूप में नहीं, अपितु राग- नाम के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अस्तु, प्रबंध की स्थान-मर्यादा को देखते हुए इस विषय की चर्चा यहाँ की जा रही है। यहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतना कहना ही अलम् होगा कि आदिग्रंथ के रचनाकाल तक "माझ" काव्य-रूप का प्रचलन नहीं हुआ था, अन्यथा तत्कालीन लोकप्रिय काव्य रूपों बारहमाहा, वार, थिंती, बावन अखरी, छंत, अलाहुणी आदि की भाँति गुरुकवि "माझ" काव्यरूप को भी अपनाते। यद्यपि आज नानक के नाम से अंकित कुछ "माझ" रचनाएँ काव्यशैली के रूप में मिलती हैं, किंतु भाषा-शैली, वर्ण्य-विषयवस्तु आदि की दृष्टि से वे प्रामाणिक नहीं मानी जा सकतीं।[13]

"माझ" काव्यरूप का छंद प्रबंध "दवैया" छंद का होता है, जिसमें 16-12 मात्राओं पर यति का विधान एवं चार पाद होते हैं,[14] जबकि आदिग्रंथ में "माझ" शीर्षक से युक्त पदों में उक्त छंदविधान का कहीं पालन नहीं मिलता अतः ग्रंथ में जहाँ "गौड़ी" माझ म. 5" अथवा "राग गौड़ी" म. 5 माझ" इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं, वहाँ दोनों स्थानों पर "माझ" शब्द को रागवाची ही मानना होगा।

राग "माझ" का शास्त्रीय स्वरूप गु. सं. के आधार पर दिया गया है एवं एक स्वर-लिपि भी आगे प्रस्तुत है।

"बैराड़ी" राग आज प्रचलन में नहीं रहा है। भातखंडे जी ने "वराटी" अथवा "बरारी" नामक एक राग का उल्लेख किया है। उन्होंने इसे मारवा थाट का संपूर्ण जाति का राग कहा है तथा इसमें टोड़ी, त्रिवेणी और देशकार का सम्मिश्रण माना है। 'गुरबाणी संगीत' में प्राप्त इस राग का स्वरूप भातखंडे जी के द्वारा दिए गए "राग" विवरण से बहुत साम्य रखता है।[15] भातखंडे जी के अनुसार कोमल धैवत के प्रयोग द्वारा इस राग को पूर्वी थाट का मानकर भी गाया जा सकता है।[16] परंतु राग कल्पद्रुम में "बैराडी" राग का स्वरूप मारवा थाटवाला है। राग का स्वरूप आगे प्रस्तुत है।

कर्नाटक संगीत में "वराडी" नाम से एक "टोडी" थाट का राग प्रचलित है। "टोड़ी" राग वहाँ "शुभ पंतुवराडी" नाम से प्रसिद्ध है,[17] किंतु, रा. क. में प्राप्त "वैराडी" राग मारवा, थाटजन्य होने के कारण स्पष्टतः ही दक्षिण में प्रचलित "वैराडी" राग से भिन्न है।

बिहारी-विहाग, भांणमली, हुसेनी बंगालो, कल्हेरो और मधुमास ये राग आज या तो गायकवर्ग में अज्ञात हैं अथवा नितान्त अप्रचलित हैं। इनका विवरण शास्त्रीय-संगीत के ग्रंथों में नहीं मिलता।

(2) संतों की रागनाम तालिकाओं में कुछ रागनाम ऐसे हैं, जिनका शास्त्रीय-संगीत में आज प्रचलन नहीं है, किंतु संतों के इस राग के अंतर्गत बहुत पद मिलते हैं। इस श्रेणी में राग 'आसा' तथा "माझ" का नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। इन दोनों रागों का उल्लेख शास्त्रीय-संगीत के ग्रंथों में नहीं मिलता, किंतु आदिग्रंथ में इस राग में नामदेव, कबीर, नानक तथा गुरु अर्जुनदेव के लगभग 292 पद मिलते हैं। ग्रंथ में "आसा" राग का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। राग "माझ" में भी नानक तथा गुरु अर्जुनदेव के लगभग 52 पद हैं। रागकल्पद्रुम में भी इन रागों का उल्लेख नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि ये राग पंजाब में ही विशेषतः प्रचलित रहे होंगे।[18] "आसा" राग "मांड" से मिलता-जुलता है और इसका प्रचलन आज भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरुद्वारों में देखा जाता है। इस प्रकार के रागों को सुगम शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत रखा जा सकता है। इन दोनों रागों का स्वरूप आगे प्रस्तुत है।

(3) आसा और माझ की भाँति संतों के पदों में गौड़ी, गोंड, खम्बावती, धनाश्री, मालीगौड़ा, जैतश्री, प्रभाती तथा देवगंधारी आदि रागों के पद पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, जबकि संगीत-ग्रंथों में इन रागों की बहुत कम "बंदिशें" मिलती हैं। दूसरी ओर आज शास्त्रीयसंगीत में बहुप्रचलित राग "कल्याण" में संतों के बहुत कम पद मिलते हैं।

(4) आदिग्रंथ में राग "गूजरी" और "टोडी" दोनों को स्वतंत्र राग माना है, जबकि आज शास्त्रीय संगीत में "गूजरी" का "टोडी" से स्वतंत्र प्रयोग न होकर दोनों शब्दों का संयुक्त प्रयोग (गूजरी टोडी) होता है और ये एक ही राग के वाचक होते हैं। पंचम के प्रयोग से प्रचलित मियाँ की तोड़ी या तानसेनी टोड़ी को केवल 'टोड़ी' कहने का चलन अवश्य है।

'गुरुमत संगीत' में दोनों रागों का थाट "टोड़ी" ही माना है। राग गूजरी के पदों की स्वर- लिपि के अध्ययन से भी वह "गूजरी टोड़ी" का ही स्वरूप व्यक्त होता है, फिर भी दोनों को स्वतंत्र रागों की भाँति स्थान देने का तात्पर्य कुछ स्पष्ट नहीं हो पाया। मियाँ की टोड़ी, बहादुरी टोड़ी, आदि टोड़ी-प्रकारों के साथ गूजरी को भी स्थान क्यों नहीं दिया गया?

इसी प्रकार "वडहंस" और "सारंग" को आदिग्रंथ में पृथक्-पृथक् स्थान मिला है, जबकि आज दोनों शब्दों का संयुक्त रूप "वडहंससारंग" नामक एक ही राग, प्रचार में है।

"वडहंस'' को 'गुरमत संगीत' में खमाज थाट का राग माना है।[19] उक्त पुस्तक में संतों के पदों की स्वरलिपियों में हमें "वडहंस" राग के तीन स्वरूप लक्षित होते हैं। वडहंस के तीनों स्वरूप, संतों के पदों की स्वरलिपि सहित आगे प्रस्तुत हैं।

आदिग्रंथ में "सारंग" को "काफ़ी" थाट का राग मानकर संभवतः "वडहंस" से स्वतंत्र राग माना गया है, गुरमत संगीत में दोनों रागों में निबद्ध पदों की स्वरलिपियों के अध्ययन से यही व्यंजित होता है।

इसी प्रकार "कानड़ा" को "काफ़ी" थाटजन्य एवं "दरबारी कान्हड़ा" को आसावरी थाट[20] का राग मानकर 'गुरमत संगीत' में "कानड़ा" का स्वरूप, 'दरबारी कानड़ा' से पृथक् दिखाया गया है, जबकि आज प्रचलन में खाली "कानड़ा" राग किसी को गाते नहीं सुना जाता और यह शब्द केवल विशिष्ट स्वर-संदर्भ का बोध कराने में ही प्रयुक्त होता है। "कान्हड़ा'' का अर्थ किसी न किसी कान्हड़ा-प्रकार से लिया जाता है। 'गुरमत संगीत' के अनुसार "कानड़ा" का स्वरूप दिखाने के लिए उक्त पुस्तक में से एक पद की स्वरलिपि आगे उद्धृत की गई है।

आदिग्रंथ में "मारू" राग का अन्य किसी राग से मिश्रण के बिना स्वतंत्र राग की भाँति उल्लेख मिलता है। "मारू" राग़ को गुरमत संगीत में "खमाज" थाटजन्य और "मारू" विहाग को "कल्याण" थाट ज़न्य मानकर[21] दोनों का स्वरूप पार्थक्य दिखाया गया है। आज प्रचार में "मारू विहाग" राग अवश्य है, केवल "मारू" नहीं। "मारू" राजस्थान में प्रचलित एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोकगीत प्रकार (ढोल, मारू) भी है। "सुंदरग्रंथावली" में "मारू" राग को षाडवजाति का पंचम वर्ज्य राग कहा गया है। इसमें "ऋषभ" उतरी हुई है और "ग, म, ध, नी" शुद्ध स्वर हैं। यह सर्व ऋतुओं में गेय है।[22] मारू राग का संतों ने "सिंधूड़ा" की भाँति, युद्ध के प्रसंग में भी उल्लेख किया है।[23] इन दोनों रागों का युद्ध से संबंध ध्यान देने योग्य है। मारू राग संभवतः राजस्थान के लोकगीत-प्रकार-विशिष्ट का ही शास्त्रीय रूप है और इसे नामसाम्य के कारण "मारवा" का अपभ्रंश-रूप समझना ग़लत है।[24] ओजगुण की पदावली और जहाँ 'युद्ध' वर्ण्यविषय हो, वहाँ पद पर "सिंधूड़ा" राग का नामोल्लेख देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यकाल में शूरवीरों को उत्साह दिलाने में यह राग बहुत लोकप्रियता प्राप्त कर चुका था। ऐसा ही "मारू" के संबंध में भी जानना चाहिए।

(5) सुंदरदास के पदों में 'ऐराक' नामक एक राग का उल्लेख मिलता है[25], जोकि भारतीय राग प्रतीत नहीं होता और फ़ारस देश का राग कहा जाता है। यह मुस्लिम फ़कीरों में प्रचलित रहा है। सुंदरदास जी ने संभवतः इसे मुस्लिम फ़कीरों से ग्रहण किया है।[26] यह राग सर्वऋतु में गाया जाता है। 'इसे संपूर्ण जाति का और सर्व कोमल स्वरों' का राग कहा गया है।[27]

(6) रागनाम तालिकाओं में कई मिश्र रागों के ऐसे नाम हैं, जो आज प्रचलित नहीं हैं, यथा मलूहार, शहाना, बिहारी-विहाग, प्रभात-विभास आदि।

उपर्युक्त रागों में से प्रभाती और विभास का मिश्रण संभव है, किंतु भैरव अंगवाला विभास ही प्रभाती के साथ मिश्रित हो सकता है।

(7) आदिग्रंथ में राग गौड़ी में इतने अधिक रागों का मिश्रण मिलता है कि आश्चर्य होता है। गौड़ी चेती, गौड़ी-पूरबी, गौड़ी-पूरबी-दीपकी, गौड़ी बैरागणि, गौड़ी गुआरेरी, जंगली-गौड़ी, गौड़ी-माँझ तथा गौड़ी-दखणी, ये 8, मिश्रण "गौड़ी" राग में मिलते हैं।

इन मिश्र रागों में से गौड़ी-बैरागणि तथा गौड़ी-गुआरेरी नितान्त अप्रचिलत रागनाम हैं। "गौड़ी-दखणी", गौड़ी राग का दक्खिनी प्रकार कहा जा सकता है।[28]

"बैरागी" नामक एक राग आज के सुप्रसिद्ध गवैयों में से अमीरखां जी का मत है कि यह भी संभव है कि "बैरागणि"* का अभिप्राय "वैरागी" से हो और यह राग उस समय गौड़ी के साथ मिश्र रूप में गेय रहा हो।

'बैरागिया" नामक अवधी क्षेत्र में गाई जाने वाली एक धुन भी सुनने में आती है, अतः गौड़ी-वैरागणि" संभवतः गौड़ी के साथ उपर्युक्त धुन का मिश्रण हो।

इसी प्रकार 'रागकल्पद्रुम' में कलिंग राग के मिश्रण 'कलिंग-मारू' और 'कलिंग-गौरी', आज अप्रचलित हैं, मिश्रराग भी नहीं हैं।

आदिग्रंथ में "काफ़ी" राग के मिश्रण आसा-काफ़ी, मारू-काफ़ी तथा सूही-काफ़ी आदि मिलते हैं। आसा-काफ़ी तथा मारू-काफ़ी में दोनों में से एक को गीत प्रकार मानना होगा। सूही-काफ़ी का मिश्रण संभव है। शुद्ध और कोमल स्वर वाले रागों का मिश्रण प्रायः किया जाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है।[29]

इसी प्रकार 'बसंत-"हिंडोल" एक अप्रचलित मिश्रराग है, किंतु उसका मिश्रण असंभव नहीं अपितु यह मिश्रण रंजक रागरूप सिद्ध हो सकता है।

बनारस में "बसंत" राग का एक औडव प्रकार प्रचलित है। "बसंत-पंचम" राग में अधिकतर शुद्ध धैवत का प्रयोग किया जाता है किंतु थोड़ी देर के लिए कोमल धैवत लगाकर "बसंत" का स्वरूप दिखाया जाता है। इस प्रकार "बसंत हिंडोल" संभवतः औडव प्रकार का "वसंत" हो। वसंत में थोड़ी देर के लिए शुद्ध धैवत लगाकर हिंडोल का स्वरूप दिखाया जा सकता है।

(8) आदिग्रंथ में कई बार एक ही राग-मिश्रण को आगे पीछे रखा गया है, यथा "आसा काफ़ी म. 1 घरू 8 अष्टपदियाँ[30]; तथा "आसा घरू 8 काफी म. 5;[31] "वसन्त-हिंडोल' म. 1 घरु [32] 2; तथा "वसंत म. 5 घरू 2[33]; हिंडोल[34] 4, "परभाती विभास म. 1[35]; और प्रभाती म. 5 विभास;[36] विभास-प्रभाती म.[37] 5 अष्टपदियाँ; प्रभाती अष्टपदियाँ म. 1 विभास।

इस प्रकार के क्रम-परिवर्तन रूप उल्लेखों का कोई आधार-भूत कारण समझ में नहीं आता। राग आसा के संबंध में दोनों स्थानों पर काफ़ी को गीत-प्रकार मानना होगा तथा "बसंत हिंडोल" एवं "प्रभाती-विभास" में क्रम-परिवर्तन संबंधी वैशिष्ट्य का भी कोई निमित्त स्पष्ट नहीं।

(9) आदिग्रंथ में "आसा" राग के अंतर्गत राग "आसावरी" शीर्षक से अनेक पद मिलते हैं, जिससे यह प्रकट होता है कि संपादक का ध्यान रागरूप की ओर कम एवं रागनाम की ओर अधिक रहा है, क्योंकि "आसा" और "आसावरी" रागों के स्वररूप में कोई साम्य नहीं है।

इसी प्रसंग में एक उल्लेख विशेष ध्यातव्य है "रागु आसा म. 5 घरू 17 आसावरी[37] क्या यहाँ "आसा" और "आसावरी" राग का मिश्रण अभिप्रेत है?

आसा और आसावरी रागों का मिश्रण न तो कहीं देखने को मिला है और न ही एक रंजक रागरूप में इसकी कल्पना ही की जा सकती है।

(10) आदिग्रंथ में राग "गौड़ी" में म. 5 के कुछ पद एक विचित्र शैली में अंकों में चिह्नित हैं, यथा;

राग गौड़ी पूरबी[38]; राग गौड़ी पूरबी[39]

गौड़ी माझ[40]; गौड़ी माझ[41]

गौड़ी चैती[42]; गौड़ी माला;[43] गौड़ी[44]; गौड़ी पूरबी[45]

गौड़ी[46] म. 5।

रागनामों के साथ "घरों" की अपेक्षा अंक संख्याओं के इस विचित्र उल्लेख का यहाँ क्या प्रयोजन है, स्पष्ट नहीं हो सका।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार, निर्गुण संतकवियों की पदावली में उपलब्ध रागनाम की तालिकाओं के अध्ययन से हम देखते हैं कि हमारे विवेच्य काल के संतकवियों के समय से अब तक इस 400-500 वर्षों के कालांतर में अनेक प्रचलित स्वतंत्र एवं मिश्र रंजक राग अप्रचलित कोटि में चले गए। कुछ का संभवतः नामान्तर, रूपान्तर हो गया और कुछ सर्वथा लुप्त हो गए। कुछ गीत-शैलियाँ (घरु संख्याएँ आदि) तथा धुनें (चारों के लिए निर्दिष्ट) जो रागों के साथ संबद्ध होकर आई हैं, आज ये विलुप्त प्राय हो गई हैं।

आज जब अनेक नवीन स्वतंत्र एवं मिश्र रागों का आविष्कार हो रहा है, इन विस्मृति के गर्भ में पड़े रागों के पुनरुद्धार अथवा पुनः प्रचार की आवश्यकता भी कम नहीं है।

आदिग्रंथ में गुरुकवियों के शबदों के साथ शीर्षक रूप में संबद्ध घरू-संख्याएँ वारों तथा अन्य कृतियों के गायन-हेतु, निर्दिष्ट धुनें, एक पृथक् गायन-शैली की द्योतक हैं। उनको विशुद्ध शास्त्रीय स्तर की शैलियाँ, निश्चय ही नहीं कहा जा सकता, अतः तत्संबंधी अध्ययन "गायनशैली" वाले अध्याय में आगे प्रस्तुत किया गया है।

अध्याय के प्रस्तुत 'राग खंड में केवल "राग" संबंधी अध्ययन एवं परिशीलन ही प्रस्तुत किया गया है। आदिग्रंथ के अंत में दी गई राग-माला[47] से संबंधित गवेषणा प्रस्तुत आलेख के पश्चात्, समाविष्ट है। तत्पश्चात् संतों की पदावली में नामोल्लेख के रूप में प्राप्त रागों की तालिकाएँ एवं छंद, तदनन्तर संतवाणी में उपलब्ध आज के अप्रचलित रागों की गुरुमत संगीत में दी गई स्वरलिपियाँ तथा (उसी पुस्तक में सन्निविष्ट) स्वरूप में कुछ वैशिष्ट्य (राग का सही अथवा ग़लत स्वरूप) लिए हुए कुछ अन्य रागों में निबद्ध पदों की स्वरलिपियाँ उद्धृत की गई हैं।

रागमाला

आदिग्रंथ में अंतिम पृष्ठ पर, ग्रंथ के साथ संलग्न राग-रागिनी-वर्गीकरण की परिचायिका एक कृति "रागमाला" नाम से अंकित है। यह कृति पंचम गुरुकृत कही जाती है।

सिक्खों में एक प्राचीन मान्यता के अनुसार, आदिग्रंथ की समाप्ति पर भी अरूप "राग रतन परवार परियाँ रूपवान् हो, गुरु जी के समक्ष प्रकट हुये और उन्होंने आदिग्रंथ में स्थान पाने के लिए उनसे याचना की। गुरु जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर, भाई गुरदास को उनकी 'रागमाला' लिख लेने का आदेश दिया। तब उन अरूप रहने वाले रूपधारियों के, भाई गुरदास को दर्शन हुये तथा उनका प्रत्यक्ष गायन सुनने का भाई जी को सौभाग्य मिला। भाई जी ने उनका गायन सुनकर यथावत् रागमाला में प्रस्तुत कर दिया।[48]

इस प्रकार, 'रागमाला' को गुरुबानी सिद्ध करने के लिये राग-माला समर्थकों ने उपर्युक्त मनोकल्पित कहानी गढ़ ली है, जिस पर किसी भी तर्कशील व्यक्ति का विश्वास नहीं हो सकता। वस्तुतः उक्त कृति में उसके कर्ता का निर्देश न होने के कारण ही विभिन्न मान्यताएँ बनीं तथा 'राग रतन' परवार परियाँ पंक्ति (म. 3 की लिखी) का अर्थ भी प्रतीकात्मक है,[49]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिधामूलक नहीं, जैसा कि उपर्युक्त मत में समझ लिया गया है।

रागमाला को गुरु अर्जुन प्रणीत मानने वाले विद्वानों के अपने मत की पुष्टि में दिए गए सबल तर्क यह हैं कि क्योंकि रा. मा. कर्तारपुर वाली आदिग्रंथ की प्रथम प्रति तथा भाई बन्नोवाली खारी वीड़' में भी अंकित है[50] तथा जिस स्याही में ग्रंथ की समग्र बानी लिखी गई है, 'राग माला' भी उसी स्याही से लिखी गई है,[51], अतः 'राग-माला' गुरुवाणी ही है। इस प्रसंग में 'राग-माला' समर्थकों का एक अन्य तर्क है कि कर्तारपुरवाली गुरुग्रंथ साहिब की आदि प्रति में से बानी का कोई भी अंश निकालना तथा अपनी ओर से कोई कृति उसमें डालना, सिक्खों में जघन्य अपराध माना जाता है और उक्त प्रति में अनेक ख़ाली पृष्ठ रहने पर भी "सो पुरखु निरंजन' वाला "रहिरासि" का पद तथा उसके पश्चात् के 3, पद भी आज तक उसमें चढ़ाए नहीं गए, अतः 'रागमाला' गुरु अर्जुन की ही रचना है।[52]

भाई वीरसिंह ने "मुंदावणी"[53] का अर्थ बुझारत मानकर रागमाला को पंचम गुरु की कृति सिद्ध करने का प्रयास किया है।

जहाँ तक रागमाला के "आदि बीड़" तथा "खारीबीड़" दोनों प्रतियों में अंकित रहने का प्रश्न है, उस संबंध में यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि अभी भी हमें 8-10 हस्तलिखित पोथियाँ ऐसी मिलती हैं, जिनमें रागमाला नहीं है। यदि रागमाला पंचम गुरु की ही कृति है तो उक्त हस्तलिखित पोथियों में 'रागमाला' को स्थान क्यों नहीं दिया गया?

'रागमाला' का ग्रंथ में व्यवहृत स्याही से ही लिखा जाना भी सबल तर्क नहीं, क्योंकि संभव है, उस समय सभी प्रतिलिपिक एक ही स्याही का प्रयोग करते रहे हों।[54]

यद्यपि यह सत्य है कि सिक्खों में गुरुवाणी में प्रक्षेपण अक्षम्य अपराध माना जाता है, किंतु यदि सिक्खों में उक्त विश्वास का अद्यतन इतनी दृढ़ता से पालन होता रहा होता तो कुछ हस्तलिखित पोथियाँ 'रागमाला' से रहित क्यों रह गईं?

"मुंदावणी" का अर्थ "बुझारत" कल्पित कर, रागमाला को गुरुप्रणीत सिद्ध करने का प्रयास भी विचित्र है; क्योंकि इस नवाविष्कृत शब्दार्थ का न कोई आधार है और न इस "अर्थ" की उक्त प्रसंग में अर्थ-संगति ही ठीक बैठती है।[55]

दूसरी ओर, 'रागमाला' को गुरुबानी का प्रक्षिप्तांश मानने वाले विद्वानों के अनुसार गुरु अर्जुन ने आदिग्रंथ में प्रत्येक भक्त की बानी के साथ कर्ता का शीर्षक रूप में नाम दिया है, किंतु रागमाला में न शीर्षक के रूप में ही और न ही छंदों के अंतर्गत कहीं रागमाला-कार का नाम आया है। रागमाला में पंचम गुरु के बानी भाग में प्रयुक्त क्रमिक छंदांकन रीति का भी व्यवहार नहीं मिलता।[56]

वास्तव में उक्त कृति आलम नामक कवि की हिंदी पुस्तक "माधवानल" कामकंदला" में से 10 छंदों का प्रक्षेप है, यह पूर्णतया सिद्ध हो चुका है।[57] आलम ने अपनी उक्त पुस्तक हिजरी सन् 991 अर्थात् सं. 1640 वि. में लिखी थी, जबकि आदिग्रंथ का संपादन सं. 1661 में हुआ था, अतः किसी गुरुभक्त द्वारा राग-माला आलम की उक्त पुस्तक में से छंद संख्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

53 से लेकर 72 तक ग्रहण कर, किंचित् शब्दान्तर से आदिग्रंथ के अंत में जोड़ दी गई है।

रागमाला समर्थक कुछ विद्वानों के मतानुसार अकबर के समय आलम नामक कोई कवि नहीं हुआ अपितु "माधवानल कामकंदला" संस्कृत पुस्तक का लेखक जोध कवि हुआ था[58] और आलम कवि महला 10 के समय हुआ था, जिसने उक्त संस्कृत पुस्तक का हिंदी अनुवाद किया और 'आदिग्रंथ' में से रागमाला चुरा कर अपने ग्रंथ में डाल ली, क्योंकि दसवें गुरु के दरबार में रहने के कारण, वह सिक्ख साहित्य से पूर्णतः परिचित था। उसने अपनी पुस्तक का जो रचनाकाल सं. 991 दिया है, वह ग़लती से मूल पुस्तक के रचनाकाल का अनुवाद कर दिया गया है। वस्तुतः उसकी हिंदी पुस्तक का रचनाकाल 1774 वि.सं. है जिसकी पुष्टि के लिए वे एक दोहा भी उद्धृत करते हैं।[59] इस प्रकार इन विद्वानों ने ऐतिहासिक तथ्यों की काल्पनिक अवतारणा कर, यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आलम ने आदिग्रंथ में से रागमाला चुराई और वह आदिग्रंथ के रचनाकाल के बहुत बाद हुआ था। यह पूर्णतः सिद्ध हो चुका है कि अकबर के समय जोध नामक कोई कवि संस्कृत पुस्तक "माधवानल कामकंदला" का लेखक नहीं हुआ तथा उक्त विद्वानों द्वारा अपने मत के पुष्ट्यर्थ प्रस्तुत किया गया दोहा भी अप्रामाणिक है।[60] आदिग्रंथ की 'रागमाला' का आलम की "माधवानल कामकंदला" पुस्तक के वर्ण्य विषय, रागनाम तथा भाषाशैली आदि से साम्य देखकर यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि आलम की "माधवानल कामकंदला" नामक लंबी कविता ही आदिग्रंथ की रागमाला कर मूल स्रोत है।

डॉ. चरण सिंह, भाई वीर सिंह तथा प्रि. जोधसिंह के मतानुसार आदिग्रंथ में प्राप्त रागमाला का उद्देश्य गुरमत संगीत की स्थापना है, किंतु उक्त कृति में न रागों का स्वतंत्र विवेचन किया गया है, न उनके शास्त्रीय स्वरूप की कहीं चर्चा की गई है, अपेक्षतया उसमें प्रयुक्त सर्वनाम तथा क्रियापदों, उचरही, गावहि, सुनावहि, बै, उन तथा गाइन आदि द्वारा यह ध्वनित होता है कि किसी समारोह के अंतर्गत राग गाए जा रहे हैं। इस प्रकार अंतः साक्ष्य से भी यह सिद्ध हो जाता है कि यह रागमाला किसी कथा का प्रक्षिप्तांश है और निस्संदेह यह मूलकथा आलम कृत माधवानल कामकंदला है।

यह रागमाला आदिग्रंथ की प्रथम तीनों प्रतियों में मिलती है, अतः उक्त कृति को आदिग्रंथ के संपादन के साथ बहुत जल्द ही उसमें जोड़ दिया गया। यह कथन प्रसिद्ध है कि आदिग्रंथ का संपादन संपूर्ण हो जाने पर भाई बन्नो जिल्द बँधवाने लाहौर ले गया था और वहाँ उसने उसकी एक प्रतिलिपि भी की, जिसमें उसने मुंदावणी के पश्चात् अनेक पदों का भी ग्रंथ में अपनी ओर से समावेश किया और उसकी प्रति "खारी बीड़" में रागमाला अपनी ओर से जोड़, इन समस्त पदों के अंत में रखी गई है। यदि पंचम गुरु ने रागमाला भाई गुरदास द्वारा ही लिखाई होती तो यह अपेक्षित था कि भाई बन्नो वाली प्रति में रागमाला मुंदावणी के पश्चात् होती, क्योंकि भाई बन्नो ने गुरु जी द्वारा संपादित समस्त बानी की प्रतिलिपि कर लेने के अनन्तर अपनी ओर से नए पद जोड़े, अतः यह भी संभव है कि कर्तारपुर वाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदिबीड़ में रागमाला भाई बन्नो द्वारा ही जोड़ी गई हो अथवा किसी अन्य प्रतिलिपिक द्वारा मिलाई गई हो, जिसका नाम अभी तक प्रकाश में नहीं आ सका है।[61]

वस्तुतः आदिग्रंथ में प्रक्षिप्त उक्त कृति को "रागमाला" शीर्षक देना ही ग़लत है, क्योंकि 'रागमाला' शास्त्रीय संगीत में "रागकदम्ब" नाम का एक प्रबंध भेद है, जिसमें किसी पद में अनेक रागों का नाम श्लेषात्मक रूप में जुड़ा रहता है। जहाँ जिस राग का नाम आता है, तदनुसार ही उस पदविशेष को गाया जाता है।[62] रागकल्पद्रुम में रागमालाओं की नियोजना देखी जा सकती है।[63] आदिग्रंथ में प्रक्षिप्त उक्त रचना का वर्ण्य-विषय 'राग-रागिनी वर्गीकरण' है, अतः उसे 'रागमाला' कहना कदापि उचित नहीं। मध्ययुग में 'राग-रागिनी वर्गीकरण' दक्षिण को छोड़कर, संपूर्ण भारत में प्रचलित था।[64] संस्कृतशास्त्र ग्रंथों के प्रभाव से हिंदी में भी इसका इतना अधिक प्रचलन हुआ कि शास्त्रीय-संगीत से अनभिज्ञ कवि भी अपने ग्रंक्षों में "येन-केन प्रकारेण" 'रागरागिनी वर्गीकरण' को स्थान दे देते थे। आलम की 'माधवानल कामकंदला' एवं उसमें से ग्रहण कर आदिग्रंथ में इस कृति को स्थान देना भी मध्ययुगीय उक्त प्रवृत्ति का परिणाम कहा जा सकता है।

'रागरागिनी वर्गीकरण' में पुत्र संबंध का उल्लेख सर्वप्रथम संस्कृत में पुण्डरीक विट्ठल ने किया, किंतु प्रस्तुत 'रागमाला' में छः रागों में की 6 भार्याएँ एवं 8 पुत्रों की रागरागिनी वर्गीकरण पद्धति, मेषकर्ण की राग-रागिनी वर्गीकरण से मेल खाती है[65] अतः यह भी संभव है कि आलम ने उक्त प्रसंग मेषकर्ण की रागमाला से ग्रहण किया हो[66] क्योंकि मेषकर्ण की रागमाला सन् 1509 में लिखी गई अर्थात् आलम की 'माधवानल कामकंदला' से लगभग 74 वर्ष पूर्व। "माधवानल कामकंदला" में से उक्त प्रसंग निकालकर "रागमाला" शीर्षक से आदिग्रंथ में जोड़ दिया गया हो, और इस प्रकार–

"कछु अपनी कछु परकृत चोरों।
यथाशक्ति क़रि अक्षर जोरों।"

आलम की उक्त चौपाई का यह भी संकेतार्थ अनुमान किया जा सकता है कि लेखक ने अपनी पुस्तक में अपने पूर्वाचार्यों के ग्रंथों में से राग-रागिनी वर्गीकरण का आधार तथा जिन अन्य विषयों का ग्रहण किया है तथा ग्रंथरचना में उसे जिन पुस्तकों से सहायता मिली है, उक्त चौपाई द्वारा वह उन ग्रंथकर्ताओं के प्रति साभार कृतज्ञता-निवेदन कर रहा है, न कि उक्त चौपाई से उसका यह आशय है कि वह आदिग्रंथ में से रागमाला संबंधी अपनी साहित्यिक चोरी को स्वीकार कर रहा है, जैसा कि कुछ विद्वानों का इस संबंध में अभिमत है।[67]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संत जयेदव की पदावली में प्राप्त रागनाम की सूची ('क' संख्यक)

क्रमांक	अकारादि क्रम	रागनाम	ग्रंथनाम
1.	ग	गूजरी	आदिग्रंथ में।
2.	म	मारू	आदिग्रंथ में।

विशेष—संत जयदेव की निर्गुण भक्ति भाव की पदावली में मिलने वाले उक्त दो रागनामों की सूची के लिए मैंने 'आदिग्रंथ' का आधार ग्रहण किया है।

संत नामदेव की पदावली में प्राप्त रागनाम की अकारादि क्रमानुसार सूची 'ख' संख्यक

क्रमांक	अकारादि क्रम	रागनाम	ग्रंथनाम
1.	आ	आसा	आदिग्रंथ में।
2.		आसावरी	"से.दा. की बानी" तथा "से.ना.की हिं प." में
3.	क	कनड़ौ	आ.ग्रं., सं. ना. की हिं, प., से. दां की बा. में
4.		कल्याण	सं.ना.की. हिं. प., सं. दा. की बा. में
5.	ग	गौड़	सं. ना. की हिं. प., आ.ग्रं., से. दा. की बा. में।
6.		गौड़ी	सं. ना. की हिं. प., से. दा. की बा., रा. क. में।
7.		गौड़ी चैती	आ. ग्रं. में।
8.		गूजरी	आ. ग्रं. में।
9.	ट	टोड़ी	सं.ना. की हिं. प., से. दा. की बा., आ. ग्रं. , रा. क.।
10.	त	तिलंग	आ. ग्रं.।
11.	ध	धनाश्री	आ. ग्रं., से. दा. की बा., सं. ना. की हिं. प. में।
12.	प	परजीयो या पूजीयौ	से. दा. की बा., सं. ना. की हिं. प.
13.		प्रभाती	आ. ग्रं. में।
14.	ब	बसन्त	आ. ग्रं., से., दा. की बा., सं. ना. की हिं. प. में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

15.	भ	भैरव	आ. ग्रं., से. दा. की बा., सं., ना. की हिं. प. में।
16.	म	मारू-खम्भाइची	सं. ना. की हिं. प. में।
17.		मलार	आ. ग्रं. में।
18.	म	मालीगौड़ा	आ. ग्रं., से. दा. कीं बा., सं. ना. की हि. प. , में
19.		मारू	आ. ग्रं.।
20.	र	रामग्री, रामकली या रामगिरी?	से. दा. की बा., आ. ग्रं., सं. ना. की हि. प. में।
21.	ल	ललित	से. दा. की बा. में।
22.	स	सारंग	आ. ग्रं., से. दा. की बा., सं. ना. की हि. प. में।
23.		सोरठ	आ. ग्रं., से. दा. की बा., सं.ना. की हिं. प. में।

विशेष—प्रस्तुत रागनामों की सूची रागकल्पद्रुम, संत नामदेव की हिंदी पदावली, (डॉ. भगीरथ मिश्र कृत), आदिग्रंथ तथा "सेवादास जी की बानी" (ह. लि. पुस्तक, लिपिकाल सं. 1855 ई.) उक्त चार पुस्तकों के आधार पर तैयार की गयी है। जो राग उपर्युक्त चारों ग्रंथों में से जिन-जिन ग्रंथों में मिलते हैं, उनका उल्लेख "ग्रंथनाम" शीर्षक के अंतर्गत किया गया है।"

कबीर के पदों में प्राप्त रागनाम की सूची ("ख" संख्यक)

क्र. सं.	अकारादिक्रम	रागनाम	ग्रंथनाम	मिश्र राग नाम
1.	अ	अहीरी	क.बी.रा.क.।	(1) ईमन-झिंझोटी (रा.क., क.बी.रा.क.)
2.	आ	आसावरी	क.वी.रा.क., क.ग्रं. रा.क.	(2) कलंग-मारू (रा.क.)
3.		आसा	आ. ग्रं.।	(3) गौड़ी-पूरबी (आ. ग्रं.)
4.	ए	एमन	क.बी.रा.क.।	(4) कलिंग-गौरी (क.बी.रा.क)
5.	क	कल्याण	क.ग्रं.।	
6.		केदार	आ.ग्रं., क. ग्रं., क.बी रा. क.	(5) गौड़ी-बैरागणि (आ. ग्रं.)
7.		कलिंग	रा. क.।	(6) गउड़ी चैती (आ. ग्रं.)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

8.		काफ़ी	क.बी.रा.क.।
9.	ख	खंभावती	क.बी.रा.क.।
10.	ग	गौड़ी	आ.ग्रं., क. ग्रं., क. बी. रा.क.।
11.		गौंड	आ. ग्रं.।
12.		गूजरी	आ. ग्रं.।
13.	ज	जंगला	क.बी.रा.क.।
14.	झ	झिंझोटी	रा.क., क.बी.रा.क.।
15.	ट	टोड़ी	क. ग्रं.।
16.	द	देश	क. बी. रा. क.
17.	ध	धनाश्री	क.बी.रा.क., आ. ग्रं., क. ग्रं.।
18.	प	प्रभाती	आ. ग्रं.।
19.		परज	क. बी. रा. क.।
20.	प	पीलू	क.बी.रा.क.।
21.	ब	बसन्त	क.बी.रा.क., क.ग्रं., आ.ग्रं.।
22.		बिलावल	आ. ग्रं., क. ग्रं.।
23.	भ	भैरवी	क. बी. रा. क.।
24.		भैंरू	क. ग्रं., आ. ग्रं.।
25.		भूपाली	क.बी. रा. क.।
26.	म	मलार	क.ग्रं.।
27.		मालीगौड़ी	क. ग्रं.।
28.		मारू	क.ग्रं., क.बी.रा.क., आ.ग्रं.।
29.	य	योगिया	क. बी. रा. क.।
30.	र	रामकली	क. ग्रं., आ. ग्रं.।
31.	ल	ललित	क. ग्रं.

गौड़ी के प्रकारः
(1) गउड़ी गुआरेरी
(आ. ग्रं.)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

32.	व	विहाग	क. वी. रा. क.।
33.	स	सूहौ	क. ग्रं., आ. ग्रं.।
34.		सोहनी	रा. क.।
35.		सारंग	आ. ग्रं., क. ग्रं.।
36.		सोरठ	क. बी. रा. क., आ. ग्रं., क. ग्रं.।
37.		सिंधु	क. बी. रा. क.।
38.		सिंदूरा	रा. क.।

विशेष—उक्त रागनामों की सूची में मैंने "क. ग्रंथावली", "रागकल्पद्रुम" तथा आदिग्रंथ इन तीन ग्रंथों का आधार लिया है। रा.क. में "कबीरबीजक" शीर्षक से जो पद मिलते हैं, उनमें 23 रागनामों का उल्लेख है अतः इन रागनामों के आधार की सूचना के लिए क.बी.रा.क. इस संकेत चिह्न का प्रयोग किया गया है।

रा.क. में कबीरबीजक के अतिरिक्त कबीर के पदों में प्राप्त रागनामों के लिए केवल "रा. क." इस चिह्न का व्यवहार किया है।

गुरु नानक की पदावली में प्राप्त रागनाम की अकारादिक्रमानुसार सूची ("ग" संख्यक)

क्रमांक	अकारादिक्रम	रागनाम	ग्रंथनाम	मिश्र राग
1.	आ	आसा	आदिग्रंथ में	(1) आसा-काफी
2.	ग	गूजरी	आदिग्रंथ में	(2) गउड़ी गुआरेरी
3.		गौड़ी	आदिग्रंथ में	(3) गउड़ी चैती
4.	त	तुखारी	आदिग्रंथ में	(4) गउड़ी बैरागणि
5.		तिलंग	आदिग्रंथ में	(5) गउड़ी पूरबी
6.	ध	धनासरी		(6) गउड़ी-पूरबी-दीपकी
7.	प	प्रभाती		(7) मारू - काफ़ी
8.	ब	बसन्त		(8) बसन्त-हिंडोल
9.		बिलावल		(9) प्रभाती विभास।
10.	भ	भैरउ		
11.	म	माझ		
12.		मारू		
13.		मलार		

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

14.	र	रामकली	
15.	व	वडहंसु	
16.	स	सोरठि	
17.		सिरी	
18.		सारंग	
19.		सूही।	

विशेष—रागकल्पद्रुम में गुरू नानक का कोई पद नहीं है। नानक नामांकित प्रायः सभी पद म. 1 के समझे जाते हैं। हिन्दी एवं पंजाबी भाषा के प्रायः सभी संतों के पद-संकलन वाले ग्रंथों में नानक की कृतियों के लिए रागनाम का आधार केवल आदिग्रंथ से लिया गया है, अतः "नानक" की पदावली में प्राप्त रागनाम संबंधी अध्ययन केवल आ.ग्रं के आधार पर यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

गुरु अर्जुनदेव की पदावली में प्राप्त रागनाम की सूची ("घ" संख्यक)

क्रमांक	अकारादिक्रम	रागनाम	मिश्र रागनाम	विशेषोल्लेख
1.	आ	आसा	(1) गउड़ी पूरबी	राग गौड़ी के प्रकार
2.		आसावरी	(2) गउड़ी माझ	(1) गउड़ी दखणी
3.	क	कानड़ा	(3) गउड़ी-पूरबी-दीपकी	(2) गउड़ी चेती
4.		कलिआनु	(4) गउड़ी-बैरागणि	(3) गउड़ी गुआरेरी
5.		केदारा	(5) बसन्त-हिंडोल	(4) गउड़ी मालवा
6.	ग	गौड़ी	(6) प्रभाती-विभास	(5) गउड़ी माला
7.		गूजरी	(7) विभास-प्रभाती	
8.		गौड़	(8) मारू अंजुली	
9.	ज	जैतसिरी		
10.	ट	टोड़ी		
11.	त	तिलंग		
12.		तुखारी		
13.	द	देवगंधारी		
14.	ध	धनासरी		
15.	न	नटनाराइन		
16.	प	प्रभाती		

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

17.	ब	बिहागड़ा	
18.		बैराडी	
19.		बिलावलु	
20.		बसन्तु	
21.	भ	भैरउ	
22.	म	माझ	
23.		मारू	
24.	म	मल्हार	
25.		मालीगौड़ा	
26.	र	रामकली	
27.	व	वडहंसु	
28.	स	सोरठि	
29.		सूही	
30.		सारंग	
31.		सिरी	

विशेष—उपर्युक्त "रागनाम-सूची" में आधारग्रंथ केवल "आदिग्रंथ" है; क्योंकि "गुरु अर्जुन देव जी की बाणी" (भाषा विभाग, पटियाला से प्रकाशित) संतकाव्य, (पं. चतुर्वेदी कृत) सं. सु. सार (वियोगी हरि कृत) आदि पुस्तकों में भी रागनामोल्लेख का आधार मुख्यतः आ. ग्रं. ही रहा है।

संत दादू दयाल की पदावली में प्राप्त रागनाम की सूची ("ड." संख्यक)

क्रमांक	अकारादिक्रम	रागनाम	विशेषोल्लेख
1.	अ	अडाणौ	गौड़ी का प्रकार विशेषः— (अ) जंगली-गौड़ी।
2.	आ	आसावरी	
3.	क	कल्याण	
4.		कनडौ	
5.		केदारा	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

6.		कल्हेरौ	
7.		काफ़ी	
8.	ग	गौड़ी	
9.		गुंड	
10.		गूजरी	
11.	ज	जैतश्री	
12.	ट	टोडी	
13.	ध	धनाश्री	
14.	न	नटनाराइण	
15.	प	परजियो	
16.	ब	बिलावल	
17.		बसन्त	
18.	भ	भाणमली	
19.		भैरूं	
20.	म	मालीगौड़	
21.		मारू	
22.	र	रामकली	
23.	ल	ललित	
24.	स	सिंधूड़ौ	
25.		सारंग	
26.		सोरठ	
27.		सूहौ	
28.	ह	हुसेनी बंगालौ	

विशेष—उपर्युक्त रागनाम-सूची में "दादू" के पदों में रागनामोल्लेख के लिए पं. चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी कृत "जंगली गौड़ी" राग गौड़ी का ही कोई मिश्ररूप अथवा प्रकार-विशेष है, अतः उसे पृथक् रूप से रागसंख्या में सम्मिलित नहीं किया गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुंदरदासजी की पदावली में प्राप्त रागनाम की सूची ("च" संख्यक सूची)

क्रमांक	अकारादि क्रम	रागनाम	ग्रंथनाम	मिश्र रागनाम, क्रमांक तथा ग्रंथनाम
1.	अ	अड़ाना	रा. क. सु. ग्रं.।	(1) मलार सहाना
2.		अहीरी	रा. क.।	रा.क.।
3.		अल्हैया बिलावल	रा. क.।	(2) बिहारी
4.	आ	आसावरी	रा. क. तथा सु. ग्रं.	बिहाग
5.	ऐ	ऐराक	रा. क.।	रा.क.।
6.	क	केदारा	रा. क. सु. ग्रं.।	(3) धनाश्री—
7.		काफ़ी	रा. क. सु. ग्रं.।	मुलतानी
8.		कालिंगड़ा	सुं. ग्रं.।	रा. क.।
9.		कानड़ा	सुं. ग्रं. तथा रा. क.।	(4) बसन्त—
		(दरबारी)		बहार
		कानड़ा		सुं. ग्रं.।
		(शुद्ध)	सुं. ग्रं.।	(5) सिंधु भैरवी
				सुं. ग्रं.।
10.		कल्याण		
		(शुद्ध)	सुं. ग्रं.।	(6) जकड़ी (जंगली)
		इमन कल्याण	सुं. ग्रं.।	गौड़ी
		श्याम कल्याण	सुं. ग्रं.।	
11.	ख	खट	रा. क.।	
12.		खम्माच	रा. क.।	
13.	ग	गौड़ी	सुं. ग्रं.।	
14.		गूजरी	रा. क.।	
15.		गौंड (मलार)	सुं. ग्रं.।	
16.	छ	छायानट	रा. क., सुं. ग्रं.।	
17.	ज	जैजैवन्ती	रा. क., सुं. ग्रं.।	
18.		जोगिया	रा. क.,।	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

19.		जंगला	रा. क.,।
20.	झ	झिंझोटी	रा. क.,।
21.	ट	टोड़ी	रा. क., सुं. ग्रं.।
22.	द	देशी (टोड़ी)	रा. क.,।
23.		देवगंधार	सुं. ग्रं.।
24.		देवगिरि	रा. क.।
25.		देस	सु. ग्रं.।
26.	घ	धनाश्री	सु. ग्रं.।
27.	न	नटमल्लार	सुं. ग्रं.।
28.		नटनारायण	सुं. ग्रं.।
29.		नट	रा. क.।
30.	प	प्रदीप	रा. क.।
31.		पीलू	रा. क.।
32.	ब	बिलावल (शुद्ध)	सुं. ग्रं.।
33.		बड़हंस	रा. क.।
34.		बसन्त	रा. क., सुं. ग्रं.।
		बसन्त बहार	सुं. ग्रं.।
35.		बिहागड़ा	सुं. ग्रं.।
36.		बहार	रा. क.।
37.	.	बागेश्वरी	रा. क.।
38.	भ	भैरव	रा. क., सुं. ग्रं.।
39.		भैरवी	सुं. ग्रं.।
40.		भीमपलासी	रा. क.।
41.	म	मलार	रा. क.।
42.		मलार (मेघ)	सुं. ग्रं. रा. क.।
43.		मारू	सुं. ग्रं.।
44.		मालीगौड़ो	सुं. ग्रं.।
45.		मधुमास	रा. क.।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

46.		मालकोश	रा. क.।	
47.	र	रामगरी या		
		रामकली	रा.क., सुं. ग्रं.।	
48.	ल	ललित	दोनों ग्रंथों में।	
49.	व	विहागड़ौ	सुं. ग्रं.।	
50.		विभास	रा. क.।	
51.		विहाग	रा. क.।	
52.	स	संकरभरन	सुं. ग्रं.।	
53.		सारंग	रा. क.।	
54.		सारंग (शुद्ध)	सुं. ग्रं.।	
55.		सिंधूड़ो	सुं. ग्रं.।	
56.		सिंधु	रा. क.।	
57.		सारंग	रा. क.।	
58.		सारंग (शुद्ध)	सुं. ग्रं.।	
59.		सोरठ	दोनों ग्रंथों में।	
60.		सुध मल्हार	रा. क.।	
61.		सुघराई	रा. क.।	
62.	ह	हमीर	रा. क.।	

विशेष—सुंदरदास की पदावली में उपलब्ध रागों की तालिका "सुन्दर ग्रंथा. (द्वि. खं, इसी खंड में रागनामोल्लेख है) तथा "राग कल्पद्रुम" ग्रन्थों के आधार पर तैयार की गई है।

राग तुखारी, तीन ताल, मध्यलय[68]

घोलि घुमाई लालना गुरि मनु दीना। सुणि सबदु तुमारा मेरा मनु भीना।।
इहु मनु भीना जिउ जल मीना, लागा रंगु मुरारा।।
कीमति कही न जाई ठाकुर तेरा महलु अपारा।।
सगल गुणा के दाते सुआमी बिनउ इक दीना।।
देहु दरसु नानक बलिहारी जीअड़ा बलि बलि कीना।।

(आ. ग्रं. म. 5 पृ. 1117)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	2	0	3
	प म प सं	नि ध प —	— मग — म
	घो ऽ ल घु	मा ऽ ई ऽ	ऽ लाऽ ऽ ल
प — — —	प म प सं	नि ध प —	— मग — म
ना ऽ ऽ ऽ	घो ऽ ल घु	मा ऽ ई ऽ	ऽ लाऽ ऽ ल
प — — —	— — ध —	— — ध नि	ध प — प
ना ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ हां ऽ	ऽ ऽ गु ऽ	र म ऽ न
मग — म —	प — — —	पध प — मग	ग रे — स
दी ऽ ऽ ऽ	ना ऽ ऽ ऽ	हांऽ ऽ ऽ गु	र म ऽ न
रे — — —	नि — स —	— — — म	म प — प
दी ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ना ऽ	ऽ ऽ ऽ गु	रे म ऽ न
×	2	0	3
रे स — —	स — ग म	प सं नि ध	प मप ग म
दी ऽ ऽ ऽ	ना ऽ सु ण	स ब द तु	मा ऽऽ रा मे
प — — —	— — ध —	— — — —	
रा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ हां ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	
×	2	0	

आगे "गुर मन दीना" के सुरों का प्रयोग करना है। "मेरा मन भीना" अन्त में 4 मात्राओं में "भीना" कहकर घोल घुमाई" बोल पकड़ना है।

2	3
रे —	स —
भी ऽ	ना ऽ

अंतरा - ढाई ताल[69]

0	2	3	0	2	3
सग ग ग	ग —	ग —	मप धनि धप	म —	रे नि.
इहु म न	भी ऽ	ना ऽ	जिउ ऽऽ जल	मी ऽ	ना ऽ
नि — नि	ध —	प प	मग — म	प —	— —
ला ऽ गा	रं ऽ	ग मु	राऽ ऽ ऽ	रा ऽ	ऽ ऽ
0	2	3	0	2	3

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन ताल

0	2	0	3
		म	
	— — प —	ग ग — प	— नि — —
	— — की ऽ	म त ऽ क	ऽ ही ऽ ऽ
×	2	0	3
सं — — —	— — नी —	नि नि — सं	गं रें — सं
ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ न ऽ	जा ई ऽ ठा	ऽ कु ऽ र
संरें नि — —	ध प ध नि	नि — — धनि	ध प — प
हां ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ते ऽ	रा ऽ ऽ मऽ	ह ल ऽ अ
मग — — म —	प — — —	पध प — मग	ग रे — स
पाऽ ऽ ऽ ऽ	रा ऽ ऽ ऽ	हांऽ ऽ ऽ मऽ	ह ल ऽ अ
रें — — —	नि़ — स —	— — — मं	म प — नि
पा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ रा ऽ	ऽ ऽ ऽ म	ह ल ऽ अ
सं — — —	— — प ध	प — — मग	ग रे — स
मा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	रा ऽ ऽ म	ह ल ऽ अ
रे — स —			
पा ऽ रा ऽ			

राग "तुखारी" का विवरण शास्त्र-ग्रंथों में नहीं मिलता। गु. सं. के अनुसार यह राग "टोड़ी" का औड़व संपूर्ण जाति का राग है। इसमें कोमल गांधार तथा दोनों मध्यमों का प्रयोग विहित है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है।[70]

आरोह : नि़ सा ग म प नि ध प म प, नि सं।

अवरोह : सां नि धं प म ग रे स ।

पद[71]

सुरग बासु न बाछिऔ डरीऔ न नरकि निवासु।
होना है सो होई है मनहि न कीजै आस।। 1।।
रमइआ गुन गाइऔ।। जा ते पाईऔ परम निधानु।।1।। रहाउ।।
क्या जपु क्या तपु संजमो क्या बरतु क्या इसनानु।।
जब लगु जुगति न जानीऔ भाउ भगति भगवान।।2।।
संपै देखि न हरखिऔ बिपति देखि न रोइ।।
जिउ संपै तिउ बिपति है, बिध ने रचिआ सो होय।। 3।।
कह कबीर अब जानिआ संतन रिदै मझारि।।
सेवक सो सैवा भलै, जिह घट बसै मुरारि।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग माझ आड़ा चौताला, वि. ल.[72]

स्थाई

×	2	0	3	0	4	0
				स	स रेम	रेम -प
				जा	ते पाऽ	इऔ ऽऽ
सं नि	ध प	- ध	म -	ग रे	- रेप	-ग -रे
प र	ऽ ऽ	ऽ ऽ	म ऽ	ऽ ऽ	ऽ परऽ	ऽम ऽनि
×	2	0	3	0	4	0
ग स	स सुऽऽ	स रेऽ	रेनि नि	-		
धा ऽ	नु रमाइ	या गुन	गाई औ	ऽ		
×	2	0	3	0		

अंतरा

×	2	0	3	0	4	0
				स	सरे ग	ग म -
				सु	रग बा	सु नऽ
म -	- -	-प -ध	पधनिसं -	- -	निऽ -ध	प
ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽवा ऽछी	औऽऽऽ ऽ	ऽ ऽ	हेऽ ऽऽ	ऽ
×	2	0	3	0	4	0
प धप	म -	ग रे	- -	रे रे	रे रेप	-ग -रे
ड रीऽ	ऐ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	न नरऽ	ऽकि ऽनि
×	2	0	3	0	4	0
ग स	स स---	स रे	निऽ नि	-		
वा ऽ	सु रमाई	या गुन	गाई औ	ऽ		
×	2	0	3	0		

आ. ग्रं. में "गौड़ी पूरबी" राग के अंतर्गत प्राप्त उक्त पद को रागियों एवं रबाबियो ने राग "माझ" में गाने की परम्परा के अनुसार राग "माझ" "आड़ा चौताल" में स्वरलिपिबद्ध किया है। यह राग गु. सं. के अनुसार "खमाज थाट" का औड़व सम्पूर्ण जाति का राग है। इस राग में दोनों गंधार तथा दोनों निषाद प्रयुक्त होते हैं। यह राग भी पंजाब की किसी विशेष लोकधुन से ही निर्मित प्रतीत होता है। शास्त्र-ग्रंथों में इस राग का उल्लेख नहीं मिलता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग बैराड़ी, झपताल, विलम्बित[73]

भई परापति मानुख देहुरिआ।। गोविंद मिलण की इह तेरी बारीआ।।
अवरि काज तेरे कितै न काम।। मिलु साध संगति भजु केवल नाम।।१।।
सरंजामि लागु भव जल तरन कै।। जनमु बृथा जात रंगि भाइआ के।।१।।
जपु तपु संजमु धरमु न कमाईआ।। सेवा साध न जानिआ हरि रहाउ।।
कहु नानक हम नीच करमा।। सरणि परे की राखहु सरमा।।2।।

स्थाई

×		2			0		3		
नि़	रे	ग	—	रे	ग	—	मप	—	प
भ	ऽ	ई	ऽ	प	रा	ऽ	पऽ	ऽ	ति
×		2			0		3		
प	प	प	ग	प	ग	रे	स	—	—
मा	नु	ख	ऽ	दे	हु	री	आ	ऽ	ऽ
×		2			0		3		
ध	—	ध	—	ध	प	नि	प	—	प
गा	ऽ	वि	ऽ	द	मि	ल	ण	ऽ	की
×		2			0		3		
ग	रे	ग	—	प	ग	रे	स	—	—
इ	ह	ते	ऽ	री	ब	री	आ	ऽ	ऽ
×		2			0		3		

अंतरा

×		2			0		3		
म	म	ध	—	(म)ध	सं	सं	सं	—	सं
अ	व	रि	ऽ	का	ऽ	ज	ते	ऽ	रै
नि़	रें॒	गं॒	—	मं	गं	रें॒	सं	—	—
कि	ऽ	ते	न	न	का	ऽ	म	ऽ	ऽ
×		2			0		2		
ध	ध	ध	—	ध	प	निऽ	प	—	प
मि	लु	सा		ध	सं	गति	म	ऽ	ज
×		2			0		3		

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग रे	ग – प	ग रे	स – –
के ऽ	व ऽ ल	ना ऽ	म ऽ ऽ ।
×	2	0	2

राग "बैराड़ी" गु. सं. के अनुसार "मारवा" थाट का संपूर्ण जाति का राग है। इसमें ऋषभ कोमल और तीव्र मध्यम का प्रयोग विहित है। अन्य सभी शुद्ध स्वर प्रयुक्त होते हैं।[74] यह राग भी आज अप्रचलित हो चुका है।

राग गउड़ी भी सोरठ भी, तीन ताल, मध्यलय[75]

रे जिअ निलज लाज तोहि नाहीं।। हरि तजि कत काहू के जांही।।१।।
।। रहाउ।।
जा को ठाकुर ऊंचा हाह।। सो जनु पर घर जात न सोही।।१।।
सो साहिबु रहिआ भरपूरि।। सदा संगि नाही हरि दूरि।।२।।
कवला चरन सरन हे जाके।। कहु जन का नाही घर ताके।।३ ।।
सभु कोऊ कहै जासु की बाता।। सो संभ्रम निज पति है दाता।।४।।
कहै कबीर पूरन जग सोई।। जाकै हिरदै अवरु न होई।।५।।

(गउड़ी भी सोरठ भी कबीरजी, आ. ग्र. पृ. 330)

स्थाई

×	2	0	3
		रे ग रे स	सरे नि स स
		रे जी अ नि	ल ऽ ज ला
प प प ध	प म ग ग	म रे म प	नि सं निसंरें संनि
ऽ ज तो हि	ना ऽ हीं ऽ	ह रि त जि	क न कऽऽ ऽऽ
×	2	0	3
धप धग म प	पध मप मग –		
हूऽ ऽऽ के ऽ	जाऽ ऽऽ हींऽ ऽ		
×	2		

अंतरा

×	2	0	3
		म ध नि सं	सं – सं सं
		जा ऽ को ऽ	ठा ऽ कु र
नि – रें गं	रें – सं –	म रे म प	नि सं निसंरे सं
ऊं ऽ चा ऽ	हो ऽ ई ऽ	सो ऽ ज नु	प र धऽऽ र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				2			
धप	धग	म	प	पध	मप	मग	—
जाऽ	ऽऽ	त	न	सोऽ	हीऽ	ऽऽ	ऽ
×				2			

राग "गौड़ी सोरठ" गु. सं. में भैरव अंग का राग वर्णित है और यह औड़व-संपूर्ण जाति का राग माना गया है। इस राग में रे, ध, कोमल एवं दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है।[76] यह मिश्रराग आज प्रचार में नहीं है।

राग बसंत हिंडोल — तीन ताल, मध्य लय[77]

साहुरणी वयु सेमु किछु साझी पेवकड़े घन बरखे।।
आपि कुचजी दोसु न देऊ जाणा नाही रब।। 1।।
मेरे साहिबा हउ आपे भरमि भुलाणी।।
अखर लिखे सेई गावा अवर न जाणा बाणी।। 1।। रहाउ।।
कढि कसीदा पहिरहि चोली तां तुम्ह जाणहु नारी।।
जे घरु [illegible]खहि बुरा न चाखहि होवहि कंत पियारी।। 2।।
जे तूं पाड़आ पंडितु बीना दुइ अखर दुइ नखा।।
प्रणवत नानकु एकु लंघय जे करि सचि समावां।। 3।।

(आ. ग्र. बसंत म. 1 हिंडोल पृ. 1171

स्थाई

×				2				0				3			
								ध	म	—	म	ग	म	—	ध
								मे	रे	ऽ	सा	हि	बा	ऽ	हुउ
सं	—	—	—	—	—	नि	—	ध	म	—	ग	म	गमु	ध	म
आ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	पे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	भ	र	मुऽ	ऽ	भु
×				2				0				3			
ग	रे	स	—	—	—	नि़	स	ग	—	—	म	ध	नि	सं	—
ला	ऽ	णी	ऽ	ऽ	ऽ	आ	ऽ	पे	ऽ	ऽ	भ	र	म	भु	ऽ
×				2				0				3			
सं	—	—	नि	सं	नि	ध	—	म	—	—	म	ग	म	—	ध
ऽ	ऽ	ऽ	ला	णी	मे	रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	सा	हि	बा	ऽ	हुउ
×				2				0				3			

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंतरा

×				2				0				3			
						ध	—	ध	नि	—	सं	—	सं	रें	संनि
						सा	ऽ	हु	र	ऽ	ड़ी	ऽ	व	ऽ	ऽऽ
सं	—	—	—	—	—	सं	सं	सं	सं	—	नि	—	सं	—	रे
ध	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	स	म	कि	छ	ऽ	सा	ऽ	झी	ऽ	ऽ
×				2				0				3			
सं	—	नि	—	ध	—	नि	सं	नि	ध	ध	म	ध	नि	सं	—
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	पे	ऽ	व	ऽ	क	ड़ै	ऽ	ध	न	ऽ
×				2				0				3			
सं	—	—	नि	सं	नि	ध	—	म	—	ग	गम	ग	म	—	ध
ऽ	ऽ	ऽ	व	खे	मे	रे	ऽ	ऽ	ऽ	सा	ऽऽ	हि	बा	ऽ	हउ
×				2				0				3			

यह राग यद्यपि उक्त नाम से गायक-वर्ग में आज बिल्कुल अपरिचित है, किंतु इसे "बसंत पंचम" नामक बनारस में प्रचलित औड़व जाति के बसंत अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य राग का ही नामान्तर कह सकते हैं।

राग आसा, ताल यक्का ते ढाई ताल[78]

तूं सुणि हरणा कालिआ की वाड़ी अै राता राम।।
बिखु फलु मीठा चारि दिन फिरि होवै ताता राम।।
फिरि होइ ताता खरा माता नाम बिनु परतापए।।
उहु जैव साइर दोइ लहरी बिजुलि जिवै चमकए।।
हरि बाझु राखा कोइ नाही सोइ तुझहि बिसारिआ।।
सचु कहै नानक चेति रे मन मरहि हरणा कालिआ।। 1।।

(आसा म. 1, आ. ग्र. पृ. 438)

स्थाई

×		0		2		0		3		4	
सं	—	—	सं	—	रें	सं	सं	नि	ध	—	—
तूं	ऽ	ऽ	सु	ऽ	णि	ह	र	ऽ	णा	ऽ	ऽ

बिखु फलु मीठा

ध	—	ध	प	—	ध	म	—	—	प	निध	—
का	ऽ	लि	आ	ऽ	ऽ	वा	ऽ	ऽ	वा	ऽऽ	ऽ
×		0		2		0		3		4	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

म –	म ग	– –	रे –	– स	– स
का ऽ	लि आ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ की
×	0	2	0	3	4
रे –	– म	– म	प –	– ध	– –
वा ऽ	ऽ ड़ी	ऽ औ	रा ऽ	ऽ ता	ऽ ऽ
×	0	2	0	3	4
सं –	– –	– रें	सं –	नि ध	– ध
रा ऽ	ऽ ऽ	ऽ म	जी ऽ	ऽ ऽ	ऽ की
×	0	2	0	3	4
ध –	प म	– ग	प –	– ध	प ध
वा ऽ	ऽ ड़ी	ऽ ऐ	रा ऽ	ऽ ता	ऽ ऽ
×	0	2	0	3	4

अंतरा[79]

0	2	3	0	2	3
सं – संऽ	सं नि	ध –	ध ध प	म –	प ध
हो ऽ इऽ	ता ऽ	ता ऽ	ख रा ऽ	मा ऽ	ता ऽ
0	2	3	0	2	3
धनिध धप मप	ग गरेस	रेग ग	– – गरे	स –	– ध
नामऽऽ बिऽ नाऽ	ऽ ऽऽऽ	पर ता	ऽ ऽ पऽ	ए ऽ	ऽ उह
0	2	3	0	2	3
स रे रे	रे –	रे रे	ग – रेस	रे म	प ध
जे ऽ व	सा ऽ	ह इ	देह ऽ ऽऽ	लहि ऽ	री ऽ
0	2	3	0	2	3

सच कहै नानक

प धनिध धप	मप ग	गरे रेग	ग ग ग-रे	स –	– –
ब जुऽऽ लऽ	जिऽ ऽ	ऽऽऽ वैऽ	च म कुऽऽ	ए ऽ	ऽ हरि
0	2	3	0	2	3
म प ध	सं –	सं –	ध सं रेंगं	रेंस सं	नि ध
बा ऽ झु	रा ऽ	खा ऽ	कां ऽ इऽ	नाऽ ह्री	ऽ ऽ
0	2	3	0	2	३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग आसा

अंतरा

सम									सम						
0			2			3			0			2		3	
घ	—	प	म	—		प	ध		प	पनिध	धप	मप	ग	गरेस	रेग
सो	ऽ	इ	वा	ऽ		वा	ऽ		सो	ऽऽऽ	इऽ	तुऽ	ऽ	झऽहि	बिऽ

0			2		3	
ग	—	—रे	स	—	—	—
सा	ऽ	ऽरिऽ	आ	ऽ	ऽ	ऽ
0			2		3	

आसा "राग बिलावल" थाट का संपूर्ण जाति का राग है।[80] आज भी गुरुद्वारों में इसका प्रचलन देखा जाता है। यह पंजाब की किसी विशिष्ट लोक-धुन के आधार पर बना प्रतीत होता है।

राग देवगंधारी — झपताल, विलंबित[81]

तेरा जनु राम रसाइण माता।।
प्रेम रसा निधि जा कउ उपजी छोडि न कतहू जाता।। 1।। रहाउ।।
बैठत हरि हरि सोवत हरि हरि जसु भोजनु खाता।।
अठसठि तीरथ भजनु कीनो साधू धूरी नाता।। 1।।
सफलु जनमु हरि जन का उपजिया जिनि कीनो सउतु निभाता।।
सगल समूह लै उधरे नानक पूरन ब्रह्म पछाता।। 2।।

(देवगंधारी म. 5 आ. ग्रं पृ. 532)

स्थाई

×		2			0		3		
ध	ध	ध	—	ध	ध	—	पध	नि	ध
ते	रा	ज	ऽ	नु	रा	ऽ	मऽ	ऽ	र
×		2			0		3		
प	—	म	—	प	म	—	ग	रे	सा
सा	ऽ	इ	ऽ	ण	मा	ऽ	ता	ऽ	ऽ
×		2			0		3		

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स	मरे	पम	धप	संध	सं	—	सं	—	सरें
रा	ऽऽ	मऽ	ऽऽ	रऽ	सा.	ऽ	इ	ऽ	णऽ
×		2			0		3		
संनि	—	ध	पम	ध	ध	प	म	ग	रेसा
माऽ	ऽ	ता	ऽऽ	ते	रा	ऽ	ऽ	ऽ	नऽ
×		2			0		3		

अंतरा

प	—	ध	सं	रें	सं	—	सं	—	सं
प्रे	ऽ	म	ऽ	र	सा	ऽ	नि	ऽ	धि
×		2			0		3		
प	ध	सं	रें	—	सरें	गरें	सं	नि	धप
जा	ऽ	कुउ	ऽ	ऽ	उऽ	पऽ	जी	ऽ	ऽऽ
×		2			0		3		
प	ध	म	—	म	धप	संध	सं	—	सरें
छो	ऽ	डि		न	कऽ	तऽ	हूँ	ऽ	ऽ,ऽ
×		2			0		3		
संनि	—	ध	पम	ध	ध	प	म	ग	रेसा
जाऽ	ऽ	ता	ऽऽ	ते	रा	ज	ऽ	ऽ	नऽ
×		2			0		3		

गु. सं. क़े[82] अनुसार "देवगंधारी राग" बिलावल" थाट का राग है। इसमें दोनों धैवतों (कोमल, शुद्ध) का प्रयोग होता है। यह औडव संपूर्ण जाति का राग है। आरोह में 'ग, नि' वर्ज्य हैं तथा अवरोह में सभी स्वर लगते हैं, वक्र रीति से। गायन का समय दिन का प्रथम प्रहर कहा गया है। इस राग का स्वरूप निम्नांकित है;

आरोह : सा रे म प ध सां ।

अवरोह : सां नि ध प प ध प म ग रे सा ।

राग गउड़ी पूरबी, खटताल, मध्यलय[83]

ऐसी प्रीति गोविंद सिउ लागी।। मेलि लए पूरन बडभागी ।। ੧ ।। रहाउ।।

भरता पेखि बिगसै जिउ नारी।। तिउ हरि जनु जीवे नामु चितारी।। ੧ ।।

पूत पेखि जिउ जीवत माता।। ओतपोत जनु हरि सिउ राता।। २ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोभी अनदु करै पेखि घना।। जन चरन कमल सिउ लागो मना।। 3।।
बिसरु नही इकु तिलु दातार।। नानक के प्रन प्रान अधार।। 4।।

(आ. ग्रं गउड़ी म. 5 पृ. 198)

स्थाई

× 0 2 3 0 4 5 6 0

| रे ग | रे स | सरे नि़ | स स | प प | प म | प ध
| ऐ ऽ | सी ऽ | प्री ऽ | ति गो | विं द | सि उ | ला ऽ

प म | ग – | रे ग | म ध | सं – | सं – | नि रें | नि ध | प –
गी ऽ | ऽ ऽ | मे ऽ | लि ल | ए ऽ | पू ऽ | र न | ब ड | भा ऽ

× 0 2 3 0 4 5 6 0

प – | मग – |
गी ऽ | ऽऽ ऽ |

× 0

अंतरा[84]

2 3 0 4 5 6 0

म ध | नि सं | सं सं | सं सं | सं – | नि नि | रें रें
भ र | ता ऽ | पे खि | बि ग | सै ऽ | जि उ | ना ऽ

गं रें | सं सं | म ध | सं सं | सं – | सं – | नि सरें | नि ध | प –
री ऽ | ऽ ऽ | ह रि | ज नु | जी ऽ | वै ऽ | ना ऽऽ | मु चि | ता ऽ

× 0 2 3 0 4 5 6 0

तिउ
प – | मग – | रे ग | प – | प प | प प | प प | म म | प ध
री ऽ | ऽऽ ऽ | पू ऽ | त ऽ | पै खि | जि उ | जी ऽ | व त | मा ऽ

× 0 2 3 0 4 5 6 0

ध पम | ग – | रे – | रे – | रे रे | प प | प प | प ग | रे –
ता ऽऽ | ऽ ऽ | ओ ऽ | ति ऽ | पो ति | ज नु | ह रि | सि उ | रा ऽ

× 0 2 3 0 4 5 6 0

ग रे | स –
ता ऽ | ऽ ऽ

× 0

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"गउड़ी पूरबी" गु. सं. में "पूर्वी" थाट का राग कहा गया है।[85] तदनुसार ही उक्त स्व. लि. में राग का स्वरूप दिखाया गया है। यह औडव-संपूर्ण जाति का राग कहा गया है। इसमें "रे, ध" कोमल लगते हैं और दोनों "मध्यमों" का प्रयोग होता है। आरोह में "ग ध" वर्ज्य है। राग का आरोह-अवरोह निम्नांकित है;

आरोह : सा रे प म नि सं ।

अवरोह : सं नि ध प म ग रे़ स, म ग म ग रे़ स ।

राग वडहंस, ताल चंचल, विलंबित[86]

हरि बिनु कउंनु सहाई मन का।।
मात पिता भाई सुत बनिता हितु लागे सभे फन का।। १।। रहाउ।।
आगे कउ किछु तुलहा बांधहु क्या भरवासा धन का।।
कहा बिसासा इस भांडे का इतन कु लागै ठनका।। 1।।
सगल धरम पुंन फल पावहु धूरि बांधतु सभ जनका।।
कहै कबीरु सुनहु रे संतहु इहु मनु उडन पंखेरू बन का।। 2।।

(आ. ग्रं. सारंग, कबीर जीउ, पृ. 1253)

स्थाई

×	2	0	3
		स स –	स रे स नि़
		ह रि ऽ	बि न ऽ ऽ
		0	3
– – धुप़	प – नि़ नि़	स – –	रे – ग –
ऽ ऽ ऽऽ	कउ ऽ न स	हा ऽ ऽ	ई ऽ ऽ ऽ
×	2	0	3
सनि़ नि़ –	स – – –		
मऽ न ऽ	का ऽ ऽ ऽ		
×	2		

अंतरा[87]

	स रे म म	प – –	– – – –
	मा ऽ त पि	ता ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
	2	0	3

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

— — —	प प प— म	मप ध प	म — — —
ऽ ऽ ऽ	भा ई सुत त	बऽ न ऽ	ता ऽ ऽ ऽ
×	2	0	3
ग रे —	प प प ध	पम — —	ग — रे —
ऽ ऽ ऽ	हि त ला ऽ	गीऽऽ ऽ	स ऽ म ऽ
×	2	0	3
रे ग —	स — — —		
फ न ऽ	का ऽ ऽ ऽ		
×	2		

राग बडहंस, ढाई ताल, मध्य लय[88]

गुर पूरे मेरी राखि लहै।।
अमृत नामु रिदे महि दीनो जनम जनम की मैलु गई।। 1 ।। रहाउ।।
निवरे दूत दुसट बैराई गुर पूरे का जपिआ जापु।।
कहा करै कोई बेचारा प्रन मेरे का कउ परताप।। 1।।
सिमरि सिमरि सिमरि सुखु पाइआ चरन कमल रखु मन माही।।
ताकी सरनि परउ नानकदास जाते उपरि को नाही।। 2।।

(आ. ग्रं. बिलावलु म. 5, पृ. 823)

स्थाई

सम			सम		
0	2	3	0	2	3
	रे —	ग म	प — —	प ध	सं सं
	राऽ ऽ	ख ल	ई ऽ ऽ	रा ख	ल ई
सं नि ध	प ध	प म	ग — प	म ग	रे सा
गु र पू	रै ऽ	मै री	रा ऽ ख	ल ई	ऽ ऽ
0	2	3	0	2	3
ऽनि़ — नि़	नि़ —	प़ नि़	स — रेग	स —	स —
अमरि ऽ त	ना ऽ	म रि	दै ऽ महि	दी ऽ	नो ऽ
0	2	3	0	2	3

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स–स स	रे ग	म प	ग – रेंस	रे –	ग म
जनम ज	न म	की ऽ	मै ऽ लऽ	मै ल	ल ग
0	2	3	0	2	3
प – स					
ई ऽ ऽ					
0					

अंतरा[89]

0	2	3	0	2	3
म म म	प–	नि–	संऽसं सं	सं–	सं–
नि व रै	दूऽ	तऽ	दसुट बै	राऽ	ईऽ,
0	2	3	0	2	3
नि नि नि	नि–	सं–	नि सं रेंसु	नि धध	प पऽ
गु र पू	रेऽ	काऽ	ज पि याऽ	जा पऽ	क हाऽ
0	2	3	0	2	3
सं सं सं	सं–	सं रें	संऽनि–ध	प ध	म–
क रे को	ईऽ	बेऽ	चाऽऽराऽ	प्र भ	भैऽ
0	2	3	0	2	3
ग – रेंस	रे ग	म प	ग– रेंस	रे –	ग म
रे ऽ काऽ	ब उ	प र	ताऽ पऽ	राऽ	रव ल।

राग बडहंस, चार ताल, विलंबित[90]

देहु संदेस हो कहीअउ प्रिय कहीअउ।।
बिसमु भई मैं बहु बिधि सुनते कहहुं सुहागनि सहीअउ।।१।। रहाउ।।
को कहतो सभ सुनते बाहरि बाहरि को कहतो सभ यहीअउ।।
बरनु न दीसै चिहनु न लखीऐ, सुहागनि साति बुझहीअउ।।१।।
सरब निवासी घटि घटि वासी लेपु नही झलपहीअउ।।
नानक कहत सुनहु रे लोगा संत सरन कौ बसहीअउ।।२।।

(जैतसिरी म. 5, ग्र. पृ. 700)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थाई[91]

×		0		2		0		3		4	
							ग	स	रेम	रेम	—प
							दे	ऽ	हुऽ	संऽ	ऽऽ
सं	—	—	नि	धप	ध	पम	ग	स	रेम	रेम	—प
दे	ऽ	ऽ	स	ऽऽ	रो	ऽऽ	दे	ऽ	हुऽ	संऽ	ऽऽ

×		0		2		0		3		4	
सं	—	—	निध	पध	(प)म	ग	म	ग	स	स	नि़
दे	ऽ	ऽ	सऽ	ऽऽ	रोऽ	ऽ	प्रि	य	क	ही	अउ

×		0		2		0		3		4	
—	नि़	प़	नि़	स	स़	रे	—	—	सं	नि	धप
ऽ	दे	ऽ	हु	ऽ	सं	दे	ऽ	ऽ	दे	ऽ	सऽ

×		0		2		0		3
धप	ध	म	प	ध	पम	ग	ग	स
रोऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	दे	ऽ

× 0 2 0 3

अंतरा

×		0		2		0		3		4	
म	म	—	पनि	प	नि	नि	सं	—	सं	—	सं
बि	स	ऽ	मुऽ	ऽ	भ	ई	ऽ	ऽ	जी	ऽ	मैं

×		0		2		0		3		4	
सं	सं	रें	गं	रेंगं	रेंसं	रें	सं	—	नि	धनि	प
ऽ	ब	हु	दि	ऽऽ	धिऽ	सु	न	ऽ	तै	ऽऽ	ऽ

×		0		2		0		3		4	
धप	धऽ	(प)म	गरे	ग	स	रे	—	—	सं	नि़	धप
कऽ	हहु	ऽऽ	जीऽ	ऽ	सु	हा		ऽ	ग	ऽ	निऽ

×		0		2		0		3
धप	ध	म	प	ध	पम	ग	ग	स
सही	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	अउ	ऽ	दे	ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गु. सं.[92] में राग "बडहंस" को "खमाज" थाट जन्य राग माना है, किंतु उक्त तीनों पदों की स्वर-लिपि में हम उक्त राग का भिन्न-भिन्न स्वरूप देखते हैं। प्रथम पद की स्व. लि. में सभी शुद्ध स्वरों का प्रयोग हुआ है, द्वितीय पद की स्व. लि. में दोनों निषाद प्रयुक्त हुए हैं, अतः इस स्वरूप को खमाज थाट जन्य माना जा सकता है। तृतीय पद की स्व. लि. में दोनों (शुद्ध, कोमल) गंधार और दोनों निषाद प्रयुक्त हुए हैं। "बडहंस" के पृथक्-पृथक् तीनों स्वरूपों का वैशिष्ट्य ध्यान देने योग्य है।

राग बिहागड़ा, तीनताल, मध्यलय[93]

अति प्रीतम मन मोहना घट सोहना प्रान अधारा राम।।
सुंदर सोभा लाल गोपाल दयाल की अपर अपारा राम।।
गोपाल दयाल गोविंद लालन मिलहु कंत नीमाणीआ।।
नैन तरसन दरस परसन बह नींद रैणि बिहाणीआ।।
ज्ञान अंजन नाम बिंजन भये सगल सीगारा।।
नानकु पइअैपै संत जपै मेलि कंतु हमारा।। 1 ।।

(आ. ग्रं. म. 5, बिहागड़ा पृ. 542)

स्थाई

×	2	0	3
		– ग ग म	प प नि नि
		ऽ अ ति प्री	त म म न
धनि सं नि ध	प – प ध़	पध नि ध प	प म ग म
मोऽ ऽ ऽ ह	ना ऽ घ ट	सोऽ ऽ ऽ ह	ना प्रा न अ
गम पध प म	गम गरे सनि स	स ग ग म	प म ग म
धाऽ ऽऽ रा ऽ	राऽ ऽऽ ऽऽ ऽ	म सुं द र	सो ऽ भा ऽ
ग – – –	गम गरे सनि सा	स ग ग म	प म ग म
ला ऽ ऽ ऽ	ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽ	ल सुं द र	सो ऽ भा ऽ
– ग ग म	प – नि नि	धनि सं नि ध	प मं ग म
ऽ ला ल गो	पा ऽ ल द	याऽ ऽ ऽ ल	की अप र अ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×	2	0
गम पध प म	गम गरे सनि़ स	स
पाऽऽऽ रा ऽ	रा ऽऽ ऽऽ ऽ	म
×	2	0

अंतरा[94]

×	2	0	3
		ग ग ग म	प — नि नि
		गो पा ल द	या ऽ ल गो
सं — — सं	सं — सं सं	— नि नि़ऽ —	नि — ध नि
बिं ऽ ऽ द	ला ऽ ल न	ऽ मि लहु ऽ	कं ऽ त नि
×	2	0	3
धनि सं — नि	स नि प —	— ग — म	म म ग म
माऽ ऽ ऽ णि	आ ऽ ऽ ऽ	ऽ नै ऽ न	त र स न
×	2	0	3
ग ग — म	गम गरे सनि स	सऽ ग — म	प — नि नि
द र ऽ स	पऽ रऽ सऽ न	वह नीं ऽ द	रै ऽ णि वि
×	2	0	3
धनि सं नि ध	पम गरे सनि स	—	
हाऽ ऽ ऽ णि	आऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ	ऽ	

गु. सं. में[95] "बिहागड़ा" को बिलावल थाट का राग माना गया है। उसमें दोनों "निषादों" का प्रयोग विहित माना है किंतु यहाँ शुद्ध और तीव्र दोनों मध्यम प्रयुक्त हुए हैं और राग का स्वरूप विहाग का सा आभासित होता है, इसीलिए उक्त स्वरलिपि दे दी गई है। नाम साम्य के कारण भी "बिहागड़ा" को "बिहाग" समझ बैठने की भूल यहाँ एक कारण मानी जा सकती है और संभव है कि रागियों की परंपरा में फिर इस भूल की ओर ध्यान न दिया गया हो।

राग भारू बिहाग, तीन ताल, मध्य लय[96]

"खुलिया करम, कृपा भई ठाकुर, कीरतनु हरि हरि गाई।।
मु थाका पाये विस्रामा मिटि गई सगली धाई।।
अब मोहि जीवन पदवी पाई।।
चीति आइउ मनि पुरखु विधाता संतन की सरणाई।।१।। रहाउ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काम क्रोध लोभ मोह निबरे सगल बैराई।।
सद हजूरि हाजर है नाजर कतहि न भइउ बुराई।। २।।
सुख सीतल सरधा सभ पूरी होये संत सहाई।।
पावन पतित कीये खिन भीतरि महिला कथनु न जाई।। ४।।
नर भउ गये सगल भै खोये गोविंद चरण ओटाई।।
नानके, जसु गाँवे ठाकुर का, रैणि दिनसु लिव लाई।। ५।।"[96]

स्थाई

×	2	o	3
	प नि	स ग – म	ध नि – सं
	जी ऽ	व न ऽ प	द वी ऽऽ

×	2	0	3
रें नि सं –	– – नि ध	प म – प	प नि – सं
पा ऽ ई ऽ	ऽ ऽ जी ऽ	व न ऽ प	द वी ऽ ऽ

×	2	0	3
रें नि सं –	– – – –	ध प – प	ध म प म
पा ऽ ई ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ अ	ब मो ऽ ऽ

×	2	0	3
ग – – –	– – नि –	ध म – (म)ग	ग (ग)नि॒ – –
हि ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ जी ऽ	व न ऽ प	द वी ऽ ऽ

×	2
स – स –	– –
पा ऽ ई ऽ	ऽ ऽ

अंतरा[97]

×	2	0	3
	प –	प – प निऽ	– सं – नि
	ची ऽ	ति ऽ आ इउ	ऽ म ऽ ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				2				0				3			
सं	—	—	—	—	—	सं	सं	सं	सं	—	नि	—	सं	—	—
नि	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	पु	र	खु	बि	ऽ	धा	ऽ	ता	ऽ	ऽ
×				2				0				3			
रें	नि	—	—	—	—	सं	नि	ध	प	म	प	—	नि	—	सं
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	सं	ऽ	त	न	ऽ	की	ऽ	स	ऽ	र
×				2				0				3			
रें	नि	सं	—	—	—	नि	—	ध	प	म	प	—	नि	—	सं
णा	ऽ	ई	ऽ	ऽ	ऽ	सं	ऽ	त	न	की	ऽ	ऽ	स	ऽ	र
×				2				0				3			
रें	नि	सं	—	—	—	नि	—	ध	प	—	प	ध	—		
णा	ऽ	ई	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	अ	ब	ऽ		
×				2				0				3			

अंतरा दूजा

×				2				0				3			
						स	स	स	—	—	ग	ग	म	—	ग
						खु	लि	आऽ	ऽ		क	र	म	ऽ	ऽ
×				2				0				3			
म	—	—	—	—	—	प	ध	प	म	—	ग	म	प	—	म
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	कृ	पा	भ	ई	ऽ	ठा	ऽ	कु	ऽ	ऽ
×				2				0				3			
प	—	—	—	—	—	म	म	म	ग	—	प	प	न	—	सं
र	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	की	र	त	न	ऽ	ह	रि	ह	ऽ	रि
×				2				0				3			
रें	नि	सं	—	—	—	प	प	प	—	—	नि	—	सं	—	नि
गा	ऽ	ई	ऽ	मुँ	ऽ	ऽ	ह	थाऽ	ऽ		का	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
×				2				0				3			

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सं	–	–	–	–	–	सं	सं	सं	सं	–	नि	–	सं	–	–
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	पा	ये	बि	स	ऽ	रा	ऽ	मा	ऽ	ऽ
×				2				0				3			
रें	नि	–	–	–	–	सं	नि	घ	प	म	प	प	नि	–	सं
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	मि	ट	ग	ई	ऽ	स	ग	ली	ऽ	ऽ
×				2				0				3			
रें	नि	सं	–	–	–	नि	नि	ध	प	म	प	प	नि	–	सं
धा	ऽ	ई	ऽ	ऽ	ऽ	मि	टि	ग	ई	ऽ	स	ग	ली	ऽ	ऽ
×				2				0				3			
रें	नि	सं	–	–	–	नि	–	ध	प	–	प	ध	म	प	म
धा	ऽ	ई	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	अ	ब	ऽ	मो	हि
×				2				0				3			

मारू-बिहाग का स्वरूप

"मारू बिहाग" की उक्त स्वरलिपि में निर्दिष्ट राग की अपेक्षा "मारू" राग का स्वरूप लक्षित होता है। मारू - बिहाग का मुख्य अंग सग - म, ग म प, ग म प, म ग ग रे – सा,[98] है जोकि उक्त स्वरलिपि में दिखाई नहीं देता। क्या इसका यह अर्थ लिया जाए कि रागियों में "बिहाग" को ही "मारू बिहाग" समझकर गाने की परम्परा रही है? गु. सं.[99] में "मारू" को खमाज थाट का राग तथा "मारू बिहाग" को कल्याण थाट जन्य राग माना है, परंतु उक्त स्वरलिपि में यह अंतर न रहना, ध्यातव्य है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि रागियों में जब कोई पद ग़लत ढंग से प्रचार पा जाता रहा है, उसके विशुद्ध शास्त्रीय स्वरूप की ओर, आगे जाकर, अधिक ध्यान नहीं दिया गया।

राग कानड़ा, पड़ताल, सूलताल, मध्यलय[100]

"इक घड़ी दिनसु मोकउ बहुत दिहारे।।
मनु न रहै कैसे मिलउ पिआरे।।
इकु पल दिनसु मोकउ कबहु न बिहावे।।
दरसन की मनि आस घनेरी कोई ऐसा संतु मोकउ पिरहि मिलावे।। 1।।
रहाउ।।
रैणि भई तब अंतु न जाने।। 2।।
पंच दूत मिलि पिरहु बिछोड़ी।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रमि भ्रमि रोवै हाथ पछोड़ी।। 3।।

जन नानक कउ हरि दरसु दिखाइआ।।

आतमु चीनि परम सुखु पाइआ।। 4।।"

(आसा म. 5, आ. ग्रं. पृ. 374)

स्थाई

×		0		2		3		0	
								स	स
								इ	क
सं	सं	नि	प	म	प	मग	गऽ	रेस	रे
घ	ड़ी	ऽ	दि	न	सु	मोऽ	कउ	ऽऽ	ऽ
×		0		2		3		0	
मग	—	रे	स	रे	—	स	—	—	—
बहु	ऽ	त	दि	हा	ऽ	रे	ऽ	ऽ	ऽ
×		0		2		3		0	
रे	रे	म	म	म	प	प	प	—	—
म	नु	न	र	हैं	ऽ	कै	से	ऽ	ऽ
×		0		2		3		0	
रें	रें-	—	रें	संनि	सं	नि	—	म	प
मि	लउ	ऽ	पि	आऽ	ऽ	रे	ऽ	इ	क
×		0		2		3		0	

अंतराः चार ताल विलंबित

×		0		2		0		3		4	
म	म	—	प	नि	नि	सं	स	सं	सं	—	संऽ
इ	क	ऽ	प	ऽ	ल	दि	न	स	मो	ऽ	कउ
×		0		2		0		3		4	
नि	नि	प	नि	सं	रें	संनि	सं	—	नि	प	—
कब	हू	ऽ	न	ऽ	बि	हाऽ	ऽ	ऽ	वै	ऽ	ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×	0	2	0	3	4
म प	— नि	— सां	— —	— —	नि प
द . र	ऽ स	ऽ न	की ऽ	ऽ म	ऽ नि
×	0	2	0	3	4
ग —	म प	— —	ग॒ ग॒	रेसा रे	सा —
आ ऽ	ऽ स	ऽ घ	ने	ऽऽ री	ऽ कोई
×	0	2	0	3	4

ताल चंचल, मध्य लय

×	2	0	3
प — —	प — — —	प म —	प — प- —
औ ऽ ऽ	सा ऽ ऽ ऽ	सं त ऽ	मो ऽ कउ ऽ
×	2	0	3
सं — —	निऽ प — प	म प —	मग — म म
पि ऽ ऽ	रहि ऽ ऽ मि	ला ऽ ऽ	वैऽ ऽ को ई
×	2	0	3

गु. सं.[101] में 'कानड़ा" "राग को "काफ़ी" थाट का षाड़व जाति का राग कहा है। इसमें कोमल गंधार और दोनों निषादों का व्यवहार होता है। आरोह-अवरोह दोनों में धैवत को वर्ज्य कहा गया है। दरबारी-कानड़ा "आसावरी" थाट जन्य है। इस प्रकार, "कानड़ा" और दरबारी कानड़ा" को पृथक्-पृथक् राग मान लिया गया है। गु. सं. के अनुसार "कानड़ा" का स्वरूप नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

आरोह : सा रे ग॒ म प नि सं ।

अवरोह : सं नि॒ प म प ग॒ म रे स ।

(ख) ताल-खंड

निर्गुण-संत कवियों की पदावली अधिकांशतः निबद्धगान के रूप में मिलती है, अतएव इसमें रागनाम के निर्देश के साथ ताल का निर्देश भी स्वभावतः रहता है, यद्यपि यह सत्य है कि संतों की कृतियों में राग-निर्देश की तुलना में तालोल्लेख बहुत कम मिलता है। अपने विवेच्यकाल के कवियों की कृतियों में रागनामोल्लेख विषयक अल्प विवेचन हम पीछे कर चुके हैं, यहाँ तालनामोल्लेख पर विचार किया जाएगा।

संतों की रचनाओं में कुल 28 तालनामों का उल्लेख मिलता है। इन ताल नामों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अकारादि क्रमानुसार सूची, तालविषयक प्रस्तुत संक्षिप्त विवेचन के पश्चात् इसी अध्याय में संलग्न है। इस सूची को बनाने में मैंने जिन ग्रंथों का उपयोग किया है, वे हैं—रागकल्पद्रुम, आदिग्रंथ, गुरबाणी-संगीत तथा हिंदी-ग्रंथ, संत-सुधा-सार।

रागकल्पद्रुम, निबद्ध-गान का संग्रह ग्रंथ है। ग्रंथकार ने गायकवर्ग में प्रचलित शास्त्रीय, सुगम शास्त्रीय एवं लोकसंगीत सभी स्वरों की सामग्री संकलन हेतु, उत्तरप्रदेश राजस्थान, पंजाब तथा बंगाल आदि प्रदेशों में 32 वर्ष भ्रमण किया, अतः भारतीय गेय साहित्य के इस विश्वकोष ग्रंथराज में ध्रुपद, धमार आदि से लेकर कवित्त-सवैया दोहा, चौपाई आदि पद्यगान अथवा छंदोगान तक के सभी स्तरीय कोटि के पदों को स्थान मिला है। हमारे विवेच्य कवियों में से ग्रंथ में संत नामदेव, कबीर तथा सुंदरदास के अन्य फुटकर पदों के अतिरिक्त, कबीर का पूरा "कबीरबीजक" तथा सुंदरदास का पूरा "सुंदरविलास" "ज्ञानतत्त्वसागर" शीर्षक से रागताल में निबद्ध है। गायक वर्ग में से प्रस्तुत होने के कारण 'रागकल्पद्रुम' में हमारे विवेच्य कवियों की संगृहीत कृतियों में, रागनाम की भाँति, तालनाम भी पर्याप्त संख्या में मिलते हैं।

आदिग्रंथ में संगृहीत गुरु एवं भक्त कवियों के पदों में राग-ताल का उल्लेख ग्रंथ के संपादन-काल सन् 1604 ई. से लेकर अद्यावधि, प्रायः अपरिवर्तनीय रूप में उपलब्ध है और ग्रंथ में संगृहीत बानी के राग-ताल-विषयक-उल्लेख का आधार "रागियों" में प्रचलित तत्कालीन गेय-परंपरा है, ऐसा माना जाता है; किंतु इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि आदिग्रंथ में ताल के नाम से केवल "पट-ताल" का ही उल्लेख मिलता है। ग्रंथ में रागों के साथ-अंकसंख्या 17 तक प्राप्त 'घरों' के उल्लेख को कई विद्वानों ने ताल माना है, किंतु "घरों" को ताल मानना असंभव है। इस संबंध में हम इसी अध्याय के "क" भाग में विचार कर चुके हैं।

यद्यपि 'आदिग्रंथ' में ताल के नाम से केवल "पटताल" का ही उल्लेख मिलता है, किंतु "गुरबाणी संगीत" में हमारे विवेच्य कवियों की बानी के अंतर्गत 20 तालनाम मिलते हैं। ग्रंथकार ने आदिग्रंथ की बानी को रागियों में गुरु-कवियों के समय से गाने की जो मौखिक परम्परा अद्यतन चली आ रही है, तदनुसार राग-तालबद्ध रूप में स्वरलिपि सहित प्रस्तुत किया है।[1], अतः अद्यावधि इस कोटि के अन्य सत्प्रयत्नों के अभाव में ग्रंथकार के राग, ताल-संबंधी उल्लेख को प्रामाणिक मान कर, हमने प्रस्तुत अध्याय में, निर्गुण-कवियों की कृतियों में तालनाम-विषयक अध्ययन-हेतु, उक्त ग्रंथ का उपयोग किया है।

संत-सुधा-सार में नामदेव, कबीर, गुरु नानक, गुरु अर्जुन तथा दादूदयाल के पदों में कोई तालनाम नहीं मिलता, किंतु सुंदरदास की कृतियों में एक स्थान पर "रूपक" ताल का निर्देश मिलता है। सुंदरग्रंथावली द्वितीय खंड में, पदों के ऊपर जो तालनामोल्लेख है वह संपादक के द्वारा स्वयं किया गया है, उसका विवेचन नहीं किया गया है।[2]

उपर्युक्त ग्रंथचतुष्ट्य में निर्गुणोपासक-कवियों की पदावली में प्राप्त ताल-नामों के अध्ययन से निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं।

आज शास्त्रीय-संगीत में प्रचलित प्रमुख शैलियों ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी, होरी-गायन आदि में प्रयुक्त होने वाले प्रायः सभी ताल, संलग्न तालिका में मिल जाते हैं, यथा ध्रुपद शैली के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताल, चारताल, सूलफाक, झपताल आदि। ख्यालशैली के ताल, तिताला, तिलवाड़ा, एकताल अथवा यक्काताल, दादरा, झपताल, आड़ा-चौताल, झूमरा आदि। ठुमरी अंक के ताल यत्, तिताल, रूपक, दादरा तथा पंजाबी ठेका, तीन ताल आदि। होरीशैली के ताल; धमार, चाचरी आदि। किंतु ख्याल-शैली में आज के बहुप्रचलित "झूमरा" ताल तथा "होरी" शैली में प्रचलित "दीपचंदी" ताल का संलग्न तालिका में उल्लेख नहीं मिलता।

संतों की पदावली में कुछ तालनाम ऐसे मिलते हैं, जो रागों के वाचक हैं, जैसे "जयतश्री" तथा खटताल।

"जयतश्री" राग का नाम है, किंतु "श्री" ताल का नाम आज कभी-कभी सुनने में आता है, संभवतः कुछ इसी प्रकार 'जयतश्री' नाम का भी ताल रहा हो।[3] वैसे "जैश्री" नाम का एक 8 मात्रा का ताल भी मिलता है।[4]

इसी प्रकार "खट" एक रागनाम है, किंतु "गुरमत संगीत में खटताल' स्पष्टतः तालनाम के रूप में प्रयुक्त हुआ है, यथा "राग मियाँ की टोड़ी, खटताल, मध्यलय।[5] प्राचीन तालनामों में एक तालनाम है "षट्पितापुत्रक"[6]; जिसमें "षट्" पद मिलता है। गुरमतसंगीत में खट्ताल 18 मात्राओं का ताल दिखाया गया है[7] जबकि "तालप्रकाश" में "षट्ताल" शब्द का उल्लेख है और वह 12 मात्राओं का ताल कहा गया है।[8]

वैसे राग, ताल और गीतशैली—इन तीनों के नामों में परस्पर विनिमय बहुत बार प्रचार में दिखलाई देता है, जैसे 'ध्रुपद' गायन की एक शैली है, किंतु प्रचार में 'चौताल' ताल को भी ध्रुपद कहा जाता है, इसी प्रकार 'धमार' एक ताल भी है, किंतु उसमें गाये जाने वाले गीत-विशेष को भी "धमार" कहने का प्रचार है। 'होरी' एक गीत प्रकार है, किंतु उसके साथ बजने वाले 'दीपचन्दी' ताल को 'होरी' ताल भी कह दिया जाता है। 'दादरा' एक ताल है, किंतु एक विशिष्ट-गीतशैली को "दादरा" कहा जाता है, जो कभी-कभी 'दादरा' से भिन्न ताल में भी पाई जाती है। उसी प्रकार 'मारू' एक राग है, किंतु राजस्थान में 'ढोलामारू' के नाम से विशेष प्रकार के गीत भी प्रचलित हैं। इस प्रकार शब्दों का अर्थविस्तार तथा अर्थपरिवर्तन भाषा-विज्ञान के अनुसार, सभी भाषाओं में हुआ करता है, अतः राग-नाम, तालनाम अथवा शैलीनाम का एक दूसरे के स्थान पर उल्लेख, आश्चर्यजनक नहीं।[9]

तालसूची में कुछ तालनाम ऐसे हैं, जिनके संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता, जैसे रागकल्पद्रुम भाग 2, पृ. 362 पर कबीर की कृतियों में "तीन सौ साठ ताल एक ताल आदि" इस प्रकार का उल्लेख मिलता है, किंतु अगले ही पृष्ठ पर चौताल का प्रयोग हुआ है[10], अतः यह भी नहीं समझा जा सकता कि "तीन सौ साठ ताल" के अंतर्गत इतनी विस्तृत गेय सामग्री है, जिसका तीन सौ साठ तालों में गायन अभिप्रेत है। तालों की तीन सौ साठ संख्या भी आश्चर्यजनक है, क्योंकि 'संगीत-रत्नाकर' में देशी तालों की संख्या 120 तथा "संगीत-राज" में 138 है।

संतों की पदावली में प्राप्त कुछ ताल आज अज्ञात न होते हुए भी नितांत अप्रचलित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो चुके हैं, जैसे

फ़रोदस्त—'गुरमत संगीत' में पृ.४१ पर संत नामदेव के एक पद में इस ताल-नाम का उल्लेख मिलता है। यह ताल 14 मात्राओं का कहा जाता है।[11] तालमार्तण्ड[12] तथा 'तालप्रकाश' में भी इस ताल को 14 मात्राओं का ताल कहा गया है।

पड़ताल—'आदिग्रंथ' में गुरुकवियों के पदों पर शीर्षक रूप में राग के नाम के साथ 'घरु' संख्या एवं "पड़ताल" शब्द का संयुक्त प्रयोग उनके स्थानों पर मिलता है।[13] कहीं कहीं राग के साथ केवल "पड़ताल" शब्द का ही व्यवहार मिलता है। अर्थात् वहाँ 'घरु' संख्या नहीं दी गई।[14] ये "पड़ताल" महला 4, 5 तथा 9 की बानी में ही मिलती हैं। "पड़तालों" का सर्वाधिक प्रयोग महला 5 की बानी में हुआ है। ग्रंथ में लगभग 15 बार "पड़तालों" का प्रयोग हुआ है। 8 बार महल्ला 5 की बानी में;, 6 बार महल्ला 4 की बानी में तथा 1 बार महल्ला 9 की बानी में। 'गुरवाणी संगीत' में कबीर के दो पद पृ. 173 पर, पृ. 96 पर, पड़ताल में स्वरलिपि, कबीर ने स्वयं भी एक पद में "पटताला" शब्द का प्रयोग किया है।[15]

"पड़ताल" का ताल से कुछ न कुछ संबंध अवश्य है, जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्टतः आभास मिलता है, किंतु विद्वानों में इस संबंध में बहुत मतभेद है।

कुछ विद्वानों की मान्यता के अनुसार पद को गाते समय एक से अधिक लय बदलना "पड़ताल" कहलाता है।[16] पद में प्रति चरण पर ताल बदल-बदल कर गाने का ढंग विशेष "प्रड़ताल" कहा जाता है।[17] ये विद्वान् "पड़ताल" का रूढ़ ताल "चारताल" को मानते हैं। भाई कान्हसिंह "पड़ताल" को चारताल का भेद मानते हैं। उनके अनुसार "पटताल" चारताल का भेद है तथा इस ताल में गाए जाने वाले पदों की "पड़ताल" संज्ञा हो गई है।[18] डॉ. सुरेन्द्रसिंह कोहली का भी इस संबंध में यही मत है।[19]

किंतु यहाँ यह प्रश्न विचाराधीन है कि यदि "पड़ताल" से केवल "चारताल" का अभिप्रेत अर्थ लें तो इन पड़तालों के साथ "घरों" की भिन्न-भिन्न अंक संख्याओं का क्या अर्थ होगा? इन विभिन्न "घरु संख्याओं" का पड़ताल से क्या संबंध जुड़ेगा? इसके अतिरिक्त, ग्रंथ में उपलब्ध पड़तालों से, किसी एक भी पड़ताल के साथ घरु सं. 4 का निर्देश नहीं मिलता, ऐसी स्थिति में पड़ताल का घरु संख्या 4 से संबंध कैसे जोड़ा गया है, कुछ समझ में नहीं आता।

"घरु" का अर्थ ताल मानने वाले एक विद्वान् के मतानुसार 'पड़ताल' का अर्थ, एक से अधिक तालों का प्रयोग है तथा उसके साथ संबद्ध घरु संख्या का निर्देश यह है कि सर्वप्रथम घरु संख्यावाली ताल का प्रयोग किया जाए, उसके पश्चात् किन्हीं भी अन्य तालों का व्यवहार किया जा सकता है।[20]

यहाँ भी एक कठिनाई यह है कि यदि "घरु" का अर्थ ताल लें तो आदिग्रंथ में प्रयुक्त 17 घरों को किस-किस तालनाम का प्रतीक मानें, इस संबंध में सभी रागी एवं विद्वजन मौन हैं।

श्री चन्द्र शेखर पंत (संगीत विभाग में रीडर, दि.वि.वि.) के मत में "पड़ताल" शब्द आदिग्रंथ के रागबद्ध पदों से संबंधित है, जैसे "कान्हड़े की पड़ताल"। पड़ताल को वे विशेष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग का विशेष भेद मानते हैं और उनके अनुसार जिस राग की भी पड़ताल हो, वह उस राग के किसी शास्त्रीय प्रकार के निकट होगा।[21] किंतु पड़ताल के साथ "घरु" का क्या संबंध होगा, उक्त मत में यह स्पष्ट नहीं हो पाता।

वस्तुतः "पड़ताल" का अर्थ एक से अधिक तालों का प्रयोग ही ठीक जँचता है। "गुरबानी-संगीत" पुस्तक में सरदार ज्ञानसिंह ने गुरुद्वारों में आदिग्रंथ की बानी को रागी लोग परम्परा से, जिस ढंग से गाते चले आ रहे हैं, उसे स्वर-तालबद्ध कर प्रस्तुत किया है। वहां भी ''पड़ताल वाले पदों में विभिन्न दो-तीन तालों का प्रयोग मिलता है' अतः ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त तथ्य को परम्परा का समर्थन भी प्राप्त है।

इसके अतिरिक्त प्राचीन शास्त्रों में '' आलिक्रम प्रबन्ध के 30 भेदों में ''पंचतालेश्वर प्रबन्ध '' का नाम मिलता है[22]। ''पड़ताल '' भी कुछ इसी सादृश्य का तालविधान प्रतीत होता है। ऐसा माना जा सकता है कि पहले ''पड़ताल'' वाले पद पाँचतालों में पाये जाते रहे हों। धीरे -धीरे पाँच तालों के प्रयोग की परम्परा का लोप हो गया हो, और ''पड़ताल '' में एक से अधिक दो अथवा तीन तालों का प्रयोग ही वांछित मान लिया गया होगा।

यह भी संभव है कि ''पटताल" अथवा ''पड़ताल '' का ही विकार होते-होते ''पड़ताल शब्द बन गया हो। गायकों में पाँच रागों का एक मिश्र प्रबन्ध '' पटमंजरी '' अथवा '' पंचमंजरी'' नाम से गाने का चलन मिलता हैं। इसका प्रचलन पहले ही नहीं आज भी मिलता है। मुख्यतः राग काफी और 'सारंग' दो अंगों की पटमंजरियाँ प्रसिद्ध हैं। यथा काफ़ी अंग की ''पटमंजरी'' में कांफ़ी, बागेश्री, सारंग, बरवा और भीमपलासी इन 5 रागों का सूक्ष्म मिश्रण मिलता है।

''पड़ताल'' को भी हम कुछ इसी प्रकार का तालविधान मान सकते हैं।

''पड़ताल'' का ठेका ''गुरमत संगीत'' पुस्तक में मिलता है[23] जिसमें सोलह मात्राएँ हैं। ठेका निम्नलिखित ढंग से दिया है,

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
धा	त्रिकड	धी	धी	धाधा	ति	टा	ति	ना	धी	धी	धा	धग	नता	त्रिकड

'' भारतीय तालमंजरी'' में पृ 4 पर इस ताल का उल्लेख मिलता है। "रागकल्पद्रुम" में पटतार , पटताल, पठताल और परताल का उल्लेख मिलता है , जोकि एक ही ताल के भिन्न भिन्न नाम होंगे। पटताल का लक्षण ''भारतीय तालमंजरी'' पृ 4 पर मिलता है। (पृ 68 थीसिस चितरंजन ज्योतिषी)

''ताल प्रकाश '' में एक '' पट'' नाम से ताल पृ ६६ पर मिलती है, जोकि 2 मात्राओं की ताल कही गई है।

ढाईताल

गुरमत संगीत में संत कवियों के पदों पर अनेक स्थानों पर ''ढाईताल '' का उल्लेख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आया है। यह "रूपक" ताल की भाँति 7 मात्राओं का ताल है, जिसका ठेका रूपक ताल से भिन्न है।[24] इस ताल का गुरमत संगीत में इतना अधिक प्रयोग देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि गुरुद्वारों में उक्त ताल का बहुत अधिक प्रचार रहा है।

मत्तताल

इस ताल का भी गुरमत संगीत में उल्लेख मिलता है,[25] यह ६ (9) मात्रा का ताल है।[26] इस ताल का एक अन्य प्रकार 18 मात्रा का भी कहा जाता है।[27]

चंचल

गुरमत संगीत के अनुसार संतों के पदों में "चंचल" ताल का निर्देश अनेक स्थानों पर मिलता है। यह ताल 'धमार' ताल की भांति 14 मात्राओं का ताल है किंतु ठेका उससे भिन्न है।[28] शास्त्रीय संगीत में आज इसका प्रचलन नहीं है।

इंद्रताल

इंद्रताल भी आज अत्यंत अप्रचलित है। यह १६(19) मात्राओं का एक ताल है।[29] इसका प्रयोग गुरमत संगीत में म. 5 के एक पद, पृ. 215 में मिलता है, किंतु "तालप्रकाश" में यह 15 मात्राओं का ताल दिखाया गया है।[30]

यत् ताल

यद्यपि आज अधिक प्रचलित नहीं, किन्तु आज भी ठुमरी अंग में इसका प्रचलन देखा जाता है। इसमें आठ मात्राएं होती हैं और ताली लगाने एवं खाली का हिसाब तीनताल की ही भांति होता है।[31] किंतु "तालमार्तण्ड" में इसे 16 मात्रा की ताल कहा गया है।[32] इसकी चाल दीपचंदी से बहुत साम्य रखती है अतः ठुमरी-गायन के अनुकूल है। इस ठेके में भजन भी गाए जाते हैं। इसका प्रचलित नाम "जत" है।

पश्तो

उक्त ताल का ' रागकल्पद्रुम ' में संतों के पदों में उल्लेख मिलता है। यह ताल , यद्यपि आज अप्रचलित कोटि में चली गयी है, किंतु इसका ठेका "ताल दीपिका" भाग 2 पृ 7 पर मिलता है। यह 7 मात्रा का ताल है[33] और अधिकतर गज़ल एवं कव्वाली अंग में इसका प्रयोग देखा जाता है। इस ठेके में कहीं-कहीं ग्रामीण लोग नृत्य भी करते हैं।

भानमती

इस ताल का उल्लेख गुरमत संगीत में "भानमती" या "चार ताल दी सवारी " नाम से मिलता है और यह 11 मात्रा का ताल है,[34] इसका प्रयोग म. 5 के "फुनहे" शीर्षक एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद में हुआ है[35] ताल प्रकाश में भी यह 11 मात्रा का ताल कहा गया है[36]।

खेमटा

इस ताल का प्रयोग 'रागकल्पद्रुम ' में वहुत मिलता है। यह ताल 6 मात्रा का है और दादरा का ही एक प्रकार है। इसका ठेका ''तालप्रकाश'' में पृ ९०(90) पर मिलता है।

चाचरी

एक ताल नाम है और गीत प्रकार के रूप में भी प्रसिद्ध है। चाचरी, चाचर अथवा दीपचंदी एक ही ताल के प्रतिनिधि नाम प्रतीत होते हैं। यह ठेका ब्रज में होरी-गायन के साथ बजाया जाता है। पूरब की ओर इस ठेके में ठुमरी भी गाई जाती है। अनेक ग्रामीण ढोल पर इसी ठेके को कई प्रकार से बजाते हैं। पहाड़ों पर वहाँ के निवासी भी इस ठेके की चाल पर सुंदर नृत्य करते हैं। इसमें 14 मात्रायें, ताली 3 तथा खाली 1, होती है[37] ठुमरी-गायन में इस ताल का प्रयोग 75 प्रतिशत होता है। आज यह "चांचर'' नाम से प्रसिद्ध है।

सवारी पंजताल

इस ताल का भी गुरमत संगीत में संगृहीत गुरु एवं भक्त कवियों के पदों में बहुत प्रयोग मिलता है। यह 15 मात्राओं का ताल है।[38] शायद आज ''पंचम सवारी'' नाम से परिचित ताल को ही "सवारी पंजताल कहा गया है। "पंचम सवारी" नामक एक 15 मात्राओं की ताल का ''ताल प्रकाश'' पृ 99 पर उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार निर्गुण कवियों के पदों में प्राप्त ताल नामों के अध्ययन से हम देखते हैं कि झूमरा आदि कुछ तालों के अतिरिक्त आज के प्रचलित ताल कहरवा से लेकर ध्रुपद, धमार तक संतकाव्य में मिलते हैं। कुछ नाम, रागों के साथ संबद्ध होने पर भी, तालनामों, के रूप में मिलते हैं। कुछ तालनामों यथा ढाई ताल आदि का उल्लेख संगीत -ग्रथों में नहीं मिलता तथा अनेक ताल अज्ञात न होने पर भी आज या तो नितान्त अप्रचलित हो गए हैं अथवा गायकों के वर्ग - (विशिष्ट गुरुद्वारों के किन्हीं विरले रागियों आदि) तक ही प्रचलित रह गये हैं। इन तालों में खटताल और इंद्रताल जैसे 18 तथा 19 मात्राओं के लम्बे तालों के प्रयोग को देखकर आश्चर्य होता है, क्योंकि आज कण्ठसंगीत के साथ इनका प्रयोग अपवादस्वरूप ही देखा जाता है।

निर्गुण संत कवियों की पदावली में प्राप्त तालनाम की सूची,

आ- आड़ा चौताल	द- दादरा
इ- इंद्रताल	ध- धमार
ए- एकताल	प- पश्तो
क- कहरवा	पटताल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ख-	खेमटा		पंजाबी ठेका तीन ताल।
	खटताल	फ-	फ़रोदस्त
च-	चारताल या चौताल	भ-	भानमती
	चंचल	म-	मत्तताल
	चाचरी	य-	यत्
ज-	जयतश्री		यक्का
झ-	झपताल	र-	रूपक
ढ-	ढाईताल	स-	सवारी पंजताल
त-	तीनताल		सूलताल
	तिलवाड़ा		
	तीन सौ साठ ताल एकताला आदि		

(ग) वाद्य-खण्ड

संतों की पदावली में प्राप्त राग, ताल का अल्प विवेचन हम इसी अध्याय के गत "क" और "ख" भागों में क्रमशः कर चुके हैं। यहां अध्याय के "ग" भाग के अन्तर्गत संतबानियों में उपलब्ध वाद्यनामों का संक्षेप में विवरणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

निर्गुण संत परम्परा में संगीत के स्थान- निर्धारण -हेतु संतकाव्य में उल्लिखित राग, ताल की भांति वाद्यनाम का भी अध्ययन एवं अन्वीक्षण उपयोगी होगा, यही इस अध्ययन विशिष्ट का लक्ष्य है।

संत वाणी में उपलब्ध वाद्यनाम पर विचार करते समय सर्वप्रथम ध्यान इस तथ्य की ओर जाता है कि वहां वाद्यों का सामान्य प्रयोग हुआ है अथवा विशिष्ट प्रयोग अर्थात् संतकाव्य में वर्तमान वाद्यनामोल्लेख का आधार अथवा लक्ष्य क्या है?

द्वितीयाध्याय में हम इस विषय पर विस्तारपूर्वक चर्चा कर चुके हैं कि किस प्रकार योगी साधक को साधनावस्था में बहुविध मधुर नाद श्रुत होते हैं। साधना में उत्तरोत्तर मानस स्थैर्य-वृद्धि के साथ-साथ साधक को प्रारंभ में सुनाई पड़ने वाले स्थूल नाद (समुद्र गर्जन, भेरीनाद आदि) क्रमशः सूक्ष्म नादों (वीणा ,वेणु , किंकिणी, भ्रमर निःस्वन आदि) में परिणत होते जाते हैं और अन्त में केवल एक (ब्रह्मप्रणव संलग्न 'ओम' नाद) ज्योति-र्मय नाद ही उसे सुनाई पड़ता है। इस प्रकार के वर्णन समस्त प्राचीन यौगिक वाङ्मय एवं संतवाणी में मिलते हैं। संतकाव्य में जिन वाद्यों का उल्लेख मिलता है, उनमें अधिकांश यौगिक परम्परा में ब्रह्मानन्द की अनुभूति की बाह्याभिव्यक्ति के प्रचलित प्रतीक -रूप वाद्य प्रतीत होते है, अथवा संतों की निजी परम्परा -विशेष (कबीरपंथ, दादूपंथ सिक्ख- संगठन आदि) में प्रचलित वाक्य हो सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि काव्योल्लिखित समस्त वाद्यों के सिद्धहस्त वादक रहे हों। इस सम्बन्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में प्रामाणिक सामग्री के अभाव में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

संतकाव्य के विशेष अध्ययन एवं परिशीलन से इस तथ्य की ओर ध्यान अवश्य आकृष्ट होता है कि संतों ने मुख्यतः दो प्रसंगों में वाद्यों का उल्लेख किया है। अनहद नाद[1] के वर्णन में (ब्रह्मानन्द की अनुभूति ही अनहद नाद है) तथा रूपक बांधने में[2]।

उक्त परिप्रेक्ष्य में संतकाव्य का अध्ययन करने पर उसमें हमें 30 वाद्यों का नामोल्लेख मिलता है, जिनकी सूची अध्ययन करने के फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्षों के संक्षिप्त प्रस्तुत आलेखन के पश्चात् सूची में सन्निविष्ट वाद्यों का अल्प परिचय भी दे दिया गया है।

वाद्य-यंत्रों की नामावली मैंने कबीर ग्रंथावली, ना. वा. आदि ग्रंथ, सं ना की हिं प. स्वा. दा. द. की बा. और सुं ग्रं (दोनो खण्ड) आदि सन्तों की प्रामाणिक कही जाने वाली पुस्तकों से संगृहीत की है और उक्त नामावली में स्थान - प्राप्त वाद्य-यन्त्रों के विवरण के लिए मैंने मुख्यतः सं. र, सं. शा., रा. का लो. सं., अ. के वा., यं. तथा फि. आ. इं. टी. का. पं. न्यू. फै. (जयपुर का विशेष ''जरनल'') आदि पुस्तकों का आधार ग्रहण किया है।

सूची में समाविष्ट वाद्यों को यदि अधुना प्रचार की दृष्टि से देखें तो लगभग सभी वाद्य आज शास्त्रीय संगीत अथवा लोक संगीत में किसी न किसी रूप में प्रचलित अवश्य हैं। यहां केवल दुड़बड़ी[3], किंगरी[4] अथवा कीगरी और राय गिरगिरी[5] आदि कुछ वाद्य विचारणीय अवश्य हैं।

'' दुड़बडी'' नामक किसी वाद्य का न संगीतशास्त्र में कोई उल्लेख मिलता है और न ही इस नाम से शास्त्रीय संगीत अथवा लोकसंगीत में कोई वाद्य प्रचलित देखा गया है, परन्तु कबीरदास के द्वारा उक्त वाद्य के एक स्थान पर किए गए प्रासंगिक प्रयोग से यह कोई अवनद्ध वाद्य प्रतीत होता है। इस वाद्य-नाम के लिए शब्द-विकार अथवा आज नामान्तर या रूपान्तर की सम्भावना की जा सकती है।

''किंगुरी'', ''कींगरी'' अथवा ''किंगरी'' शब्द से दो वाद्यों का अर्थ लिया जा सकता है। संतों ने विशेषतः कबीर, नानक आदि के काव्य में ''किंगुरी'' वाद्य का उल्लेख बहुत मिलता है। ''किन्नरी'' नामक एक वीणा का वर्णन हमारे प्राचीन शास्त्र - ग्रंथों में मिलता है।[7] आज ''किन्नरी वीणा'' का प्रचलन नहीं है। वीणा के अनेक रूपों में से केवल ''विचित्र वीणा'' का ही आज सर्वाधिक प्रचार है। ''किन्नरी'' नामक एक वाद्य का उल्लेख सूरदास ने ''धमार'' के पदों में किया है, यथा,

1. झांझ, झालरी, किन्नरी रंग भीनी ग्वालिनि।[8]

2. बाजत ताल मृदंग और किन्नर की जोरी।[9]

उक्त उद्धरणों में ''किन्नरी'' वाद्य का प्रयोग तालवाद्यों के साथ किया गया है। ''किन्नर की जोरी'' शब्द से भी यह संकेत मिलता है कि किन्नर की जोड़ी कहलाने वाला कोई (तबले की भांति दाएँ - बाएँ की दृष्टि से) तालवाद्य है। अवश्य ही यह किन्नरी वाद्य, किन्नरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीणा से कोई पृथक् वाद्य है, जोकि ब्रजप्रदेश में कर्करी, किरकिरी अथवा किंगरी नामों से प्रचलित है।[10] पक्के लोहे की छड़ को त्रिकोणात्मक मोड़कर इसे बनाया जाता है और एक लोहे के छड़ से ही इसे फिर बजाया जाता है। होली के उमंगों भरे उत्सव में जहां किन्नरी वीणा की कोमल स्वर लहरी से मनोरंजन होता है, वहां विशेषतः ब्रज में धमारों के साथ किन्नरी", "किंगरी" या "कर्करी" वाद्य की लोकप्रियता के भी वर्णन मिलते हैं।[11] संत कवि पर्यटनशील थे, संभवतः ब्रज-प्रदेश में उक्त वाद्य का प्रचार कभी व्यापक क्षेत्र तक रहा हो और कालक्रम से आज ब्रजप्रदेश में ही वह लोकवाद्य के रूप में प्रिय रह गया हो। इस प्रकार की अनेक संभावनाएँ हो सकती हैं अथवा यह भी सम्भव है कि "किंगरी" शब्द से संतों का "किन्नरी" वीणा से अभिप्राय हो।

इसी प्रकार वाद्यनाम सूची में आज नितान्त अप्रचलित "राइ गिरगिरी" नामक एक वाद्य भी सुन्दरदास द्वारा प्रयुक्त मिलता है। ब्रज में इसे "राय ग़िडग़िडी" या "गिडगिडी" कहा जाता है। यह जोड़े के रूप में दक्षिण के "करताल" वाद्य की भांति लकड़ी के बने हुए दो गोल टुकड़े हैं, और इनका आकार "टेबुल टैनिस' के बल्लों के समान होता है तथा अंदर की ओर ये कुछ दबे रहते हैं। इन्हें बाएँ हाथ की तर्जनी के ऊपर-नीचे रखकर, दाहिने हाथ की चुटकी से बजाया जाता है।[12] इस वाद्य का चित्र ब्र. भा. पत्रिका में फलक सं. 4 में देखा जा सकता है। चुन्नीलाल "शेष" के अनुसार ब्रज में इस वाद्य को "रायगिडगिडी" नाम इसलिए दिया गया है कि वहाँ करताल अथवा खड़ताल नाम से एक अन्य तालवाद्य प्रचलित है।[13] आज यह वाद्य इस नाम से ब्रजप्रदेश के अतिरिक्त कहीं और प्रचलित हो, ऐसा सुनने में नहीं आता। अतः सुन्दरदास के द्वारा इस वाद्य के उल्लेख के सम्बन्ध में भी "किन्नरी" वाद्य की भांति अनेक कल्पनाएँ की जा सकती हैं।

वाद्य सूची में "दमामा"[14] और "तबला"[15] शब्द संभवतः नगाड़े के ही पर्याय हैं, अतः इन पर पृथक् रूप से विचार नहीं किया गया।

वाद्यों की सूची में सन्निविष्ट कुछ वाद्य ऐसे हैं कि आज उनका प्रचार उन्हीं की जाति के किन्हीं अन्य वाद्यों के चलन के कारण बहुत कम रह गया है अथवा वे वाद्य आज केवल संग्रहालयों की ही शोभा बढ़ा रहे हैं, प्रचार से एकदम लुप्त हो गए हैं यथा रबाब, किन्नरी वीणा आदि वाद्य। जिस प्रकार "किन्नरी वीणा" के स्थान पर आज "विचित्र वीणा" लाकप्रिय है, उसी प्रकार "रबाब" का स्थान आज "सारंगी" ने ले लिया है। यद्यपि सारंगी भी प्राचीन वाद्य है,[16] परन्तु आज उसका प्रचार बहुत है। स्वतन्त्र वादन के अतिरिक्त, गायक के साथ "संगत" करने वाले वाद्य के रूप में वह बहुत लोकप्रिय हो गया है।

संतकाव्य में, शास्त्रीय-संगीत तथा लोक-संगीत दोनों में प्रयुक्त होने वाले लगभग सभी वाद्यों का उल्लेख मिलता है, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि निर्गुण कवि,शास्त्रीय-संगीत एवं प्रमुख लोकसंगीत दोनों से प्रभावित हुए थे। जहाँ उन्होंने वीणा, तम्बूरा, पखावज, बांसुरी, मृदंग और रबाब आदि शास्त्रीय - संगीत में व्यवहृत होने वाले वाद्यों का उल्लेख किया है, वहां चंग, उपंग, जंत्र, झांझ, डफ, ढोल, ताल, मंदला, मंजीरा आदि लोकसंगीत एवं सुगमसंगीत में प्रचलित वाद्यों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का भी उन्होंने नामोल्लेख किया है। जंत्र, मंदला आदि वाद्यों का संतों ने सर्वाधिक उल्लेख किया है। "जंत्र" नामक कोई वाद्य आज प्रचार में नहीं है और "मंदला" अथवा "मादल" नामक अवनद्ध अथवा वितत वाद्य का प्रचलन भी आज सीमित प्रदेश तक ही विद्यमान है।

संतों ने किन्हीं विशिष्ट अवसरों पर सामान्यतः बजाए जाने वाले अनेक वाद्यों का भी एक साथ नामोल्लेख किया है, यथा होली के अवसर पर ही विशेषतः बजाए जाने वाले वाद्य चंग, उपंग, राइगिरगिरी, ढोल, झांझ, डफ, ताल, मृदंग, पखावज आदि। अवसर -विशेष के साथ उपर्युक्त अनेक वाद्यों का सम्बद्ध होना भी एक वैशिष्ट्य रखता है। इन बहुविध अवनद्ध एवं घनवाद्यों का होरीगीत के साथ सम्बन्ध हमारी परिपुष्ट एवं समृद्ध लोकसंगीत-परम्परा का परिचायक है। मध्यकाल में फल्गूत्सव पर उपर्युक्त सभी वाद्यों को लोक में बजाने की परम्परा अवश्य रही होगी, तभी वे संतों के होरी-विषयक पदों में स्थान पा सके हैं। हमारा शास्त्रीय-संगीत, लोकसंगीत की पृष्ठभूमि में विकसित हुआ है, ऐसा अनेक विद्वानों का मत है। यह सत्य है कि शास्त्रीय-संगीत, लोकसंगीत से निरन्तर लाभान्वित होता रहा है और होता रहता है। इस प्रकार, आज प्रचलित अनेक वाद्यों को लोकवाद्यों के परिष्कृत एवं विकसित रूप भी कहा जा सकता है।[17]

संतों की वाद्यनाम-सूची में झांझ, झालर, मंजीरा, शंख आदि मंदिरों में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों का भी समावेश है। इन वाद्यों का मंदिरों में अद्यावधि प्रयोग होता है।

वाद्यनामावली में प्राचीनकाल में युद्ध के समय अथवा राजमहलों में बजने वाले वाद्यों नौबत, नगाड़ा, निसान, दुंदुभि, शंखादि को भी स्थान मिला है। आज के मानव के जीवन-दृष्टिकोण में नितान्त परिवर्तन आ जाने के कारण, स्थिति इतनी बदल चुकी है कि युद्धस्थली अथवा राजमहलों के लिए उक्त वाद्य "आउट ऑफ़ डेट" हो चुके हैं और आज उनकी उपयोगिता भी बहुत कम रह गई है। शंख का प्रयोग अवश्य मंदिरों, विवाहोत्सवों आदि मांगलिक अवसरों पर अद्यावधि होता आ रहा है।

इस प्रकार, संतकाव्य में उपलब्ध वाद्यनामों के अध्ययन द्वारा हम देखते हैं कि वाद्यनामसूची में आज शास्त्रीय एवं लोकसंगीत उभय-संगीत-परम्पराओं में प्रयुक्त होने वाले अनेक प्रमुख वाद्ययंत्र अनुसूचित हैं। कुछ वाद्यों का प्रचार सर्वथा लुप्त हो गया (जैसे रबाब) और अनके स्थान पर उनकी जाति के अन्य वाद्यों का प्रचार बढ़ गया है (जैसे सारंगी, वायलिन)। शहनाई आदि कुछ वाद्यों का प्रचार युद्धस्थली एवं राजमहलों के क्षेत्र से हटकर, विशुद्ध शास्त्रीय स्तर पर विकसित हो रहा है। मध्यकाल में होरी आदि लोकगीतों के साथ प्रयुक्त होने वाले कुछ वाद्यों (उपंग आदि) का अब व्यापक रूप से प्रचार नहीं मिलता। यह हमारी समृद्ध लोकगीत परम्परा का विकास नहीं, ह्रास ही कहा जाएगा।

इस प्रकार संत पदावली में यत्र-तत्र बिखरे वाद्यनामों का समग्र रूप में अध्ययन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मध्यकालीन निर्गुण संतकाव्य में, संगीत का अक्षुण्ण स्थान रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्गुण-संतकाव्य में उपलब्ध वाद्यों का संक्षिप्त विवरण

उपंग

यह वाद्य आल (एक पौधा विशेष) के तुम्बे का बनता था, अब लोहे का भी बनाया जाता है। यह केवल एक प्रकार का तारवाद्य है। इस वाद्य की बनावट इस प्रकार समझी जा सकती है। एक बड़े डालडा जैसे डिब्बे के खाली पैंदे में चमड़ा मँढ़ दिया जाता है। डिब्बे पर एक, दो-ढाई फ़ीट का बाँस लगा दिया जाता है और इस पर एक खूंटी लगा दी जाती है, जिस पर कि तार (एक) रहता है। तार का दूसरा भाग चमड़े पर रहता है। एक हाथ से खूंटी को ढीला करते या कसते रहते हैं और दूसरे हाथ से तार पर ताल के बोलों को बजाया जाता है। इससे ताल की नियमित गति का क्रम तो अखंडित रूप से चलता ही रहता है, साथ ही, तार के खिंचाव और ढिलाई द्वारा घोष में माधुर्य का प्रपाक भी होता रहता है। यह अति लोकप्रिय लोकवाद्य है। संतकवियों के काव्य में भी विशिष्ट प्रसंगों में उक्त वाद्य का उल्लेख मिलता है।[18] राजस्थान में इसे "अपंग" कहते हैं। इस पर तालवाद्यों के बोल बड़े ही सुन्दर प्रतीत होते हैं।

किंगरी अथवा कींगरी (किन्नरी वीणा अथवा किन्नरी?)

"किंगुरी", "किंगरी" अथवा "कींगुरी" शब्द का प्रयोग संतों ने सम्भवतः "किन्नरी वीणा" अथवा "किन्नरी" वाद्य के लिए किया है। "किन्नरी" के सम्बन्ध में प्रारम्भ में दिया जा चुका है, अतः यहां किन्नरी वीणा का स्वरूप दिया जा रहा है।

''किन्नरी वीणा'' कोमल स्वरवाली है। प्राचीन ग्रंथों में इसके विविध रूपों का वर्णन मिलता है। 'संगीत रत्नाकर'[19] में किन्नरी वीणा के लघु किन्नरी और वृहद् किन्नरी दो भेद मिलते हैं। लघु किन्नरी वीणा के बांस का दंड, तीन बालिश्त पांच अंगुल लम्बा और दंड की परिधि भी पांच अंगुल रहती है। इसमें पर्दे या तो गीध के पंखों के होते हैं अथवा कांसे अथवा लोहे के एक अंगुल चौड़े टुकड़े को मोम के वस्त्र में लपेट कर बनाए जाते हैं, जिनका क्रम प्रायः इस प्रकार रहता है। शुद्ध निषाद प्रथम पर्दे पर, उसके पश्चात् धैवत, पंचमादि। सप्तक के षड्ज और ऋषभ के बीच 4 अंगुल का जो स्थान रहता है, वहाँ तूंबा लगाया जाता है। इससे कुछ बड़ा अन्य तूबा तीसरे और चौथे पर्दे के बीच में तांत से बँधा रहता है। घुड़च की चौड़ाई पाँच अंगुल और लंबाई साढ़े चार अंगुल होती है और वह लकड़ी का होता है। इस पर कछुए की पीठी की आकार की दो अंगुल चौड़ी एक पटरी लगी रहती है। घुड़च के नीचे एक कील ठोंक कर उससे एक मोटा ताँत का तार बाँधा जाता है। इसमें 14 पर्दे होते हैं और यह "लघु किन्नरी" वीणा कहलाती है। "वृहत् किन्नरी" वीणा में तीन तार तथा तीन तूंबे लगे रहते हैं। संगीत पारिजात[20] के अनुसार इसमें 3 तूंबे और दो तार रहते हैं। इसमें अंकुश सदृश मेरू होता है। तंत्री का अंतर 7 अंगुल होता है, जो तिरछा होता है तथा दोनों तार एक साथ उल्टे बनाए जाते हैं।

"आइने अकबरी"[21] में लिखा है कि "किन्नर" वीणा के सदृश एक वाद्य है, किंतु इसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दण्ड अधिक लम्बा होता है और इसमें तीन तूंबे और दो तार लगे रहते हैं। संभवतः संतों का "किनरी" अथवा "कींगरी" यही वाद्य है। एक किन्नरी वीणा, कलकत्ता-संग्रहालय में रखी है, जोकि 34 अंगुल लम्बी है, तीन तूंबों वाली तथा 12 पर्दों से युक्त है। इसमें 3 तार हैं, एक तार स्वर का बोध कराने वाला व दो अन्य तार लगे हुए हैं।

इस प्रकार किन्नरी वीणा के अनेक रूप प्राप्त होते हैं, किंतु इसकी लम्बाई सामान्यतः 40 अंगुल से अधिक तथा 30 अंगुल से कम नहीं होती। तूंबे भी एक से तीन तक हो सकते हैं। इसकी पहचान बांस, तांत और पर्दों पर लगे हुए पंखों से हो जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यकाल में जंत्र, मादल आदि की भांति किन्नरी वीणा अथवा "किन्नरी" वाद्य का भी बहुत प्रचार रहा होगा, क्योंकि संतकवियों ने (विशेषतः कबीर, नानक आदि ने) उक्त वाद्य का बहुत उल्लेख किया है[22]। बाइबल में "किन्नोर"[23] नामक वाद्य का वर्णन मिलता है, संभवतः वहां भी "किन्नरी" वीणा से ही अभिप्राय है अतः यह वाद्य अति प्राचीन कहा जा सकता है।

चंग

इसे "ढप" भी कहते हैं और इसका छोटा रूप "दफड़ा" कहलाता है। चमारों के ढोली अधिकतर दफड़ा बजाते हैं। चंग राजस्थान का लोकप्रिय लोकवाद्य है। चंग सबसे अधिक होली के दिनों में सुनने को मिलता है। यह डफ और खंजरी की भांति एक ओर से चमड़े से मँढ़ा रहता है। लोक में इसे दाहिने हाथ से पकड़ कर उसी से चिमटी मारते हैं और बाएँ हाथ से बजाते हैं[24]। इस वाद्‌य पर धमार गीत एवं अन्य चलंत के गीत ही प्रायः गाये जाते हैं। संतों के होरी (आध्यात्मिक होरी) विषयक पदों में "चंग" वाद्य का उल्लेख मिलता है[25]। यह भी एक प्राचीन वाद्‌य है। लावनीबाज इसे आज भी बजाते हैं।

जंत्र

"जंत्र" शब्द सामान्यतः "यंत्र" अर्थात् "वाद्ययंत्र" का अर्थवाहक प्रतीत होता है, किन्तु "आइने अकबरी"[26] में "यंत्र" नामक तत्कालीन लोकप्रिय वाद्य का भी उल्लेख मिलता है। इस वाद्य-विशेष में गज भर लम्बी खोखली लकड़ी के दोनों सिरों पर तूंबे के दो अधकटे भाग लगाए जाते हैं। दंड पर 17 पर्दे या खूंटियां होती हैं, जिनमें 5 लोहे के तार लगाए जाते हैं। स्वरों को ऊंचा-नीचा करने के लिए उक्त पर्दों अथवा खूंटियों को सरकाया जाता है। इसका आकार-प्रकार सारंगी और किन्नरी (वीणा) के मध्य कहा जा सकता है[27]। अतः इसका एक स्वतन्त्र वाद्य के रूप में लोक में प्रचार हुआ है।

राजस्थान में इस वाद्‌य का कुछ भिन्न स्वरूप लक्षित होता है। मेवाड़ के सवाईभोज, नेगड़िया और बदनोर क्षेत्र में प्रचलित यह वाद्‌य अलग किस्म का है। इसकी शक्ल वीणा के सदृश है, परन्तु इसे गले में पहनकर खड़े-खड़े बजाया जाता है। वीणा की तरह इसमें दो तूम्बे होते हैं और इन दो तूंबों के बीच में बाँस होता है। इस बाँस पर एक जानवर की कड़ी खाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के 22 पर्दे, मोम से चिपकाए जाते हैं। ये पर्दे सितार की भाँति सरकाए नहीं जाते। इन पर्दों के ऊपर तार होते हैं, जिन्हें अंगुली और अंगूठे के आघात द्वारा बजाया जाता है। जंतर में हाथ के आघात का एक विशिष्ट ढंग है, जिसके द्वारा स्वर और ताल दोनों का प्रकाशन एक साथ होता है। राजस्थान में "बगड़ावतों" की कथा कहने वाले, इस वाद्य का विशेषतः व्यवहार करते हैं। बगड़ावतों की कथा एक लम्बे चित्रफलक पर चित्रित रहती है, जिसके समक्ष खड़े होकर, जंतर की संगत के साथ गायक कथा गाता रहता है। देवनारायण के भजनों और गीतों में भी ये लोग इस वाद्य का प्रयोग करते हैं[28]।"

लोकगीतों एवं वाद्यों की लोकप्रियता के कारण संतों ने भी प्रभावित होकर इन्हें अपनाया। अन्य वाद्यों की भांति "जंत्र" वाद्य का संतकाव्य में बहुत उल्लेख[29] भी उक्त प्रभाव के ही अन्तर्गत समझा जा सकता है। कबीर के कई पदों में तो "जंत्र" वाद्य का सांगोपांग वर्णन भी मिलता है[30]।

झालर

आरती के प्रसंग में संतों ने 'झालर'[31] नामक वाद्य का उल्लेख किया है। झालर संभवतः 'घड़ियाल' को ही कहते हैं और यह मंदिरों में पूजा के समय बजाया जाता है।

झाँझ

कांस्य का बना हुआ तश्तरी के आकार का जोड़ा, जिन्हें टकराकर बजाया जाता है, 'झाँझ' है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार शार्ङ्गदेव ने जिस कांस्य के बने तेरह अंगुल चौड़े, कमल के पत्ते के समान फैले हुये दो पट्टे वाले, जिनके बीच में अंगुल भर गहरा गड्ढा पीछे की ओर दो अंगुल चौड़ा रहता है, 'कांस्यताल' नामक वाद्य का उल्लेख किया है, वही 'झांझ' है[32]। एक अन्य विद्वान के मतानुसार, 'झांझ' एक छोटे मंजीरे की बड़ी अनुकृति है[33]। झांझ कई आकार की होती है। आठ अंगुल से लेकर सोलह अंगुल तक व्यास की झांझ देखने में आती हैं। ये मध्य में दो अंगुल गहरे होते हैं, उनके मध्य में एक सूत की डोरी रहती है, जिसमें कपड़ा बाँधकर हाथ से पकड़ने योग्य बना लिया जाता है। ताल, झाँझ और मँजीरा तीनों वाद्य आकार में एक से होते हुए भी, वादन के स्वंतत्र ढंग के कारण एक दूसरे से भिन्न हो जाते हैं। ताल के एक भाग को नीचे रखकर, दूसरे से ठीक उसके बीच प्रहार किया जाता है। मंजीरे तर्जनी और अंगूठे से पकड़कर बजाये जाते हैं और झांझ की कपड़े की मुट्ठियों को पकड़ कर आमने-सामने चोट करते हैं।[34] वादनपद्धति में भिन्नता होने के कारण, उनकी आवाज़ में भी पार्थक्य स्वभावतः हो जाता है। संतकवियों ने 'झांझ' का उल्लेख आध्यात्मिक फाग के प्रसंग में किया है।[35]

डफ

श्री कोमल कोठारी ने अपने लेख 'राजस्थानी वाद्ययंत्र' में 'डफ' को उत्तर प्रदेश में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रचलित वाद्य चंग का ही अन्य रूप कहा है[36]। फाग के दिनों में झांझ, वीणा, ताल और मृदंग के साथ 'डफ' बजाने के भी वर्णन मिलते हैं।[37] संतों ने भी होरी के प्रसंग में 'डफ' वाद्य का उल्लेख किया है। यह भी एक प्राचीन अवनद्ध वाद्य है और विशेषतः यह फल्गूत्सव पर 'धमार' गीतों के साथ बजाया जाता है, ऐसा प्रतीत होता है। धमार गीतों में प्रायः 'डफ' बजने के वर्णन मिलते हैं। राग दरबारी का एक प्रसिद्ध धमार उदाहरण के लिए प्रस्तुत है;

राग दरबारी - धमार[38]

....

स्थायी : मंदर डफ बाजन लागे री,
आयो, फागुन मास।
अन्तरा : अबीर, गुलाल, कुमकुम,
केसर छिरकत (छांडत) करत,
कौतूहल, हास।

ढोल

ढोल लोकजीवन में सर्वप्रचलित तालवाद्य है। इसका सामाजिक जीवन से गहन सम्बन्ध है। लोक में प्रत्येक मांगलिक अवसर पर ढोल, गीतों के साथ बजाया जाता है। 'ढोल' शब्द की व्युत्पत्ति फ़ारसी शब्द 'दुहुल' से हुई है, ऐसा विद्वानों का मत है[39]। ढोल का आकार बेलन की भाँति होता है तथा लकड़ी को पोला करके बनाया जाता है। यह लगभग 20 इंच लम्बा और मुख 12 इंच से 15 इंच तक होता है। दोनों मुख बकरे की खाल से मढ़े होते हैं। इस खाल को रासायनिक द्रव्यों से गम्भीर किया जाता है। सूत या सन की रस्सी में 16 या 18 कड़े रहते हैं, जिनसे इसे कसा जाता है। लोक में, शास्त्रीय-संगीत से अनभिज्ञ संगीतानुरागी सामान्य जन भी इस पर कहरवा, दादरा के अतिरिक्त रूपक, झूमरा और दीपचन्दी आदि ताल बड़ी कुशलता से बजाते देखे गए हैं। भिन्न-भिन्न अवसरों, पर्वों अथवा लोकगीत-प्रकारों के साथ, ढोलवादन पृथक् प्रकार का होता है। इस प्रकार यह विविध प्रकार से बजाया जाता है। इसकी ध्वनि दूरगामी और घोष गहरा होता है। संतों पर लोक कला का बहुत प्रभाव है, (इस विषय का विवेचन हमने यथास्थान किया है) अतः 'ढोल' वाद्य का उन्होंने भी अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है।[40]

तंबूरा

ग्राम्य जनता में यह 'निशान' 'वेणों' और 'चौतारा' (चार तारों वाला वाद्य होने के कारण) आदि नामों से भी प्रसिद्ध है। यह बनावट में सितार और तानपूरे से बिल्कुल साम्य रखता है। अन्तर यही है कि इसकी कुण्डी तुम्बे की न होकर, सारी लकड़ी की बनी होती है। इसमें 4 तार होते हैं। तानपूरे की भांति इसे बाएँ हाथ से पकड़कर, दाएं हाथ से बजाया जाता है। यह एक उंगली से बजाया जाता है। बजाने के ढंग से साथ ही ताल भी निकलती रहती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। तार पर अंगुली का संचालन तानपूरे की तरह ही किया जाता है। कुंडी पर एक घुड़च लकड़ी की बनी हुई स्थापित की जाती है और उस पर तार चढ़ाए जाते हैं। इसके साथ करताल, मंजीरे, चिमटा आदि वाद्य भी बजाए जाते हैं। निर्गुण-पद गाने वाले नाथपंथी, यथा, अघोरपंथी, कुंडापंथी, आदनाथ, बीसनामी आढा भील, बलाई, रैगर, चमार, भाँभी, चमारों के ढोली आदि, तम्बूरे के साथ ही भजन गाते हैं। राजस्थान में 'तेराताली' नामक स्थान के वासी एक हाथ से तंबूरा बजाते हैं, और दूसरे से मंजीरा या करताल बजाते हैं।

इस प्रकार तम्बूरे का प्रचार लोक-गीतों के गायकों (सामान्य जन से लेकर साधु तक) में बहुत है। सुन्दरदास की निम्न साखी में मानव-देह का लोकवाद्य तम्बूरे के साथ जोड़ा गया रूपक द्रष्टव्य हैं।

"देह तमूरा ठाट जड, जीभ तार तिहिं लाग।
सुन्दर चेतन चतुर विन, कोन बजावे राग।। 1।।
जीभ तार दोऊ बजहिं, सुंदर देषहु आइ।
एक बजावत देषिये एक न देष्या जाइ।। 2।।
सुन्दर जैसें पुरुष तें अंगुरी ह्वै चेतन्य।
अंगुली जंत्र बजावई, राग अन्य ही अन्य।। 9।।
पुरुष सु तो चैतन्य है, अंगुरी अंतहकर्ण।
सुंदर बाजै जंत्र तनु, शब्द कहै बहु वर्ण[41] ।। 10।।

ताल

संगीत रत्नाकर में भी 'ताल' वाद्य का लक्षण दिया गया है।[42] अतः यह प्राचीन वाद्य है। ताल वाद्य छः अंगुल व्यास के गोल कांसे के बने हुए, बीच में से दो अंगुल गहरे होते हैं। मध्य में छेद होता है, जिसमें एक डोरी द्वारा वे जुड़े रहते हैं। 'संगीत दामोदर' में 'ताल' को 'करताल' मान कर लिखा है कि यह शुद्ध कांसे का बना हुआ, तेरह अंगुल परिधि वाला, बीच में डोरी लगी रहती है। इसे दोनों हाथों से बजाया जाता है। निर्गुण संतों के काव्य में 'ताल' वाद्य का अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है।[43] 'होली' के उत्सव पर भी 'ताल' का प्रयोग अवश्य होता है।[44]

तूर या तूर्य

निर्गुण-संतों ने 'तूर' नामक एक वाद्य का उल्लेख किया है।[45] "वृहत् हिन्दी कोष" में इसे एक प्रकार का सुषिर वादय कहा है।[46] दक्षिण भारत के देवालयों में इसका प्रचुर उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त यह उत्सव, विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर भी बजाया जाता है।[47] के. वी. शास्त्री के मतानुसार 'इसका आकार लम्बे धतूरे जैसा होता है और लम्बाई डेढ़ हाथ होती है। इसमें सप्त स्वरों के रंध्र 1/4 अंगुल व्यास के बनाए जाते हैं। वायु -संचरण-हेतु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सातों रंध्रों के नीचे कुछ अंतर पर आठवाँ रंध्र रहता है। सातवें रंध्र के नीचे दोनों ओर दो रंध्र रहते हैं और आठवें रंध्र के नीचे इसी प्रकार के और दो रंध्र दोनों ओर रहते हैं। वाद्य को बजाने के लिए फूँकने का एक उपकरण है, जो 'शीवाली' नाम से प्रचलित है। यह शीवाली खोलने एवं बंद करने योग्य बनावट में एक नाल सदृश है। उसका प्रांतभाग वादय के मुंह में संलग्न किया जाता है और एक शलाका के समान है, जिसे वाद्य के मुँह में लगाकर बजाया जाता है।"[48]

दुंदुभि

अवनद्ध वाद्यों में 'दुन्दुभि' अति प्राचीन वाद्य है। प्राचीन शास्त्रों में वीणा की ही भांति इस वाद्य का भी बहुत उल्लेख मिलता है।[49]

जिस प्रकार तबले में दायाँ और बायाँ दो नग होते हैं, उसी प्रकार दुंदुभि में भी एक बड़ा नगाड़ा और एक छोटा नगाड़ा, यों दो नग होते हैं। बड़े नगाड़े की आवाज़ गंभीर होती है, जवकि छोटे नगाड़े की आवाज़ हल्की होती है, इस प्रकार यह दो कोटियों के स्वरों वाला दो नग का वाद्य 'दुन्दुभि' के नाम से प्रसिद्धं है।[50] यह चमड़े से मढ़ा एवं चमड़े की डोरियों से कसा रहता है। दुंदुभि को लकड़ी की दो शंकु आकार की गोल लकड़ियों से बजाया जाता है। दुंदुभि मांगलिक अवसरों, देवमंदिरों, विवाहादि में बजाई जाती है। संतों ने भी आमोद-प्रमोदादि उक्त प्रसंगों में इस वाद्य का उल्लेख[51] किया है। दुंदुभि वास्तव में नगाड़े का ही पर्याय शब्द प्रतीत होता है; और इस वाद्य को किन्हीं विशेष पर्वों, उत्सवों अथवा युद्धकाल में ही विशेषतः बजाया जाता रहा है, ऐसा प्रतीत होता है।

नौबत*

यह भैंसे की खाल से बनाई जाती है। यह लगभग 4 फीट ऊँची और लगभग 6 बालिश्त इसकी लम्बाई या चौड़ाई होती है। बबूल या शीशम की चोब (डंकों) से यह बजाई जाती है। बजाने वाले के दोनों हाथों में यह चोब रहती है। अच्छी नौवत की आवाज़ 3-4 मील की दूरी तक गूँज जाती है। प्राचीन काल में यह वाद्य युद्ध के समय में बजाया जाता था। इसे गाड़ी अथवा हाथी पर रख दिया जाता था और युद्ध में यह सबसे आगे रहती थी। इस पर 8 मात्रा के ताल भी बजाए जाते हैं। इसकी आवाज़ बड़ी गंभीर रहती है। इसकी खाल के भीतर राठ, हल्दी और तेल पकाकर लगाए जाते हैं। आज भी बड़े मंदिरों में इसका उपयोग होता है। राजा, महाराजाओं के महलों में इसे प्रायः प्रातः मध्याह्न और सायं हर समय बजाया जाता था। इसी को लक्ष्य करके कबीर ने कहा है :—

"जिनके नौबति, बाजती, मैंगल बँधते बारि।
एकै हरि के नांव बिन, गए जन्म सब हारि।"[52]

नौबत भी अति प्राचीन वाद्य है और संतकवियों के पदसंग्रहों में इसका प्रचुर उल्लेख मिलता है।[53]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निसान*

यह युद्ध के अवसर पर बजने वाला एक विशेष वाद्य है। संगीत-रत्नाकर[54] के अनुसार निसान कांसे, तांबे अथवा लोहे से बनता है, जो क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम, माना आता है। इसका मुख बड़ा तथा पैंदा छोटा होता है। इसके पेंदे में कांसा भरा होता है और मुख भैंस के चमड़े से मढ़ा होता है। यह एक चमड़े के द्वारा जिसमें कड़े पड़े होते हैं, कसा जाता है। इन कड़ों को ज़ोर से खींचकर, इसे बजाया जाता है। 'निसान' की आवाज गहिर गंभीर होती है, अतः कायरों को त्रस्त करने एवं वीरों को उत्साहित करने की इसमें अद्‌भुत शक्ति होती है। संतों ने भी 'निसान' शब्द का युद्ध के अवसर पर बजने वाले वाद्य-विशेष के अर्थ में ही प्रयोग किया है।[55]

नगाड़ा*

नौबत, नगाड़ा और नगाड़ी तीनों की बनावट एक-सी है, केवल आकार में छोटे-बड़े के भेद से इनके भिन्न-भिन्न नाम हैं। शहनाई के साथ यह प्रायः बजाया जाता है। ढोली लोग नगाड़ा बजाने एवं उसमें सिद्धहस्तता के कारण 'नगारची' कहे जाते हैं। शेखावाटी में राणा और मिरासी लोग अभी भी इसे बजाते हैं। मेवाड़ में नाथद्वारे का नगाड़ा प्रसिद्ध है। शहनाई के साथ दो नगाड़े बजाये जाते हैं, एक बड़ा और एक छोटा। बड़ा नगाड़ा 'नर' कहा जाता है और छोटा 'मादा' कहलाता है। इन दोनों को लकड़ियों से बजाया जाता है। नगाड़े पर बजाये जाने वाले तालों का शास्त्र के आधार पर प्रदर्शन होता है, ऐसा निश्चयात्मक रूप से तो नहीं कहा जा सकता, इतना अवश्य देखा जाता है कि नगाड़े से बजने वाले ताल-विशिष्ट लयात्मकता में निबद्ध रहते हैं।

नगाड़ा एक अति प्राचीन वाद्य है और युद्ध, विवाह, रामलीलादि में इसका उपयोग भी होता था। संतकाव्य में भी युद्धादि प्रसंगों में इसका नामोल्लेख मिलता है।[56]

पूंगी*

यह छोटी लौकी अथवा तुम्बे की बनी होती है। इसकी तुम्बी एक अलग प्रकार की होती है। इसका पतला भाग अथवा मुँह लगभग डेढ़ बालिश्त लम्बा होता है और तुम्बी के नीचे का भाग वर्तुलाकार होता है। उसके निचले भाग में थोड़ा-सा छेद कर दिया जाता है, फिर दो पतले बाँस की दो पोरी अर्थात् दो मूंगलियाँ ली जाती हैं। उन मूंगलियों में से एक के तीन छेद बना देते हैं और एक के नौ छेद किये जाते हैं, फिर उन दोनों को एक दूसरे के साथ मोम से चिपका दिया जाता है। नल बांस से दो पात बनाये जाते हैं। वे दोनों पात उन मूंगलियों के मुँह में बिठा दिये जाते हैं। उनसे स्वरोत्पत्ति होती है, फिर उन दोनों जुड़ी हुई मूंगलियों को नल बांस सहित उस तुम्बी के छेद में मोम की सहायता से जमा दिया जाता है। शहनाई की भांति पूंगी भी नकसासी (अर्थात् बजाते समय मुँह में निरन्तरं सांस रहे) होती है। इसमें एक स्वर अचल 'सा' की तरह बजता रहता है। मुँह में बहुत ज़ोर से फूँक होने पर ही पूंगी बजाई जा सकती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस वाद्य को अधिकतर कालबेलिये, जोगी अथवा सांप पकड़ने वाली जातियाँ ही बजाती हैं। इसमें सर्प को मोहित करने की अद्भुत शक्ति होती है। नाग इसे सुनते ही गुह्या स्थान से बाहर निकल आता है और सपेरे के वश में हो जाता है। संतकाव्य में भी "पूंगी" वाद्य का उल्लेख मिलता है।[57]

पखावज

पखावज की आकृति मृदंग के ही सदृश होती है, किंतु आकार में यह मृदंग से कुछ बड़ा होता है। आकार संबंधी अंतर के अतिरिक्त, दोनों में एक अन्य अंतर यह है कि पखावज के दोनों मुँह एक समान होते हैं, जबकि मृदंग का मुँह संकरा तथा दूसरा चौड़ा होता है। "पखावज" की अपेक्षा "मृदंग" शायद अधिक प्राचीन है। "पखावज" शब्द का उल्लेख प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में नहीं मिलता। वासुदेवशरण अग्रवाल[58] के अनुसार यह शब्द हिंदी में 14वीं शताब्दी में आया है। संगीतरत्नाकर एवं नाट्यशास्त्र में इस शब्द का उल्लेख नहीं मिलता।

संतों ने "पखावज" वाद्य का प्रचुर प्रयोग किया है[59]। इस का अर्थ यह हुआ कि 14वीं या 15वीं शताब्दी तक यह शब्द हिंदी में प्रयुक्त होने लगा था। पखावज का प्रयोग ध्रुपद -गायकी के साथ बड़े-बड़े संगीतज्ञ आज भी करते देखे जाते हैं, किंतु तबले के अधिक चलन एवं लोकप्रियता के कारण, पखावज का उपयोग आज बहुत कम हो गया है।

बीन

संभवतः मध्यकाल में लोक-भाषाओं में "वीणा" के लिए "बीन" शब्द का प्रयोग होने लगा था।[60] वीणावादक के लिए "बीनकार" शब्द चलन में आ गया था।[61] तानसेन के शिष्य बीनकार और रबाबिये, इन दो वर्गों में विभक्त थे।[62] आज भी वीणावादक के लिए "बीनकार" शब्द का प्रयोग होता है। संतों ने भी "वीणा" के स्थान पर "बीन" शब्द का प्रयोग किया है।[63] इससे यह पुष्टि हो जाती है कि मध्यकाल में "बीन" शब्द "वीणा" का स्थानापन्न अथवा पर्याय बन चुका था।

लोक में सपेरों की "महुवर" को भी "बीन" कहने का प्रचार है और लोकगीतों में भी इस अर्थ में "बीन" शब्द का प्रयोग मिलता है।[64]

वीणा अति प्राचीन वाद्ययंत्र है और इसे भारतीय संगीत का शिरोमणि-वाद्य कहा जा सकता है। आज उत्तर भारत की अपेक्षा, दक्षिण भारत में इस वाद्य का अधिक प्रचार है। वीणा का बनावट-संबंधी विवरण आगे "वीणा" शीर्षक के अंतर्गत दिया गया है।

वेणु, वंशी या बांसुरी

सामान्यतः यह पके हुए बांस की पोर से बनाई जाती है। वैसें पीतल अथवा अन्य धातु की भी बनती है, परंतु बाँस या पीतल की अच्छी समझी जाती है। इसकी लंबाई 10 अंगुल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से लेकर एक हाथ तक रहती है। इसमें चार स्वरों से लेकर 7-8 छेद तक होते हैं किंतु प्रायः 6, 7, 8, छेदों की संख्या सही रहती है। 7 और 8 छेद वाली बांसुरी में एक छेद पीछे की ओर रहता है। बांस की पोर के दूसरी ओर दो अंगुली स्थान छोड़कर एक और छेद होता है, मुख द्वारा वायु फूँकने से इस छेद द्वारा स्वरोत्पत्ति होती है। बांसुरी में किसी भी स्वर को "सा" मानकर बजाया जा सकता है। यह वाद्य अत्यंत सस्ता और हरमन-प्रिय है। शास्त्रीय संगीत एवं लोकसंगीत, दोनों में इसका प्रचलन और लोकप्रियता "हारमोनियम" की भांति है। माधुर्य की दृष्टि से यह उत्कृष्ट वाद्य कहा जाता है। कृष्ण की बांसुरी से त्रिलोक स्थावर-जंगम मनुष्य से लेकर पशु-पक्षी तक अर्थात् प्राणिजत्त्त एवं समस्त प्रकृति की मुग्धता की प्राचीन कथाएँ इस वाद्य की अनन्य प्रभविष्णुता का प्रमाण हैं।

बांसुरी के अन्य नाम मुरली, वेणु, वंशी आदि हैं, जोकि उसकी पृथक् लंबाई के अनुपात से विभिन्न नामवाची हैं। इनमें कितनी लंबाई की बांसुरी का क्या नाम है, यह अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है। संगीतरत्नावली[65] में चार स्वरों वाली बांसुरी को "मुरली" कहा गया है।

निर्गुण भक्ति में बांसुरी का विशिष्ट स्थान है। (जिस पर द्वितीयाध्याय में प्रकाश डाला गया है) अतः उसका स्वरमाधुर्य की दृष्टि से संतों ने तन्मयता से वर्णन किया है।[66]

भेरी

"भेरी" धातुनिर्मित मृदंग जाति का वाद्य है जोकि तीन हाथ लंबी, और दो मुख वाली होती है। इसका मुख एक हाथ लंबे व्यास का होता है। ये मुख चमड़े से मढ़े होते हैं और डोरियाँ से कसे रहते हैं, जिनमें कांसे के कड़े पड़े रहतें हैं। संगीत रत्नाकार के अनुसार भेरी तांबे की बनी, तीन बालिश्त लंबी होती है। इसे दाहिनी ओर लकड़ी से व बाँए मुख को हाथ से बजाते हैं।[67] ,इसके वादन का इसकी जाति के अन्य वाद्यों से पृथक् ढंग रहता है। अहोबल के अनुसार, यह वाद्य, मित्रों को आनंद देने वाला तथा शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण करने की क्षमता रखता है। मित्रों के प्रकरण में जब इसे बजाया जाता है तो यह आनंदभेरी कहलाता है और प्रेमादि प्रसंगों में "मदनभेरी" कहा जाता है।[68] जब युद्ध के प्रकरण में बजाया जाता है तो इसे "भेरी" अथवा "रणभेरी" कहने की प्रथा है। संतों ने "भेरी"[69] एवं "मदनभेरी"[70] दोनों के उद्धरण दिये हैं।

मंदला (मादल?)

संतकवियों ने "मंदला" का वाद्य रूप में प्रयोग संभवतः "मादल" नामक वाद्य के लिए ही किया है। मादल मिट्टी की बनी होती है और बनावट की दृष्टि से यह बिल्कुल पखावज की तरह प्रतीत होती है। राजस्थान में मादल, मेवाड के मोलेला गांव में बनता है और वहाँ के मादल बहुत प्रसिद्ध हैं। इसकी मृदंग से बहुत समानता है। कुछ लोगों का ऐसा भी मत है कि मृदंग इसी का परिष्कृत एवं विकसित रूप है। मादल का भी एक मुँह छोटा होता है और एक बड़ा। छोटा मुँह 10-12 अंगुल चौड़ा होता है और यह "नारी" कहलाता है। बड़ा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुँह 16 अंगुल तक चौड़ा रहता है और यह "नर" कहलाता है। ऊपर की खाल को गोलाकार कर लिया जाता है। गायन से पूर्व इस पर पखावज की तरह आटा लगाया जाता है। "नर" की ओर आटा अधिक चिपकाने से और "नारी" की ओर कम लगाने से बड़ी मधुर आवाज निकलती है। यह एक प्राचीन लोकवाद्य है। विशेषतः गौरीनृत्य में यह बजाया जाता है और भील लोग इसे बजाते हैं। राजस्थान में पेशेवर जातियों में डांगियों के भाट इसे बजाते हैं। भीलों के विवाहोत्सवों में एवं देवी-देवताओं के मंदिरों में इसे बजाया जाता है। इसके साथ थाली भी बजाई जाती है। मादल पर कहरवा और दादरा ताल अधिक बजाये जाते हैं, वैसे लोकगीतों में चलने वाले रूपक, दीपचंदी आदि सभी ताल इस पर बड़े कौशल से बजाए जाते हैं। कबीर ने इस वाद्य का सर्वाधिक उल्लेख किया है, अतः यह भी संभव है कि मध्यकाल में अधिक लोकप्रिय रहा हो।[71]

मँजीरा

यह सामान्यतः छोटी कटोरी के आकार का एक लोकप्रिय घनवाद्य है। यह पीतल और कांसी मिश्रित धातु से बनता है। दो मंजीरों को आपस में टकरा कर बजाया जाता है। यह राजस्थान में विशेषतः निर्गुणी भजनों के साथ तंबूरे, इकतारे, ढप, ढोल आदि के साथ बजाया जाता है।[72] इसकी ध्वनि अतीव कर्णप्रिय होती है। सभी प्रकार के भजनों, कीर्तन तथा होली[73] के गीतों में यह ख़ूब बजाया जाता है। इसके वादन में सिद्धहस्त व्यक्ति चाचर, कहरवा, दादरा आदि तालों के ठेके इस पर बजाते हैं। राजस्थान में तेरह ताली वाले इसे बजाने में बहुत पटु होते हैं। लोक में भजनों के साथ मंजीरे बजाने का बहुत प्रचलन है। संतकवियों के भजनों में भी उक्त वाद्य का नामोल्लेख मिलता है।[74]

मृदंग*

यह एक प्राचीन तालवाद्य है। भरत ने भी इसका उल्लेख किया है।[75] संतों ने भी इसका उल्लेख किया है।[76] इसे "खोल" भी कहा जाता है। यह मिट्टी का बना, लगभग दो फुट लंबा, दो मुख वाला वाद्य है, किंतु आगे चलकर यह लकड़ी का भी बनने लगा। मिट्टी के मृदंग में गट्टे नहीं लगाए जाते, अतः वह एक ही स्वर में मिला रहता था, जबकि लकड़ी का मृदंग गायक के अथवा वादक के स्वरानुसार मिला लिया जाता है, यह प्रायः बींया, सयबा, सुपारी और बड़ के पेड की लकड़ी से बनाया जाता है। इसके पेट की परिधि दो फुट से अधिक होती है। इसकी पुड़ी तबले की तरह बनी रहती है। मुँह एक ओर से चौड़ा तो दूसरी ओर संकरा होता है। दोनों मुँह बकरे की खाल से मंढ़े रहते हैं तथा चमड़े के तसमों से कसे रहते हैं। एक ओर स्याही और दूसरी ओर आटा लगाया जाता है। सुमधुर ध्वनि उत्पन्न करने के लिए दाईं ओर के मुखपर मध्य में छह अंगुल स्थान के अंत पर लौह-चूर्ण लगाया जाता है तथा बाईं ओर गीला आटा लगाया जाता है। मृदंग का उपयोग दक्षिण भारत में नृत्य, कीर्तन आदि के साथ आज भी तालवाद्य के रूप में बहुत होता है, जबकि उत्तर भारत में पखावज,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तबला और ढोलक आदि का प्रयोग होता है।[77] बंगाल में गौड़िया संप्रदाय के वैष्णव-भक्त, कीर्तन के समय आज भी मृदंग का उपयोग करते हैं।

रबाब

रबाब सारंगी से मिलता-जुलता वाद्य है। यह वाद्य भी अति प्राचीन है, किंतु अहोबल[78] से पूर्व किसी शास्त्रकार ने "रबाब" शब्द का उल्लेख नहीं किया। अतः प्रकट है कि शाङ्गदेव अथवा उनके कुछ काल पश्चात् तक इस वाद्य का निर्माण नहीं हुआ था। श्री मुखर्जी[79] के अनुसार प्राचीन रूद्रवीणा का नाम ही कालांतर में रबाब हो गया। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के मतानुसार, रबाब ईरान और अरब देश में से स्पेन में प्रचलित हुआ और उसी का एक रूप "रेबेक" नाम से योरोप में प्रचलित है। हमारी सारंगी और सरोद उसी जाति के वाद्य हैं।[80] पोपले के अनुसार, उक्त सभी वाद्यों के आविष्कार का मूल आधार वीणा ही रही है।[81]

रबाब का स्वरूप यद्यपि सारंगी से बहुत साम्य रखता है, परंतु अंतर यही है कि इसका पेट सारंगी से कुछ लंबा तथा ड्यौढ़े के लगभग गहरा होता है। पेट के ऊपर का दंड सारंगी से पतला, परंतु उससे कुछ लंबा त्रिभुजाकार होता है, जो अंत में अंग्रेज़ी अक्षर "वी" की भांति मुड़ा रहता है। इसमें दो घुड़च होती हैं। एक पेट के मध्य में तथा दूसरी दंड के आरंभ में। इसमें तांत के 7 तार लगे होते हैं, जिनमें सात स्वरों की स्थापना की जाती है। इस वाद्य का प्रचार पश्चिमी पंजाब से लेकर अफगानिस्तान तक अत्यधिक है, जहाँ वह विविध रूपों में लक्षित होता है। कोई इसे जवा से बजाता है तो कोई कमान से। संतों ने भी "रबाब" का उल्लेख किया है।[82]

वीणा

वीणा का आविष्कार कब हुआ, यह अभी तक अज्ञात है, किंतु यह संभवतः सर्वाधिक प्राचीन भारतीय वाद्य है। इसे समस्त भारतीय वाद्ययंत्रों में शीर्ष स्थान प्राप्त है। स्वर-माधुर्य की दृष्टि से भी यह सर्वोत्कृष्ट वाद्य है। संगीतरत्नाकर आदि शास्त्रग्रंथों में एकतंत्री वीणा, नकुलवीणा, सप्ततंत्री, चित्रा आदि अनेक प्रकार की वीणाओं का उल्लेख मिलता है। चुन्नीलाल शेष के अनुसार "किन्नरी वीणा का आविष्कार उस काल में हुआ होगा, जब मनुष्य को धातु के प्रयोग का ज्ञान न था, क्योंकि इसमें कहीं भी धातु का प्रयोग नहीं है। बांस के दंड तथा 3 तूंबों से युक्त यह एक तांत की वीणा है। मनुष्य की आविष्कर्तृ बुद्धि तथा कलाप्रियता ने समय-समय पर इसमें अनेक परिवर्तन कर उन समस्त नव-नव नाम-रूप का निर्माण किया होगा, जिनका उल्लेख संगीत-ग्रंथों में आया है।"[83] वीणा का वर्णन, वैदिक काल से ही मिलता है। वेद, उपनिषद् आरण्यक और ब्राह्मण-ग्रंथों में उसका वर्णन बराबर मिलता है। नारद मुनि की वीणा-वादन-कुशलता प्रसिद्ध ही है।

प्राचीन काल में वीणा के कई रूप प्रचलित थे, जो पृथक्-पृथक् नामों से विख्यात थे। संगीतरत्नाकर[84] में (1) एकतंत्री, (2) नकुल, (3) त्रितंत्री, (4) चित्रा, (5) विपंची (6)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मत्तकोकिला, (7) आलापिनी, (8) किन्नरी (9) पिनाकी (10) निसंक; वीणा के ये दस प्रकार भिन्न-भिन्न नामों से मिलते हैं।

हेमचंद्र के "अभिधान चिन्तामणि"[85] में –(1) शिव की नालवी, (2) सरस्वती वीणा, (3) नारद की महती, (4) गणों की प्रभावती, (5) विश्वावसु की वृहती, (6) तुम्बरू की कलावती, (7) चंडालों की चंडालिका, इस प्रकार पृथक्-पृथक् देवताओं की पृथक्-पृथक् वीणाएं मिलती हैं।

"संगीत पारिजात"[86] में रुद्रवीणा, ब्रह्मवीणा, तुम्बक, स्वरमंडल, पिनाकी, किन्नरी, दंडी और रावणहस्त, वीणा के इन 7 नामों का उल्लेख मिलता है। आज संभवतः इन विभिन्न वीणाओं का नामान्तर-रूपान्तर हो गया है। तुम्बक वीणा ही संभवतः अधुना प्रचलित वाद्य "तानपूरा" है और रावणहस्त वीणा का संशोधित रूप "सारंगी" है।[87] "रुद्रवीणा" आज केवल "वीणा" नाम से सुपरिचित है।

इस प्रकार समय-समय पर वीणा के विभिन्न भेदों का नामान्तर और रूपांतर भले ही होता रहा है, परंतु उसका प्रचार कभी कम नहीं हुआ है। उसकी इसी निरंतर वर्धमान लोकप्रियता के कारण वैदिक काल से ही साहित्य में उसका अक्षुण्ण स्थान रहा है। निर्गुण संतकाव्य में भी इसका उल्लेख[88] साधना में उसके स्थान की दृष्टि से इसकी श्रेष्ठता तथा लोकप्रियता का प्रमाण है।

शंख

यह "शंख" नामक एक सामुद्रिक जीव का शारीरिक ढांचा है, जो समुद्र में ही निर्मित होता है। इसकी मुख्यतः दक्षिणावर्त और वामावर्त कोटिद्वय प्रसिद्ध हैं। प्रथम कोटि के शंख अत्यल्प होते हैं अतः वे अधिक मूल्यवान् होते हैं। शंख को हमारे दर्शन, साहित्य एवं समाज में बहुत महत्त्व दिया गया है। कहते हैं कि भगवान कृष्ण ने शंखासुर को मारकर उसे अपने कर-कमलों में स्थान दिया, तभी से उनके 4 आयुधों में, शंख को भी स्थान मिला। महाभारत में युद्ध के समय प्रत्येक सेनापति के पृथक्-पृथक् शंखों के बज उठने का वर्णन मिलता है और इन शंखों के अनेकविध नामों का उल्लेख भी मिलता है। मंदिरों में अथवा घर में पूजापाठ के अवसर पर शंख बजाने की हमारे यहाँ प्रथा है। संतों ने भी ऐसे प्रकरणों में शंख का नामोल्लेख किया है।[89]

स्थूल रूप से देखने पर शंख से निसृत ध्वनि एक ही प्रकार की प्रतीत होती है, किंतु अहोबल[90] ने इसकी गणना, सुषिर वाद्यों में करके कहा है कि इसका प्रयोग राग-रागिनियों के बजाने में भी वाद्य की भाँति होता था। 'संगीत पारिजात' में कहा गया है कि वाद्योपयोगी शंख का पेट 12 अंगुल चौड़ा रहता है, उसमें मुख पर छेद, बेर के बीज के आकार का होता है तथा उस पर पतली धातु का कलश लगाया जाता है। इस कलश को मुँह में रखकर शंख को वाद्य की भांति बजाया जाता है। चुन्नीलाल शेष के अनुसार "मैसूर राज्य के राजगायक ने नरेश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोस्वामी ब्रजभूपण लाल जी महाराज के सम्मुख इस वाद्य का प्रदर्शन किया था. और उससे सब रागिनियाँ निकाल कर सुनाई थीं। हमने यह शंख देखा था। उसके पेट की परिधि वही 12 अंगुल के लगभग थी। उसके मुख पर स्वर्णकलश मोम के साथ चिपकाया हुआ था। मुख और स्वर्ण-कलश के बीच मकड़ी के जाले की झिल्ली लगी हुई थी, मुख से फूँकने से इसमें से अति मधुर स्वरोत्पत्ति होती थी।[91] के. वासुदेव शास्त्री के अनुसार शंख के शब्द हुं, धुं, तो, दिगिद्, दी इत्यादि होते है।[92]

किंतु सामान्य शंख मांगलिक अवसरों पर बजाए जाते हैं। इस की आवाज अतिशय गंभीर होती है और दूरगामी भी। इसे नाथपंथी साधु भी बजाते हैं।[93] इसके साथ जेव झालर, घड़ियाल, घंटा, नौबत आदि भी बजाये जाते हैं तो भक्ति-भावना के उद्रेक हेतु वड़ा पवित्र एवं भावविभोर कर देने वाला समां बँध जाता है। लोक में किसी वृद्ध व्यक्ति की मृत्यु पर शवयात्रा में भी शंख बजाया जाता है। मंदिरों में प्रायः प्रातः—सायं आरती के समय शंख बजाया जाता है। इस प्रकार "शंख" का लोकाचार एवं भक्ति के क्षेत्र में विशेष स्थान है।

शहनाई

सुषिर वाद्यों में शहनाई का एक विशिष्ट स्थान है। यह एक प्राचीन वाद्य है। संस्कृत—ग्रंथों में मुस्लिम वाद्यों के साथ इसका उल्लेख मिलता है।[94] शहनाई के साथ तालवाद्य में नगाड़े द्वारा संगत की जाती है। शहनाई की पूंगी की भांति नकसासी वाद्य है, अर्थात् बजाते समय नाक से बराबर साँस लेना पड़ता है, इसीलिए इसे "नकसासी" कहा जाता है। शहनाई टाली, शीशम, या सागवान की लकड़ी की बनाई जाती हैं। इनमें भी टाली की लकड़ी की शहनाई सब से अच्छी समझी जाती है। शहनाई सबसे अच्छी बनारस में बनती है। शहनाई एक हाथ लंबी और लाल चंदन की बनी होती है। इसमें बेर के बीज से भी आकार वाले एक एक अंगूठे के अंतर पर आठ छेद होते हैं। इसका मुख 4 अंगुल लंबा होता है, जिसमें ध्वन्योत्पादक दो इमली के पत्ते के आकार वाले हाथी दांत के पत्ते लगे रहते हैं। इन पत्तों को मुंह में जोड़कर शहनाई के ऊपरी भाग में जहाँ एक छल्ला लकड़ी का अथवा हाथी दाँत का लगा रहता है, जोड़ दिया जाता है। इसकी वादनविधि बांसुरी के ही समान है। "संगीत पारिजात" में शहनाई नाम से किसी वाद्य का उल्लेख नहीं मिलता, किंतु वहाँ "सुनादी" (सुंदर नाद वाली) नाम से एक सुषिर वाद्य का उल्लेख अवश्य मिलता है।[95]

संभवतः यह "सुनादी" ही "शहनाई" है। दक्षिण में इसके आकार-प्रकार में यत्किंचित् भेद से, इसी के नामभेद से नागस्वरं, ओढू, मुखवीणा और सनाई, हैं।

दक्षिण की "सनाई" हमारे यहाँ की शहनाई से अपेक्षाकृत छोटी होती है। बनारस वालों की शहनाई पर ठुमरी बहुत प्रसिद्ध है। यह प्रायः विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर बजाई जाती है। राजा-महाराजाओं के यहाँ यह प्रतिदिन बजा करती थी। आज तो इस वाद्य को उस्ताद बिस्मिल्ला खा, अनंतलाल आदि के कुशलवादन के कारण बहुत प्रतिष्ठा मिली है। यह वाद्य-प्राचीन काल से ही पर्याप्त लोकप्रिय रहा है। संतों के काव्य में भी इस वाद्य का यत्र-तत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उल्लेख मिल जाता है।[96]

सिंगी

इस वाद्य को योगी लोग अपने पास रखते हैं, अतः हठयोग के प्रसंग में संतकवियों ने इस वाद्य का उल्लेख किया है।[97] यह हिरण के सींग से बनता है, संभवतः इसीलिए इस वाद्य को "सिंगी" अथवा "सींगी" कहा ज़ाता है। सींग की भांति किसी धातु से भी इसे बनाया जाता है। इसमें से केवल एक ही आवाज़ निकलती है और इसे कतिपय भीख माँगने वाले फ़कीर, साईं, आदि भी बजाते हैं[98]। इसे कंठोत्पन्न स्वर से ओठों पर रखकर बजाया जाता है। युद्ध के समय जब इससे घोर नाद किया जाता है, तब यह "रणसिंगा" कहा जाता है। ब्रज में शृंग वाद्‌य (सिंगी) में 2 प्रकार के सींगों का प्रयोग होता है, भैंसे का और हिरन का। भैंसे के सींग द्वारा निर्मित वाद्य "विषाण" कहलाता है और हिरन के सींग द्वारा निर्मित "सिंगी" कहा जाता है। धातु के बने शृंग नेपाल या दक्षिण में, चलन में हैं। नेपाल में इसे "कोमिकी" और दक्षिण में "कोम्बू" कहते हैं।[99]

निर्गुण संतकाव्य में उपलब्ध तीस वाद्यनाम की अकारादि क्रमानुसार सूची।

उ		ढ		प	
	उपंग		ढोल		पूंगी
क		त			पखावज
	कींगरी		ताल	ब	
च			तूर्य		बीन
	चंग		तम्बूरा		बांसुरी
			तबला		
ज		द		भ	भेरी
	जंत्र		दुंदुभि		
			दमामा		
झ		न		म	
	झांझ		नौबत		मंदला
झ	झालर	न	निसान		मंजीरा
ड			नगाड़ा	म	मृदंग
	डफ			र	रबाब
				व	वीणा
				श	शंख
					शहनाई
				स	सिंगी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संदर्भ

राग-खण्ड

1. गु. सं. भूमिका, पृ. 'क' और 'ग'।
2. डॉ. भगीरथ मिश्र द्वारा संपादित
3. ह. लि. ग्रंथ, लिपिकाल सं. 1855
4. रा. क. का. वि. अ.
5. पं. चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी द्वारा संपादित
6. पुरोहित हरिनारायण शर्मा द्वारा संपा. दो खंड
7. वृन्दावन के गोस्वामियों द्वारा संगीत-कौशल पर प्रभावित होकर, उन्हें 'राग-सागर' की उपाधि देना, उनके संगीत कला पर अपूर्व अधिकार का परिचायक है। रा. क. प्र. खं. भूमिका
8. डॉ. चित्तरंजन ज्योतिषी का मत, रा. क. का. वि. अ. पृ. 120
9. क्र. पु. मा. छठा भाग; रा. वि. 5वाँ भाग; सं. तां. 6 भाग
10. प्यारासिंह पद्म का मत 'पं. मा. भूमिका, पृ. 2—3.
11. वही, पृ. 6
12. वही, पृ. वही
13. प्या. पद्म का मत, पृ. 4, वही।
14. वही, पृ. 9.
15. .क्र. पु. मा. भाग 6, पृ. 26 तथा 4 गु. सं. 'रागस्वरूप वरणन' बैराडी का स्वरूप, पृ. 373.
16. वही।
17. 'वराडी' राग के दक्षिण में प्रचलित स्वरूप के संबंध में उक्त जानकारी मुझे कलासंगीत भारती, वाराणसी के, कर्नाटक संगीत विभाग में, बेलावाद्य के प्राध्यापक श्री 'वैंकट रामानुजम्' से मिली।
18. 'आसा' देश, रावी लागे दे इलाके दा नाम रिहा है। आसा, धनासरी ते माझ, इह निरोल पंजाब दे स्वदेशी राग हन। जिवें 'आसा' राग ते 'धनासरी' राग उपरोक्त इलाकियाँ दे नाउँ ते प्रचलित हो गए, तिवें 'मांझ' नां दे इलाके दे नां ते 'माझ' राग दा नाम चालू होया।" पं. मा. भूमिका, पृ. 20.
19. गु. सं. पृ. 372.
20. वही, पृ. 375.
21. वही, पृ. 374.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

22. सुं. ग्रं. प्र. खं. परिशिष्ट— उ. पृ. 178.

23. द्वैदल आइ जुड़े धरणी पर बिच सिंधूड़ो बाजे रे' सुं. ग्रं. द्वि. खं. 880/3, वही, पृ. 485 'सूरातन को अंग' और वही, पृ. 885.

24. सुं. ग्रं. प्र. खं. भूमिका, प, उ. पृ. 175 तथा अप्रकाशित शोधप्रबंध 'दादूदयालः जीवन, दर्शन और काव्य' संतनारायण उपाध्याय, पृ. 512।

25. सुं. ग्रं. द्वि. खं. पृ. 927.

26. वही, प्र. खं. भू. प. 'ड़.' पृ. 174.

27. वही, पृ. 177.

28. आ. ग्रं. पृ. 152 पर 'गडड़ी' म. 1, दखणी।' ग्रंथ में इस शीर्षक के अंतर्गत, न भाषा-वैशिष्ट्य परिलक्षित होता है और न ही किसी छंद-विशेष का यहाँ प्रयोग है अतः इस प्रकार के स्थलों पर 'गौड़ी' राग का दक्षिणी प्रकार (दक्षिण में गेय शैली) अर्थ अभिप्रेत हो, ऐसा समझा जा सकता है।

* 'वैरागी' का 'वैरागणि' हो जाना आश्चर्यजनक नहीं। मध्यकाल में पुरुष रागों को सामान्यतः स्त्रीलिंग रूप से लिखने की प्रवृत्ति रही है।

29. आ. ग्रं. पृ. 400.

30. वही, पृ. 396.

31. वही, पृ. 1190.

32. वही, पृष्ठ 1185

33. वही, पृ. 1327.

34. वही, पृ. 1341. तथा पृ. 1337.

35. वही, पृ. 1347.

36. वही, पृ. 1342.

37. आ. ग्रं. पृ. 409.

38. वही, पृ. 210 म. 5.

39. वही, पृ. वही.

40. वही, पृ. 216. म. वही.

41. वही, पृ. 217.

42. वही, पृ. 210.

43. वही, पृ. 214.

44. वही, पृ. 206.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

45. वही, पृ. 212.
46. वही, पृ. 209.
47. वही, पृ. 13.
48. ए. क्रि. स्ट. ऑफ. आ.ग्रं. पृ. 107.
49. वही, पृ. 95.
50. गु. म. नि. 4 था भाग, पृ. 43.
51. वही, प्र. भा. भाई वीरसिंह का मत, पृ. 50.
52. वही, डॉ. चरणसिंह का मत, प्र. भा. पृ. 10.
53. 'मुंदावणी' का अर्थ, मुहर या छाप अर्थात् ग्रंथ की समाप्ति पर गुरुजी की छाप (ग्रंथ-समाप्ति की)
54. ए क्रि.स्ट. ऑ. आ. ग्रं. पृ. 112.
55. प्या. सिं. पदम का मत रा. मा. नि. पृ. 'च'
56. वही तथा ए. क्रि. स्ट. ऑ. आ. ग्रं. पृ. 106.
57. पं. चतुर्वेदी का मत व्यक्त भा.सं. की परं. पृ. 379; श्री गु.ग्रं. सा.–'ए. परि.' डॉ. धर्मपाल मैनी, पृ. 85. रा. मा. नि. पृ. 'इ' से 'स' तक; ए. क्रि. स्ट. ऑ. ग्रं. पृ. 104.
58. गु. सं. नि. भागः प्रथम, पृ. ३६ तथा पादटिप्पणी भी द्रव्य।
59. वेद दीप मुनि इंद धर, सविता जुवत गतान।
हंस वार थित असटमी, साका विक्रम जान।
रा.मा.नि. पृ. 'क'।
60. पदम जी का मत, वही, पृ. 'ख'
61. डॉ. कोहली कामत ए क्रि. स्ठ. आ. आ. ग्र. पृ. 112 तथा पद्म जी कामत, रा. नि. प्रवेश, पृ. 'ख'।
62. रा. क. का. वि. अ. पृ. 73–80.
63. रा. क. प्र. खं. पृ. 76-77,701
64. सं. तां. छठा भाग, पृ. 98.
65. रा. एंड रा गि. – ओ. सी. गंगोली, टेबल नं. 15
66. ए. क्रि. स्ट. ऑ. आ. ग्रं., पृ. 111.
67. भाई वीर सिंह का मत, गु. सं. नि. पृ. 39.
68. गु. खं. पृ. 145–46

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

69. गु. सं. पृ. 145—46
70. गु. सं. पृ. ३७४
71. आ. ग्रं. गौड़ी पूरबी, कबीरजी, पृ. 337
72. गु. सं. पृ. 5
73. गु. सं. पृ. 103
74. गु. सं. पृ. 103
75. गु. सं. पृ. 13
76. गु. सं. पृ. 371
77. गु. सं. पृ. 179
78. गु. सं. पृ. 18
79. गु. सं. पृ. 19
80. विवरण के लिए द्रष्टव्य गु. सं. पृ. 372.
81. गु. सं. पृ. 63
82. गु. सं. पृ. 372
83. गु. सं. पृ. 9
84. गु. सं. पृ. 10
85. वही, पृ. 371
86. गु. सं. पृ. 73
87. वही, पृ. 74
88. गु. सं. पृ. 72
89. वही पृ. 73
90. गु. सं. पृ. 70
91. वही
92. गु. सं. पृ. 372
93. गु. सं. पृ. 68
94. गु. सं. पृ. 69
95. वही, पृ. 372
96. गु. सं. पृ. 143—44
97. गु. सं. पृ. 144
98. सं. तां. भाग 5, पृ. 15

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

99. गु. सं. पृ. 374

100. गु. सं. पृ. 208

101. गु. सं. पृ. 375

ताल-खण्ड

1. गु. सं. सरदार ज्ञानसिंह भूमिका
2. सुं. ग्रं. पृ. खं. पृ. 70 भूमिका
3. रा. क. का वि.अ. पृ. 64
4. मा. ता. दी. भाग, 2, पृ. 9
5. गु. सं. पृ. 92
6. सं. र. वाद्याध्याय, 22
7. गु. सं. पृ. 'ज'
8. ता. प्र. पृ. 117
9. रा. क. का वि. अ. – पृ. 65
10. गु. सं. भूमिका 'छ' तालदीपिका
11. ता. मा. सत्यनारायण वशिष्ठ तृ. सं. पृ. 216
12. ता. प्र. भगवदशरण शर्मा, द्वि. खं. पृ. 101
13. आ. ग्रं. राम 'आसा', घरू 15 म. 5 पृ. 408, धनासरी
 म. 5 घरु 9, पृ. 683; 'राग सूही, म. 5 पृ. 746
 घरु 5; 'राग' बिलावल, म. 5, घरु 13 पृ. 830;
 'रामकली म. 5, घरु 3, पृ. 901'; भैरड म० 5,
 घरु 3, पृ. 1153; सारंग म. 4, घरु 5, पृ. 1200; घरु 3, पृ. 1265 'मलार, म. 5, घरु' 3 पृ. 1271";
 " कानड़ा म. ४ घरु ५, पृ. १२६६"; 'रागु बिलावलु, महला ४ घरु १३ पृ. ८००."
14. 'राग नटनारायण, म. ४, पृ. ६७७'; 'नट, म. ५, पृ. ६८०, 'प्रभाती-विभास', म. ४, पृ. १३३७,; 'प्रभाती, म. ५ विभास पृ. १३४१.
15. 'निरगुणियारा' पत्रिका, ५-20 जुलाई १६४५ पृ. ४५.
16. क. ग्रं. पृ. १०५ प. सं. १५६.
 "बिनही तालां ताल बजावे, बिन मंदल पटताला।
 बिनहीं सबद अनाहद बाजे, तहाँ निरतत है गोपाला।"
17. 'पड़ताल' संगीत विद्र्या की सूचना है। तुक-तुक पर ताल परत जांदा है, तदे इसदा नाम 'पड़ताल' है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गु. दि. पृ. २५३.

18. गु. दि. पृ. २५३.
19. वही।
20. गुरबाग कमच्छा, काशी के गुरुद्वारे के ग्रंथी जी का मत
21. 'पड़ताल' शब्द गुरुग्रंथ साहब के रागबद्ध पदों से संबंध रखता है, जैसे 'कान्हड़े की पड़ताल।' मैंने रागियों एवं कीर्तनियों से दो प्रकार की पड़ताल सुनी हैं (क) शहाना रीति का कान्हड़ा यानि 'शहाना' राग से मिलता-जुलता कान्हड़ा (ख) दरबारी से मिलती-जुलती कान्हड़े की पड़ताल। तात्पर्य यह है कि जिस राग की भी 'पड़ताल' हो, उस राग के किसी शास्त्रीय प्रकार के वह निकट होगी। इसे हम विशेष राग का, विशेष भेद कह सकते हैं। (पत्र-व्यवहार द्वारा, रागियों से प्राप्त मत)
22. प्र. का शा. ए. सं. दि. — डॉ. कु. प्रेमलता शर्मा, पृ. 20
23. गुरमत संगीतः मास्टर सुंदरसिंह, पृ. ९५; 'गुरमत संगीत पर हुणतक मिली खोज' पुस्तक, भाग-3, तथा भा. ता. पृ. ४.
24. गु. सं. पृ. 'छ'
25. वही, पृ. २६.
26. वही, पृ. 'छ' तथा तालप्रकाश, पृ. 104
27. तालप्रकाश, पृ. वही
28. वही, पृ. 'छ।'
29. वही, पृ. 'ज।'
30. ता. प्र. पृ. 86.
31. वही, पृ. 82.
32. ता. मा. पृ. 283.
33. ता. मा. पृ. 284.
34. गु. सं. पृ. 'घ।'
35. वही, राग आसावरी, ताल भानमती, विलं (फुनहे म. 5, आ. ग्रं. पृ. 1362) पृ. 51.
36. ता. प्र. पृ. 103.
37. ता. मा. सत्यनारायण वशिष्ठ, पृ. 200
38. गु. सं. पृ. 'छ।'

वाद्य-खण्ड

* उक्त-प्रसंग में वाद्यों को मैंने 'आनंदानुभूति की बाह्य अभिव्यक्ति के प्रतीक' कहा है। इस कथन से मेरा अभिप्राय यह है कि जब साधक को ब्रह्मानंद का साक्षात्कार होता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो उस असीम अलौकिक आनंदातिरेक को व्यक्त करने के लिए, उसे लौकिक वस्तुओं अथवा प्रतीकों का आलंबन लेना पड़ता है। इसके लिए परंपरागत रूप से, वह विभिन्न वाद्यों को प्रतीक अथवा उपमान के रूप में ग्रहण करता आया है। यह आवश्यक नहीं है कि जिन वाद्यों का वह प्रतीक रूप में उल्लेख कर रहा है, उन सभी को वह बजाना जानता है; इस अर्थ में मैंने प्राचीन शास्त्रों, योगशास्त्र तथा संतकाव्य में उल्लिखित वाद्ययंत्रों को 'आनंदानुभूति की बाह्याभिव्यक्ति के प्रतीक' कहा है।

1. *पिय षेलहु फाग सुहावनो हो।*
अहो, यह आयो है फागुन मास।।
ज्ञान गुलाल करौं नानाविधि,
तन, मन केसरि घोरि।
चित चंदन लै छिरकौं ललना,
जौन चलो मुख मोरि ।।1।।
अनहद शब्द झाँझ उफ बाजैं,
ताल, मृदंग, उपंग।
सुमति पिचक ले धाऊँ ललना,
भरहिं परस्पर अंग ।।2।।
सुं. ग्रं. द्वि. खं. 921/5.

2. जोगिया तन को जंत्र बजाइ, ज्यूँ तेरा आवागमन मिटाइ।।
तन करि तांति धर्म करि डांडी, सत की सारि लगाइ।
मन करि निहचल आसण निहचल, रसनां रस उपजाइ।।
चित करि बरवा तुचा मेषली, भसमें भसम चढाइ।
तजि पाषंड पाँच करि निग्रह, खोजि परम पद राइ।।
हिरदैं सींगी ग्यांन गुणि बाँधौ, खोजि निरंजन सांचा।
कहै कबीर निरंजन की गति, जुगति बिना प्यंड काचा।।
क. ग्रं. 118/208.

3. ढोल दमामा दुड़बड़ी, सहनाई संगि भेरि।
औसर चल्या बजाइ करि, है कोई राखे फेरि।।
क. ग्रं. 16/3.

4. जगत गुर अनहद कींगरी बाजे, तहाँ दीरघ नाद ल्यो लागे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वही, पृ. 103/153.

5. बाजत चंग उपंग पषावज, राइ गिरगिरी ढोल।
सुनि सुनि विरहनि के मन महिया, सालत सबके बोल।।
सुं. ग्रं. द्वि. खं. 919/2.
6. वही, क. ग्रं. 16/3.
7. सं. र. बाद्याध्याय, पृ. 284 संपा. एस. सुब्रह्मण्य शास्त्री आड्यार लाइब्रेरी 1951 तथा 'ब्रजभारती' (पत्रिका) मथुरा, फाल्गुन सं. 2012 वर्ष 13 अंक 4, पृ. 8-9.
8. सू. सा. ना. प्र. प्र. सं. द्वि. खं. दशम स्कंध, पृ. 1215.
9. वही, पृ. 1217.
10. 'कर्करी' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद (3, 4, 3, 3) तथा अथर्ववेद (4, 37, 4, 20, 132, 308) में मिलता है। अनुक्रमणिका में इसे एक प्रकार की वीणा कहा है। मैत्रायणी संहिता (4, 2, 9) तथा गौरी-पूजा (पृ. 49, 49) में गौओं के वर्णन के प्रसंग में, गायों के लिए 'कर्करीकर्ण्यः' शब्द मिलता है, यानि 'कर्करी' के सदृश कानवाली।' 'कर्करी' नामक ब्रज के त्रिकोणात्मक वाद्य का रूप, गाय के कान से साम्य रखता है। इस प्रकार, यह 'करकरी', 'किन्नरी' वीणा से सर्वथा पृथक् एक वाद्य है, जिसका चित्र ब्र. भा. पत्रिका के फाल्गुन सं. 2012 के फलक सं. 4 में दिया हुआ है।
11. वही, पृ. 14.
12. 'मदन भेरि राय-गिडगिडी सहनाई सुर सोहैं'
वही, पृ. 46.
13. वही।
14. वृ. हिं. को. पृ. 609.
15. वही, पृ. 560.
16. वही, पृ. 16.
17. 'लोकसंगीत और शास्त्रीय संगीत' (अप्रकाशित लेख)–डॉ. प्रेमलता शर्मा (उज्जैन में आयोजित 'अखिल भारतीय लोकसंस्कृति सम्मेलन' में 26.11.1961 ई. में पढ़ा गया आलेख)
18. सुं. ग्रं. द्वि. खं. 921/5.
19. सं. र. षष्ठ वाद्याध्याय।
20. सं. पारिजात
21. आ. अ. पृ. 268.
22. घटि घटि बाजे किंगुरी, अनदिन सबदि सुवाइ।
बिरले कउ सोझी पई, गुरमुखि मनु समुझाइ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नानक नामु न बीसरे, छूटे सबदु कमाइ।

ना. बा. पृ. 154.

23. अ. छा. के वा. यं.–पृ. 7 की पादटिप्पणी सं. 2.

24. रा. का. लो. सं.–पृ. 99.

25. सुं. ग्रं. 919/2.

26. आ. अ. भाग 3, पृ. 268.

27. 'पद्मा' अ. 42; 40 वा. मु. खं. प. सं. 527 की व्याख्या में 'जंत्र' का विवरण तथा अ. छा. के वा. यं. पृ. 18 पर 'यंत्र' वाद्य का वर्णन।

28. फि. आ. इं.म्यू. टी. का एं. म्यू. के.–लेख 'राजस्थानी वाद्ययंत्र–कोमल कोठारी, पृ. 69.
,

29. कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गए सब तार।

जंत्र विचारा क्या करे, चले बजावणहार।

क. ग्रं. 58/20.

'देवा तेरा नीसान बाज्या।

ताल पषावज जंत्र बेनां, अवसर साज्या हो।'

सं. ना. दे. की हिं. प. 30/68.

बाजे जंत्र बजावे गुनीं। रामनाम बिन भूली दुनी।'

क. ग्रं. 115/194.

30. जंत्री जंत्र अनूपम बाजे। ताका सबद गगन में गाजे।टेक।।

सुर की नालि, सुरति का तूंबा। सतगुर साज बनाया।

सुर नरगण गंध्रप ब्रह्मादिक, गुरु बिन तिनहूँ न पाया।।

जिम्या तांति नासिका करिहौं, माया का मैण लगाया।

गमां बतीस मोरणां पाँचों, नीका साज बनाया।।

जंत्री जंत्र तजे नहीं बाजे, तब बाजे जब बावे।

कहे कबीर सोई जन साँचा, जंत्री सूं प्रीति लगावे।।

वही, 115/195.

"जोगिया तन को जंत्र बजाइ, ज्यूं तेरा आवागवन भिटाइ ।।टेक।।

तन करि तांति धर्म करि डांडी, सत की सारि लगाइ।

मन करि निहचल आसण निहचल, रसनां रस उपजाइ।।

चित करि बटवा तुचा भेष ली, भसमैं भसम चढाइ।

तजि पाषंड पाँच करि निग्रह, सोजि परम पद राइ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिरदै सींगी ज्यग्यांन गुंणि बांधौ, खोजि निरंजन साचा।
कहै कबीर निरंजन की गति, जुगति बिनां प्यड काचा।।
क. ग्रं., 118/208।

31. सुं. ग्रं., द्वि. .खं.- "आरती परब्रह्म की कीजै। और ठौर मेरो मन न पतीजे।।
गगन मंडल में आरती साजी।
शब्द अनाहद झालरि वाजी।। पृ. 937 प. सं. 12

32. पद्मा.—अध्याय सं. 42 राजा बादशाह युद्धखंड, पद सं. 527 की व्याख्या द्रष्टव्य।

33. द्रष्टव्य - रा. का लो. सं. पृ. 103।

34. अ. छा. के वा. यं. पृ. 47-48।

35. 'पिय षेलहु फाग सुहावनौ हो' अहौ यह आयौ है फागुन मास।।
× × × × ×
अनहद शब्द झाँझ डफ बाजे, ताल मृदंग उपंग।
सुमति पिचक ले धाऊँ ललना, भरहिं परस्पर अंग।' सुं. ग्रं., द्वि. खं. 921/5।
मोहि फाग पिया बिन दुख भयौ हो । अहौ हौं कैसी करौं कत जाउं।
× × × × ×
जब हौं सुन्यौ झिंझ डफ वाजत, बीना ताल मृदंग।
तबहिं सु बिरह बान मोहि मारै, बेधत नख शिख अंग।। सुं. ग्रं., द्वि. खं., 920/3।
विशेष—सुन्दरदास के उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में 'झींझ' और 'झिंझ' शब्द से तात्पर्य 'झाँझ' वाद्य से है।

36. फि. आ. इं. म्यू. टी. एं. कां. एं. म्यू. फै.— पृ. 72।

37. जब हौं सुन्यौ झिंझ डफ वाजत, बीना ताल मृदंग।
तबहिं सु विरह बान मोहि मारै, बेधत नखशिख अंग।' सुं. ग्रं., द्वि. खं., 920/3।
तथा द्रष्टव्य, ही, 921/5।

38. क्र. पु. मा., भा. 4, पृ. 696 तृ. सं.।

39. द्रष्टव्य : अ. छा. के वा. यं.—चुन्नीलाल शेष का मत, पृ. 40।

40. 'झिलिमिल डिलिमिलि नूरा रे। जहं बाजै अनहद तूरा रे।
ढोल दमांमा बाजै रे। तहां सबद अनाहद बाजे रे।' सं. ना. की हिं. पृ. 81/170।

41. सुं. ग्रं. द्वि. खं., पृ. 814।

42. सं. र., पृ. 490 षष्ठ वाद्याध्याय।

43. देवा तेरा नीसान बाज्या हो।
ताल पखावज जंत्र बेनां अवसर साज्या हो। सं. ना. की हिं. प., 30/68।
'ताल मदीरे घट के घाट। दोलक दुनीआ बाजहि बाज।
नारद नाचै कलि का भाड। जती सती कह राखहि पाउ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आ. ग्रं., पृ. 341, राग आसा. म. 1।

'यह प्रकृति पुरुष मचाइ राषयो, सदा करम हिंडोल।
सजि विविध रूप विकार भूषन, पहरि अंगनि चोल।।
एक नृत्यत एक गावत, मिलि परस्पर लोल।
रति ताल मदन मृदंग बाजत, दुन्दु दुंदुभि ढोल।।3।। सुं. ग्रं., द्वि., खं., 917/5।

44. 'शब्द अनाहद बाजहीं रंग हो हो होरी।
बीना ताल मृदंग रंगनि हो हो होरी।
रोम रोम सुख ऊपजै रंग हो हो होरी।
षेल मच्यौ सतसंग रंगनि रंग हो हो होरी।।3।। सुं. ग्रं., द्वि. खं., 931/1।
'घर घर मंगल होत है, बाजहिं ताल मृदंग।
सुनि सुनि बिरहनि पर जरै, सुन्दर नखसिख अंग।।' वही; 684/27।

45. "राम चरनि मन भाए रे।
× × × × × × ×
इहि बंनि बाजै मदनभेरि रे, उहि बंनि बाजे तूरा रे।
इति बंनि खेलै राही रुकमनि, उहि बंनि कान्ह अहीरा रे।।
आसि पासि तुरसी को बिरवा, मांहिं द्वारिका गांऊँ रे।
तहाँ मेरो ठाकुर रांम राइ है, भगत कबीरा नाऊँ रे।। क. ग्रं., 87/76।

अपने पुरिष मुख कबहूँ न देखूयो सती होत समझी समझाई।
कहै कबीर हूं सर रचि भरि हूं, तिरों कंत ले तूर बजाई।।
वही, 122-23/226
"पुहुप बिनां एक तरवर फलिया, बिन कर तूर बजाया।
नारी बिनां नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया।।" वही, 71/6 1

46. वृ. हिं. को. पृ. 582।
47. सं. शा., पृ. 272।
48. वही।
49. क्र. वे. 1, 28 5, 6, 47, 29, 31, अ. वे 5, 20, 1, 5, 21, 7, 31, 7, 6, 38, 4, 92, 1, 41।
50. अ. छा. के वा. सं., पृ. 36।
51. 'एक नृत्यत एक गावत, मिलि परस्पर लोल।
रतिताल मदन मृदंग बाजत, दुन्दुभि ढोल।' सुं. ग्रं., 917/5।
* द्रष्टव्य : - रा. का लो. सं. पृ. 95।
52. क. ग्रं. 16/2।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

53. 'कबीर नौबति आपणीं, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पटन ए गली, बहुरि न देखहु आइ।' क. ग्रं., 16/1।
54. सं. र. षष्ठ (अध्याय, पृ. 485)
55. गगन दमांमा बाजिया, पडया निसानैं घाव।
खेत बुहारया सूरिवैं, मुझ मरणे का चाव।। क. ग्रं. 54/6।
* विवरण हेतु द्रष्टव्य रा. का लो. सं., पृ. 95-6;
फि. आ. इं. म्यू. टी. का एं. म्यू, फ़ै., पृ. 72।
56. "भाजै कांई रे भिडि भारथ साम्हों सूरासत जिणि हारै।
दुहों पवाउ सुजस ताहरो कै मरसी कै मारे।
चोट नगारै सुनै सुभट जब सिंधूडो सहनाई।
छोडि सनाह हुलसि करि आधो फूल्यो अंगन माई।" सु. ग्रं., द्वि. खं., 884-5/2।
* "पूगी" वाद्य का विवरण देखें, 'फि. आ. इं. टी. का. एं. म्यू. फ़े. पृ. 71 तथा 'रा. का लो. सं., पृ. 92।
57. जैसे पूंगी बाजत अखंड सुर होत पुनि,
ताहू मैं न अंतर अनेक राग मांनिये ॥
जैसें कोऊ गुडीकों चढावत गगन माहि,
ताहू की तो धुनि सुनि वैसे ही बंषानिये ।
सुंदर कहत तैसे कलि को प्रचंड वेग,
राति दिन चल्यो जाइ, अचिरज मांनिये ॥ सुं.ग्रं., द्वि. सं. 415/211
58. द्रष्टव्यःत पद्मा. अध्याय 42 "राजा बादशाह युद्ध खंड, प.सं. 527 की व्याख्या
59. "बाजत चंग उपंग पखावज, राइ गिरगिरी ढोल।
सुनि सुनि विरहनि के मन माहिया, सालत सब के बोल।"
सुं.ग्रं. द्वि.खं., 919/2 1
देवा तेरा नीसान बाज्या हो।
ताल पखावज जंत्र बेनां अवसर साज्या हो।"
सं. ना. की हिं. प. 30/68।
"बाजा मति पखावजु भाउ। होई अनंदु सदा मनि चाउ।
एहो भगति ऐहो तप ताउ। इहि रंगि नाचहु रखि रखि पाउ।"
आ.ग्रं.आसा. म. 1 चौपदे, घरू 2, पृ. 350।
60. द्रष्टव्य "म्यू. आ. इं." पोपले का मत, पृ. 18, 104।
61. द्रष्टव्य पृथ्वी चंद्र चरित, पृ. 131।
62. म्यू. आफ इं., पृ. 18।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

63. बाजै जंत्र बजावै गुनीं। राम नांम बिन भूली दुनी ॥टेक॥
रजगुन सतगुन तमगुन तीन, पंच तत ले साज्या बींन ॥
तीनि लोक पूरा पेखनां, नाच नचावे एके जनां।
कहै कबीर संसा करि दूरि, त्रिभुवन नाथ रहा भरपूरि ॥ क.ग्रं. 115/194।

64. "संपेरा बनि बीन बजइयो, चलूंगी तेरे साथ।"
द्रष्टव्य- अ.के.वा.यं., पृ. 7

65. सं. र., षष्ठवाद्याध्याय, 360।

66. "घट भीतरि नाचै गावै, घट भीतरि बेन बजाबै।
घट भीतरि फाग बसंता, घट भीतरि कामिनि कन्ता ॥ सुं.ग्र., द्वि.खं, 886/4 1
"सतगुरु बपुरा क्या करै, जे सिषही मांहे चूक।
भावै त्यूं प्रमोधि लै, ज्यूँ बंसि बजाई फूंक।" क.ग्रं. 2/21।
"अवधू ब्रह्म मतै घरि जाइ। काल्हि जु तेरी बंसरिया छीनीं, कहा चरावे गाइ।
क.ग्रं., 110/177।

67. सं. र. षष्ठ वाद्याध्याय, पृ. 484।

68. अ. छा. के वा. यं. पृ. 38।

69. "बिनै बजाया बाजा बाजै,। नादे अंबर गाजै।
बिन भैरे होत झणकारा। न दीसे बजावणहारा।" सं. ना. की हिं. पं., 51/122।
"ढोल दमामा दुडबडी, सहनाई संगि भेरि।
औसर चल्या बजाइ करि, है कोई राखै फेरि।" क. ग्रं., 16/3।

70. इहि बंनि बाजै मदनभेरि रे, उहि बंनि बाजे तूरा रे।
इहि बंनि खेलै राही रुकमनि, उहि बंनि कांन्ह अहीरा रे। क.ग्रं. 87/76।

71. सुनि मंडल में मंदला बाजै, तहां मेरा मन नाचै।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमनां काछै ॥ क.ग्रं., 86/72।
बीनती एक रांम सुंनि मोरी। अब न बचाई राखि पति मोरी ॥
जैसें मंदला तुमहि बजावा,। तैसें नाचत मैं दुख पावा ॥
जे मसि लागी सबे छुडावो। अब मोहि जिनि बहु रूपक छावो ॥
कहै कबीर मेरी नाच उठावो। तुम्हारे चरन कवल दिखलावो ॥ वही, 88/78।
द्रष्टव्यः और उद्धरणः क.ग्रं. 90/92 वही, 105/159।

72. रा.का लो. सं., पृ. 102-3।

73. "होरी कैसे मैं खेलूं रे, सांवरिया के संग।
ढोल बाजे मजीरा बाजे और बाजे मिरदंग।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्यामसुंदर की मुरली बाजे राधा जी के संग ॥

("होरी" उत्सव का पूरब का प्रचलित लोकगीत)

इस प्रकार "होली" के प्रचलित लोकगीतों में अन्य वाद्यों के साथ "मंजीरे" बजाने का उल्लेख मिलता है। विवाहादि उत्सवों में भी ढोलक के साथ बजाया जाता है।

74. "ताल मदीरे (मंजीरे) घट के घाट। ढोलक दुनीआ बाजहि बाज।
नारद नीचे कलि का भाउ। जती सती कह राखहि पाउ॥
नानक नाम बिरहु कुरवाणु। अंधी दुनीआ साहिबु जाणु। रहाउ।
गुरु पासहु फिरि चेला खाइ। तामि परीति वसै घरि आइ ॥
आ.ग्रं.पृ. 349 रागु आसा. 2 चौपदे सं. 4।

* विवरण के लिए द्रष्टव्य-ता.प्र.पृ. 180, अ.छा. के वा, यं. पृ. 28, रा. का लो. सं., पृ. 97-98।

75. ना.शा.।

76. "तहां शब्द अनाहद अति रसाल, धुनि दुन्दुभि ढोल मृदंग ताल।
सुख उपजै अवननि सुनत नाद, मन मगन होई छूटे विषाद।" सुं.ग्रं., द्वि. खं., 902/6।
"शब्द अनाहद बाजहीं रंग हो हो होरी।
बीना ताल मृदंग रंगनि रंग हो हो होरी।
रोम रोम सुख ऊपजै रंग हो हो होरी।
षेल मच्यों सतसंग रंगनि रंग हो हो होरी ॥3॥ वही, 931/1

77. म्यू. आ. इं., पृ. 125।

78. "रबं वह ति यदयस्मात्ततो रबावः स्मृतः।" सं. पा. 2. 125-128।

79. आ. मैं. आ. इं. पृ. 82।

80. पद्मा. प. सं. 527 की व्याख्या द्रष्टव्य।

81. म्यू. आ. इं. पृ. 102-3।

82. "टूटी तंतु रबाब की, बाजै नहीं विजोगि।
विछुडिबा मेले प्रभू, नानक करि संजोग।"
ना.वा.पृ. 520 रामकली दखणी, ओंकार।

83. अ.छा. के वा. यं., पृ. 7।

84. सं.र. षष्ठ वाद्याध्याय।

85. अ.चिं. अ.छा. के वा. यं. पृ. से उद्धृत।

86. सं. पा.।

87. द्रष्टव्य : अ. के वा. यं., पृ. 9।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

88. "वीणा सबदु बजावै जोगी, दरसनि रूपि अपारा।
सबदि अनाहदि सो सहु राता, नानकु कहै विचारा।" ना.वा., पृ. 252।
तथा सुं. ग्रं. द्वि.खं. 920/3 तथा 930/1

89. "भगति हेत गाबै लैलीनां, ज्यूं वन नाद कोकिला कीन्हां।
बाजैं संख सबद धुनि बेना, तन मन चित हरि गोबिंद लीना।"
क.ग्रं., दुपदी रमैणी, पृ. 180।

90. अहोबल, सं. पा.।

91. अ.के वा. यं. पृ. 26-27।

92. सं. शा. पृ. 272।

93. रा. का लो. सं., पृ. 93।

94. विवरण के लिए देखें, रा. का लो. सं. पृ 91, अ.छा. के वा. यं. पृ. 21, वफ. आ. इं. म्यु. टी. का एं. म्यू. फ़े. (पत्रिका) पृ. 70।

95. सं. पा.।

96. "ढोल दमामा दुडबडी, सहनाई संगि भेरि।
औसर चल्या बजाई करि, है कोई राखै फंरि।" क. ग्रं. 16/3।
पांव रोपि रहे रन मांहिं रजपूत कोऊ, हय गय गाजत जुरत जहाँ दल है।
बाजत झुझाऊ सहनाई सिंधू राग पुनि, सुनत ही काइर की छूटि जात कल है।
झलकत बरखी तरछी तरवारि बहै, मार मार करत परत षलभल है।
ऐसे जुद्ध मैं अडिग सुंदर सुभट सोईं, घर मांहिं सूरमा कहावत सकल है।" सुं. ग्रं., द्वि. खं., 485/3

97. "तुधु भावै ता वावहि गावहि तुधु भावै जलि नावहि।
जा तुधु भावहि ता करहि विभूता सिंगी नादु वजावहि।"
ना.वा.जयराम मिश्र, पृ. 189 सलोकु।
"गगन हीं भाठी सींगी करि चूंगी, कनक कनस एक पावा।
तहुंवा चवें अंमृत रस नीझर, रस ही में रस चुवावा ॥ क.ग्रं. 103/153।
"या जोगिया की जुगति जु बूझै, रांम रमैं ताकों त्रिभुवन सूझे ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रगट कंथ गुपत अधारी, ता में मूरति जीवनि प्यारी ॥
है प्रभू नैंरै खोजें दूरि, ग्यांन गुफा में सींगी पूरि ॥
अमर बेलि जो छिन छिन पीवे, कहै कवीर सो जुगि जुगि जीवे ॥ वही, 118/204

98. फि.आ.इं. टी.का.एं.म्यू. फ़े.पृ. 71।

99. अ.छा.के वा. यं. पृ. 26।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंचमः अध्याय

संत काव्य में प्रबन्ध, छन्द और गायनशैलियों का वैशिष्ट्य

प्रस्तुत अध्याय में प्रबंध, छंद एवं गायन-शैली इन तीन दृष्टियों से निर्गुण संत काव्य का संगीतात्मक अध्ययन किया जा रहा है। उक्त त्रिविध पक्षों से संत काव्य के परिशीलन एवं विवेचन में सौकर्य-हेतु अध्याय को तीन खंडों में विभक्त किया गया है। 'प्रबंधमूलक' विश्लेषण को अध्याय के 'क' भाग में प्रस्तुत किया गया है, 'छंद' को आधार बनाकर संत काव्य की संगीतात्मकता की मीमांसा 'ख' भाग में की गई है तथा 'गायन शैली' के दृष्टिकोण से किए गए अध्ययन को 'ग' भाग में प्रस्तुत किया गया है।

'प्रबंध', छंद और गायनशैली, उपर्युक्त तीनों संगीत-तत्वों का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। अतः इस अध्याय के अंतर्गत तीनों का संयुक्त अध्ययन साभिप्राय है। इस विषय का स्पष्टीकरण अध्याय के तीनों खंडों की भूमिकाओं में क्रमशः किया गया है।

(I भाग) : प्रबंध

(क) प्रबंध की परिभाषा एवं इतिहास

सर्वप्रथम यहाँ उल्लेखनीय है कि भारतीय संगीत-शास्त्र में 'प्रबंध' एक अत्यंत व्यापक 'पद' है, जोकि वाद्य प्रबंधों के लिए भी प्रयुक्त होता है। परंतु प्रस्तुत प्रबंध खंड में केवल कंठ-संगीत से संबंधित प्रबंधों को ही अपने अध्ययन का लक्ष्य बना मैंने उक्त शब्द का सीमित अर्थ में व्यवहार किया है।

शास्त्रों में गान के दो भेद किए गए हैं—निबद्ध तथा अनिबद्ध।

'निबद्ध' का अर्थ है, बँधा हुआ, अतः, 'निबद्ध' गान में 'बंध' (सामान्य व्यवहार में 'बाँधना' शब्द) प्रमुख तत्त्व है। यहाँ देखना यह है कि 'निबद्ध' गान में, किन तत्वों का 'बंध' अपेक्षित है और उनका परस्पर क्या संबंध है?

स्वर, ताल और पद ये तीन तत्व हैं, जिनका 'बंध' निबद्धगान में आवश्यक है। स्वर तो गेय-रचना का अनिवार्य तत्व है ही। किसी कृति को स्वर रूप देने को उसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'स्वरबद्ध' करना अथवा 'स्वरों में बाँधना कहने का प्रचार भी है। स्वर की भाँति ताल और पद भी गान से अनिवार्य रूप से संबद्ध हैं। स्वर के साथ ताल-बंध भी निबद्धगान में अनिवार्यतः रहता है। प्रत्येक राग में ताल का आधार अथवा निबंधन आवश्यक है। पद सार्थक हो अथवा निरर्थक, उसका संगीत में स्वर और ताल की भांति समान महत्त्व है। पद का छंद से घनिष्ठ संबंध है। जिस प्रकार संगीत में ताल का महत्त्व है, उसी प्रकार पाठ्य अथवा काव्य में छंद का स्थान है। ताल और छंद दोनों कालमान हैं। संगीत में काल की दृष्टि से निबद्धता का माध्यम ताल है और कविता में छंद है। ताल एवं छंद दोनों का मूल तत्व है, लय; अतः ताल का छंद से सीधा संबंध है। छंद तथा ताल के निर्माण-तत्व समान होने के कारण, दोनों का पारस्परिक संबंध, स्वतः सिद्ध है।[1] लय की दृष्टि से भी देखें तो विलम्बित, मध्य अथवा द्रुत गति का महत्त्व ताल और छंद दोनों में समान है, किंतु लय का विशेष निर्देश ताल के ही प्रसंग में मिलता है, यथा धीमा तिताला, मध्यम तिताला, द्रुत तिताला अथवा विलंबित एकताल, द्रुत एकताल आदि। इस प्रकार ताल-नामों के साथ ही लय का निर्देश जुड़ा रहता है। ऐसा निर्देश छंद के प्रसंग में नहीं रहता,[2] क्योंकि ताल का संबंध स्वर से है और छंद का पाठ्य से है। जब छंद को गेय बनाया जाता है, तब उसमें भावानुकूल लय-योजना अथवा ताल-योजना कर ली जाती है, किंतु बंध-तत्व की विशेषता ताल एवं छंद दोनों में समान रूप से रहती है।

इस प्रकार' निबद्ध गान' में स्वर, ताल और पद का 'बंध' ही मुख्य भाग है, जिसका अल्प विवेचन ऊपर किया गया है।

'अनिबद्ध-गान' का अर्थ है, तालविनिर्मुक्त आलप्ति अथवा आलाप।

निबद्ध गान के शास्त्रों में तीन नाम मिलते हैं। प्रबंध, वस्तु और रूपक।[3] इनमें 'प्रबंध' सर्वाधिक प्रचलित नाम है।

शाब्दिक दृष्टि से देखें तो 'प्रबंध' (प्र ऽ बंध) का अर्थ होगा, प्रकृष्टरूपेण बंध अर्थात् वह गेय रचना, जिसमें अंगों का सुष्ठु निबंधन हो।[4]

'प्रबंध' में 'बंध' अर्थात् अंगों का एक अंगी में बंध ही मुख्य अर्थ है, जैसा कि पीछे 'निबद्ध गान' के प्रसंग में कहा जा चुका है और इसे आज के 'बन्दिश' अथवा 'चीज़' शब्द के समकक्ष कहा जा सकता है।[5]

'बंध' का यह भाव किसी भी संगीत-पद्धति में बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। भारतीय संगीत में यद्यपि पाश्चात्य-संगीत की तुलना में, बंध या का महत्त्व कम है, क्योंकि 'राग' 'ताल' के अंतर्गत गायक-वादक की तात्कालिक अंतः स्फूर्ति को पर्याप्त अवकाश रहता है, फिर भी प्रबंध या बन्दिश का अपना विशिष्ट स्थान अवश्य है, इसलिये संसार की अन्य किसी संगीत-पद्धति की भाँति, भारतीय संगीत की किसी भी प्रणाली या परंपरा के अध्ययन में 'प्रबंध' का स्थान अनिवार्य महत्त्व रखता है।

'प्रबंध' शब्द अत्यंत प्राचीन है। भारतीय संगीत जगत् में उक्त शब्द का प्रचलन मतंग की 'बृहद्देशी' के समय से मिलता है। इस शब्द का प्रयोग देशी[6] संगीत की विविध शैलियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की रचनाओं के निर्देश-हेतु होता था।[7]

वास्तव में 'प्रबंध' का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास अभी तक प्रायः उपेक्षित अथवा अस्पष्ट विषय ही रहा है।[8] अतः यहाँ शोध-प्रबंध की मर्यादा को ध्यान में रखकर 'प्रबंध' का संक्षेप में ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रबंध के विवेचन का प्रयास निम्नलिखित शास्त्र-ग्रंथों में मिलता है।

1. मतंग कृत 'बृहद्देशी' (प्रकाशित),
2. नान्यदेव का 'भरतभाष्य' (अप्रकाशित),
3. शार्ङ्ग देव कृत 'संगीत रत्नाकर' (प्रकाशित),
4. पंडितमंडली कृत 'संगीत शिरोमणि' (अप्रकाशित),
5. कुम्भाकृत 'संगीतराज'[9] (पूर्व खंड प्रकाशित, द्वितीय खंड भी प्रकाशनाधीन)

विषय का सांगोपांग निरूपण करने वाले उक्त प्रमुख ग्रंथों के अतिरिक्त कुछ छोटे ग्रंथों के नाम भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं, जिनमें प्रबंध का अति संक्षिप्त विवरण अथवा नामोल्लेख-मात्र मिलता है।

1. पार्श्वदेव का 'संगीतसमयसार' (प्रकाशित),
2. वाचनाचार्य सुधाकलश का 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' (प्रकाशित)
3. श्रीकंठ की 'रसकौमुदी' (प्रकाशित)
4. शुभंकर कृत 'संगीत दामोदर' (प्रकाशित)
5. रघुनाथ भूम कृत 'संगीत सुधा' (प्रकाशित)
6. व्यंकटमखीकृत चतुर्दशण्डिप्रकाशिका (प्रकाशित) (प्रबंधाध्याय खंडित)

भारत के नाट्य शस्त्र में 'प्रबंध' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता, अतः ना.शा. का ऊपर उल्लेख नहीं किया गया, किंतु वहाँ 'प्रबंध' के प्रायः समकक्ष विषय-वर्णन अवश्य मिलता है, जिसका संक्षेप में यहाँ परिचय देना अप्रासंगिक न होगा।

हमारे संगीत-शास्त्र में 'मार्ग' और 'देशी' इन दो शीर्षकों के अंतर्गत राग, ताल, प्रबंध, नृत्य आदि विषयों का विवरण मिलता है। भरत ने संभवतः केवल 'मार्ग' का ही प्रतिपादन किया है, क्योंकि ना.शा. में कहीं भी 'मार्गी' और 'देशी' का विभाजन नहीं मिलता। ना.शा. के 32 वें अध्याय में 'ध्रुवा' का निरूपण किया गया है, जिसे स्थूल मान से परवर्ती देशी प्रबंधों का पूर्व रूप कहा जा सकता है। ना.शा. के 21 वें' तालव्यंजनाध्याय' में मद्रक, रोविन्दक, उल्लोप्यक आदि चतुर्दश गीतिक-भेदों का वर्णन मिलता है, जिन्हें आगे चलकर शास्त्रीय-ग्रंथों में 'मार्ग गीत' अथवा 'शुद्ध गीत' नाम से ग्रहण किया गया। भरत द्वारा वर्णित गीत या गीतक बाद में 'मार्ग' संगीत के अंतर्गत स्थान पा गए और ध्रुवाओं का स्थान देशी प्रबंधों ने ले लिया, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि देशी प्रबंधों का निरूपण करने वाले ग्रंथकारों ने प्रायः ध्रुवाओं का उल्लेख नहीं किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रसंग में नान्यदेव अपवाद स्वरूप हैं। उन्होंने देशी प्रबंधों के साथ-साथ ध्रुवाओं का भी पृथक् एवं स्वतंत्र निरूपण किया है। ध्रुवा का संबंध केवल नाट्य से ही है, किंतु मतंग के बृहद्देशी[10] में प्रबंधों का निरूपण भारतीय संगीत के इतिहास में उस अवस्था का परिचायक है, जिसमें नाट्य से स्वतंत्र गीत-भेदों का प्रभूत विकास हो चुका था। उस अवस्था में ध्रुवाओं के निरूपण के प्रति प्रायः संगीत-शास्त्रकारों का प्रकृत्या ही झुकाव न रहा होगा। 'बृहद्देशी' के प्राप्तांश में ध्रुवाओं का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, उसी प्रकार 'संगीत रत्नाकर' तथा 'संगीतराज' एवं अन्य परवर्ती ग्रंथों में भी मार्ग गीतक तथा देशी प्रबंध, इन दोनों का अथवा केवल देशी प्रबंधों का ही उल्लेख मिलता है, ध्रुवाओं का नहीं। केवल नान्यदेव ही ऐसे अपवाद हैं, जिन्होंने देशी प्रबंधों के अतिरिक्त ध्रुवाओं का भी स्वतंत्र प्रतिपादन किया। इसका कारण यह भी माना जा सकता है कि नान्यदेव ने भरत-परंपरा के रक्षणार्थ ही ध्रुवाओं का निरूपण किया, क्योंकि उन्होंने अपने ग्रंथ का नाम भी 'भरत भाष्य' रखा है। अन्य ग्रंथकारों ने ध्रुवाओं को केवल नाट्योपयोगी मानकर उनका परित्याग कर दिया होगा।

इस प्रकार देशी प्रबंध 'ध्रुवा' के समकक्ष इस अर्थ में हैं कि वे ध्रुवाओं की ही भाँति मार्गी गीतों से भिन्न श्रेणी के अंतर्गत हैं तथा ध्रुवा से उनकी भिन्नता यही है कि ध्रुवा विशुद्ध नाट्योपयोगी गीत-रचना है, जबकि प्रबंध, नाट्य से स्वतंत्र रचना है।[11]

यह है प्रबंध का संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण।

हमारे शास्त्रों में प्रबंध की, एक पुरुष के रूप में कल्पना की गई है। जिस प्रकार मानव शरीर के वात, पित और कफ़, ये तीन धातु मानी गई हैं, उसी प्रकार प्रबंध के उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग, ये चार धातु हैं और किसी-किसी प्रबंध-भेद में ध्रुव और आभोग के मध्य में 'अंतरा' नामक एक पाँचवीं धातु की भी स्थिति मानी गई है।[12] ध्रुपद शैली में यद्यपि स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग, इन चार धातुओं अथवा गीत खंडों का प्रचलन है, जबकि ख्याल शैली में पद को अधिकाधिक संक्षिप्त (स्वर, लय के अलंकरण हेतु) करने की प्रवृत्ति के कारण केवल स्थायी और अंतरा ये दो गीत-खंड ही गाए जाते हैं।

'ध्रुव' के स्थान पर आज 'स्थायी' गीत खंड, नामान्तर के रूप में प्रचलित है, ऐसा स्थूल दृष्टि से कहा जा सकता है। आज जहाँ संगीत में दो ही खंड रहते हैं वहाँ 'स्थायी' को 'ध्रुव' और 'अंतरा' को 'आभोग' के समकक्ष रखा जा सकता है। अंतरा का वास्तविक अर्थ दो धातुओं के अंतर में रहने वाला'—आज के अंतरा में तभी सार्थक होता है, जबकि गीत के खंड दो से अधिक हों। केवल 'स्थायी' 'अंतरा' के प्रसंग में 'अंतरा' संज्ञा की कोई सार्थकता नहीं है। ध्रुपद शैली के गीतों में आज स्थायी (ध्रुव) अंतरा, संचारी और आभोग,ये चार खंड रहते हैं किंतु वास्तव में संचारी, आभोग, पृथक् खंड होकर, एक ही खंड के दो उपखंड कहे जा सकते हैं, क्योंकि स्थायी (ध्रुव) पर लौटने के लिये दोनों को एक साथ गाया जाता है।

प्रबंध के संबंध में स्मर्तव्य है कि चार, तीन अथवा दो धातुओं से भी प्रबंध की रचना हो सकती है, ऐसा शास्त्रकारों ने कहा है।[13] मेलापक और आभोग का परित्याग करके केवल उद्ग्राह और ध्रुव इन दो धातुओं से भी प्रबंध की रचना हो सकती है, ऐसा ग्रंथों में कहा है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किंतु अधुना प्रचलित गीत-प्रकारों में यह बात लागू नहीं होती। उक्त दृष्टि से देखा जाय तो ख्याल शैली में केवल स्थायी और अंतरे की रचना भी शास्त्र-सम्मत है। आज संगीत में प्रबंध -धातुओं का अस्तित्व, किसी न किसी रूप में विद्यमान अवश्य है।

गु. सं. में आ. ग्रं. में संकलित संतों के अनेक पदों की स्वर लिपियाँ दी गई हैं। मैंने उक्त पुस्तक के आधार पर एवं संतों के अन्य पद-संग्रहों के आधार पर उनकी परंपरा में एवं उनके काव्य में प्रबंध-धातुओं के उपयोग तथा निर्वाह का अध्ययन किया है। उदाहरणों सहित तत् संबंधी अध्ययन आगे यथास्थान प्रस्तुत किया गया है।

चार धातुओं के अतिरिक्त प्रबंध पुरुष के स्वर, विरुद, पद, तेन अथवा तेनक, पाट और ताल, ये छः अंग माने गए हैं। तेन और पद को प्रबंध पुरुष के नेत्र, पाट और विरुद को हस्त तथा ताल और स्वर को चरणस्थानीय माना है।[14] ताल और स्वर गति-मूलक होने के कारण प्रबंध पुरुष के चरण कहे गए हैं। पाट और विरुद का हाथों से संबंध है, अतः ये दोनों अंग, प्रबंध-पुरुष के हस्त कहे गए हैं। तेन और पद, अर्थ-प्रकाशक होने के कारण प्रबंध-पुरुष के नेत्र माने गए हैं।[15]

संत-काव्य में प्रबंध के छहों अंग मिलते हैं। स्वरलिपि के अभाव में स्वर और ताल तो संतों के अधिकांश पदों में राग और ताल के नामोल्लेख से ही जाने जा सकते हैं। अन्य अंगों का अस्तित्व भी संत-काव्य में वर्तमान है, संबंधित पद उदाहरण के रूप में यथास्थान दिए गए हैं।

धातु एवं अंगों के अतिरिक्त प्रबंध के अनेक भेदोपभेद सं.र. तथा सं. राज एवं अन्य अनेक मध्ययुगीन छोटे-छोटे ग्रंथों[16] में मिलते हैं। इनके आधार-भूत तत्व मुख्यतः निम्नलिखित रहे हैं।[17]

1. ताल-भेद, यथा; गजलील, हयलील, पंचतालेश्वर, तालार्णवादि।
2. छंदोभेद, यथा, आर्या, द्विपथक, कलहंस प्रबंधादि।
3. राग अर्थात् एक से अधिक रागों का प्रयोग, जैसे-राग कदम्ब।
4. वर्ण्य विषयवस्तु, जैसे-स्तवमंजरी, झोम्बड के 24 भेद।
5. रचनागत वैचित्र्य, यथा-स्वरार्थ, चतुरंग, कैवाड़, मातृका, शुकसारिक आदि प्रबंध।
6. विशिष्ट सामाजिक अवसरों, पर्वों आदि पर प्रस्तुत किए जाने का वैशिष्ट्य, जैसे-धम्माली (इसे आज का धमार कहा जा सकता है) प्रबंध के लिए बसंत में फल्गू (फाग) उत्सव पर गाने का निर्देश है।
7. रस का वैशिष्ट्य, यथा, शृंगार विलास, वीर शृंगार, रस संदोह इत्यादि प्रबंध-भेद।

निर्गुण संत-काव्य, निबद्ध गान के रूप में उपलब्ध है, अतः उसका शास्त्रीय प्रबंध-भेदों की दृष्टि से अध्ययन किया गया है। यद्यपि यह सत्य है कि संत पदावली के निर्माताओं का शास्त्रीय प्रबंध-भेदों के लक्षणों के अनुसार रचना करने का लक्ष्य न रहा होगा, फिर भी गेयता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और बंध तत्व का उनके गीतों में पूर्ण निर्वाह है, इसलिए स्वाभाविक रूप से यत्र-तत्र अनेक प्रबंध-भेदों के उदाहरण मिल जाते हैं। सुविधा की दृष्टि से इन उदाहरणों को तत् प्रबंध-भेदों के शीर्षकों के अंतर्गत स्थान दिया गया है।

शास्त्र-ग्रंथों में प्रबंध-भेदों को तीन विभागों के अंतर्गत रखा गया है, ये विभाग हैं-सूड, आलिक्रम तथा विप्रकीर्ण। सूड प्रबंध में किसी रचना के सभी पद एक दूसरे से संबद्ध रहते हैं, यथा जयदेव का 'गीत गोविन्द।' उक्त पुस्तक में 24 गीत हैं, जो प्रायः पूर्वापर संबंध से न्यूनाधिक मात्रा में परस्पर संबद्ध हैं। कहीं-कहीं गीतों के मध्य में श्लोकों द्वारा कथावस्तु का सूत्र जोड़ने का प्रयत्न किया गया है। गीतगोविन्द में यद्यपि कथावस्तु का सूत्र क्षीण है, परंतु उसका नितांत अभाव भी नहीं है। इस प्रकार के पूर्वापर संबंध सहित गीतों का एक अंगी के रूप में नियोजन 'सूड' तथा 'आलिक्रम' प्रबंधों की विशेषता है।[18]

आलिक्रम प्रबंध में भी किसी रचना में पदों में थोड़ा-बहुत पूर्वापर संबंध अपेक्षित है, किंतु प्रकीर्ण प्रबंध में, पदों में पूर्वापर संबंध का नितांत अभाव रहता है। सभी पद अपने आप में संपूर्ण रहते हैं।

विप्रकीर्ण प्रबंधों के नाम से ही व्यंजित होता है कि ये प्रबंध बिखरे हुए अर्थात् मुक्तक की भाँति पूर्वापर संबंध से रहित होते हैं और स्वतंत्र रूप से अकेले भी गाए जाने का वैशिष्ट्य रखते हैं।[19]

आलिक्रम प्रबंध की स्थिति सूड तथा विप्रकीर्ण प्रबंध के बीच की समझी जा सकती है।

निर्गुण संत काव्य में पंचतालेश्वर, राग कदम्ब, मातृका, गाथा, द्विपथक, कैवाड़, द्विपदी इत्यादि प्रबंधभेद, आलिक्रम प्रबंध हैं।

वीरश्री, स्तवमंजरी, शुकसारिक, त्रिपदी, षट्पदी, चतुष्पदी, मंगलाचार, मंगल, दंती तथा घम्माली, विप्रकीर्ण प्रबंध हैं।

प्रबंध के संबंध में एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि हमारे शास्त्रकारों ने 'छंद' को भी प्रबंध के अंतर्गत स्थान दिया है। संगीत रत्नाकर तथा संगीतराज आदि ग्रंथों में प्रबंध के अंतर्गत छंद को भी प्रमुख स्थान मिला है। वास्तव में संगीत का छंद से घनिष्ठ संबंध है।[20] संगीत का ताल, छंद के समानांतर (Parallel) है। छंद में जो चरण है, ताल में वही आवर्तन है (यह बात केवल समजाति के छंदों के लिए कही गई है)। छंद में जो यति है, ताल में वह विभाग है। ये सब समानताएँ होते हुए भी प्रबंधगत छंद की विशेषता यही है कि उसमें पाद-विभाजन नहीं होता। छंद में तो 4 चरणों के बाद एक पद्य को संपूर्ण मान लिया जाता है, किंतु प्रबंधगत छंदों में, मात्रिक गणों की अथवा वर्णिक गणों की निश्चित गति तो रहती है, किंतु खंड-विभाजन पदों के अनुसार न होकर, प्रबंध के धातुओं के अनुसार होता है।

'प्रबंधखंड' में मैंने 'प्रबंध' के अंतर्गत स्थान पाने वाले गाथा, द्विपथक, द्विपदी, त्रिपदी आदि छंदों की ही विवेचना की है। छंद का संगीत से प्रगाढ़ संबंध है, अतः 'प्रबंध' के अंतर्गत स्थान न पा सकने वाले संतकाव्य में व्यवहृत छंदों की विवेचना प्रस्तुत अध्याय के 'ख' भाग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में की गई है।

संतकाव्य का 'प्रबंध' की दृष्टि से विश्लेषण करने पर एक बात की ओर विशेषतः ध्यान आकृष्ट होता है, वह यह कि संतों की पदावली में ऐसी अनेक प्रबंध-कोटि में स्थान पाने योग्य रचनाएँ मिलती हैं, जिनका उल्लेख संगीत-रत्नाकर तथा संगीतराज आदि संगीत के प्रमुख ग्रंथों में भी नहीं मिलता, यथा, षट्पदे, सोलहे, पंचपदे, थिंती, वार, बारहमासा और रुती आदि कृतियाँ। इन रचनाओं का अल्प परिचयात्मक विवरण यहाँ प्रासंगिक होगा।

'अष्टपदी' एक अतिप्राचीन गेय-रचना-प्रकार है। संत जयदेव की विभिन्न राग-रागिनियों में निबद्ध अष्टपदियाँ प्रसिद्ध ही हैं। आ. ग्रं में गुरु एवं संत कवियों की 'अष्टपदी' शीर्षक से 8 पाद[21] की लगभग प्रत्येक राग में अनेक कृतियाँ मिलती हैं। किसी पद-रचना में आठ पद का वैशिष्ट्य ही 'अष्टपदी' का मूल भाव है। जिस प्रकार चतुष्पदी रचना 'चतुष्पदी' को विप्रकीर्ण' प्रबंध में स्थान दिया गया है'[22] उसी प्रकार अष्टपादी गेय-रचना 'अष्टपदी' को प्रबंध-भेदों में सुगमता से स्थान दिया जा सकता है।

'अष्टपदी' की ही भांति सोलह पाद की कुछ रागबद्ध रचनाएँ आ. ग्रं. में संगृहीत हैं, जिन्हें पादक्रम में सोलह की संख्या के निर्वाह के अनुसार 'सोलहे' शीर्षक दिया गया है।[23]

आ.ग्रं. में पांच पाद के रागबद्ध पद 'पंचपदे' शीर्षक से मिलते हैं।[24] इन 'पंचपदों' को भी त्रिपदी, चतुष्पदी, अष्टपदी आदि की भाँति प्रबंध-भेदों के अंतर्गत स्थान देना संभवतः अनुपयुक्त न होगा।

तिथियाँ (एकम् से लेकर पूर्णिमा तक) के अनुसार 'थिंती' शीर्षक से कुछ कृतियाँ आ. ग्रं. में संकलित हैं।[25]

इसी प्रकार कबीर के नाम से 'वार' शीर्षक से एक कृति भी ग्रंथ में संगृहीत है,[26] जिसमें सोमवार, मंगलवार आदि सप्तवारों (उक्त कृति में 'शनिवार' को संभवतः अनिष्टकारी समझा जाने के कारण उसका उल्लेख नहीं किया गया) को पद-रचना का आधार बनाया गया है।

'थिंती' और 'वार' की भांति चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, सावन, भाद्रपद, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, तथा फाल्गुन 12 मासों के आधार पर लिखी गईं गुरु-कवियों की दो कृतियाँ[27] तथा बसंत, ग्रीष्म, सावन, शरद, शिशिर और हिमकर षड्ऋतुओं के आधार पर रची एक कृति[28] आदि ग्रंथ में मिलती है। इस प्रकार की अनेक गेय कृतियों को प्रबंध के विस्तीर्ण क्षेत्र के अंतर्गत स्थान देने की ओर शास्त्रकारों का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए।

इस प्रकार, प्रबंध का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। संत-काव्य के विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिये तो यह शोध का स्वतंत्र विषय हो सकता है, अतः शोध-प्रबंध की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए, निर्गुण संतों के पद-साहित्य का विहंगम दृष्टि से अध्ययन एवं विस्तार ही संभव हो सका है, फिर भी प्रबंध-भेद, प्रबंध-धातु एवं प्रबंधांग; प्रबंध के समस्त प्रमुख पक्षों की दृष्टि से संत-काव्य की विवेचना करने का प्रस्तुत अध्याय में अल्प प्रयास किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ख) संतकाव्य में 'प्रबंध-धातुओं का अस्तित्व'

प्रबंध के हमारे यहाँ सामान्यतः 4 धातु माने गए हैं-उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग। कुछ प्रबंध-भेदों में ध्रुव और आभोग के मध्य में एक 5 वें धातु की स्थिति भी मानी गई है।

उपर्युक्त धातु-चतुष्ट्य को गीतखंड कहा जा सकता है। इसका अल्प परिचय एवं निर्गुण संतों की पदावली में प्राप्त इनके उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं।

1. उद्ग्राह—गीत के उस प्रथम भाग को 'उद्ग्राह' कहते हैं, जो गीत का 'ध्रुव' पकड़ने से पूर्व प्रायः अताल गाया जाता है। संतों के पदों में वहाँ उद्ग्राह की स्थिति मानी जा सकती है, जहाँ पद से पूर्व एक,दो अथवा अधिक छंदों में संबंधित आगामी संपूर्ण पद में रहने वाले भाव अथवा वर्ण्य-विषय का संक्षेप में निष्कर्ष सन्निहित रहता है। गीतगोविन्द में भी इतिवृत्तात्मक शैली में उक्त ढंग के 'उद्ग्राह' के उदाहरण मिलते हैं, यथा; अष्टपदी से पूर्व निम्न दो श्लोक हैं।[29]

1. पद्मपयोधरतटीपरिरम्भलग्न—
काश्मीर मुद्रित मुरो मधुसूदनस्य ॥
व्यक्तानुरागमिव खेलदनंगखेद—
स्वेदाम्बुपूरनुपूरयतु प्रियं वः ॥1॥

2. वसन्ते वासन्ती कुसुमसुकुमारैवयवै -
र्ममन्तीं कान्तारे बहुविहितकृष्णानुसरणाम्।
अमन्द कंदर्पज्वरजनितखचिन्ताकुलतया
चलद्बाधां राधां सरसमिदमुचे सहचरी ॥2॥

अष्टपदी[30]:—

ललितलवंगलतापरिशीलन कोमलमलयसमीरे।
मधुकरनिकरकरम्बित कोकिलकूजितकुंजकुटीरे।।
विरहति हरिरिह सरस वसन्ते नृत्यते युवतिजने
समं सखि विहि जनस्य दुरंते ।।1।। ध्रुव।।

उद्ग्राह के प्रतिपादक जयदेव के उपर्युक्त षष्टपदी से पूर्व उद्धृत दोनों श्लोकों के साथ निर्गुण-संतों के निम्न छंद तुलनीय हैं।

सिरी राग के छंत[31] म. 5

(1) डखणा।। *हठ मकाहू मा पिरी पसे किउ दीदार ॥*
संत सरणाई लभणे नानक प्राण अधार ॥1॥
छंत ॥ चरन कमल सिउ प्रीति रीति संतन मनि आवये जीउ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिरी राग के छंत[31] म. 5

(1) डखणा।। *हठ मकाहू मा पिरी पसे किउ दीदार ॥*
संत सरणाई लभणे नानक प्राण अधार ॥1॥
छंत ॥ चरन कमल सिउ प्रीति रीति संतन मनि आवये जीउ ॥
दुतीआ माउ बिपरीति अनीति दासा नउ भावये जीउ ॥
दासा नह भावये जिनु दरसावये इक खिनु धीरज किउ करे ॥
नाम बिहूना तनु मनु हीना जल बिनु मछुली जिउ मरे ॥
मिलु मेरे पिआरे प्रान अधारे गुण साध संगि मिलि गावये ॥
नानक के सुआमी धारि अनुग्रह मनि तनि अंकि समावये ॥1॥

उक्त उदाहरण में 'डखणा' अर्थात् 'दोहा' छंत रूप 'पद' का अंग है। 'छंत' में जो भाव व्यास शैली में है, उसका 'डखणा' में वही भाव समास-शैली में निहित है। इसके अतिरिक्त 'डखणा' के पश्चात् 'छंत' पर भी '1' का अंक उसे छंत का अंग सिद्ध करता है। प्रस्तुत संदर्भ में उपर्युक्त 'डखणा' को उद्ग्राह कहा जा सकता है।

संत पदावली में से उद्ग्राह के कुछ अन्य उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

गउड़ी बावनअखरी [32] म. 5

सलोक ॥ निरंकार आकार अपि निरगुन सरगुन एक॥
एकहि एक बखाननो नानक एक अनेक ॥1॥
पडड़ी ॥ *ओअं गुरमुखि कीओ अकारा ॥ ऐकहि सूति परोवन हारा ॥*
भिन्न भिन्न त्रेगुण बिसथारं ॥ निरगुन ते सरगुन दृसटारं ॥
सगल भाति करि करहि उपाइयो॥ जनम मरन मन मोहु बढाइओ॥
दुहू भाति ते आपि निरारा ॥ नानक अंतु न पारावारा ॥2॥

उक्त उदाहरण में 'सलोकु' को 'उद्ग्राह' समझा जा सकता है।

गुरु अर्जुनदेव की 'सुखमनी' नामक वाणी में अष्टपदियों से पूर्व रहने वाले 'सलोकों' में भी 'उद्ग्राह' की स्थिति मानी जा सकती है। एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है।

गउड़ी सुखमनी[33] म. 5

सलोक ॥ आदि गुरु ए नमह ॥ जुगादि गुरु नमह ॥
सतिगुर ए नमह। स्री गुरदेव ए नमह ॥1॥
अष्टपदी ॥ सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ ॥
कलि कलेस तन माहि मिटावउ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिमरउ जासु बिसुंभर एकै ॥ नामु जपत अगनत अनेके ॥
बेद पुरान सिमृति सुधाखर ॥ कीने रामनाम इक आखर ॥
किनका एक जिसु जीअ बसावे ॥ ताकी महिमा गनी न आवे ॥
कांखी एकै दरस तुहारो ॥ नानक उन संगि मोहि उधारो ॥1॥

यहाँ 'सलोकु' को 'उद्ग्राह' समझा जा सकता है। आ. ग्रं. में संकलित संतों की समस्त 'बानियों' 'वारों' आदि में जहाँ 'पउड़ी' अष्टपदी अथवा किसी अन्य छंद के साथ 'सलोकु संगृहीत है, वहाँ 'सलोकों' के लिए 'उद्ग्राह' की परिकल्पना की जा सकती है।

इस प्रसंग में एक बात की ओर विशेष ध्यान जाता है, संतों के अधिकांश पदों में 'रहाउ' अथवा 'ध्रुव' से पूर्व कुछ पंक्तियाँ रहती हैं, जिनमें 'उद्ग्राह' की स्थिति का आभास मिलता है, यथा

'सुरग बासु न वाछीये, डरीये न नरकि निवासु।[34]
होना है सो होई है, मनहि न कीजै आस ॥1॥
रमइआ गुन गाईऐ ॥ जाते पाईऐ परम निधानु ॥ रहाउ ॥

उक्त पदांश में 'रहाउ' से पूर्व रहने वाली 'सुरग' बासु न बाछीये डरीये न नरकि निवासु। होना है सो होईहै, मनहि न कीजै आस' इन दो पंक्तियों में उद्ग्राह' के अस्तित्व का आभास मिलता है, किंतु पद-गायन के समय, उक्त द्विपंक्तियों को उद्ग्राह के रूप में न गाकर 'ध्रुव' को गा लेने के पश्चात् उन्हें अंतरे का एक पाद मानकर ही गाया जाता है। गु.सं. में दी गई उक्त पद की स्वरलिपि यहाँ उदाहरणार्थ उद्धृत की जाती है।

राग माझ, आड़ा चौताला, विलम्बित लय[35]

स्थायी

×		2		0		3		0		4		0	
									स	स	रेम	रेम	—प
									जा	ते	पाऽ	ईअै	ऽऽ
सं	नि	ध	प	—	ध	म	—	ग	रे	—	रेप	—ग	—रे
प	र	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	म	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	पर	ऽम	ऽनि
×		2		0		3		0		4		0	
ग	स	स	स——	स	रे-	ऩि	ऩि	—					
धा	ऽ	नु	रमई	आ	गुन	गाई	अै	ऽ					
×		2		0		3		0					

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंतरा

										4		0	
									स	सरे	ग	ग	म–
									सु	रग	बा	सु	नऽ
म	–	–	–	–प	–ध	पध निसं	–	–	–	–	नि	–ध	प–
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽबा	ऽछी	अैऽऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	हे	ऽपि	आरे
×		2		0		3		0		4		0	
प	धप	म	–	ग	रे	–	–	–	–	रे	रेप	–ग	–रे
ड	रीऽ	अै	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	न	नर	ऽकि	ऽनि
×		2		0		3		0		4		0	
ग	स	स	स–	स	रे	रेनि	नि	–	स	स	रेम	रेम	–प
वा	ऽ	सु	रमई	आ	गुन	गाई	अै	ऽ	जा	ते	पाऽ	इअै	ऽऽ
×		2		0		3		0		4		0	

इसी ढंग से (अर्थात् प्रथम द्विपंक्तियों को 'उद्ग्राह' न मानकर शेष पद का एक विभाग मानकर अंतरे की भांति गाना है। गीतगोविंद की अष्टपदियों का भी गायन हमने प्रत्यक्ष सुना है,[36] अतः उद्ग्राह का आभास मिलने पर भी पद के अंतर्गत स्थान पाने वाली प्रथम पंक्तियों को पीछे दिए गए उदाहरण में 'उद्ग्राह' नहीं कहा जा सकता।

भैरवी : ताल कहरवा

स्थायी

ग	सारे	–	ग	म	पम	ग	रे	ग	म	–	सा	रे	नि		
ज	य	ऽ	ज	ऽ	ऽऽ	दे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	व	ऽ	ह		
सा	–	––	रे–	ग	रे	ग	रे	ग	रे	ग	रे	मगग	-		
रे	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ह	ऽ	रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽऽ	ऽ		
रे	नि	सा	रे	–	ग	म	पम	ग	रे	ग	म	–	सा	रे	नि
ऽ	ऽ	ज	य	ऽ	ज	य	ऽऽ	दे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	व	ऽ	ह
सा	–	–	–	–	–	म	ग	म	ग	म	ग	म	ग	पमम	-
रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ह	ऽ	रे	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽऽ	ऽ
ग	सा	सा	ग	–	म	प	धप	म	ग	पमम	–	ग	सा	रे	नि
ऽ	ऽ	ज	य	ऽ	ज	य	ऽऽ	दे	ऽ	ऽऽऽ	ऽ	ऽ	व	ह	ह
सा	–	–	–	–	–	सां	नि	रें	सा	निध	–	पम	–	ग	रे
रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	हऽ	ऽ	रे	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा नि | सा ग | — म | प —ध | — नि | धम — | — ग | सा रे
ऽ ऽ | ज य | ऽ ज | य ऽऽ | ऽ ऽ | देऽ ऽ | ऽ व | ऽ ह
ग सा रे - - - - - - - -

अंतरा-1

— — | गसा रे | — सा | नि — | साग— | मप — | प—ध | मप —
ऽ ऽ | श्रित ऽ | ऽ क | म ऽ | लाऽऽ | ऽऽ ऽ | कु ऽऽ | चऽ ऽ
— — | निध पध | — नि | रें — | सां नि | सां — | नि ध | सा नि
ऽ ऽ | मऽ ऽऽ | ऽ ण्ड | ल ऽ | धृ ऽ | त ऽ | कु ऽ | ऽ ऽ
धप — | निध धा | प म | धप — | — — | साग रे | — ग | — म
ण्ड ऽ | ल ऽ | हे ऽ | ऽ ऽ | ऽ ऽ | क लि | ऽ त | ऽ ल
प — | नि ध | सानि ध | — प | — धप | ध म | प ग | — म
लि ऽ | त ऽ | ऽ व | ऽ न | ऽ माऽ | ऽ ऽ | ऽ ऽ | ऽ ऽ
— सा | सा ग | — म | प धप | म ग | पम मऽ | ग सा | रे नि
ऽ ल | ज य | ऽ ज | य ऽऽ | ऽ दे | ऽऽ ऽऽ | ऽ व | ऽ ह
सा — | — — | — — | सां नि | रें सां | नि ध | प म | ग रे
रे ऽ | ऽ ऽ | ऽ ऽ | ह ऽ | रे ऽ | ऽ ऽ | ऽ ऽ | ऽ ऽ
सा नि | सा ग | — म | प —ध | — नि | धम — | ग — | सा रे
ऽ ऽ | ज य | ऽ ज | य ऽऽ | ऽ ऽ | देऽ ऽ | ऽव ऽ | ऽ ह
गसा | — | — | — | — | — | — | —
रे | ऽ | ऽ | ऽ | ऽ | ऽ | ऽ | ऽ

(नोट —3, 5, 7 संख्यक अंतरे भी इसी प्रकार रहेंगे।)

अंतरा-2

— — | ग म | — ध | म — | धसां— | — नि | गरें — | सां —
ऽ ऽ | दि न | ऽ म | णि ऽ | मऽ ऽ | ऽ ऽ | ण्ड ऽ | ल ऽ
— — | गसां रे | — गं | मं — | गरें — | गं — | रेंसां — | रें —
ऽ ऽ | म ऽ | ऽ ण्ड | न ऽ | मऽ ऽ | व ऽ | ख ऽ | ऽ ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सां	नि	सां	ऽ	[नि]धप	—	[म]प	—	—	—	पगं	—	—	रें	गं	—
ण्ड	ऽ	न	ऽ	हेऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	मुनि	ऽ	ऽ	ज	न	ऽ
सारें	—	निसां	—	—	ध	प	—	धप	—	धम	—	पग	—	म	—
माऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	न	स	ऽ	हंऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ
—	सा	साग	—	—	म	प	धप	मग	—	पमप्र	—	ग	सा	रे	नि
ऽ	स	जऽ	य	ऽ	ज	ज	ऽऽ	देऽ	ऽ	ऽऽऽ	ऽ	ऽ	व	ऽ	ह
सा	—	—	—	—	—	सां	नि	रे	सां	नि	ध	प	म	ग	रे
रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ह	ऽ	रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
सा	नि	सा	ग	—	म	प	-ध	—	नि	ध	प	—	ग	सा	रे
ऽ	ऽ	ज	य	ऽ	ज	य	ऽऽ	ऽ	ऽ	दे	ऽ	ऽ	व	ऽ	ह
[ग]सा		—		—		—		—		—		—		—	
रे		ऽ		ऽ		ऽ		ऽ		ऽ		ऽ		ऽ	

(नोट :- 4, 6, 8 संख्यक अंतरे इसी प्रकार रहेंगे।)

— श्री कला संगीत भारती, का. हि. वि. वि, दैनिक प्रार्थना, 1960।

2. ध्रुव- प्रबंध का द्वितीय धातु 'ध्रुव' है। 'ध्रुव' गीत के उस अंश को कहते हैं जो, उसके अंत तक प्रत्येक कड़ी के बाद पुनरावृत्त होता रहता है।

आ. ग्रं. 'रहाउ' शब्द प्रायः 'ध्रुव' का वाचक है। यथा;

' काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरि जीउ परिआ।

सेल पथर महि जंत उपाये, ताका रिजकु आगे करि धरिआ ॥1॥

मेरे माधउ जी सतसंगति मिले सि तरिआ।

गुरु परसादि परम पदु पाइआ सूके कातस हरिआ ॥ रहाउ॥'[37]

उक्त पद्यांश में 'मेरे माधउ जी सत संगति मिले सि तरिआ 'यह पंक्ति 'टेक' कही जा सकती है। इससे अगली पंक्ति 'टेक' का अंग रूप होने के कारण संभवतः 'रहाउ' शब्द का उल्लेख उसके बाद किया गया है।

रागियों की परंपरा में 'रहाउ' शब्द 'विश्राम' (pause) का भी बोधक है। गुरुद्वारों में 'शबद' गाते समय प्रथम पंक्ति को 'टेक' बना 'रहाउ' वाली पंक्ति को गा लेने के अनंतर 'रहाउ' शब्द का पाठ्य रूप में उच्चारण कर, अगले पदों को गाने की शैली भी देखी गई है, परंतु स्थूल मान से, पद में 'रहाउ' शब्द 'टेक' अथवा 'ध्रुव' के लिए ही प्रयुक्त होता है। निर्गुण संतों के आ. ग्रं के अतिरिक्त अन्य पद-संग्रहों में 'ध्रुव' के लिए सामान्यतः 'टेक' शब्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का प्रयोग मिलता है।

'ध्रुव' के स्थान पर आज 'स्थायी' शब्द प्रचार पा चुका है, ऐसा स्थूल दृष्टि से कहा जा सकता है। गु. सं. पुस्तक में प्राप्त स्वरलिपियों में 'रहाउ' को प्रायः 'स्थायी' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, एक स्वरलिपि उदाहरणार्थ यहाँ उद्धृत की जाती है।

राग वडहंस, ढाई ताल, मध्य लय[38]

गुर पूरै मेरी राखि लई ॥
अमृत नामु रिदे महि दीनों जनम जनम की मैलु गई ॥1॥ रहाउ ॥
निवरे दूत दुसट बेराई गुर पूरे का जपिआ जापु ॥
कहा करै कोई बेचारा प्रभ मेरे का बड़ परताप ॥1॥
सिमरि सिमरि सुखु पाइआ चरन कमल रखु मन माही ॥
ताकी सरनि परिओ नानकदास जाते उपरि को नाही ॥2॥

स्थाई

0 (सम)			2		3		0			2		3	
			रे	—	ग	म	प	—	—	प	ध	सं	सं
			रा	ऽ	ख	ल	ई	ऽ	ऽ	रा	ख	ल	ई
			2		3		0			2		3	
सं	नि	ध	प	ध	म	म	ग	—	प	म	ग	रे	स
गु	र	पू	रे	ऽ	मे	री	रा	ऽ	ख	ल	ई	ऽ	ऽ
0			2		3		0			2		3	
ऩि	ऩि	ऩि	ऩि	—	प़	ऩि	स	—	रेग	स	—	स	—
अम	रि	त	ना	—	म	रि	दे	ऽ	महि	दी	ऽ	नो	ऽ
0			2		3		0			2		3	
सऽ	स	स	रे	ग	म	प	ग	—	रेस	रे	—	ग	म
जन	म	ज	न	म	की	ऽ	मैं	ऽ	ल	मे	ल	ऽ	ग
0			2		3		0			2		3	
प	—	स											
ई	ऽ	ऽ											
0													

अंतरा

म	म	म	प	—	नि	—	संऽ	सं	सं	सं	—	सं	—
नि	व	रे	दू	ऽ	त	ऽ	दुख	ट	बे	रा	ऽ	ई	ऽ
0			2		3		0			2		3	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नि	नि	नि	नि	–	सं	–	नि	सं	रेंसं	नि	धध	प	प
गु	र	पू	रे	ऽ	का	ऽ	ज	पि	आ	जा	पऽ	क	ह्य
0			2		3		0			2		3	
सं	सं	सं	सं	–	सं	रें	संनि	–	ध	प	ध	म	–
क	रे	को	ई	ऽ	बे	ऽ	चाऽ	ऽ	रा	प्र	भु	मे	ऽ
0			2		3		0			2		3	
ग	–	रेस	रे	ग	म	प	ग	–	रेस	रे	–	ग	म
रे	ऽ	काऽ	ब	ड़	प	र	ता	ऽ	पऽ	रा	ऽ	ख	ल
0			2		3		0			2		3	

किन्तु कहीं-कहीं इस नियम का उल्लंघन भी मिलता है। संगीतज्ञ, पद में निर्दिष्ट 'ध्रुव' को ही सदा 'ध्रुव' रूप में ग्रहण नहीं करता, अपितु बहुधा वह पद की किन्हीं भी स्वर-अंलकरण-हेतु उपयुक्त पंक्तियों को स्वेच्छा से स्थायी अंतरा बना लेता है। यथा, निम्न पद में प्रथम पंक्ति का 'यारां' शब्द लेकर पद की छठी और 7 वीं दोनों पंक्तियों को 'स्थायी' बनाया गया है तथा उनसे पूर्व की 'रहाउ' तक की पंक्तियों को 'अंतरा' बना लिया गया है। पद एवं स्वरलिपि नीचे प्रस्तुत है।

राग आसावरी, ताल फ़रोदस्त, विलम्बित[39]

'हले यारां हले यारां खुसिखबरी ॥
बलि बलि जांउं हउं बलि बलि जांउं ॥
नीकी तेरी बिगारी आले तेरा नाउ ॥1॥ रहाउ ॥
कूजा आमद कूजा हफती कूजा मेरवी ॥
द्वारिका नगरी रासि बुगोई ॥
खूब तेरी पगरी मीठे तेरे बोल ॥
द्वारिका नगरी काहे के भग्मेल ॥2॥
चंदी हजार आलम ऐक लखांना ॥
हम चिनी पातिहाह सांवले बरना ॥3॥
असपति गजपति नरह नरिंदं ॥
नामे के स्वामी मरि मुकुंद ॥4॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थाई

×	2	3	4	5	6
		ग रेम	गुरे सस	रेरे म –	पध मप ऽसं
		या रां	खूबु तेरी	पग री ऽ	मीऽ ठेते ऽरे
निधऽ –	प –	प गं	रेंरें सं	नि निधऽ पम	पध मप –सं
बोल ऽ	ल ऽ	या रां	द्वारि का	नग रीऽऽ कुऽऽ	काऽ हेके ऽम
×	2	3	4	5	6
निधु –	प –				
ग्मे ऽ	ल ऽ				
×	2				

अंतरा[40]

×	2	3	4	5	6
		प प	पधु मम	पधु -नि –धु	सं –सं –सं
		या रां	हले यारां	हले ऽया ऽरां	खुसि ख ऽब
सं –	– –	प गं	रेंरें संसं	निऽ ध पम	पधु मप –सं
री ऽ	ऽ ऽ	या रां	बलि बलि	जांउं ऽ ऽऽ	बऽ लिब ऽलि
×	2	3	4	5	6
निध –	प –	ग रेम	गुरे सस	रे स – पध	मप –सं
जा ऽ	ऊं, ऽ	या रांऽ	नीकी तेरीबि	गा ऽ री आऽ	लेते ऽरा
×	2	3	4	5	6
निधु –	प –				
नां	ऊँ ऽ				

गु. सं. में म. 5 के एक पद में 'रहाउ' से पार्श्ववर्ती दो पंक्तियों को ही स्थाई-अंतरा बना लिया गया है और पद की प्रथम पंक्ति को ही 'ध्रुव' बना लिया गया है। पद पीछे दिया जा चुका है, अतः यहाँ स्वरलिपि ही उद्धृत की जा रही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग गूजरी, ताल आड़ा (चौताल) विलंबित[41]

स्थाई

	2	0	3	0	4	0
			स नि़	स ग	रे ग	म –ध
			का हे	रे म	न चि	त वहि
नि ध	– –	म ग	स नि़	स ग	रे ग	म धऽ
उ द	ऽ ऽ	ऽ मु	का हे	रे म	न चि	त वहि
×	2	0	3	0	4	0
नि ध	ध म	– ध	(नि)सं सं	सं ध	नि सं	रें गं रें
उ द	मु जा	ऽ आ	ऽ ह	रि ह	रि जी	ऽ उ
×	2	0	3	0	4	0
सरें संनि	धनि धम	गम गरे	स नि़	स ग	रे ग	म धऽ
पऽ रिऽ	आऽ ऽऽ	ऽऽ ऽऽ	का हे	रे म	न चि	त वहि
×	2	0	3	0	4	0

अंतरा

म म	ध सं	सं संऽ	सं (नि)ध	(नि)सं गं	रें –	सं–
से ल	प थ	र महि	ऽ जं	त उ	पा ऽ	ये ऽ
×	2	0	3	0	4	0
गं –	रें सं	– नि	सं ध	नि म	–ध	– नि
ता ऽ	ऽ का	ऽ रि	ज कु	आ गे	ऽ क	ऽ रि
×	2	0	3	0	4	0
सरें संनि	धनि धम	गम गरे				
धऽ ऽरि	आऽ ऽऽ	ऽऽ ऽऽ				
×	2	0				

गुं सं. में म. 5 के एक अन्य पद में भी 'ध्रुव' वाली पंक्ति का गायन में क्रम-विपर्यय द्रष्टव्य है। इस पद में 'रहाउ' से पूर्व की पंक्तियों को 'स्थायी' बनाकर 'रहाउ' वाली द्विपंक्तियों तथा पद के शेष पादों को 'अंतरे' में सन्निविष्ट कर दिया गया है। पद एवं उसकी स्वरलिपि नीचे प्रस्तुत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग नट, पड़ताल-तीनताल, मध्यलय[12]

कोऊ है मेरो साजनु मीतु ॥ हरिनाम सुनावे नीत ॥
विनसे दुखु बिपरीति ॥ सभु अरपउ मनु तनु चीतु ॥1॥ रहाउ॥
कोई बिरला आपन कीत ॥ संगि चरन कमल मनु सीत ॥
करि किरपा हरि जसु दीत ॥ 1 ॥ हरि भजि जनमु पदारथु जीत ॥
कोटि पतित होहि पुनीत ॥ नानकदास बलि बलि कीत ॥ 2 ॥

स्थाई

2 0 3
प ध | म — म रे | — ग म ध
को ऊ | है ऽ मे रो | ऽ सा ज नु
सं — ध — | प — ध ध | म — म — | ग म प प
मी ऽ ऽ ऽ | त ऽ ह रि | ना ऽ म ऽ | सु ना ऽ वे
× 2 0 2
म — रे — | स — स स | सं — सं — | नि ध नि सँरें
नी ऽ ऽ ऽ | त ऽ ह रि | ना ऽ म ऽ | सु ना ऽ वेऽ
× 2
सं — नि — | सं ध
नी ऽ ऽ ऽ | त ऽ
× 2

अंतरा, ढाई ताल

0 2 3 0 2 3
स स स | रे रे | ग म | प — — | प — | प प
बि न से | दु ख | बि प | री ऽ ऽ | त ऽ | स भु
प प प | म प | ध ध | प म पधप | म रे | प प
अ र पउ | म न | त नु | ची ऽ ऽऽऽ | त ऽ | को ई
0 2 3 0 2 3
म म म | रे — | स स | म रे — | प — | प प
बि र ला | आ ऽ | प न | की ऽ ऽ | तं ऽ | सं ग
0 2 3 0 2 3

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीनताल[13]

सं–	सं	सं	ध	नि	सं	रें	सं	–	नि	–	सं	ध	प	ध
चर	न	क	म	ल	म	न	सी	ऽ	ऽ	ऽ	त	ऽ	को	ऊ।
0			2		3		×				2			

अंतरा दूसरा, यक्का मध्यलय[14]

×		0		2		0		3		4	
										स	स
										क	रि
स	म	रे	रेरे	ग	म	प	–	प	पऽ	प	प
कि	र	पा	हरि	ज	स	दी	ऽ	त	हरि	भ	ज
×		0		2		0		3		4	
पऽ	प	प	प	ध	ध	प	म	पधप	म	रे	रे
जन	मु	प	दा	र	थ	जी	ऽ	ऽऽऽ	त	को	टि
×		0		2		0		3		4	
म	म	रे	स	ऩि	स	म	–	रे	रे	प	प–
प	ति	त	हो	इ	पु	नी	ऽ	ऽ	त	ना	नक
×		0		2		0		3		4	
सं	–	–	–	–	नि	ध	–	नि	सं	–	रें
दा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	स	ब	ऽ	लि	ब	ऽ	लि
×		0		2		0		3		4	

तीनताल[15]

सं	–	नि	–	सं	ध	प	ध
की	ऽ	ऽ	ऽ	त	ऽ	को	ऊ
×				2			

गु. सं. में म. 5 के एक पद की स्वरलिपि में 'ध्रव' की दोनों पंक्तियों को क्रमशः स्थायी, अंतरा बना लिया गया है। पद एवं स्वरलिपि निम्नांकित हैं।

राग आसा, ताल यक्का, मध्यलय[16]

गुरु पूरा मेरा गुरु पूरा ॥राम नाम जपि सदा सुहेला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सगल बिनासे रोग कूरा ॥1॥ रहाउ ॥
एक अराधहु साचा सोई ॥ जाकी सरनि सदा सुखु होई ॥ 1 ॥
नींद सुहेली नाम की लागी भूखा ॥ हरि सिमरत बिनसे सभ दूखा ॥ 2 ॥
सहजि अनंद करह मेरे भाई ॥ गुरु पूरे सभ चिंत मिटाई ॥ 3 ॥
आठ पहर प्रभु का जपु जापि ॥ नानक राखा होआ आपि ॥ 4 ॥

स्थाई[47]

× 0 2 0 3 4
| — म | ग म | म — | — धनि | प ध
| ऽ गु | रु पू | रा ऽ | ऽ मेऽ | ऽ रा

0 2 0 3 4
सं सं | — नि | ध प | ध प | म गम | प ध
गु रु | ऽ ऽ | ऽ पू | रा ऽ | ऽ ऽऽ | ऽ ऽ

× 0 2 0 3 4
प — | — ध | प ध | पम — | प मग | — म
ऽ ऽ | ऽ गु | रु पू | रा ऽ | ऽ मे | ऽ रा

× 0 2 0 3 4
ध प | — मग | रेसा रे | ग — | — मग | रेस रे
गु रु | ऽ ऽऽ | ऽऽ पू | रा ऽ | ऽ ऽऽ | ऽऽ ऽ

स — | — । |
ऽ ऽ | ऽ । |
× 0

अंतरा

× 0 2 0 3 4
| — प | — ध | सं — | सं सं | सं —
| ऽ रा | ऽ म | ना ऽ | म ज | पि ऽ

0 2 0 3 4
— — | — सं | सं रें | सरें गं | रें सं | — —
ऽ ऽ | ऽ स | दा सु | हेऽ ऽ | ऽ ला | ऽ ऽ
× 0 2 0 2 4

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रें	सं	नि	धप	म	गम	प	—	—	धनि	प	ध
ऽ	ऽ	ऽ	सग	ल	बिऽ	ना	ऽ	ऽ	सेऽ	ऽ	ऽ
×		0		2		0		3		4	
सं	—	—	नि	ध	प	ध	प	म	गम	प	ध
ऽ	ऽ	ऽ	रो	ऽ	ग	कू	ऽ	ऽ	राऽ	ऽ	ऽ
×		0		2		0		3		4	
प	—	—	—								
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ								
×		0									

इस प्रकार हमने देखा कि पदों में 'ध्रुव' का निर्देश रहने पर भी गायक कभी-कभी निर्दिष्ट 'टेक' की अपेक्षा, पद की किसी अन्य पंक्ति को 'ध्रुव' के अनुकूल संक्षिप्त, सुगम एवं स्वर-संदर्भ के अनुकूल पाकर अथवा उसके शब्द-संघटन के वैशिष्ट्य के कारण उसे 'टेक' बना लेता है और इस प्रकार ध्रुव तथा आभोग के पदों में क्रम-विपर्यय स्वभावतः हो जाता है, किंतु 'ध्रुव' की सत्ता हमारे संगीत में आज भी विद्यमान है।

3. मेलापक— शास्त्रों में वर्णित प्रबंध के तृतीय धातु को 'मेलापक' संज्ञा दी गई है। मेलापक की स्थिति 'उद्ग्राह' और 'ध्रुव' के बीच में कही गई है। 'मेलापक' का अर्थ है, मिलानेवाला। 'उद्ग्राह' और 'ध्रुव' को मिलाने का हेतु होने के कारण ही इस प्रबंध-धातु को 'मेलापक' संज्ञा से अभिहित किया गया है।

निर्गुण संतों के पदों में 'मेलापक' धातु के उदाहरण खोजना कठिन है। यह धातुनाम आज शास्त्रीय-संगीत में संभवतः पूर्णतः लुप्त हो चुका है।

4.आभोग— चतुर्थ धातु अथवा गीत के अंतिम भाग को 'आभोग' नाम दिया गया है। 'ध्रुव' और 'आभोग' ही प्रमुख गीतखंड हैं। इन्हें ही आज व्यवहार में स्थायी, अंतरा कहा जाता है। ख्याल शैली में संक्षिप्त शब्द-रचना के कारण स्थायी और अंतरा, ये दो प्रबंध धातु ही आज प्रचार में हैं, किन्तु 'अंतरा' शब्द का उक्त प्रसंग में प्रयोग सार्थक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि 'अंतरा' का अर्थ है, दो धातुओं (सामान्यतः ध्रुव और आभोग के मध्य में रहने वाला) के मध्य में रहने वाला धातु जबकि ख्याल-रचना में आज स्थायी और अंतरा केवल दो धातुओं का प्रयोग होता है। प्रथम धातु को 'स्थाई' तथा दूसरे को 'अंतरा' कहने का प्रचलन हो गया है। वास्तव में द्वितीय धातु को 'आभोग' कहना ही संगत है। ध्रुपद में अंतरे की स्थिति ध्रुव और आभोग के मध्य में रहती है, अतः वहाँ 'अंतरा' शब्द का प्रचलन सार्थक कहा जा सकता है।

'आभोग' नामक धातु का प्रयोग आज केवल ध्रुपद में होता है। ध्रुपद के अंतर्गत चार धातुनाम का प्रयोग आज होता है—स्थाई, अंतरा, संचारी और आभोग।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज 'ध्रुव' का स्थान 'स्थाई' ने ले लिया है। 'अंतरा' अपने स्थान पर सार्थक है, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है। 'आभोग' धातु का प्रयोग भी संगत है, किन्तु संचारी 'नामक धातु नाम निरर्थक है क्योंकि 'संचारी' को 'स्थायी' की भाँति ही गाकर ध्रुव पकड़े बिना सीधे 'आभोग' नाम के गीतखंड को गाया जाता है अर्थात् 'संचारी' और 'आभोग' को ध्रुपद में इकट्ठा गाने का प्रचार है। पृथक् गीतखंड की भांति उसे नहीं गाया जाता। वास्तव में ध्रुपद में जिस गीतखंड को हम आज 'संचारी' कहने लगे हैं, वह 'आभोग' ही है। शास्त्रों में भी 'संचारी' नामक किसी धातुनाम का उल्लेख नहीं मिलता अतः यह धातुनाम शास्त्रीय परंपरा के ह्रास-काल का प्रतीत होता है।

गु. सं. में से उदाहरणार्थ ध्रुपद शैली में चारों धातुओं में निबद्ध म. 5 के एक पद की स्वरलिपि नीचे प्रस्तुत की जाती है।

राग आसावरी, चारताल, विलम्बित[18]

स्थाई

		0		2		0		3		4	
						—	सं	—	निध	—	प
						—	स	ऽ	र	ऽ	ब
						0		3		4	
पधमप	मग	रेसरे	म	—	प	—	ग	ग	रे	—	स
गुऽऽऽ	ण	निऽऽ	धा	ऽ	नं	ऽ	की	म	ति	ऽ	न
×		0		2		0		3		4	
स	स	रे	म	प	प	मग	—	ग	रे	—	स
की	म	ऽ	ति	ऽ	न	गा	ऽ	नं	धा	ऽ	नं
×		0		2		0		3		4	
स	स	रे	म	—	म	प	—	प	ध	सं	रें
ऊ	चै	ते	ऊ	ऽ	चै	जा	ऽ	नी	जै	प्र	भ
×	0		2		0		3		4		
सारें ग	रें	सं	रें	नि	ध	पम					
तेऽ	ऽ	रा	था	ऽ	नं	ऽऽ					
×		0		2		0					

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

अंतरा[49]

म	म	प	ध	—	सं	सं	—	सं	सं	—	सं
म	न	ऽ	ध	ऽ	नु	ते	ऽ	रो	प्रा	ऽ	नं
×		0		2		0		3		4	
ध	—	ध	सं	—	सं	संरेंगं	रे	सं	निसं	निध	प
ऐ	ऽ	के	सू	ऽ	ति	हे	ऽ	ऽ	ह्म	ऽ	नं
×		0		2		0		3		4	
स	स	रे	म	—	म	प	—	—	ध	—	सं
क	व	न	उ	ऽ	प	मा	ऽ	ऽ	दे	ऽ	उ
×		0		2		0		3		4	
रें	संरेंगं	रेंसं	सरें	सनिऽ	ध	पम					
ब	डैऽ	तेऽ	बऽ	डाऽ	नं	ऽऽ					
×		0		2		0					

संचारी[50]

स	स	रे	म	—	म	प	—	प	प	—	प
जा	ने	ऽ	कउ	ऽ	नु	ते	ऽ	रो	मो	ऽ	उ
×		0		2		0		3		4	
म	म	प	निध	—	प	प	म	प	मग	—	ग
अ	ल	ऽ	ख	ऽ	अ	पा	ऽ	रे	दे	ऽ	उ
×		0		2		0		3		4	
ग	ग	—	ग	—	ग	रे	—	रे	स	—	स
अ	क	ऽ	ल	ऽ	क	ला	ऽ	हे	प्र	ऽ	भ
×		0		2		0		3		4	
रे	म	—	प	—पध	मप	मग	—	—	रे	—	स
स	र	ऽ	ब	ऽकोऽ	ऽऽ	धा	ऽ	ऽ	नं	ऽ	ऽ
×		0		2		0		3		4	

आभोग

म	म	प	ध	ध	सं	सं	सं	सं	सं	—	सं
ज	न	ऽ	ना	न	क	म	ग	तु	द	ऽ	रि
×		0		2		0		3		4	

ध	—	ध	सं	—	रें	सं रेंगं	रें	सं	निसं	नि ध	प
तु	ऽ	लि	ब्रह	ऽ	म	स	म	ऽ	स	र	ऽ
×		0		2		0		3		4	

स	स	रे	म	—	प	प	प	—	प	पध	सां
ऐ	क	जीअ	ऽ	ऽ	किआ	बे	खा	ऽ	ने	हां	कि
×		0		2		0		3		4	

रें	सं रेंगं	रेंगं	रेंसं	—	रें	सं नि	नि	—	ध	पम	प
ब	लि	ऽऽ	बऽ	ऽ	लि	ब	लि	ऽ	ब	ऽऽ	लि
×		0		2		0		3		4	

सं	सं	सं	सरें	सं नि	ध	पम।
स	द	ब	लि	हा	र	ऽऽ।
×		0		2		0

इस प्रकार संतों के पद संग्रहों तथा गु. सं. पुस्तक में दी गई संतों के पदों की स्वरलिपियों के आधार पर मैंने ऊपर निर्गुण संत कवियों की पदावली में समाविष्ट प्रबंध— धातुओं का अध्ययन किया। संतों की ध्रुपद अंग की बंदिशों में स्थाई, (ध्रुव) अंतरा, संचारी और आभोग, इन धातु-चतुष्ट्य का प्रयोग मिलता है। निर्गुण कवियों के पद-संग्रहों में संगृहीत पदों में उद्ग्राह, ध्रुव आज का स्थाई और 'आभोग' धातुओं का समावेश है, यह भी हमने पीछे देखा है। यह सत्य है कि संतों के पद-संग्रहों में 'ध्रुव' के अतिरिक्त अन्य किसी प्रबन्ध-धातु का गीतखण्डों के पृथक् विभाजन के रूप में निर्देश नहीं मिलता और सर्वत्र पूरे पद को धारावाहिक रूप से ही दे दिया गया है, किन्तु इसका कारण संभवतः यही है कि संतों का लक्ष्य प्रबन्ध-धातु के नियमानुसार पद-रचना करना न था, फिर भी गेयता एवं बन्ध-तत्वों के कारण, उनकी पदावली में शास्त्र-ग्रंथों में वर्णित कतिपय प्रबन्ध-धातुओं के अनेक उदाहरण यत्र-तत्र अनिर्दिष्ट रूप में मिल जाते हैं, जिनका संक्षेप में ऊपर दिग्दर्शन कराया गया है। आगे प्रबन्धांगों के परिप्रेक्ष्य में संत-काव्य का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ग) संतकाव्य में उपलब्ध 'प्रबंधांग'

हमारे संगीत के शास्त्रों में प्रबन्ध के छः अंग स्वर, विरुद, पद, तेन अथवा तेनक, पाट और ताल कहे गए हैं।

'स्वर' का अर्थ स्पष्ट ही है। स्वर-रचना के द्वारा, प्रबन्ध में गेयता आती है, अतः स्वर, प्रबन्ध-रचना का, अनिवार्य अंग है।

"विरुद" के लिए सं. र. में कहा गया है—"विरुदं गुणनाम" अर्थात् गुण-सूचक नाम को "विरुद" कहते हैं। अर्थात् जिस प्रबन्ध में वर्ण्यपात्र के गुण-सूचक नामों का संग्रह हो, उसमें "विरुद" की सत्ता मानी जा सकती है। विशेषतः वीर रस की रचनाओं में इस प्रकार के नामों का बाहुल्य रहता है।[51] नायक के गुणों का वर्णन करके उसे उत्साह दिखाना या उत्तेजित करना ही "विरुद" का लक्ष्य है। ऐसी पदावली भाटों वाली रचनाओं में विशेष रूप से रहती है, किंतु संत कवियों द्वारा ओजपूर्ण शैली में भगवान् के अध्यात्म-युद्ध वीर के अनेक गुण-सूचक नामों का स्मरण भी व्यापक अर्थ में "विरुद" कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए सुन्दरदास का निम्न पद द्रष्टव्य है।

"सोई सूरवीर सावंत सिरोमनी,
रन में जाइ गलारे रे।"[52]

"पद" का अर्थ तो वाचक शब्द है ही। ऐसा शब्द जिसे न तो मंगलार्थ प्रकाशक होने के कारण "तेन" के अन्तर्गत रखा जा सके और न ही गुण-सूचक होने से "विरुद" कहा जा सके, वह "पद" कहलाता है। प्रायः समस्त निर्गुण संतकाव्य इस प्रकार के पदों का संग्रह है।

"तेन" का अर्थ है, मंगलार्थ-प्रकाशक पद, जैसे "हरि ऊँ" अथवा "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादि। इस प्रकार "तत्" पदार्थ के प्रकाशक पद अथवा वाक्य को "तेन" कहा गया है। "तेन" के उदाहरणों का भी संत-काव्य में अभाव नहीं कहा जा सकता। आ. ग्रं. के निम्नलिखित मूल मंत्र में भी "तेन" की सत्ता मानी जा सकती है:—

"ओं सतनाम करता पुरख निरभउ निरवैर अजूनी सैभं गुर परसादि।"

इस प्रकार संतों के पद-संग्रहों में "तेन" के अनेक उदाहरण खोजे जा सकते हैं। कबीर के निम्न पद में "ओं नमः सिद्ध अंग" का अपभ्रंश "ओनामासीधंग" पद पर मिलता है, जिसे कि "तेन" के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

"पढ़ो मन ओनामासीधंग।
ओंकार सबै कोइ सिरजे, सबद सरूपी अंग।"

"पाट" का मुख्य अर्थ है, ताल वाद्यों पर बजने वाले वर्ण-समूह। गौण रूप से किसी भी वाद्य से संबद्ध अक्षरों को "पाद" कह सकते हैं। जैसे वीणा के "दिर दिर" आदि ताल-वाद्य गायन की संगति में बजाये जाते हैं, अतः स्थूल दृष्टि से "पाट" को "ताल" से पृथक् रूप में प्रबन्ध का अंग मानना अनावश्यक प्रतीत होता है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्रकारों द्वारा इसे स्वतंत्र स्थान के दो कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम यह कि गीत की रचना करते समय जिस ताल-विशिष्ट में उसे "बिठाना" हो, उस ताल के ठेके के "वज़न" का भी वाग्गेयकार को ध्यान रखना पड़ता है। तथा द्वितीय यह कि "पाट" का सम्बन्ध केवल ताल-वाद्यों पर बजने वाले वर्गों से है, जबकि "ताल" का क्षेत्र "पाट" से व्यापक है, उसका एक वृहद् शास्त्र है। पाटाक्षरों एवं सार्थक शब्दों का वादन अथवा गायन में नियमन "ताल" का क्षेत्र है, जिसके कारण "पाट" एवं "ताल" एक दूसरे से अभिन्न रूप से संबद्ध होते हुए भी दोनों प्रबंधांगों को पृथक्-पृथक् रूप में स्वीकार किया गया है। अतः उक्त दो तथ्यों पर विचार करने पर "पाट" को ताल से प्रबन्ध का पृथक् अंग मानना उचित ही प्रतीत होता है। पाटाक्षरों से निर्मित सुन्दरदासजी की एक रचना "पाट" प्रबंधांग के प्रसंग में, संतकाव्य में से उदाहरण स्वरूप यहाँ प्रस्तुत की जाती है।

"तत थेई तत थेई तत थेई ता धी।
नागड़ धी नागड़ धी नागड़ धी ना धी।
थुंगनि थुंगनि थुंगनि थुंगा, त्रिघट उघटितत तुरिय उतंगा।। 1।।
तन नन तन नन तन नन तन्ना, गुप्ता गगनवत आतम भिन्ना।। 2।।
तत् त्वं तत् त्वं तत् सो त्वं असि, सामवेद यों वदत तत्वमसि।। 3।।
अद्भुत निरतत नासत मोहं, सुंदर गावत सोहं सोहं।।4।।" [53]

यद्यपि उक्त रचना पूरी पाटाक्षरों से निर्मित नहीं है, फिर भी उसमें तत, थेई, नागड़ धी, थुंग, तत, आदि पाटाक्षरों का प्रयोग द्रष्टव्य है। उक्त कृति "कैवाड़" प्रबन्ध की एक सार्थक रचना कही जा सकती है, इसका उल्लेख मैंने उक्त प्रबन्ध-भेद के प्रसंग में यथास्थान किया है।

प्रबन्ध के छठे अंग "ताल" का अर्थ तो "बन्ध" पद में स्पष्ट ही है, अतः उसकी व्याख्या की यहाँ अपेक्षा नहीं है।

निर्गुण संत-काव्य में नामोल्लेख के रूप में अंकित ताल-नामों का पिछले अध्याय में विवेचन किया जा चुका है।

इस प्रकार संत-काव्य में प्रबन्ध के उपर्युक्त छहों अंगों का अस्तित्व मिलता है।

प्रबन्ध के उपर्युक्त छहों अंगों का यदि विश्लेषण किया जाए तो हम पाएँगे कि हमारे संगीत शास्त्र में "पद" को कितना महत्त्व दिया गया है। उसे पाश्चात्य संगीत की भांति संगीत का बाह्य तत्व नहीं माना गया। उपर्युक्त छः प्रबन्धांगों में से तेन, पद और विरुद "पद" से ही सम्बन्ध रखते हैं। स्वर तो स्वतः स्वर तत्व के ही रूप में विद्यमान है और ताल "पाट" के सहित, दो अंगों के रूप में स्थित है। इस प्रकार भरत के द्वारा उल्लिखित "गांधर्व" पद (term) के तीन अंग स्वर, ताल और पद "प्रबन्ध" में समाविष्ट हैं।[54] "तेन," "विरुद" और "पद" का, पद के तीन विभागों के रूप में वाचक शब्द अथवा पाठ्य से सम्बन्ध है। इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार हमारे शास्त्रकारों ने "पद" को शीर्षस्थान दिया है। पाश्चात्य संगीत में सार्थक शब्द अथवा साहित्य को संगीत, का बाह्य तत्व माना गया है। इसीलिए वहाँ वादन को गायन की अपेक्षा उच्चस्थान दिया गया है। भरत के द्वारा "गांधर्व" में स्वर और ताल के साथ 'पद' को भी समाविष्ट करना एवं प्रबन्ध में 'पद' का तीन अंगों के रूप में स्थान, इस तथ्य के पुष्ट प्रमाण हैं कि हमारे यहाँ 'पद' को संगीत के अंतरंग प्रमुख तत्व के रूप में ग्रहण किया गया है। हमारे संगीतशास्त्र में, गीत वाद्य, और नृत्य, इन तीनों में से, गीत को सर्वोपरि स्थान देने का एक कारण यह भी है कि गीत में 'पाठ्य' अर्थात् 'पद' मुख्य तत्व है।

इस प्रकार, संगीत में 'पद' का महत्त्वपूर्ण स्थान है, अतः प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के विषयान्तर्गत संतकवियों के पद-संग्रहों का 'प्रबन्ध' के भेदोपभेद, धातु एवं अंगादि सभी प्रमुख दृष्टिकोणों से अध्ययन अत्यन्त उपयोगी एवं नितान्त अपेक्षित कहा जा सकता है।

(घ) विविध 'प्रबंध-भेदों' का सौष्ठव

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, 'प्रबन्ध' शब्द, देशी गीतों के लिए पर्याय रूप में प्रयुक्त होने वाला शास्त्रीय शब्द है, अतः इसके असंख्य भेद हैं, जिनमें से कुछ भेदों का उल्लेख शास्त्रों में मिलता है।

'संगीत रत्नाकर' में में अनेक प्रबन्ध-भेदों का उल्लेख मिलता है, किन्तु राणा कुम्भा के 'संगीतराज' में उक्त प्रबन्धों के अतिरिक्त, अनेक नए प्रबन्धभेदों का उल्लेख मिलता है, जिनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है। इनमें से कुछ प्रबन्ध-नाम नान्यदेव के 'भरत-भाष्य' तथा पण्डितमण्डली के' 'संगीतशिरोमणि' ग्रंथों में भी मिलते हैं।[55] इसका संकेत क्रमशः कोष्ठक में कर दिया गया है।

1. आलिक्रम प्रबन्ध :

(क) स्तवसूर्य प्रकाश।

(ख) शरभलीन (सं. शि. में भी उल्लिखित)

(ग) रससन्दोह (वही)

(घ) राजचूड़ामणि।

2. प्रकीर्ण प्रबन्ध :

(क) हर्षवर्धन (सं. र. में केवल नामोल्लेख मात्र, लक्षण नहीं, इसका उल्लेख सं. शि. में भी मिलता है)

(ख) स्तवमंजरी (सं. शि. में भी)

(ग) प्रतापवर्धन (वही)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(घ) वीरश्रृंगार (वही)

(ङ) रणरङ्ग (वही)

(च) सुधासागर

(छ) श्रृंगारविलास

(ज) शुकसारिक (भ. भा. तथा सं. शि. दोनों ग्रंथों में भी)

(झ) चन्द्रकला

(ञ) विजय (संगीत शि. में भी)

(ट) धम्माली (वही)

(ठ) चतुरंग (वही)

यह स्पष्ट है कि प्रबन्ध-भेदों की संख्या और संज्ञा के सम्बन्ध में विभिन्न शास्त्र-ग्रंथों में पर्याप्त भिन्नता रही है।

हिन्दी के निर्गुण संत काव्य में भी कतिपय देशी गीत-प्रकारों के प्रबन्ध-नामों के बिना ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनका उल्लेख शास्त्र-ग्रंथों में नहीं मिलता। इनका उल्लेख प्रस्तुत अध्याय की भूमिका में कर दिया गया है।

शास्त्रों में वर्णित अनेक प्रबन्धों का अस्तित्व देशी भाषाओं में विरचित पदों में मिलता है। यह सत्य है कि आज शास्त्रीय-संगीत में, प्रबन्ध-नामों का पूर्णतः लोप हो चुका है। हाँ! 'चतुरंग' प्रबन्ध को इस प्रसंग में अपवाद स्वरूप कहा जा सकता है। सो इस प्रकार देशी भाषाओं में 'प्रबन्ध' नामोल्लेख के बिना, आज भी अनेक प्रबंधभेदों के यत्र-तत्र उदाहरण मिल जाते हैं,[56] उसी प्रकार निर्गुण-संतों के काव्य में विविध प्रबन्धभेदों के अस्तित्व-रूप प्रभूत पद मिलते हैं, शोध-प्रबन्ध की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए संतों की पदावली में से यथा-संभव विभिन्न प्रबन्ध भेदों के उदाहरण खोजकर, उन पर यहाँ विचार किया गया है। विभिन्न प्रबन्ध-भेदों के संक्षिप्त परिचय के पश्चात् उनके शीर्षकों के अन्तर्गत संत-काव्य में से उपलब्ध सम्बन्धित उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। प्रबन्ध-भेदों के परिप्रेक्ष्य में किए गए संत-काव्य के अध्ययन को प्रस्तुत करते समय, सर्वप्रथम आलिक्रम प्रबन्ध-भेदों का विवेचन किया गया है, तत्पश्चात् विप्रकीर्ण प्रबन्धों को स्थान दिया गया है।[57]

निर्गुण संतों के पद-संग्रहों में प्राप्त प्रमुख प्रबन्धभेदों का अध्ययन आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

आलिक्रम प्रबन्ध

(अ) राग कदम्ब

जिस प्रबन्ध में अनेक रागों का प्रयोग होता है, उसे 'राग कदम्ब' प्रबन्ध कहा जाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है।[58] कर्णाटक संगीत में इस प्रकार की रचनायें 'रागमालिका' कही जाती हैं और उत्तर भारत में ये 'राग सागर' 'अथवा' 'रागमाला' कही जाती हैं। अधुना शास्त्रीय-संगीत में इन कृतियों का गायन, अपवाद-स्वरूप ही देखा जाता है।

हिन्दी के निर्गुण संत-काव्य में सुन्दरदास के पद-संग्रहों में, दो राग-मालाओं की नियोजना मिलती है, जिन्हें हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं।

1. *"गोरी मेरो पीव तजि, पर्‌यो कानरा बोल।*
कैसें होत कल्यान अब, रूठौ नाह हिंडोल।। 6।।
सूहौ मुहि सांई करी, धनासीस सिरताज।
आशा पूरह जीव की, राम गरीब निवाज।। 10।।"[59]

यहाँ 'चौबोला' शीर्षक के अन्तर्गत 'दोहा' छन्द में राग माला की रचना की गई है। रागमालाएँ प्रायः सार्थक रची जाती हैं। उक्त रागमाला भी सार्थक रचना है। उक्त दोहा-द्वय में 'गौरी' (राग, गौरवपूर्ण स्त्री), कानरा (कान्हड़ा राग, कान में), (कल्याण राग, मला), हिंडोल (राग, हिंडोल की ऋतु वर्षा ऋतु में या हिंडोल पर से), सूहो (राग, प्रेम या अनुकूलता) धनासी (धनाश्री राग एवं धन्यभाग), आशा (आसा राग तथा उम्मीद), पूरह (पूर्वी राग या पूरिया राग, तथा पूर्ण होना) तथा रामगरी (रामकली राग तथा दया निधान दीनदयालु राम,) ये नव रागनाम हैं। रागमालाओं में रागचक्र की व्यवस्था, समचक्र के क्रमानुसार करने की भी परम्परा रही है, तदनुसार उपर्युक्त पद में भी कालक्रम का विधान मिलता है। रागचक्र सायंकालीन 'गौरी' राग से प्रारंभ हुआ है, तदनन्तर 'कान्हड़ा' (कान्हड़े का कोई भी प्रकार) तथा 'धनाश्री' क्रमशः दिन के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय प्रहर के राग हैं तदुपरांत रात्रि के अंतिम प्रहर का 'आशा', दिन के अंतिम प्रहर का राग 'पूर्वी' और अंत में प्रातःकालीन राग 'रामकली है। इस प्रकार, इन 9 रागों के नामोल्लेख में कालक्रम का विधान अतीव सराहनीय है।

2. *"मारूं मन कौं पटकि कैं, केदारा सूं प्रीति।*
नट बाजी भूलौं नहीं, भैरव राषौं जीति।"[60]

यह राग भी प्रथम रागमाला की भाँति सार्थक कृति है। उक्त दोहे में 4 रागनामों का उल्लेख मिलता है। मारूं (मारू राग एवं मारना), केदारा (केदारा राग तथा 'दारा से प्रीति क्यों' अर्थ है, नट (रागनाम और 'नट' नामक एक विशिष्ट व्यावसायिक जाति), तथा भैरव (रागनाम एवं विषय-वासना-प्रवृत्त बलशाली मन) इन चार रागों के श्लेषात्मक होने के कारण उक्त दोहा भी सार्थक रागमाला का सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है। यहाँ भी रागनाम का कालक्रमानुसार उल्लेख द्रष्टव्य है। प्रथम दिन के अंतिम प्रहर का राग 'मारू बिहाग' (?) ('मारू' नाम से आज कोई राग प्रचलित नहीं है, 'मारू बिहाग' अवश्य बहुत प्रचलित राग है।), तत्पश्चात् क्रमशः रात्रि के प्रथम प्रहर का राग 'केदारा', रात्रि के तृतीय प्रहर का राग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'नट' तथा प्रातः कालीन राग 'भैरव' का नामांकन मिलता है।

(आ) मातृका प्रबन्ध

इस प्रबन्ध में अकारादि क्रम से गीत की पंक्तियों के आरम्भ में स्वरों और व्यंजनों अथवा स्वरों या व्यंजनों का निर्देश अथवा अनिर्देश (केवल अकारादि क्रमानुसार विरचित पद अर्थात् पंक्त्यारम्भ में क्रमिक वर्ण का पृथक् रूप से उल्लेख न रहना) रहता है।

निर्गुण संतों के काव्य में इस प्रबन्धभेद के प्रभूत उदाहरण मिलते हैं। कुछ पद उदाहरण के लिए निम्नांकित हैं,

गौड़ी बावन अखरी,[61] म. 5

1. सलोकु।। *कुंट चारि दहदिसि भ्रमं करम किरति की रेख।।*
सूख दूख मुकति जोनि नानक लिखिओ लेख।।1।।

पउड़ी।। *कका कारन करता सोऊ।। लिखिओ लेखु न मेटत कोऊ।।*
नहीं होत कछु दोऊ बारा।। करनै हारा न भुलनहारा।।
काहू पंथु दिखारै आपै।। काहू उदिआन भ्रमत पहुतापै।।
आपन खेलु आपही कीनो।। जो जो दीनो सु नानक लीनो।।

उक्त बावन अखरी म. 5 द्वारा 'सलोकु' और 'पौड़ी' छन्दों में लिखित है। सलोकु में 'पौड़ी' से सम्बन्धित भाव एवं उसका सार रूप विचार रहता है, जबकि 'पौड़ी' में उसी विचार-विशेष की व्याख्या रहती है। महत्त्व की बात यह है कि जिस स्वर अथवा व्यंजन से पौड़ी प्रारंभ होती है, उसी स्वर या व्यंजन-विशेष का सलोकु में कक्का, खक्खा, इस प्रकार व्यंजनात्मक अथवा स्वरात्मक निर्देश न कर, उसका कृति के प्रत्येक पाद में आरम्भिक वर्ण के रूप में व्यवहार कर, आगामी पौड़ी के प्रारंभिक वर्ण का पूर्वाभास करा दिया जाता है। म. 5 की उक्त 'बावन अखरी' नामक रचना में पंजाबी वर्णमाला के समस्त वर्णों का समावेश नहीं है। 'ओं' (उम्भ) से प्रारम्भ करके ससा, घघा, रारा, लला, यया, डडा, कक्का, खखा, गगा, घघा, डडा, चचा, छछा, जजा, भंक्षा, टटा, ठठा, डडा, ढढा, णणा, तता, थथा, ददा, घघा, नना, पपा, फफा, बबा, भभा, मम,[62] यया, रारा, लला, ववा, डाड़ा, ससा, खखा, शशा, ये कुल 39 वर्ण, क्रम से निर्देश सहित, कृति में मिलते हैं। 'ससा' की तीन बार आवृत्ति, 'धधा', 'रारा', 'लला', 'यया' और 'डडा' की दो बार आवृत्ति की गई है।

क. ग्रं. में कबीर की एक 'बावनी' दोहा-चौपाई शैली में मिलती है। यही 'बावन अखरी' आ. ग्रं. में पृ. 340 पर अंकित है। इस कृति में बावन अक्षरों का उपयोग तो नहीं है, किंतु 'बावन अखरी' नामक कृतियों की शैली का अनुकरण यहाँ अवश्य है। कृति में कवि ने स्वयं 52 अक्षरों के आधार पर रचना के प्रणयन का उल्लेख भी किया है।[63] इस प्रकार 'बावन अखरी' नामक व्यंजनों के आधार पर रची उक्त कृति को 'मातृका' प्रबन्ध के अन्तर्गत स्थान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देना अनुचित न होगा। 'ओंकार' से कृति आरंभ करके लगभग समस्त व्यंजनों द्वारा पद-रचना की गई है। ओंकार (ऊँकार अथवा ऊँ?), कक्का, खख्खा, गग्गा, धध्धा, डडा, चच्चा, छछ्छा, जज्जा, झझ्झा, टट्टा, ठठ्ठा, डड्डा, ढढ्ढा, णणा, तता, थथा, दद्दा, धध्धा, नन्ना, यय्या, रारा, लल्ला, बबा, वावा, शश्शा, षष्षा, सस्सा, हाहा, खख्खा, इस प्रकार सम्पूर्ण कृति में ये 35 वर्ण हैं। 'ब' और 'म' की दो बार आवृत्ति की गई है। दोहा-चौपाई में लिखित उक्त कृति में से एक संक्षिप्त पदांश[64] रचना की दृष्टि से उदाहरणार्थ प्रस्तुत है।

2. *'ओंकार आदि मे जाना। लिखि औ मेटे ताहि न माना।।*
ओंकार लखे जो कोई। सोई लेखि मेटणा न होई।।
कक्का किरणि कमल महि पावा। ससि बिगास सम्पट नहिं आवा।।
अरु जे तहा कुसम रस पावा। अकह कहा कहि का समझावा।।
खख्खा इहै खोड़ि मन आवा। खोड़े छाड़ि न दह दिसि धावा।
खसमहि जाणि खिमा करि रहे। तौ होइ निव औ अरवै पद लहै।।
गग्गा गुरु के बचन पछाना। दूजी बात न धरई काना।।
रहे बिहंगम कतहि न जाई। अगह गहे गहि गगन रहाई।।'

सुन्दरदास का एक लघु ग्रंथ 'बावनी' शीर्षक से सुं. ग्रं. में मिलता है। इसमें हिन्दी वर्णमाला के 52 अक्षरों को आदि में देकर छंद-रचना की गई है। 52 अक्षर उक्त कृति में इस प्रकार हैं—'ओं नमः सिद्ध' 5 अक्षर, 'अ' से 'अं' तक 'ऋ', ॠ; ऌ, ॡ को छोड़कर 12 स्वर। तदुपरांत 'क' से लेकर 'ह' तक 33 व्यंजन तथा 'त्र' को छोड़कर 'क्ष' और 'ज्ञ' दो संयुक्ताक्षर, यों कुल 52 अक्षर हैं, जिनके आधार पर उक्त 'बावनी' नामक ग्रन्थ की रचना की गई है। ग्रन्थ दोहा-चौपाई शैली में है। प्रथम चार दोहे इकट्ठे हैं और एक दोहा कृति के अंत में है, बीच में चौपाइयाँ हैं। कुछ मिलाकर 5 दोहे और 53 चौपाइयों की यह सम्पूर्ण कृति है। कृति कबीर, नामक आदि कवियों की 'बावन अखरी' नामक कृतियों की परम्परा का पूर्णतः अनुसरण करती है। वर्णमाला कें 52 अक्षरों को आदि में देकर छंदों की रचना करने की परम्परा, संगीत में अति प्राचीन है[65] और ऐसा प्रतीत होता है कि संतों में यह काव्य-विधा अथवा गीत-विद्या, पर्याप्त लोकप्रिय भी रही है। लगभग सभी प्रमुख संत कवियों ने उक्त शैली की रचनाएँ रची हैं। ये कृतियाँ अधिकतर दोह-चौपाई शैली में ही मिलती हैं, यह तथ्य भी निश्चित काव्य-शैली अथवा गीत-शैली का बोधक है।

सुन्दरदास की 'बावनी' नामक उक्त कृति अपने शीर्षक के अनुसार एक वैज्ञानिक कृति है इसमें पूरे 52 अक्षरों के आधार पर पद-रचना की गई है, अतः परम्परा का निर्वाह मात्र न कर, पूर्णतः पालन किया गया है। रचना विधान की दृष्टि से कृति में से एक उद्धरण[66] नीचे प्रस्तुत किया जाता है,

3. *'अकह अगह अति अमित अपारा। अकल अमल अज नाम बिचारा।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलष अभेद लषै नहिं कोई। अति अगाध अविनाशी सोई।। 10।।
आदि न अंत मध्य कहु कैसा। आशा पास नहीं कछु ऐसा।
आवै जाइं न सुप्तु न जागे। आहि अषण्डित पीछें आगें।। 11।।
इत उत जित कित है भरपूरा। इड़ा पिंगला तें अति दूरा।
इच्छा रहत इष्ट कौं ध्यावै। इतनी जानैं तो इत पावै।। 12।।

सुन्दरदास की 'साखी' के अन्तर्गत 'अथ अक्षर विचार अंग' शीर्षक से एक कृति मिलती है, जिसमें सूफ़ीमत के आध्यात्मिक पारिभाषिक संकेत ऐन, ग़ैन (विशेष और निर्विशेष अर्थात् आत्मा और परमात्मा) आदि शब्दों के आधार पर लिखी रचना मिलती है। ऐन, ग़ैन फ़ारसी के 'अ' और 'ग' अक्षर हैं। जिन्हें फ़ारसी में 'ऐन' 'ग़ैन' कहते हैं। इस प्रकार ऐन, ग़ैन, नुकता और स्वर, विंजन (व्यंजन) इन्हीं अक्षरों से 'अक्षर विचार अंग' नामक सम्पूर्ण कृति लिखी गई है। इस कृति में 'मातृका' प्रबन्ध की प्रवृत्ति का यत्किंचित् आभास मिलता है। उदाहरणार्थ एक छन्द प्रस्तुत है—

4. *"ऐन नहीं अरु ऐन है, गैन नहीं गैन।*
सुन्दर नुकता आरसी, दूर किये तें ऐन ।। 1 ।।"[67]

'चम्पू' नामक काव्य-प्रकार की-सी प्रवृत्ति भी सुन्दरदास की उपर्युक्त रचना में मिलती है।

"कबीर बीजक" में कबीर की एक "चौंतीसी" नामक कृति मिलती है, जिसमें 34 अक्षरों के आधार पर पद की रचना की गई है। वर्ण हैं—ओं, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष। यदि 'ओं' को गिनें तो 35 अक्षर होते हैं, अन्यथा 34 अक्षरों की यह कृति है। उक्त कृति में पूर्णतः 'मातृका' प्रबन्ध की प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। एक छन्द[68] उदाहरणार्थ प्रस्तुत है;

"पपा पाप करै सब कोई। पाप के धरे धर्म नहिं होई।
पपा कहै सुनो रे भाई। हमरे से ये कछू न पाई।। 22।।
फफा फल लागो, बड़ दूरी। चाखै सतगुरु देवन तूरी।
फफा कहे सुनो रे भाई। स्वर्ग पताल की खबरि न नाई।। 23।।"

5. कबीर साहब की शब्दावली में 'ककहरा' नामक एक कृति में भी उक्त प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। इसमें 'क' से लेकर 'क्ष' तक 34 व्यंजनों की विशिष्ट नियोजना में पद-रचना की गई है। इस कृति में पंक्त्यारम्भ में आरम्भक वर्ण को कोष्ठक में रखा गया है।[69] यथा,

"(क) काया कुंज करम की बाड़ी, करता बाग लगाया।
किनका तामें अजर समाना, जिन बेली फैलाया।।"[70]

"ककहरा" नामक उपर्युक्त रचना में 34 छन्द हैं। प्रत्येक पादखण्ड में 6 पंक्तियाँ हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम चार पंक्तियों में अनिवार्यतः 'सार' छन्द है और अन्त में 'दोहा' छन्द के चार-चार चरण हैं।

6. आ. ग्रं. में म. 1 की 'पट्टी लिखी'[71] नामक एक कृति संगृहीत है। इसमें पंजाबी भाषा की वर्गमाला के आधार पर पद रचना मिलती है। जिस प्रकार बच्चों को वर्णमाला का ज्ञान कराने के लिए 'पट्टी' लिखना सिखाया जाता है, उक्त कृति को उसी अनुकरण पर लिखी गई एक आध्यात्मिक रचना कहा जा सकता है। गुरु नानक की उक्त कृति में पंजाबी वर्णमाला के 35 वें अक्षरों द्वारा 35 छंदों की रचना की गई है। रागु 'आसा' में लिखित इस रचना को भी 'मातृका' प्रबन्ध के अन्तर्गत स्थान दिया जा सकता है।

इस प्रकार संतकाव्य में 'मातृका' प्रबन्ध के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

मातृका प्रबन्ध के सम्बन्ध में एक बात विशेष उल्लेखनीय है, वह है, वर्णक्रमानुसार पद-रचना द्वारा वैचित्र्य-निर्माण से (चमत्कार खड़ा करने की) मूल प्रवृत्ति, जिसे कि चित्रकाव्य के समानान्तर (Parallel) कहा जा सकता है।

संगीत कला में चित्र तत्व का अस्तित्व थोड़ा बहुत अवश्य विद्यमान रहता है, उसका अल्प विवेचन यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

चित्र की भाँति आकृति रूप में किसी वस्तु की प्रत्यक्षीकृत कर देने की मूल प्रवृत्ति श्रव्य को दृश्य में परिणत कर देती है। श्रव्य को दृश्य में परिणत कर देने की यह चित्रकला की प्रवृत्ति संगीत कला में 'राग ध्यान परम्परा' में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। वेदपाठ के ध्वज, जटा, माला, रथ इत्यादि आठ-भेदों के नाम आकृति-सूचक हैं। यहाँ भी श्रव्य वर्णों के क्रमभेदानुसार विन्यास की दृश्य-कल्पना ही उपजीव्य है। उसी प्रकार संगीत के स्वरसंदर्भ-रूपी अलंकारों में वेणी, उर्मि, श्येन, आवर्त आदि कतिपय आकृति सूचक नाम विद्यमान हैं। संगीत में प्रबन्ध नामों में भी चक्रवाल, क्रौंचपद, स्वस्तिक (रागकदम्ब प्रबन्ध भेद) आदि आकृति सूचक संज्ञाएँ मिलती हैं। छंदों में भी कमल, किरीट, क्रौंचपद, चक्र तथा चक्रपद आदि दृश्य-सूचक अनेक नाम मिलते हैं।

गीत-प्रबन्धों में उक्त आकृति-मूलक प्रवृत्ति, कुछ प्रबन्ध-भेदों की जनयित्री है। यथा, स्वरार्थ प्रबंध में स्वर नामों के संकेताक्षर " स, रे, ग, म, प, घ, नी, सां (निरर्थक स्वरों) के नादात्मक स्वरूप के संश्लेष से अर्थ की कल्पना की जाती है। उदाहरणार्थ—"गागरी सिर पर धरी" तथा स ग रे गा म में, धाम धाम में आदि।

कैवाड़ प्रबन्ध में पाटाक्षरों (वाद्यों से उत्पन्न होने वाली ध्वनि के सूचक अक्षर) से सार्थक और निरर्थक गीत-रचना की जाती है, यही आज 'त्रिवट' नाम से ख्यात है।[72]

स्वरार्ध एवं कैवाड़ प्रबन्ध की भाँति, मातृका' प्रबन्ध में वर्णक्रमानुसार पद-रचना द्वारा वैचित्र्य की सर्जना कर, चमत्कार उत्पन्न करने की प्रवृत्ति का आभास मिलता है। इस प्रकार,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत कला में चित्र तत्व की सत्ता स्पष्ट हो जाती है।

(इ) पंचतालेश्वर

"पंचतालेश्वर" प्रबन्ध में पाँच तालों के प्रयोग का विधान मिलता है।[73] जैसा कि प्रबन्धाभिधान से व्यंजित भी होता है।

शास्त्रों ने उक्त प्रबन्ध को आलिक्रम प्रबन्ध के अन्तर्गत स्थान दिया है।[74]

आदि ग्रन्थ में "पड़ताल" नाम से एक ताल-नाम मिलता है, "गुरुवाणी संगीत" पुस्तक में "पड़ताल" शीर्षक पदों की स्वरलिपि में एक से अधिक तालों का प्रयोग मिलता है। यद्यपि पाँच तालों का प्रयोग तो यहाँ नहीं मिलता, किन्तु दो, तीन, इस प्रकार एक से अधिक तालों का प्रयोग अवश्य मिलता है। अतः यह तो सम्भाव्य है ही कि "पड़ताल" पंचतालेश्वर का अपभ्रंश या संक्षिप्त रूप है और आज पद-गायन में पाँच तालों के प्रयोग द्वारा (उक्त) प्रबन्ध-नियम का पूर्णतः पालन न कर, एक से अधिक तालों के प्रयोग के रूप में उक्त परम्परा का निर्वाह ही प्रचार में शेष रह गया है। इस प्रकार ग्रन्थ में "पड़ताल" शीर्षकस्थ समस्त पदों को 'पंचतालेश्वर' प्रबन्ध के अन्तर्गत स्थान दिया जा सकता है।

उदाहरण के लिए "गुरु बाणी संगीत" पुस्तक में से एक "पड़ताल" शीर्षक पद स्वरलिपि सहित यहाँ उद्धृत किया जाता है, जिसमें तीन विभिन्न तालों का प्रयोग मिलता है, और पद में प्रमुखता प्राप्त ताल को शीर्षक के रूप में रखा है।

राग बिलावल, पड़ताल, तीन ताल, मध्य लय[75]

मोहन नींद न आवै हावै हार कजर बसतर अभरन कीने।।
उडीनी उडीनी उडीनी।। कब घरि आवै री।। 1।। रहाउ।।
सरनि सुहागनि चरन सीसु धरि लालनु मोहि मिलावहु।।
कब घरि आवै री ।। 1।।
सुनहु सहेरी मिलन बात कहउ सगरो अहं मिटावहु।।
तज घर ही लालन पावहु।। तब रस मंगल गुन गावहु। आनंद रूप धिआवहु।।
नानक दुआरै आइउ।। तउ मैं लालन पाइउ री।। 2।।
मोहन रूप दिखावै।। अब मोहि नींद सुहावे।।
सभ मेरी त्रिखा बुझानी।। अब मैं सहजि समानी।।
मीठी पिरहि कहानी।।
मोहनु लालनु पाइउ री।। रहाउ, दूजा ।। 1।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरलिपि, स्थाई - त्रिताल

1				2				0				3			
											ग	प	ध	—	नि
											मो	ऽ	ह	ऽ	न
												3			
सं	—	—	—	नि	सं	ध	नि	ध	प	—	ग	—	म	पध	प
नी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	द	ऽ	न	ऽ	ऽ	आ	ऽ	वै	ऽऽ	ऽ
×				2				0				3			
म	—	ग	—	म	—	रे	—	स	—	ग	म	रे	ग	म	प
ह्म	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	वै	ऽ	ऽ	ह्म	र	क	ज	र	बस	त
×				2				0				3			
ध	प	म	ग	ग	ग	(म)रे	स	नि	नि	सं	सं	निध	नि	सं	—
अ	म	र	ऽ	न	की	ऽ	ने	उ	डी	नी	उ	डीऽ	ऽ	नी	ऽ
×				2				0				3			
सं	—	—	—	नी	—	सं	ध	—	प	—	ग	प	(नि)ध	—	नि
डी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	नी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	क	ब	घ	ऽ	र
×				2				0				3			
सं	—	—	—	नि	सं	ध	नि	ध	प	—	ग	प			
आ	ऽ	ऽ	ऽ	आ	ऽ	वै	ऽ	री	ऽ	ऽ	मो	ऽ			
×				2				0				3			

अंतरा यक्का, मध्य लय

×		0		2		0		3		4	
सं	सं	—	नि	ध	नि	सं	—	—	सं	—	सं
स	र	ऽ	नि	ऽ	सु	ह्म	ऽ	ऽ	ग	ऽ	नि
×		0		2		0		2		4	
नि	निं	—	सं	गं	मं	गं	—	रें	सं	—	सं
च	र	ऽ	न	ऽ	सी	ऽ	ऽ	सु	ध	ऽ	रे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×		0		2		0		3		4	
ध	—	प	—	म	ग	प	—	—	नि	ध	नि
ला	ऽ	ऽ	ऽ	ल	न	मो	ऽ	ऽ	हि	ऽ	मिं
×		0		2		0		3		4	

तीन ताल[76]

×				2				0				3			
सं	—	—	—	नि	—	सं	ध	—	प	—	प	प	निध	—	नि
ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	वहु	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	क	ब	घ	ऽ	र
×				2				0				3			
सं	—	—	—	नि	सं	ध	नि	ध	प	ध	ग	प	नि	ध	नि
आ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	वै	ऽ	री	ऽ	ऽ	मो	ऽ	ह	ऽ	न
×				2				0				3			

अन्तरा दूजा : यक्का[77]

×		0		2		0		3		4	
स	—	म	म	—	ग	प	—	—	प	—	—
सु	ऽ	न	हु	ऽ	स	हे	ऽ	ऽ	री	ऽ	ऽ
×	0			2		0		3		4	
प	प	—	ध	नि	सं	नि	ध	प	प	प	—
मि	ल	ऽ	न	ऽ	बा	ऽ	ऽ	त	क	हउ	ऽ
×		0		2		0		3		4	
म	ग	—	ग	—	—	ग	ग	—	—	ध	प
स	ग	ऽ	रो	ऽ	ऽ	अ	हं	ऽ	ऽ	ऽ	मि
×		0		2		0		3		4	
म	—	ग	—	—	—	म	ग	रे	स	—	स
टा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	व	हु	ऽ	ऽ	ऽ	तउ
×		0		2		0		3		4	
ग	—	—	—	—	म	रे	—	स	—	—	—
ध	ऽ	र	ऽ	ही	ऽ	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ल	नु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×		0		2		0		3		4	
ग	—	—	—	—	म	रे	—	स	—	—	—
पा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	व	हु	ऽ	ऽ
×		0		2		0		3		4	
स	—	—	म	—	ग	प	—	—	—	—	—
त	ऽ	ब	र	ऽ	स	मं	ऽ	ग	ऽ	ल	ऽ
×		0		2		0		3		4	
प	—	—	ध	नि	सां	नि	ध	प	—	—	—
गु	ऽ	ऽ	न	ऽ	ऽ	गा	ऽ	व	हु	ऽ	ऽ
×		0		2		0		3		4	
ग	—	—	—	—	म	रे	—	ग	—	ध	प
आ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	प	धि
×		0		2		0		3		4	
ग	—	—	—	—	म	रे	—	स	स	स	स
आ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	व	हु	ऽ	ऽ
×		0		2		0		3		4	
नि	—	नि	प	—	ध	सं	—	सं	—	—	—
ना	ऽ	न	ऽ	क	ऽ	दुआ	ऽ	रे	ऽ	ऽ	ऽ
×		0		2		0		3		4	
नि	—	—	रें	गं	मं	गं	रें	सां	—	—	—
आ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	इयो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
×		0		2		0		3		4	
नि	ध	प	—	म	ग	प	—	—	नि	ध	निं
त	उ	ऽ	ऽ	मे	ऽ	ला	ऽ	ऽ	ल	ऽ	नु
×		0		2		0		3		4	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन ताल[78]

×				2				0				3			
सां	—	—	—	—	—	ध	नि	ध	प	ध	ग	ध	नि	ध	नि
पा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	इयो	ऽ	री	ऽ	ऽ	मो	ऽ	ह	ऽ	न
×				2				0				3			

अन्तरा तीसरा, ढाई ताल, विलंबित

×			2		3		0			2		3	
					स	स	म	म	ग	प	प	प	प
					मो	हन	रू	प	दि	खा	वै	अब	मोहि
प	ध	नि	सं	ध	प	प	म	ग	ग	रे	ग	म	प
नीं	द	सु	हा	वे	स	भ	मे	ऽ	री	त्रि	ऽ	खा	बु
0			2		3		0			2		3	
म	ग	—	म	रे	स	स	सं	निध	नि	सं	सं	सं	सं
झा	ऽ	ऽ	नी	ऽ	अब	मै	सहा	जिऽ	स	मा	नी	मी	ठी
0			2		3		0			2		3	
रें	रें	गं	मं	रें	सं	—	ध	प	मग	प	—	निध	नि
पि	रहि	क	हा	ऽ	नी	ऽ	मो	हि	नऽ	ला	ऽ	लऽ	नु
0			2		3		0			2		3	

तीन ताल

सं	—	—	—	नि	सं	ध	नि	ध	प	ध	ग	प	नि	ध	नि
पा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	इउ	ऽ	री	ऽ	ऽ	मो	ऽ	ह	ऽ	न
×				2				0				3			

(ई) कैवाड़ प्रबन्ध

इस प्रबन्ध भेद के अन्तर्गत पाटाक्षरों अर्थात् पखावज, तबला, मृदंग आदि अवनद्ध वाद्यों के वर्णों की गेय रचनाएँ आती हैं जोकि सार्थक और निरर्थक दोनों प्रकार की हो सकती हैं।[79] इस प्रकार की रचनाएँ आजकल 'त्रिवट' कही जाती हैं। आज ऐसी रचनाएँ बहुत कम संख्या में मिलती हैं किन्तु 'सुन्दर ग्रंथावली' में एक सार्थक कैवाड़-प्रबन्ध-रचना का प्रतिपादक पद अवश्य मिलता है, जिसे अर्थ सहित यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"तत थेई तत थेई तत थेई ता धी। नागड धी नागड धी नागड धी ना धी ।। टेक।।
थुंगनि थुंगनि थुंगनि थुंगा, त्रिघट उघटि तत तुरित तुरंगा।। 1 ।।
तन नन तन नन तन नन तन्ना, गुप्ता गगनवत आतम भिन्ना।। 2 ।।
तत् त्वं तत् त्वं तत् सो तत्वं, असि सामवेद यों वदत तत्वमसि।। 3 ।।
अद्भुत निरतत नासत मोहं, सुन्दर गावत सोहं सोहं।। 4 ।।"[80]

इसका अर्थ निम्न प्रकार से लगाया जा सकता है। तत् अर्थात् वह ब्रह्म थे ई = तुम ही निश्चित रूप से हो। ता धी = वह बुद्धि अर्थात् ब्रह्म वृत्ति वाली। नागड़ धी = नागी बुद्धि, असंप्रज्ञात समाधि में अंतः करण की स्थिति। नागड़ धी = गहराई में न गड़ने वाली बुद्धि। नागड़ धी = नागड़ धी अर्थात् विशुद्ध संस्कृत बुद्धि। नाम धी = हठ से मत ढकेल। यहाँ केवल बुद्धि का काम है। थु - अंग = थूवंग = थुंग - अंग, अर्थात् विषय-विलास हेय है, थूकने योग्य है। तीन बार बल देने के लिए 'थुंगनि', थुंगनि, थुंगनि कहा है। त्रिघट = स्थूल, सूक्ष्म और कारण, त्रिविध नश्वर शरीर है। उघटित = ये तीनों उद्घाटित, खुल जाएँ अर्थात् इनका अंत हो जाए, तब वह तत् (सद् ब्रह्म) 'तुरिय तुरंगा' अर्थात् सर्वोच्च अवस्था तुरीयावस्था प्राप्त हो। तनन = न इति जो प्रकट विश्व दृश्यमान भासता है, सो परब्रह्म नहीं है, अपितु माया मात्र है। ब्रह्म तो आकाश की तरह अति सूक्ष्म, परन्तु सर्वव्यापक है। तत् त्वं = वह ब्रह्म भी तू है (उसका अंश होने के कारण) सामवेद ने इसी तथ्य को 'तत्वमसि' शब्द दिया है अथवा सामवेद के 'तत्वमसि' का यही आशय है। सुन्दरदासजी कहते हैं कि 'सोहं' मंत्र जोकि अद्भुत रूप से प्रत्येक प्राणी के अन्दर नृत्य रूप में स्पंदन करता रहता है, उसे गाने से (मंत्रार्थ को हृदयंगम करके) जागतिक मोह विनष्ट हो जाता है।

उक्त पद में 'तत थेई, ता धी, नागड़ धी, थुंग तत' आदि वर्ण, मृदंग तथा तबले आदि अवनद्ध वाद्यों के बोल हैं तथा कत्थक नृत्य में भी उक्त बोलों का व्यवहार किया जाता है। 'तन नन तन नन' आदि बोल या शब्द तराने में प्रयुक्त होते हैं अथवा ध्रुपद गायकी की आलापचारी में भी इनका प्रयोग होता है।

(उ) द्विपदी

आदि ग्रंथ में 'दुपदे' शीर्षक से दो पादों की अनेक रचनाएँ मिलती हैं। 'रहाउ' के पश्चात् क्रमशः '1' और '2' अंक, दो पादों के सूचक हैं। ये संक्षिप्त द्विपादी पद संगीत शास्त्र में 'द्विपदी' प्रबन्ध कहे गये हैं।[81] संगीतराज में 'द्विपदी' प्रबन्ध को आलिक्रम' प्रबन्ध के भेदों में स्थान दिया गया है।[82]

संतों के काव्य में द्विपदी प्रबन्ध के अनेक उदाहरण मिलते हैं। गुरु अर्जुनदेव और सुन्दरदास ने 'द्विपदी' प्रबन्ध सर्वाधिक लिखे हैं। कुछ पद द्रष्टव्य हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

1. रागु गौड़ी चैती म. 5 दुपदे[83]

राम को बलु पूरन माई।। ताते बृथा न बिआपै काई।। रहाउ।।
जो जो चितवै दासु हरि भाई।। सो सो करता आपि कराई।।1।।
निंदक की प्रभि पति गवाई।। नानक हरि गुण निरभउ गाई।।2।।

2. आसा म. 1 दुपदे[84]

तितु सखरड़ै भईलुं निवासा पाणी पावकु तिनहि कीआ।।
पंकजु मोह पगु नही चाले, हम देखा तब डूबी अले।।
मन ऐकु न चेतसि मूढ़ मना।। हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ।।1।। रहाउ
ना हउ जती सती नही पढ़िया मुगधा जनमु मइआ।।
प्रणवति नानक तिनकी सरणा, जिन तू नाहीं वीसरिआ।।2।।

3. आसा कबीरजी के दुपदे[85]

हीरै हीरा बेधि पवन मनु सहजे रहिआ समाई।।
सगल जोति इन हीरे बेधी सतिगुर मैं बचनी पाई।।1।।
हरि की कथा अनाहद् बानी।। हंसु हुई हीरा लेइ पछानी ।।1।। रहाउ।।
कहि कबीर हीरा अस देखिओ, जग महँ रहा समाई।
गुपता हीरा प्रगट भइओ जब, गुर गम दीआ दिखाई।।2।।

4. राग माली गौड़ी[86]

हरि नाम तैं सुख ऊपजै मन छाडि आनि उपाइ रे।
तन कष्ट करि करि जौ भ्रम तो मरन दुख न जाइ रै।।(टेक)
गुरु ज्ञान कौ विश्वास गहि जिनि भ्रमै दूजी ठौर के।
योग यज्ञ कलेश तप ब्रत, नाम तुलत न और रे।।1।।
सब सन्त यों ही कहत हैं श्रुति स्मृतिं ग्रन्थ पुरान रे।
दास सुन्दर नाम तें गति लहै पद निर्वान रे।।2।।

5. राग गौड़ी[87]

मेरे मन भैया रांम कहौ रे।
राम नाम मोहिं सहजि सुनावै उनहीं चरन मन कीन रहौं रे।। टेक।।
राम नाम ले संत सुहावै, कोई कहै सब सीस सहौ रे।
वाही सौं मन जोरे राषौ, नीकै रासि लिये निबहौ रे।।1।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहत सुनत तेरी कछू न जावै, पाप निछेदन सोइ लहौ रे।
दादू रे जन हरि गुण गावौ, कालहि जालहि फेरि दहौ रे।।2।।

(ऊ) गाथा

आ. ग्रं. में 'गाथा' शीर्षक से म. 5 की 'सहसकृति' (संस्कृत भाषा के अनुकरण पर लिखी रचना, यह प्रवृत्ति मध्य युग के साहित्यकारों में बहुत रही, तुलसी का प्रसिद्ध पद 'श्री रामचन्द्र कृपालु मज मन हरण भव भय दारुणम्' केवल अंत में 'मकार' उक्त प्रवृत्ति के अन्तर्गत लिखा गया) भाषा में लिखी एक 24 पदों की कृति मिलती है।[88] उक्त कृति में तीन बार 'गाथा' शब्द की आवृत्ति हुई है।[89] एक स्थान पर लेखक ने 'गाथा' गाने का भी उल्लेख किया है,[90] जिससे रचना का गायन हेतु लिखा जाना प्रमाणित होता है। कृति की भाषा का अनुस्वरांत होना एवं 'णकार बाहुल्य' भी सोद्देश्य है।

हमारे संगीत-शास्त्र में 'गाथा' का अनेक प्रकार से उल्लेख मिलता है। 'गाथा' को गान-विशिष्ट[91], शुद्ध गीतभेद,[92] एक छंद विशेष[93] तथा आलिक्रम प्रबन्ध का एक भेद[94] आदि माना है।

रघुनन्दन शास्त्री के अनुसार 'ब्राह्मण ग्रन्थों का अनुष्टुप्' छंद, स्वरों से नियंत्रित न होकर, ताल संगीत के अनुशासन में आबद्ध रहा है और गाया जाने के कारण वह 'गाथा' नाम से प्रसिद्ध हुआ। यही 'गाथा' छंद आगे चलकर काल मात्रा से नियंत्रित होकर, संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश में 'आर्या' कहलाया। हिन्दी में यही 'दोहा' कहलाया, तथा संस्कृत में श्लोक या 'अनुष्टुप्' नाम से प्रचलित हुआ।[95]

गुरु अर्जुनदेव की उक्त कृति में 'आर्या' अथवा 'दोहा' छंद का स्वरूप तो लक्षित नहीं होता, हां गेयत्व अथवा गानोपयोगिता अवश्य इस रचना का मूलोद्देश्य प्रतीत होता है। रचना में किन्हीं निश्चित मात्राक्रम का निर्वाह नहीं है। हिन्दी में मिश्रित एवं बहुपादी छन्द, जिन्हें कि 'विषम' छंद कहा जाता है, गेयता के कारण 'गाथा' अथवा 'गीति' भी कहे जाते हैं।[96] कुछ ऐसी बात ही उक्त कृति पर भी लागू होती है। यह भी संभव है कि संस्कृत भाषा का अनुकरण, गेयत्व में वृद्धि के उद्देश्य से किया गया हो।

'संगीतराज' में प्राकृत भाषा में विरचित 'गाथा' नामक एक प्रबंध-भेद का उल्लेख मिलता है, जिसके सम्बन्ध में हम पीछे भी उल्लेख कर चुके हैं। यह प्रबंध त्रिपाद, पंचपाद अथवा षटपाद होता है।[97] गुरु अर्जुनदेव की 'सहसकृति' में लिखी 24 पाद की अथवा 24 श्लोकों की संग्रह रूप उक्त कृति को 'गाथा' नामक उक्त प्रबन्ध मानना ही उचित प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में डॉ. चरणसिंह का मत भी द्रष्टव्य है।[98]

रचनागत वैचित्र्य की दृष्टि से उपर्युक्त कृति के दो श्लोक प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

"करपूर पुहस सुगंधा परस मानुख देहं मलीणं।।
मजा रुधिर दुर्गंधा नानक अथि गरबेण अगाह्नणो।।1।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरमाणो परजंत आकासह दीप लोअ सि खंडणह।।
गछेण नैण भारेण नानक बिना साधू न सिद्धते।। 2।।[99]

(ए) द्विपथक

संस्कृत शब्द 'द्विपथक' प्राकृत के 'दोहक' और हिंदी के 'दोहा' छंद[100] का पर्याय है। इस प्रकार 'दोहा' का पूर्व रूप' द्विपथक' था और इसे संस्कृत के 'आर्या छंद तथा प्राकृत के 'गाथा' छंद के समकक्ष स्थान हिन्दी साहित्य के आदि काल से मिला है।[101] हमारे संगीत शास्त्र में 'दोहा' छंद को 'द्विपथक' प्रबंध के नाम से अभिहित किया गया है।[102] इस प्रबंध के अताल और सताल आदि अनेक ढंग से गायन के प्रचलन का उल्लेख भी शास्त्रों में मिलता है।[103] अतः ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में यह एक लोकप्रिय प्रबंध-भेद रहा है।

हिंदी के निर्गुण संत काव्य में 'दोहा' छंद का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। लगभग सभी संतों ने 'साखियाँ' लिखी हैं और साखियों का प्रमुख छंद 'दोहा' ही है।

सुंदरदास के कुछ दोहों में रागमालाओं[104] की नियोजना देखकर भी यह सिद्ध हो जाता है कि 'दोहा' गायन के लिए अत्यंत अनुकूल छंद है।

आ.ग्रं. के 'सलोकु' नामक छंद को स्थूल मान से 'दोहा' छंद का पर्याय समझा जा सकता है। डॉ. चरणसिंह ने 'सलोकु' को संगीत शास्त्र में 'द्विपथक' प्रबंध[105] के अंतर्गत स्थान दिया है। राग-कल्पद्रुम[106] में दोहों के साथ राग-ताल का निर्देश मिलता है। आ. ग्रं. में भी 'सलोकु' नामक छंदों के साथ राग नामोल्लेख मिलता है।[107] दोहे, प्रचार में, अताल और सताल दोनों प्रकार से गाए जाते देखे गए हैं।[108]

शात्रीय संगीत में 'दोहा' छंद को ख्याल शैली में निबद्ध कर, विभिन्न रागों में गाया जाता है।[109] संक्षिप्त आकार के कारण यह छंद ख्याल शैली के सर्वाधिक अनुकूल पड़ता है, यद्यपि यह सत्य है कि गायन में सौंदर्य एवं रंजकत्व की दृष्टि से, इसे जिस प्रकार स्वर एवं तालबद्ध किया जाता है, उसे सुनकर किसी छंद शास्त्री के लिए भी उसका छंद-रूप पहचानना कठिन है, यह बात विशेषतः विलम्बित ख्याल में देखी जा सकती है।[110] 'द्विपथक' आदि प्रबंधों को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारे संगीतशास्त्र में प्रबंध "Compositional pattern" अथवा देशी गीत-विधाओं का कितना अधिक विकास हो चुका था।

विप्रकीर्ण प्रबंध

(अ) स्तवमंजरी

इस प्रबंधभेद के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें स्तुति अथवा स्तवन ही वर्ण्य-विषय रहता है। शास्त्रज्ञों ने देव-देवियों की स्तुति को इस प्रबंध के अंतर्गत स्थान दिया है।[111]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिंदी के निर्गुण संतकाव्य में यद्यपि देवी-देवताओं एवं परतत्त्व के श्रीविग्रह की उपासना को स्थान नहीं मिला, किन्तु कहीं-कहीं स्थूल दृष्टि से देखने पर उक्त भाव के कुछ पद अवश्य मिल जाते हैं, इन्हें 'स्तवमंजरी' के अंतर्गत रखा जा सकता है। कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं।

(1) *'नहीं छाड़ौं बाबा राम नाम, मोहि और पढ़न सूँ कौन काम ॥टेक॥*
प्रह्लाद पधारे पढ़न साल, संग सखा लीयें बहुत बाल॥
मोहि कहा पढ़ावै आल जाल, मेरी पाटी में लिखि दे श्रीगोपाल ॥
तब संनां मुरकां कह्यौ जाइ, प्रहिलाद बंधायौ बेगि आइ ॥
तूं राम कहन की छाड़ि बांनि, बेगि छुड़ाऊ मेरा कह्यौ मांनि ॥
मोहि कहा डरावै बार बार, जिनि जल थल गिर कौ कियौ प्रहार ॥
बांधि मारि भावै देहि जारि, जे हूँ राम छाड़ौ तो मेरी गुरहि गारि ॥
तब काढ़ि खड़ग कोप्यो रिसाइ, तेहि राखन हारो मोहि बताइ॥
खंभा में प्रगट्यो गिलारि, हरनाकस मारयो नख बिदारि ॥
महा पुरुष देवाधिदेव, नरस्यंध प्रकट कियो भगति मेवं ॥
कहे कबीर कोई लहे न पार, प्रहिलाद ऊबार्‌यो अनेक बार ॥'[112]

(2) *'पंडिता मन रंजिता, भगति हेत ल्यौ लाइ रे।*
प्रेम प्रीति गोपाल भजि नर, और कारण जाइ रे ॥टेक॥
दांम छै पणि कांम नांहीं, ग्यांन छै पणि धंध रे।
श्रवण छै पणि सुरति नांहीं, नैंन छै पणि अंध रे ॥
जाको नाभि पदम सु उदित ब्रह्मा, चरन गंग तरंग रे।
कहै कबीर हरि भगति वांछूं, जगत गुरु गोव्यंद रे ॥'[113]

(3) *मेरे बाप माधौ तू धन कैसो, सांवलियो बीठुलराइ।*
कर धरे चक्र बैकुंठ ते आयो, हूं रे गज के प्रान उधार्‌यो ॥
दुहसासन की सभा द्रोपदी, अंबर लेत उद्धार्‌यो।
गौतम नारि अहल्या तारी, पापिन केतिक तार्‌यो ॥
ऐसा अधम अजाति नाम देउ, तव सरनागति आयो ॥'[114]

उक्त पदों में क्रमशः नरसिंह भगवान्, विष्णु तथा भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति मिलती है। निर्गुण काव्य में स्थूल मान से इस प्रकार के परब्रह्म के श्रीविग्रह के प्रतिपादक अनेक पद मिलेंगे, जिन्हे 'स्तवमंजरी' के अंतर्गत स्थान दिया जा सकता है।

इन पदों के अतिरिक्त परब्रह्म की स्तुति वाले पद, 'आरती' (परम तत्त्व की) शीर्षकस्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद; भक्तों, ऋषियों, मुनियों आदि के स्तुतिपरक पद, इसी प्रकार गुरुदेव कौ अंग, अबिहड़ कौ अंग, निर्गुण उपासना कौ अंग, ब्रह्मनिःकलंक कौ अंग, समर्थाई कौ अंग, पीव पिछाण कौ अंग, साधु कौ अंग, ज्ञानी कौ अंग, आश्चर्य कौ अंग आदि साखी एवं सवैये तथा उक्त कोटि के अन्य सभी फुटकर पद 'स्तवमंजरी' प्रबंध के अंतर्गत रखे जा सकते हैं। आ.ग्रं की जपु, सोदरु, सो पुरखु, सोहिला, सुखमणी आदि वाणियाँ तथा सुंदरदास के 'ब्रह्मस्तोत्र' 'अष्टक' इत्यादि ग्रंथ भी स्तवमंजरी प्रबंध कहे जा सकते हैं।

परब्रह्म-स्तुति के (पदों के) दो उदाहरण प्रस्तुत हैं।

(1) *'धनि धनि तूं धनि धणीं, तुम्ह सों मेरी आइ बणीं ॥ टेक॥*
धनि धनि तूं तारे जगदीस, सुर नर मुनिजन सेवैं ईस ॥
धनि धनि तू केवल रांम, सेस सहस मुष ले हरि नाम ॥1॥
धनि धनि तूं सिरजनहार, तेरा कोई न पावै पार ॥
धनि धनि तूं निरंजन देव, दादू तेरा लषै न भेद ॥2॥[115]

(2) *'हे अचुत हे पारब्रह्म अविनासी अघनास।*
हे पूरन हे सुख में दुख भंजन गुण तास ॥
हे संगी हे निरंकार हे निरगुण सम टेक ॥
हे गोविंद हे गुण निधान जाकै सदा विवेक ॥
हे अपरंपार हरि हरे हहि भी होवनहार ॥
हे संतह कै सदा संगनिहारा आधार ॥
हे ठाकुर कउ दासरो मैं निरगुन गुन नहीं कोई ॥
नानक दीजै नाम दानु राखउ हीअै परोइ ॥[116]

(आ) मंगल-प्रबंध

मंगल 'शीर्षक से युक्त गेय पदों को हमारे शास्त्रों में 'मंगल' नामक प्रबंधभेद के अंतर्गत स्थान दिया गया है।[117] हिंदी के निर्गुण संतकाव्य में इस प्रकार के अनेक पद मिलते हैं, दृष्टांत के लिए कुछ पद प्रस्तुत हैं।

(1) *'गावहु मंगलचार, आज बधावणां ये ।*[118]
सुपनों देष्यो साच, पीव घरि आवणां ये ॥ टेक ॥
भाव कलस जल प्रेम का, सब सषियन के सीस।
गावत चलीं बधावणां, जै जै जै जगदीस ॥1॥
पदम कोटि रवि झिलमिलै, अंगि अंग तेज अनंत ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिगसि बदन बिरहिनि मिली, घरि आए हरि कंत ॥2॥
सुंदरि सुरति सिंगार करि, सनमुष परसे पीव।
मो मंदिर मोहन आविया, वारूं तन मन जीव ॥3॥
कवल निरंतन नर हरी, प्रगट भये भगवंत।
जहँ बिरहनि गुण पीकै, षेले फाग बसंत ॥4॥
बर आयो बिरहनि मिली, अरस परस सब अंग।
दादू सुंदरि सुष भया, जुगि जुगि यहु रस रंग ॥5॥

(2) 'अम्ह घरि पाहुणां ये, आव्या आतमरांम ॥टेक॥[119]
चहुं दिसि मंगलचार, आनंद अति घणां ये।
वरत्या जैजै कार, विरघ वधावणां ये ॥1॥
कनक कलस रस माहिं, सखी भरि ल्यावज्यो ये।
आनंद अंगि न माइ, अम्हारै आविज्यो ये ॥2॥
भावै भगति अपार, सेवा कीजिये ये।
सनमु सिरजनहार, सदा सुष लीलिये ये ॥3॥
धन्य अम्हारा भाग, आव्या अम्ह मणीं ये।
दादू सेज सुहाग, तूं त्रिभवन धणीं ये ॥'

(3) 'आज हमारे रांमजी, साध घरि आये।[120]
मंगलचार चहुं दिसि भये, आनंद बधाये ॥टेक॥
चौक पुराऊँ मोतियों, घसि चंदन लाऊँ।
पांच पदारथ पोइ कें, यहु माल चढ़ाऊं ॥1॥
तन मन धन करौ वारनें, परदषनां दीजै।
सीस हमारा जीव ले, नौछावर कीजै ॥2॥
भावभगति करि प्रीति सों, प्रेम रस पीजै।
सेवा बंदन आरती, यहु लाहा लीजै ॥3॥
भाग हमारा हे सषी, सुष सागर पाया।
दादू का दरसन किया, मिले त्रिभुवन राया ॥4॥

(4) 'आज दिवस धनि राम दुहाई।[121]
आये संत सकल सुखदाई ॥टेक॥
मंगलचार भयौ आनंदा, कमल षिलै ज्यों देवै चंदा ॥1॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाव अधिक उपज्यो जिस मेरे, तन मन धन नौछावर फेरे ॥ 2 ॥
बिनती जोरि करूँ दोउ हाथा, बारम्बार नवाऊँ माथा ॥ 3 ॥
मस्तक भाग उदै करि जाना, सुंदर मेटे संत सयाना ॥ 4 ॥

(5) *'दुलहनी गावहुं मंगलाचार ।*[122]
हम घरि आये हो राजा राम भरतार ॥ टेक ॥
तन रत करि मैं मन रत करि हूँ, पंचतत बराती ।
रामदेव मोरै पाहुनें आये, भर जोबन मैं माती ॥
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार ।
रामदेव संगि भांवरि लैहूँ, धंनि धंनि भाग हमार ।
सुर तेतीसूं कौतिक आये, मुनियर सहस अठ्यासी ।
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी ॥'

(इ) शुकसारिक प्रबंध

इस प्रबंधभेद में प्रश्नोत्तर-शैली रहती है और यही शैली-विशेष इसके नामकरण का आधार है। तोता-मैना के प्रश्नोत्तर लोक-विख्यात ही हैं, संभवतः प्रश्नोत्तर-शैली का संकेत देने के हेतु से ही शास्त्रकारों ने उक्त प्रबंध को 'शुकसारिक' नाम दिया है।[123]

निर्गुण काव्य में इस कोटि के अनेक पद मिलते हैं। वैसे तो इस शैली का प्रचार लोक-साहित्य एवं लोकगीतों में खूब मिलता है, किंतु 'रागकल्पद्रुम' जैसे महत्त्वपूर्ण संगीत-ग्रंथ में सुंदरदास के 'सवैया' ग्रंथ के ज्ञान तत्त्व संबंधी अनेक छंद, गुरु-शिष्य में, प्रश्नोत्तर रूप में दिए गए हैं और इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य बात है, उक्त छंदों के साथ राग-ताल का उल्लेख, अतएव उपर्युक्त कोटि के छंदों, पद्यों अथवा पदों को 'शुकसारिक' प्रबंध के अंतर्गत स्थान देना आपत्तिजनक न होगा। रागकल्पदुम में गेय साहित्य संकलित है। गायकों में सुंदरदास के उक्त छंदों को निर्दिष्ट राग-ताल में गाने की परंपरा अवश्य रही होगी, इसी कारण उनके साथ राग-ताल का उल्लेख मिलता है। अतः प्रबंध की दृष्टि से इन छंदों का वैशिष्ट्य स्वतः सिद्ध है। इसी दृष्टि से, उस प्रकार के पदों को हमने उपर्युक्त प्रबंधभेद के अंतर्गत स्थान दिया है। नीचे रागकल्पद्रुम तथा संतों के काव्य संग्रहों में से उक्त प्रबंध के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

(1) सुघराईः चौतालाः प्रश्न[124]

'कैसे के जगत यह रच्यो हे जगत गुरु, ।
मोसो कहो प्रथम ही कौन तत्त्व कीन्हो है?
प्रकृति की पुरुष की महत् तत्त्व अहंकार,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कीधौं उपजाय सत्व, रज, तम तीनों है?
कीधौं व्योम, वायु, तेज, अप की अवनि कीन,
सुंदर कहत कीधौं, सकल विहीनो है ॥'

उत्तरः चौताला[125]

'ब्रह्म ते पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई।
प्रकृति में महत् तत्व पुनि अहंकार है।
अहंकार हू ते तीन गुण सत्व, रज, तम,
तम हूं तो महाभूत विषय पसार है।
रज हूं ते इंद्री दश पृथक्-पृथक् भई,
सत्व हू ते मन आदि देवता विचार है।
ऐसे अनुक्रम करी शिष्य सो कहत गुरु,
सुंदर सकल यह मिथ्या ब्रह्मजाल है।

इसी पृष्ठ पर एक छंद ऐसा भी मिलता है, जिसमें प्रश्नोत्तर एक साथ रखे गए हैं।

(2) प्रश्नोत्तरः चौताला[126]

देह यह किनको है, देह पंच भूतनि को,
पंचभूत कौन ते हैं? तामस हंकार ते।
अहंकार कौन ते हैं? जासों कहे महत् तत्त्व,
महत् तत्त्व कौन ते हैं? प्रकृति मझार ते।

(3) अथ शिष्य का प्रश्न, पद्धरी[127]

कर जोरि उभय शिष-करि प्रणाम।
तव प्रश्न करी मन धरि विराम ॥
हौं कौन, कौन यह जगत आहि?
पुनि जन्म-मरण प्रभु कहहु काहि?

श्री गुरुउवाच : उत्तरबोधक[128]

है चिदानंद घन ब्रह्म तूं सोई।
देह संयोग जीवत्व भ्रम होई।
जगत हू सकल यह अनछतौ जानौ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जनम अरु मरण सब स्वप्न करि मानौ।

(4) शिष्य उवाच : गीतक[129]

जौ चिदानंद स्वरूप स्वांमी ताहि भ्रम कहि क्यों भयो?
तिहिं देह के संयोग ह्वै जीवत्व मानिर क्यों लयो ?
यह अनछतौ संसार कैसें जो प्रतक्ष्य प्रमांणियें?
पुनि जन्म मरण प्रवाह कब कौ स्वप्न करि क्यों जानिये?

श्री गुरुरुवाचः दोहा[130]

भ्रम ही कौ भ्रम ऊपज्यौ, चिदानंद रस येक।
मृग जल प्रत्यक्ष देखिये, तैसें जगत विवेक ॥ 34 ॥

चौपाई

निद्रा महिं सूतो है जौलौं। जन्म मरण को अंत न तौलौं।
जागि परें तें स्वप्न समाना। तब मिटि जाइ सकल अज्ञाना ॥ 35 ॥

(5) आतम उपदेस, प्रश्नोत्तरी[131]

ब्रह्म सुंनि तहं क्या रहें, आतम के अस्थान?
काया असथलि क्या बसै? सतगुरु कहै सुजान ॥ 127 ॥
काया के असथलि रहे, मन राजा पंच प्रधान।
पचीस प्रकीरति तीनि गुण आपा गर्व गुमान ॥128॥
आतम के अस्थान हैं, ज्ञान ध्यान विसवास।
सहज सील संतोष सत, भाव भगति निधि पास ॥ 129 ॥
ब्रह्म सुंनि तहं ब्रह्म है, निरंजन निराकार।
नूर तेज तहं जोति है, दादू देषण हार ॥ 130 ॥

(6) परचै बिनतीः प्रश्न[132]

कौण भाँति मन मानें गुसाईं, तुम भावे सो मैं जांनत नांहीं ॥ टेक ॥
कै भल मानें नाचें गायें, कै भल मांने लोक रिझायें ॥ 1 ॥
कै भल मानें तीरथ न्हायें, कै भल मानें मूड मुड़ायें ॥ 2 ॥
कै भल मानें सब घर त्यागी, कै भल मानें भये बैरागी ॥ 3 ॥
कै भल मांने जटा बंधायें, कै भल मानें भसम लगायें ॥ 4 ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कै भल मांनें बन बन डोलें, कै भल मांनें मुषहि न बोले ॥ 5 ॥
कै भल मांनें जप तप कीयें, कै भल मांनें करवत लीयें ॥ 6 ॥
कै भल मांने ब्रह्म गियांनी, कै भल मांनें, अधिक धियानी ॥ 7 ॥
जे तुम्ह भावै सो तुम्ह पैं आहि, दादू न जांणैं कहि समझाइ ॥ 8 ॥

॥ साषी उत्तर ॥

दादू जे तूं समझै तौ कहौं, साचा एक अलेष।
डाल पांन तजि भूल गहि, क्या दिषलावे भेष ॥ 1 ॥
दादू सचु बिन सांई ना मिले, भावै भेष बनाइ ।
भावै करतल उरध मुषि, भावै तीरथ जाइ ॥ 2 ॥

(7) प्रश्न उत्तर[133]

कोई जानें रै मरम माधईये कैरौ।
कैसें रहे करै का सजनीं प्राण मेरौ।। टेक।।
कौन विनोद करत री सजनीं, कवननि संग बसेरौ?
संत साध गमि आये उनके, करत जु प्रेम घणेरौ।। 1।।
कहां निवास वास कहँ सजनीं, गवन तेरौ?
घट घट माँहँ रहे निरंतर, ये दादू नेरौ।। 2।।

यहाँ टेक के निर्देश द्वारा पद का गेय रूप स्पष्ट दिखाया है। इसके पश्चात् क्रमशः एक पंक्ति में प्रश्न तथा अगली पंक्ति में उत्तर की नियोजना की गई है।

(8) गोरखनाथ और कबीर के मध्य में होने वाले प्रश्नोत्तर रूप में एक पद कबीर साहेब की शब्दावली में मिलता है जोकि निम्नांकित है।

॥ प्रश्न गोरखनाथ ॥[134]

कबिरा कब से भये बैरागी, तुम्हारी सुरत कहाँ को लागी?

॥ उत्तर ॥

धुंधम ई का मेला नाहीं, नहीं गुरु नहिं चेला।
सकल पसारा तेहि दिन नाहीं, जेहि दिन पुरुष अकेला ॥
गोरख हम तब के बैरागी, हमरी सुरत नाम से लागी ॥ 11 ॥
ब्रह्म नहिं जब टोपी दीन्हां, बिस्तु नहीं जब टीका ।
सिव सक्ती के जन्मौ नाहीं, जबै जोग हम सीखा ॥ 2 ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सतजुग में हम पहिरि पांवरी, त्रेता झोरी झंडा।
द्वापर में हम अड़वंद पहिरा, कलउ फिर्‌यौं नौ खंडा ॥ 3 ॥
कासी में हम प्रगट भये हैं, रामानंद चिताये।
समरथ को परवाना लाये, हंस उबारन आये ॥ 4 ॥
सहजै सहजै मेला होइगा, जागी जागी भगति उतंगा ।
कहै कबीर सुनो हो गोरख, चलो सबद के संगा ॥ 5 ॥

(ई) मंगलाचार

'मंगलाचार' शीर्षक गेय पदों को हमारे शास्त्रों में 'मंगलाचार' प्रबंध के अंतर्गत रखा गया है।[135] अतः निर्गुण काव्य में उक्त शीर्षक से युक्त मंगलवाची पदों को 'मंगलाचार' प्रबंध के अंतर्गत रखा जा सकता है। संत दादूदयाल का इस कोटि का एक पद नीचे प्रस्तुत है।

मंगलाचरण[136]

'नमो नमो हरि नमो नमो।
ताहि गुसाईं नमो नमो, अकल निरंजन नमो नमो।
सकल वियापी जिहि जग कीन्हां, नारांइण निज नमो नमो ॥ टेक ॥
जिन सिरजे जल सीस चरण कर, अविगत जीव दियौ ।
श्रवण संवारि नैन ससनां मुष, जैसा चित्र कियौ ॥ 1 ॥
आप उपाइ किये जग जीवन, सुर नर संकर साजे।
पीर पैकंबर सिध अरु साधिक, अपनै नांइ निवाजै ॥ 2 ॥
धरती अंबर चंद सूर जिन, पांणीं पवन किये।
मानंण घड़न पलक में केते, सकल सवारि लिये ॥ 3 ॥
आप अषंडित षंडित नांहीं, सब सभि पूरि रहे।
दादू दीन ताहि नइ बंदति, अगम अगाध कहे ॥

(उ) दंती प्रबंध

शास्त्रकारों (शार्ङ्गदेव, राणा कुम्भा आदि) ने विप्रकीर्ण प्रबंधभेदों में एक 'दंती' नामक प्रबंधभेद का उल्लेख किया है, जिसका वर्ण्य-विषय प्रहेलिका[137] आदि कहा गया है। निर्गुण-कवियों द्वारा लिखी उलटबांसियाँ भी एक प्रकार की पहेलियाँ ही हैं, अतः इन विशिष्ट कृतियों को 'दन्ती' प्रबंध कहा जा सकता है। संतों की 'विपर्यय शब्द को अंग' नामक कृतियां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी उक्त प्रबंधभेद के अंतर्गत रखी जा सकती हैं। संत कवियों के पद-संग्रहों में से कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं, जिनके द्वारा इस प्रकार की अन्य कृतियों में 'दन्ती' प्रबंध की सत्ता मानने में सहायता मिलेगी।

(1) *संतहु पुत्र भया एक धी के।*[138]
पुरुष संग कबहूं न छाड्या, जानत सब कोई नीके ॥ टेक ॥
पिता आइ कीयो संयोगा, यहु कलियुग बरताना।
शब्द सु बिंद श्रवन द्वारै करि हृदै माहिं ठहराना ॥ 1 ॥
ता बीरज का सों सुत उपना, निसदिन करे तमासा।
कर बिन उचकि चंद कों पकरै, पग बिन चढ़ै अकासा ॥ 2 ॥
भूल न दूध धाइ का पीवै, मा के चूषै फूलै।
सदा मुदित रोवे नहिं कबहूं, परया पिंघूरै झूले ॥ 3 ॥
अति बलवंत अंग बिन बालक, करै काल कों चोटा।
सुंदर डर किसहू का नाहीं, रहे ब्रह्म की वोटा ॥ 4 ॥

(2) *एक अचंभा देखा रे भाई*
ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई ॥ टेक ॥[139]
पहले पूत पीछे भई माह, चेला के गुरु लागे पाइ।
बेलहि डारि गूंनि घरि आई, कुत्ता कूं लै गई बिलाइ ॥
तलि करि साषा ऊपरि करि मूल, बहुत भांति लागे जड़ फूल।
कहै कबीर या पद को बूझै, ताकू तीन्यूं त्रिभुवन सूझै॥

(3) *कैसें नगरि करौं कुटवारी। चंचल पुरिषु बिचषन नारी ॥ टेक ॥*[140]
बैल बियाइ गाइ भई बांझ, बछरा दूजै तीन्यूं सांझ।
मकड़ी घरि माषी छछि हारी, मास पसारि चील्ह रखवारी ॥
मूसा खेवट नाव बिलइया, मींडक सोवै पाप पहरइया ॥
नित उठि स्याल स्यंध सूं सूझे, कहे कबीर कोई बिरला बूझै ॥

(ऊ) चतुष्पदी

आ.ग्रं. में 'चौपदे' शीर्षक से भिन्न-भिन्न रागों में 4-4 पादों की अनेक कृतियां मिलती हैं। सभी संतों के इस प्रकार के अनेक पद मिलते हैं, यद्यपि उन पर पाद-संख्या का निर्देश नहीं किया गया किंतु इस प्रकार की सभी रचनाओं को संगीत की दृष्टि से हम 'चतुष्पदी' प्रबंध के अंतर्गत स्थान दे सकते हैं।[141]

शास्त्रों में 'चतुष्पादी गीतों को' 'चतुष्पदी' प्रबंध के नाम से अभिहित किया गया है।[142]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

संत पदावली में से दो 'चतुष्पदी' प्रबंधों के उदाहरण निम्नांकित हैं।

माझ म. 5 चौपदे, घरु 1[143]

(1) *मेरा मनु लोचे गुर दरसन ताईं। बिलख करे चात्रिक की निआई ॥*
तृखा न उतरे सांति न आवै, बिनु दरसन संत पिआरे जीउ ॥1॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई गुर दरसन संत पिआरे जीउ ॥ 1 ॥ रहाउ ॥
तेरा मुखु सुहावा जीउ सहज धुनि बाणी ॥
चिरु होआ देखे सारिंगपाणी ॥
धंन सु देस जहा तूं वसिआ मेरे सजण मीत मुरारे जीउ ॥ 2 ॥
हउ घोली हउ घोलि घुमाइ गुरु सजण मीत मुरारे जीउ ॥ 1 ॥ रहाउ ॥
इक घड़ी न मिलते ता कलिजुग होता ॥ हुणि कदि मिलिअे प्रिय तुधु भगवंता ॥
मोहि रैणि न विहावै नींद न आवै बिनु देखे गुर दरबारे जीउ ॥ 3 ॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई तिसु सचे गुर दरबारे जीउ ॥1॥ रहाउ ॥
भागु होआ गुरि संतु मिलाइआ। प्रभु अविनासी घर महि पाईआ ॥
सेवक री पलु चखनि बिछुड़ा। जन नानक दास तुमारे जीउ ॥ 4 ॥
हउ घोलि जीउ घोलि घुमाई जन नानक दास तुम्हारे जीउ ॥ रहाउ ॥ 1 ॥

(2) *'नाव भ्रम जैसे मिरगाए प्रान तजे वाको धिआनु न जाए ॥ 1 ॥*
अैसे रामा अैसे हेरउ। राम छोड़ि चितु अनत न फेरउ ॥ रहाउ ॥
जिउ मीना हेरै पसूआरा। सोना गढ़ तो हिरै सुनारा ॥ 2 ॥
जिउ विषई तरे पर नारी। कड्डा डारत हिरै जुआरी ॥ 3 ॥
जह जह देखउ तह तह रामा। हरि के चरन नित धिआवै नामा ॥ 4 ॥'[144]

(ए) धम्माली प्रबंध

हमारे प्राचीन शास्त्रों में प्रबंधभेदों के निर्माण के आधारभूत विभिन्न तत्त्व रहे हैं। शास्त्रकारों ने राग का निर्देश, ताल का निर्देश, छंद का निर्देश तथा विशेष सामाजिक अवसरों अथवा उत्सवों पर गाए जाने का (पद का वर्ण्य विषय) वैशिष्ट्य आदि विभिन्न तत्त्वों के आधार पर अनेक प्रबंधभेदों का निर्माण किया है। इन प्रबंधों (विप्रकीर्ण प्रबंध के 45 भेदों में) में 'धम्माली' नामक एक प्रबंध का उल्लेख मिलता है[145] जिसे होरी अथवा 'फल्गूत्सव' पर गाने का निर्देश मिलता है।[146] शास्त्रीय संगीत में अधुना प्रचलित 'धमार' नामक गीत प्रकार 'धम्माली' प्रबंध है।' 'धमार' अथवा 'धम्माली' (प्रबंध) का होली अथवा फल्गूत्सव के साथ विशेष संबंध, ध्यातव्य है।[147]

संतों ने फल्गूत्सव से संबंधित अनेक पद लिखे हैं। स्वरलिपि के अभाव में इनमें 'धमार'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताल का संकेत पाना तो कठिन है, किंतु वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इन्हें 'धम्माली' प्रबंध के अंतर्गत रखना संभवतः अनुचित न होगा। दो पद उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं।

(1) *आवो मिलहु रे संत जना हो हो होरी।*
सब मिलि षेलहु फाग रंगनि रंग हो होरी ॥
राम नाम गुन गाइये रंग हो हो होरी।
देषहु मोटे भाग रंगनि रंग हो हो होरी ॥ (टेक)
काया कलश भराइये रंग हो हो होरी।
प्रेम प्रीति घसि घोरि रंगनि रङ्ग हो हो होरी।
भाव भगति झकझोरि रंगिनि रंग हो हो होरी ॥ 1 ॥
ज्ञान गुलाल उड़ाइये रंग हो हो होरी
सुमति पिचककर लेहु रंगनि रंग हो हो होरी ॥
भरहु परसपर आत्मा रंग हो हो होरी।
हरि जस गारी देहु रंगनि रंग हो हो होरी ॥ 2 ॥
शब्द अनाहद बाजहीं रंग हो हो होरी।
बीना ताल मृदंग रंगनि रंग हो हो होरी ॥
रोम रोम सुख ऊपजै रंग हो हो होरी।
षेल मच्यौ सतसंग रंगनि रंग हो हो होरी ॥ 3 ॥
अमी महारस पीजिये रंग हो हो होरी।
पूरण ब्रह्म बिलास रंगनि रंग हो हो होरी ॥
मतिवाले सब साधवा रंग हो हो होरी।
माते सुंदरदास रंगनि रंग हो हो होरी ॥ 4 ॥[148]

(2) *तुम षेलहु फाग पियारे कन्त।*
अब आयो है फागुन ऋतु बसन्त ॥ (टेक)
घसि प्रेम प्रीति केसरि सुरंग, यह ज्ञान गुलाल लगावे अंग।
भरि सुमति पिचरकी अपने हाथ, हम मरिहैं तुमहिं त्रिलोकनाथ ॥1॥
तुम हमहिं भरहु करि अधिक प्यार, हम तुमहिं भरहिं प्रभु बार बार।
निसबासर षेल अखंड होइ, यह अद्‌भुत खेल लषै न कोइ ॥ 2 ॥
तहां शब्द अनाहद अति रसाल, धुनि दुंदभि ढोल मृदंग ताल ।
सुख उपजै श्रवननि सुनत नाद, मन मगन होई छूटै बिषाद ॥ 3 ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम तुमहिं पकरि आंजिहैं नैंन, सब हो हो हो हो कहैं बैन।
तुम छूट्यो चाहत फगुवा देइ, यह सुंदर नारि कछू न लेई ॥ 4 ॥[149]

(ऐ) वीरश्री प्रबंध

जिस प्रबंध में वर्ण्यपात्र के वीररसोचित गुणों एवं शौर्यपूर्ण कृत्यों का समावेश रहता है, उसे शास्त्रों में 'वीरश्री' नामक प्रबंध कहा गया है।[150]

यदि उक्त प्रबंध का व्यापक अर्थ लें तो निर्गुण संतों के द्वारा किए गए शूरवीर भक्तों के ओजस्वी वर्णन भी 'वीरश्री' प्रबंध के विषयांतर्गत आ सकेंगे। कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं।

राग सिंधूड़ो[151]

(1) *सोई सूरवीर सावंत सिरोमनि, रन में जाइ गला लैरे।*
आप आपणा घर में बैठा, गाल सबै कोई मारे रे ॥ (टेक)
नागो लडै पहरि केसरियो सतवादी सत भाषे रे।
श्याम भरोषे संक न कोई और वोट नहिं राषे रे ॥1॥
ह्वै मरण कि आस तजि तनकी, रोमि रहै रन मांहीं रे ।
दोनों प्राणी जुड़ै जब सनमुख, नब पाछा दे नांही रे ॥ 2 ॥
पीसे दांत पिसण कै ऊपरि, कै ऊपरि हाथ गहै हथियारा रे ।
नेजा धारी निरषि फौज में, मारे मन सिरदारे रे ॥ 3 ॥
जहां छूटै तीर झड़ाझाड़ि बीचै तहां स्याबतो आवै रे ।
सुंदर लटको करै स्याम कों, तब तो सूर कहावै रे ॥ 4 ॥

राग सिंधूड़ो

(2) *दादू सूर सुभट दल थम्मण, रोपि रह्यौ रन मांही रे।*
जाकी साषि सकल जग बोलै, टेक टली कहुं नाहीं रे ॥ (टेक)
ऐसी मार करै बाणन की, जिहिं लागै सो जाणें रे ।
माता पूत एक ही जायो, बेरी बहुत बषाणें रे ॥ 1 ॥
हाक सुणें तें हीयो फाटे, सनमुख कोई न आवै रे।
जहाँ पडे तहां टूक टूक करि अति घमसांण मचावै रे ॥ 2 ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

अंग उघाड़े उतरि अषाडै परदल पाडे सूरा रे।
रहे हजूरि सभ के आगे, मुख परि बरषे भूरा रे ॥ 3 ॥
काम धणीं को सबै संवार्‌यो, साहिब के मन भायो रे ।
कछू एक जस गुरु दादू को, सुंदरदास सुनायो रे ॥ 4 ॥

(3) द्वै दल आई जुड़े धरणी पर बिच सिंधूड़ो बाजै रे।
एक वीर कों नृप विवेक चढ़ि, एक ओह नृप गाजै रे ॥ (टेक)
प्रथम काम रन मांहि गल्यारो को हम ऊपरि आवै रे ।
महादेव सरिषा में जीत्या, नर की कौन चलाबै रे ॥1॥
आइ बिचार बोलियों बांणीं, मुख पर नीकें डाट्‌यो रे।
ज्ञान षडग ले तुरत काम कों, हाथ पकडि सिर चाट्‌यों रे ॥ 2 ॥
क्रोध आह बोल्यो रन मांहीं, हो सबहिन को काला रे।
देव दयंत मनुष पशु पंछी, जरें हमारी ज्वाला रे ॥ 3 ॥
षिमा आइके हँसने लागी, सीस चरन कों नायौ रे ।
चूक हमारी बकसहु स्वामी, इतनें क्रोध नसायौ रे ॥ 4 ॥
तबहिं लोभ रन आइ पचार्‌यो, मैं तो सबही जीते रे।
जो सुमेर घर भीतर आबै, तो पेट सबन के रीते रे ॥ 5 ॥
इत संतोष आइ भयो ठाढो, बोले बचन उदासा रे।
होनहार से ह्वै भाई, कीयो लोभ को नासा रे ॥ 6 ॥
महालोभ को लागी चटपटी, अति आतुर सों आयो रे।
मेरे जोधा सबही मारे, ऐसो कौन कहायो रे ॥ 7 ॥
ता पर राइ बिबेक पधार्‌यो कीनी बहुत लराई रे।
इत तें उत तें भई झड़ाझड़ि काहू सुद्धि न पाई रे ॥ 8 ॥
बहुत बार लग जूझे राजा राइ बिबेक हंकार्‌यो रे।
ज्ञान गदा की दई सीस में महा मोह कों मार्‌यो रे ॥ 9 ॥
फीटो तिमिर भान तब ऊगो अंतर भयो प्रकासा रे।
युग युग राज दियो बिनासी गावै सुंदरदासा रे ॥ 10 ॥

(सुं. ग्रं., द्वि. खं. 880-81/3)

(4) तउफडै सूर नीसान धाई पडे, कोट की वोट सब छोडि चाले।
स्यांम के काम कों लोट अरु पोट ह्वै, निकसि मैदान में चोट घाले ॥ (टेक)
जहां कडकडे बीर गजराज हय हडहडै, घडहडै धरनि ब्रह्मांड गाजै।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

झलहले सार हथियार अति षडहडे, देषिता दूरि भकभूरि भाजे ॥ 1 ॥
जहाँ तुपक तरवारि अरु सेल टक टूक ह्वै, बांण की तांण चहुँ फेर हुई।
गहर घंमसांण में कहर धीरज धरै, हहरि भाजै नहीं सुभट सोई ॥ 2 ॥
पिसुन सब पेलि झडकेलि सनमुख लडै, मर्द कों मारि करि गर्द मेले।
पंच पच्चीस रिपु रीस करि निर्दले, सीस मुई मेल्हि को कमथ षेलै ॥ 3 ॥
अगम को गमि करे दृष्टि उलटो धरे, जीति संग्राम निज धांम आवे।
दास सुंदर कहे मौज मोटी लहे, रीझि हरिराइ दरसन दिषावे ॥4॥

(सुं0 ग्रं. द्वि. खं. 881-82/4)

सुंदरदास का एक अन्य पद द्रष्टव्य है, जिसमें उन्होंने ध्रुव, सनक, सनन्दन, नारद, ऋषभदेव, प्रह्लाद, दत्तात्रेय, शुकदेव, गोरखनाथ, भर्तृहरि, गोपीचंद चर्पट, काणेरी, चौरंगी, रामानंद, नामदेव, त्रिलोचन, कबीर, रैदास, सोझा, पीपा, सेन, धन्ना, अंगद, नानक, बेणी, आदि अनेक भक्तों, ऋषि मुनियों एवं जोगियों ने अध्यात्म-क्षेत्र में शौर्य का वर्णन किया है और अंत में निज गुरु दादू के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि सांभर में प्रकट हुए गुरु दादू के समान कोई भी शूरवीर नहीं है।

(5) *'महासूर तिनको जस गाऊं, जिनि हरि सों ले जाई रे।*
मन मेवासी कियो आप बसि और अनीति उठाई रे ॥ (टेक)
प्रथम सूर सतयुग में कहिये ध्रुव दृढ ध्यान लगायो रे।
माया छल करि छलने आई, डिग्यो न बहुत डिगायो रे ॥ 1 ॥
सनक सनंदन नारद सूरा नो योगेसुर न्यारा रे।
तीनि गुणां को त्यागि निरंतर, कीयों ब्रह्म बिचारा रे ॥ 2 ॥
ऋषभदेव नृप सूर सिरोमनि जाइ बस्यो बन मांहीं रे।
एकमेक ह्वै रह्यो ब्रहम सों, सुधि सरीर की नाहीं रे ॥ 3 ॥
जन प्रहिलाद जोध जोरावर, पिता दई बहु त्रासा रे।
राम नाम की टेक न छाडी, प्रगट भयो हरिदासा रे ॥ 4 ॥
सूर बीर दत्तात्रेय ऐसो बिचरत इच्छाचारी रे।
भयो सुतंत्र नहीं परतंत्रा, सकल उपाधि निवारी रे ॥ 5 ॥
व्यास-पुत्र शुकदेव सुभट अति जनमत भयो विरक्ता रे।
रम्भा मोहि सकी नहिं ताकों सदा ब्रह्म अनुरक्ता रे ॥ 6 ॥
गोरखनाथ भरथरी सूरा कमधज गोपी चंदा रे।
चटपक कांणरी चौरंगी लीन भये तजि द्वंदा रे ॥ 7 ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामानाथ कियो सूरातन काशीपुरी मंझारी रे।
लोक उपासक शिव के होते अनि भक्ति बिस्तारी रे ॥ 8 ॥
नामदेव अरु रंका बंका भयो तिलोचन सूरा रे।
भक्ति करी भय छाडि जगत को बाजहिं तिनके तूरा रे ॥ 9 ॥
कलियुग माहिं कियो सूरातन दास कबीर निसंका रे।
ब्रह्म अग्नि परजारि पलक में जीति लियौ गढ़ बंका रे ॥ 10 ॥
जन रैदास साधि सूरातन, बिप्रनि मार मचाई रे।
सोझा पीपा सेन धना तिन जीती बहुत लराई रे ॥ 11 ॥
अंगद भुवन परस हरदासा, ज्ञान गह्यो हथियारा रे।
नानक कान्हा बेण महा भट, भलो बजायो सारा रे ॥ 12 ॥
गुरु दादू प्रगटे सांभरि में, ऐसो सूर न कोई रे।
बचन बसन लायो जाकै उर, थकित भयो सुनि सोई रे ॥ 13 ॥
आदि अंत कीयो सूरातन, युग युग साथ अनेका रे।
सुंदरदास मौज यह पावे, दीजै परम बिबेका रे ॥ 14 ॥

(सुं. ग्रं. द्वि. खं. 882-82/5)

(6) *सोई औ गाढ रे रण रावत बांको, पाछा पाव न मेल्हे।*
साचै मतै स्यांम रे आगे, सीस उतारयां षेल्हे ॥ (टेक)
चढि चढि सूर चहुं दिसि आया, हय हीसै गे गाजे।
बीजल ज्यों चमके बाढाली, काहर कांदरि माजे ॥ 1 ॥
मोह मिलि हू वा मोंह नहीं मोडे, होइ जाइ बिकराला।
सांगि सबहि फेरि सिर ऊपरि, मारे मीर मुछाला ॥ 2 ॥
चूके नहीं चोट यों घाले, मारे मार सुणावे।
करडी कमरि बांधि करि कमधज, घर की फौज मिटावे ॥ 3 ॥
खंड बिहण्ड होइ थल मांहीं, करे न तब को लोभा।
सुंदर मरे त मुकती पहुँचे, जीवे त जग में सोभा ॥ 4 ॥

(सुं.ग्रं., द्वि खं. 885/3)

इस प्रकार के अध्यात्म-क्षेत्र के अंतर्गत संतों द्वारा किए गए रसोचित वर्णनात्मक सभी पद 'वीरश्री' प्रबंध के अंतर्गत रखे जा सकते हैं।

इसी प्रकार, 'साखियों' के अंतर्गत सभी संतों द्वारा लिखे गए 'सूरातन को अंग'[152]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नामक साखी के अंग-विशेष को 'वीरश्री' प्रबंध के अंतर्गत रखा जा सकता है।

(ओ) त्रिपदी

आ. ग्रं. में 'तिपदे' शीर्षक से राग एवं घरु संख्याओं में निबद्ध तीन पादों की कुछ रचनाएँ मिलती हैं। इन रचनाओं में पद की समाप्ति पर '3' का अंक तीन पादों की समाप्ति का सूचक है। संगीत शास्त्र में इसे 'त्रिपदी' प्रबंध कहा गया है।[153] डॉ. चरणसिंह ने भी उक्त कोटि के पदों को 'त्रिपदी' प्रबंध माना है।[154]

आ.ग्रं. में से म. 5 का 'त्रिपदी' प्रबंध का एक उदाहरण प्रस्तुत है।

गूजरी, म. 5 तिपदे, घरु[155]

दुख बिनसे सुख कीआ निवासे तृसना जलनि बुझाई ॥
नामु निधानु सतिगुरु प्रिड़ाइआ बिनसि न आवै जाई ॥1॥
हरि जपि माइआ बंधन तूटे ॥
भये क्रिपाल दइआल प्रभ मेरे साध संगति मिलि छूटे ॥ 1 ॥ रहाउ॥
आठ पहर हरि के गुन गावे भगति प्रेम रसि माता ॥
हरख सोग दुहु माहि निराला करणेहारु पछाता ॥ 2 ॥
जिसका सा तिनही रखि लीआ सगल जुगति गति बणि आई ॥
कहु नानक प्रभ पुरख दइआला, कीमति कहणु न जाई ॥ 3 ॥

इस प्रकार के रागों में निबद्ध अनेकों त्रिपादी पद अन्य संतों ने भी लिखे हैं, इन्हें हम 'त्रिपदी' प्रबंध के अंतर्गत स्थान दे सकते हैं, किंतु आ. ग्रं. में उपलब्ध त्रिपादी पदों के साथ 'तिपदे' शीर्षक का इस संदर्भ में वैशिष्ट्य विशेष ध्यातव्य है।

(II भाग): छंद

(क) छंद और संगीत का सम्बन्ध

छंद और संगीत का परस्पर घनिष्ठ संबंध है, इस विषय पर प्रस्तुत अध्याय के 'क' भाग में पीछे 'प्रबंध' के संदर्भ में संक्षेप में विचार किया जा चुका है। हमारे शास्त्र-ग्रंथों में 'प्रबंध' के विषयान्तर्गत छंद को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है तथा प्रबंधभेदों के अंतर्गत द्विपथक, त्रोटक, आर्या, गाथा, पद्धरि, चतुष्पदी, द्विपदी आदि अनेक छंद-नामों का उल्लेख मिलता है, किंतु वे छंद, जिनका उक्त ग्रंथों में 'प्रबंध' की विषय-सीमा के अंतर्गत उल्लेख नहीं किया गया और जिनका प्रयोग निर्गुण-संत कवियों ने किया है, उन संत काव्य में निर्दिष्ट तथा अनिर्दिष्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वार्णिक और मात्रिक छंदों का, संगीत के परिप्रेक्ष्य में विशिष्ट अध्ययन प्रस्तुत अध्याय-खंड में हमारा लक्ष्य है।

छंद और संगीत दोनों विषयों का सघन संबंध है। मनुष्य अपने मनोभावों के प्रकाशन हेतु, मुख्यतः तीन शैलियों का अवलंब ग्रहण करता है-गद्य, पद्य और संगीत।[156] पद्य और संगीत के मूलभूत तत्त्व समान होने के कारण परम्परा से साहित्य और संगीत दो पृथक्-पृथक् शास्त्र होने पर भी एक ही सूत्र में बंधे हैं।

पद्य को लयबद्ध करता है, छंद; और संगीत को लयबद्ध करता है; ताल।[157] यह लयबद्धता ही काव्य एवं संगीत का अनिवार्य तत्त्व है। छोटी-बड़ी ध्वनियों का वज़न में बराबर होना, छंद-रचना का मूल आधार है। ध्वनि-संतुलन-व्यवस्था के कतिपय विशेष नियम रहते हैं। इन नियमों में आबद्ध ध्वनियाँ ही किसी रचना में लय का संचार करने को सक्षम होती हैं।[158] विशिष्ट नियमों में बँधी ध्वनियों द्वारा उत्पन्न यह लय ही छंद (कार्यों) एवं संगीत का प्राणतत्त्व है। इसलिए सामान्यतः प्रत्येक पद्य गेय होता है अर्थात् छंद मूलतः गेय होता है। यह बात अलग है कि संगीत की दृष्टि से कुछ छंद अधिक उपयोगी होते हैं और कुछ कम।[159]

इस प्रकार उक्त दोनों विधाएँ (काव्य एवं संगीत) नादाधीन हैं। हमारे यहाँ नाद से ही उक्त दोनों विधाओं और समस्त जगत् की उत्पत्ति मानी गई है। 'बृहद्देशी' की प्रसिद्ध निम्नोक्ति इस प्रसंग में स्मरणीय है।

'न नादेन बिना गीतं,
न नादेन बिना स्वराः।
न नादेन बिना नृत्तं,
तस्मान्नादात्मकं जगत्।'[160]

मूलनाद के नियमन की पृथक्-पृथक् प्रक्रिया ही संगीत और छंद-शास्त्र का विषय बनीं, अतः छंद-ःशास्त्र का संगीत से प्रत्यक्ष संबंध है। दोनों विषयों के इस अंतरंग संबंध के कारण ही प्रस्तुत शोधप्रबंध के विषयान्तर्गत, छंद के परिप्रेक्ष्य में निर्गुण संतकाव्य का अध्ययन यहाँ विवक्षित है।

यहाँ यह कहना भी स्थानीय होगा कि मूलनाद के नियमन की रूप-भिन्नता मात्र दोनों शास्त्रों को पृथक् कर देती है।

काव्य में ह्रस्व, (लघु), दीर्घ और प्लुत के आधार पर मात्रा-गणना (मात्रिक छंदों में) की जाती है, परंतु संगीत में मात्राक्रम शब्दों के ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत नियमों के अधीन न होकर, गायक की स्वेच्छा पर निर्भर करता है। कुशल कलाकार किसी रचना को किसी भी ताल में निबद्ध कर लेता है। संगीत में मात्राओं के 1 पूरी मात्रा, 1 का अर्द्धांश, चतुर्थांश, अष्टमांश तथा 1 मात्रा को ही स्वर लंबाने की क्रिया आदि के द्वारा एकाधिक मात्राओं का निर्माण करना आदि अनेक सूक्ष्म एवं स्थूल विभाग रहते हैं, फिर भी स्थूलमान से छंद (मात्रिक) विशिष्ट की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

मात्राओं के अनुरूप ताल-विशेष का आवर्तन अवश्य ग्रहण किया जा सकता है, यथा-16 मात्रा का 'चौपाई' छंद 16 मात्रा की तीनताल में बाँधा जा सकता है। विभिन्न छंद विविध तालों में कैसे बिठाए जाएँ, यह एक गहन खोज का विषय है।[161] और शोध का स्वतंत्र विषय होने की अपेक्षा रखता है अतः स्थानाभाव के कारण, यहाँ उक्त विषय पर विचार करना संभव नहीं।

यहाँ इतना ही वक्तव्य है कि ध्रुपदांग की गायकी में खटके, मुर्की आदि न होने के कारण मींड की दृष्टि से गंभीर, विलम्बित एवं सीधी बंदिश होने से, छंदोबद्ध-गीत व्यवहृत होते हैं और उनके लिए ताल-विशेष नियत करना भी सुगम रहता है परंतु ख्याल शैली खटका, मुर्की, गिटकिरी, ज़मज़मा आदि गमक-प्रकारों से युक्त होने के कारण अपेक्षाकृत चंचल होती है। प्रचार में इस शैली में छंदोबद्ध पद का विशेष स्थान न रहने से, स्वर-लय-अलंकरण पर अधिक बल रहने के कारण पाठ्य का महत्त्व कम हो जाता है। स्वर-लय-अलंकरण के इस अत्यधिक महत्त्व के कारण इस अंग में मात्राओं का घटाव-बढ़ाव इतना विषम रहता है कि छंदोबद्ध गीत एवं उसकी गति के अनुरूप ताल-निर्धारण का यहाँ अधिक महत्त्व नहीं रहता।

गायन में निश्चित कालगति का परिमाण ध्यान में रखना बहुत आवश्यक होता है। संगीत में काल का माप-तोल मात्राओं के माध्यम से समझा जाता है, वर्णों के माध्यम से नहीं, किंतु इस प्रसंग में एक बात उल्लेखनीय है कि सं. र. तथा परवर्ती सभी प्राचीन शास्त्रग्रंथों में समस्त तालों का स्वरूप लघु-गुरु वर्णों के अनुसार ही दिखाया गया है। यथा-'झपताल' का ठेका 10 मात्राओं को और आज वह 2, 3, 2, 3 मात्राओं के हिसाब से लिखा जाता है, जबकि प्राचीन ग्रंथों के अनुसार इसी ताल का ठेका लघु-गुरु वर्णों के अनुसार लिखित रूप में ऽ, ऽ।, ऽ, ऽ। इस प्रकार मिलता है। यह विषय अवश्य शोध की अपेक्षा रखता है कि शास्त्रीय संगीत में तालशास्त्र की लघु-गुरु वर्णों पर आधारित प्राचीन पद्धति, मात्राक्रम पर आधारित अधुना प्रचलित पद्धति में कब परिणत हुई और क्योंकर हुई?

इसी प्रकार वर्णिक छंदों को यदि तालबद्ध करना हो तो उन्हें भी मात्रिक छंदों की भाँति ही उपयोग में लाया जाता है। यह बात अलग है कि सुगमता के कारण वार्णिक छंदों की अपेक्षा, मात्रिक छंदों में गेय पदों की शैली का अधिक प्रचार हुआ।[162] किसी वर्णवृत्त में सभी पादों का लघु-गुरु क्रम एक समान अपेक्षित है, जबकि मात्रिक छंदों में प्रायः पदगत -मात्रा संख्या के साथ लयसाम्य-मात्रा अपेक्षित रहती है, इसीलिए मात्रिक छंदों के पाद की बनावट में लचीलापन (Flexibility) रहता है।[163] किसी एक मात्रिक छंद में मूल लय का निर्वाह करते हुए उसमें स्वेच्छानुसार लघु-गुरु क्रम रखा जा सकता है, इसी विशेषता के कारण मात्रिक छंद, वर्णिक छंदों की अपेक्षा संगीत के लिए अधिक उपयोगी हैं।

हमारे निर्गुण संत कवियों ने अधिकतर गेयपद ही लिखे हैं अतः उनके काव्य में वर्णिक छंदों की अपेक्षा मात्रिक छंदों का ही अधिक प्रयोग हुआ है। संतों ने अपने पदों में व्यवहृत छंदों का निर्देश प्रायः नहीं किया है, क्योंकि छंद-नियमों के अनुसार रचना करना संभवतः उनका लक्ष्य न था, फिर भी गेय तत्व के कारण उनके काव्य में अनेक प्रकार के छंदों की नियोजना हो गई है। उनके साहित्य में छांदस्-दृष्टि से परीक्षण करने पर विविध प्रकार के छंदों का सुष्ठु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयोग मिलता है। प्रस्तुत आलेख के पश्चात् आगे इन विभिन्न छंदों के उदाहरण दिए गए हैं एवं उन पर विचार किया गया है।

हमारे विवेच्य काल के संतकवियों में से केवल सुंदरदास ने (पद शैली के अतिरिक्त अपनी अन्य रचनाओं में) ही अपनी कृतियों में व्यवहृत छंदों का निर्देश किया है, अन्य कवियों ने केवल साखी, रमैनी, डखणा, सवैया, झूलना आदि कतिपय छंदनामों का ही निर्देश किया है। संतकवियों में सर्वाधिक विविध छंद-प्रयोग सुंदरदास ने ही किये हैं। इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि भाई कान्ह सिंह ने गुरुमुखी लिपि में आ.ग्रं. में व्यवहृत छंदों पर 'गुरछंद दिवाक' नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें संत कवियों द्वारा प्रयुक्त अनेक मात्रिक एवं वर्णिक छंदों के लक्षण एवं आ. ग्रं. में से उदाहरण दिए गए हैं। प्रस्तुत अध्याय खंड में संतों द्वारा व्यवहृत छंदों के अध्ययन-हेतु संत कवियों के प्रकाशित पद संग्रहों क.ग्रं., क.सा.की श., क.बी., स्वा.दा.द. की बा., आ., ग्रं, सुं, ग्रं, (दोनों खंड) आदि के अतिरिक्त उक्त पुस्तक से भी सहायता ली गई है।

निर्गुण संतकाव्य में उपलब्ध निर्दिष्ट (कृतियों पर) छंदों की अध्ययन में सुविधा-हेतु पृथक् से तालिका बनाई गई है,[164] जोकि इस अध्याय खंड में प्रस्तुत संक्षिप्त विवेचना के पश्चात् संलग्न है। उक्त तालिका के अध्ययन द्वारा हम देखते हैं कि उसमें समाविष्ट अधिकांश छंद मात्रिक हैं, किंतु सुंदरदास ने मात्रिक छंदों के साथ-साथ वर्णिक छंदों का भी काफ़ी प्रयोग किया है। उनके 'ज्ञान-समुद्र' 'लघु ग्रंथावली' (37 लघु-ग्रंथों का संकलन) तथा 'सवैया' ग्रंथों में मात्रिक छंदों के साथ अनेक वर्णिक छंदों के भी निर्देश मिलते हैं, यथा भुजंग- प्रयात, मोतियदाम, मालती, मनहर, शार्दूलविक्रीडित आदि अनेक वर्णिक छंदों का प्रयोग हुआ है, किंतु जैसा कि पीछे कहा जा चुका है कि यदि किसी वर्णिक छंदोबद्ध पद को गेय बनाना हो तो उसे भी मात्रा-गणना द्वारा ताल में बिठाना होगा।

संतों में छंदों का सर्वाधिक निर्देश भी सुंदरदास ने किया है। उन्होंने अपने अनेक लघु-ग्रंथों का नामकरण ग्रंथ में प्रयुक्त छंदनाम के अनुकरण पर किया है, यथा 'गुन उत्पत्ति नीसांनी' ग्रंथ में प्रारंभिक दोहे के पश्चांत् संपूर्ण कृति (20 अन्य छंद) में केवल 'नीसांनी'[165] छंद का प्रयोग किया है, इसी प्रकार 'सद्गुरु महिमा नीसांनी' ग्रंथ में भी प्रारंभ में और अंत में एक-एक दोहे के अतिरिक्त संपूर्ण रचना में 'नीसांनी' छंद का ही व्यवहार मिलता है। 'गुरुदया षटपदी' 'त्रिभंगी' छंद के अंतर्गत लिखे गए 6 पदों की रचना का नाम है। सुंदरदासजी के अष्टकों का गान, साधु-संप्रदायों में आज भी प्रचलित है।[166] उन्होंने 'भ्रम विध्वंस अष्टक' 'गुरु कृपा अष्टक', 'गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक', 'गुरुदेव महिमा स्तोंत्राष्टक', 'रामाष्टक', 'नामाष्टक', 'आत्मा अचलाष्टक', 'पंजाबी भाषा अष्टक', 'ब्रह्म स्तोत्र अष्टक', 'पीर मुरीद अष्टक', 'अजब ख्याल अष्टक' और 'ज्ञानझूलनाष्टक' आदि अनेक कृतियाँ अष्टक नाम से लिखी हैं, जिनमें त्रिभंगी, गीतक और[167] भुजंगप्रयात, मोहिनी आदि छंदों के 8-8 पद हैं अतः उक्त रचनाओं में 'अष्टक' का अर्थ 8 पदावली वाली रचना कहा जा सकता है।

सुंदरदासजी के 'रामाष्टक' ग्रंथ में 'मोहिनी' छंद का निर्देश है। 'मोहिनी' 15 अक्षरों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स, म, त, य, स गणों से युक्त वार्णिक छंद है, किंतु उक्त कृतियों में प्रयुक्त 20 मात्राओं का कोई मात्रिक छंद है। इसी प्रकार 'नामाष्टक' ग्रंथ में भी 'मोहिनी' छंद का निर्देश मिलता है, परंतु यहाँ प्रयुक्त छन्द 'स्रग्विणी'[168] कहा जा सकता है।

निष्कर्षतः छंद-वैविध्य होते हुए भी सभी 'अष्टक' 8-8 पदों की कृतियां हैं। 'सहजानंद' ग्रंथ में दोहा-चौपाई छंदों का क्रमिक प्रयोग एवं निर्देश मिलता है, किंतु यहाँ ध्यातव्य है कि 'चौपाई' छंद की अपेक्षा 'पादाकुलक' छंद का प्रयोग हुआ है। 'चौपई' छंद में 15 मात्राएँ होती हैं और अंत में गुरु-लघु अनिवार्य हैं, जबकि सुंदरदास की उक्त कृति में 'चौपई' छंद-निर्देश के अंतर्गत, पद्यों में सर्वत्र 16-16 मात्रा क्रम रहता है।[169] यहाँ यह संदेह होता है कि 'चौपई' पद के स्थान पर 'चौपाई' शब्द तो नहीं छपा किंतु 'चौपाई' में समकल के बाद समकल तथा विषम कल के बाद विषम कल का क्रम अनिवार्य है जबकि उक्त नियम का सर्वत्र पालन उक्त कृति में नहीं है। 'गृहवैराग-बोध' ग्रंथ में निर्दिष्ट छंद है 'रुचिरा' जिसमें कि 14-16 के विराम से 30 मात्राएँ होती हैं और अंत में जगण, निषिद्ध रहता है,[170] जबकि सुंदरदास की उक्त कृति में 16-14 पर यति और अंत में भगण है, छंद-प्रभाकरकार के अनुसार यह 'ताटंक' छंद है।[171] 'तर्क चितावनी' ग्रंथ में भी 'सहजानंद' ग्रंथ की भांति 'चौपाई' छंद का उल्लेख है और यहाँ भी 'पादाकुलक छदं की ही स्थिति समझ में आती है। 'अडिला छंद' ग्रंथ में 'अडिला' छंद का उल्लेख मिलता है, परंतु उक्त ग्रंथ में प्रयुक्त छंद की स्थिति न 'अडिल्ल' के लक्षण के अनुरूप हैं और न ही 'डिल्ला' छंद के अनुसार है। केवल 16-16 मात्रा-क्रम अंत में गुरु, इसी क्रम का यहाँ निर्वाह हुआ है। 'मडिल्ला' ग्रंथ में 'मडिल्ला' छंद का उल्लेख है। इस कृति में 16 मात्रा और अंत में दो गुरु का क्रमिक निर्वाह मिलता है।

सुंदरदास के ग्रंथों में निर्दिष्ट 'चौपाई' छंद के संबंध में ध्यान देने की बात है कि सहजानंद, तर्क चितावनी, विवेक चितावनी, त्रिविध अंतःकर्णभेद आदि लघु ग्रंथों में कहीं भी 'चौपई' छंद का निर्वाह नहीं मिलता, जबकि 'आयुर्बल भेद आत्मा विचार' नामक लघु-कृति में भी 'चौपई' छंद का उल्लेख मिलता है और वहाँ 15 मात्राएँ, अंत में गुरु-लघु की अनिवार्यता, 'चौपई' छंद के इस लक्षण के अनुसार पद्य रचना मिलती है।[172] यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि सुंदरदास जैसे विद्वान् एवं छंदःशास्त्र के आश्चर्य-कवि द्वारा छंद-संबंधी उपर्युक्त भूलें हुई हों। यहाँ मुद्रण में हुई असावधानी, एक कारण माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त शास्त्रों में एक ही छंद के अनेक नाम एवं उसके रूप में भेद भी मिलता है, यथा 'जयदामा' (Jayadaman) ग्रंथ में 'भगतगग' गणों से बनने वाले अनुकूला, प्रत्यवबोध, श्री, कुड्मलदंती, रुचिरा, सांद्रपद, भद्रपद अथवा मौक्तिकमाला' आदि अनेक भिन्न-भिन्न छंदनाम मिलते हैं।[173] इसी अतिरिक्त एक ही छंद के गण-भेद से भिन्न-भिन्न रूप भी मिलते हैं, उदाहरणार्थ-'रुचिरा' छंद का गण 'मतनगग'[174] भी है और 'जमसजग'[175] भी है। कुछ इसी प्रकार की कल्पना सुंदरदास की उक्त रचनाओं में प्रयुक्त मोहिनी, रुचिरा तथा चौपई आदि छंदों के विषय में भी की जा सकती है अथवा यह भी संदेहास्पद ही है कि सुंदरदास की पदावली में दिए गए छंद-नाम उन्हीं के द्वारा दिए गए हैं या किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा, जब तक इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दृष्टि से पाण्डुलिपियों का अध्ययन नहीं किया जाता, तब तक उक्त प्रसंग में कुछ नहीं कहा जा सकता।

सुंदरदास के 'सवैया' ग्रंथ में सवैया के अनेक भेदों हंसाल, डमिला (द्रमिला) आदि एवं अन्य छंदों कुंडलिया आदि का उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ में सर्वप्रधान छंद 'सवैया' है, संभवतः इसी कारण इस कृति का नाम 'सवैया' प्रसिद्ध हो गया है। 'सवैया' ग्रंथ में सर्वाधिक प्रयोग इंदव और मनहर का हुआ है। 'साषी' नामक कृति में सर्वाधिक उल्लेख 'दोहे' का मिलता है, किंतु 'सोरठा' का भी प्रयोग हुआ है। 'साषी' में दोहा, सोरठा आदि छंदों का निर्देश सुंदरदास के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने नहीं किया।

सुंदरदास के पदों में उपलब्ध होने वाले अनिर्दिष्ट छंदों से संबंधित विचारणा आगे अन्य संतों के अनुल्लिखित छंदों के साथ प्रस्तुत की जाएगी।

निर्गुण कवियों की कृतियों में उल्लिखित छंदों की सूची में साखी, सलोक, रमैनी, रेखता, पउड़ी और काफ़ी आदि छंदनाम हैं, जिन पर विचार करना यहाँ स्थानीय होगा।

स्थानाभाव के कारण 'साखी' के संबंध में विस्तृत रूप से विचार करना यहाँ संभव नहीं। यहाँ इतना कहना ही अलम होगा कि 'साखी' किसी छंद-विशेष का नाम नहीं है अपितु यह शब्द वर्ण्य-विषय का द्योतक है।

'साखी' शब्द संस्कृत के 'साक्षी' शब्द का सुगम-रूप है और इसका तात्पर्य उस व्यक्ति से है, 'जिसने किसी तथ्य अथवा घटना को अपनी आँखों देखा हो।'[176] आध्यात्मिक क्षेत्र में किसी जटिल सत्य की अनुभूति ही 'साखी' शब्द का भावार्थ है। इसकी पुष्टि कबीर के निम्न दोहों से हो जाती है।

'साखी आंखी ग्यान की, समुझि देखु मन मांहिं।
बिन साखी संसार का, झगरा छूटत नांहि।'[177]

तथा;

'पद गाए मन हरषिया, साषी कह्यां अनंद।
सो तत नांव न जाणियां, गल में पड़िया फंध।'[178]
'हरिजी यहै बिचारिया, साषी कहो कबीर।
भौसागर में जीव है, जे कोई पकड़े तीर ॥'[179]

उक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये साखियां उन आध्यात्मिक सत्यों का प्रतिपादन करती हैं, जो उनके रचयिताओं द्वारा अनुभूत अथवा उपलब्ध कर लिए गए हों।

लगभग सभी संत कवियों की साखियों में 'दोहा' छंद का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है, किंतु 'साखी' को केवल 'दोहा' छंद का ही पर्याय नहीं समझा जा सकता। सांखियों के अंतर्गत सोरठा, रोला, चौपाई, हरिपद, गीता, सार तथा छप्पय आदि अनेक छंदों का समावेश हो गया है। इन छंदों के उदाहरण आगे प्रस्तुत किए गए हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'सलोक' का उल्लेख आ.ग्रं. में संतों की बानियों के लिए हुआ है 'सलोक' को साखी का पर्याय कहा जाता है। 'सलोक' नामक संतों की बानी में सबसे अधिक प्रयुक्त छंद है 'दोहा' किंतु इसके अतिरिक्त उपमान, उल्लाला, अनुष्टप् तथा सरसी आदि अनेक छंदों का इसके अंतर्गत व्यवहार मिलता है।[180]

'रमैनी' शीर्षक से क.बी. में कबीर की 84 कृतियाँ तथा क.ग्रं. में 7 रचनाएँ संगृहीत हैं, जिनमें कि दोहा, चौपाई छंदों का प्रयोग हुआ है। क. ग्रं. की पहली 'रमैनी' पर राग 'सूहो' का निर्देश है और उसमें दोहा-चौपाई शैली का भी अभाव है, अतः उसे पद ही कहा जा सकता है, रमैनी नहीं। इस प्रकार उक्त पुस्तक में कबीर की छः रमैनियाँ ही कही जाएँगी। रमैनी का (दोहा-चौपाई वाला) काव्य-रूप, अपभ्रंश के कड़वकबद्ध काव्यों की शैली से विकसित दोहा-चौपाई वाली कथा-काव्यों की शैली से बहुत मिलता है।[181]

'रमैनी' का सीधा संबंध' 'रामायण' है। रामायण से रामायणी, रमयनी और फिर रमैनी हो जाना स्वाभाविक है। रमयणी अथवा रमैनी कथा-काव्यों की शैली है। रामकथा से संबंद्ध काव्यों को 'रामायण' कहने की परंपरा है। स्वयम्भूदेव (790 ई.) की रामायण चौपाई छंद में है।

आठ-आठ अर्द्धालियों के पश्चात् दोहा अथवा किसी अन्य छंद में घत्ता देने की प्रथा का भी पालन किया गया है, यथा–

'अक्खर वास-जलोह-मणेहर।
सुमलंकार-छंद-मच्छोदर॥
दोह-समास-पवाहा-वंकिय।
सक्य-पायय-पुलिणा-लंकिय॥
देसी-भासा-उभय-तडुज्जल।
कवि दुक्कर-घणा-स-सिलायल॥
अत्थ-बहल-कल्लाला णिट्ठिय।
आसा-सम-सम-ऊह-परिट्ठिया॥[182]

'स्वयम्भू रामायण' की उक्त अर्द्धालियाँ वास्तव में 'अरिल्ल' छंद में हैं, किंतु अपभ्रंश साहित्य में चौपाई के नाम पर प्रायः 'अरिल्ल' छंद का ही प्रयोग मिलता है।[183] 'अरिल्ल' और 'चौपाई' छंद में अंतर भी केवल अंत में क्रमशः दो लघु (।।) तथा दो गुरु (ऽऽ) का ही है।

इस प्रकार, जायसी और तुलसी से बहुत पूर्व, इस छंद के माध्यम से कथाकाव्यों के प्रणयन की परंपरा का सूत्रपात हो चुका था। कबीर की रमैनियों का वर्ण्य-विषय रामकथा तो नहीं है, फिर भी इसमें किसी कथासूत्र का अस्तित्व अवश्य मिलता है। सृष्टि-विकास की कथा से संबद्ध निम्नलिखित रमैनी इस संदर्भ में द्रष्टव्य है;

'जीवरूप एक अंतरबासा। अंतरजोति कीन्ह परगासा॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इच्छा रूपि नारी अवतरी। तासु नामु गाइत्री धरी ॥
तेहि नारी के पुत तीनि माऊ। ब्रह्म बिस्नु महेसुर नाऊं ॥
फिर ब्रह्मा पूछल महतारी। को तो पुरुष केकरि तुम नारी ॥
तुम हम हम तुम अवर न कोई। तुमहि से पुरुष हमहि तोरि जोई ॥
बाप पूत की एकै नारी, एके माय बियाय।
ऐसा पूत सभूतन देखा, बापहि चीन्है धाय ॥"[184]

संतवाणी में निर्दिष्ट छंदों में एक 'पउड़ी' शब्द का उल्लेख आ.ग्रं. के अंतर्गत 'वारों' तथा 'बावनअखरी' आदि कृतियों में मिलता है, किंतु मुख्यतः यह 'वार' नामक काव्यशैली का छंद कहा जाता है।[185] क्योंकि 'वार' की स्थिति 'पउड़ी' के बिना कल्पित नहीं की जा सकती। वस्तुतः 'पउड़ी' एक विशेष छंद प्रकार नहीं है। इस शीर्षक के अंतर्गत अनेक सम एवं विषम छंद मिलते हैं। भाई कान्ह सिंह ने गु. दि. में पउड़ी के 30 रूप दिखाए हैं।[186] 'पउड़ी' के अंतर्गत 15-16 मात्राओं के छंदों से लेकर 40-42 मात्रा तक के छंद मिलते हैं। सम छंदों से लेकर विषम दंडक तक प्रयोग मिलता है। प्रस्तुत आलेख के पश्चात् निर्गुण कवियों के काव्य में से कतिपय उदाहरण आगे प्रस्तुत किए जाएँगे। इसके अतिरिक्त अष्टपदी, सवैया, सोलहा, डखणा तथा छंद आदि अनेक छंद-नाम मिलते हैं, जिनके अंतर्गत छंद प्रयुक्त हुए हैं, इनका विवरण आगे प्रस्तुत किया जाएगा।

कबीर साहेब की शब्दावली, प्रथम भाग में 'रेखता' छंदोगति के 31 शबद (पद) मिलते हैं। इन शबदों में (पदों) 20-17 पर यति, इस प्रकार 37 मात्राएँ मिलती हैं और अंत में 1 गुरु अनिवार्यतः रहता है। उदाहरण एवं उक्त छंद संबंधी विवेचना आगे प्रस्तुत की गई है।

आ.ग्रं. में संतों की रचनाओं में 'काफ़ी' नामक एक रागिनी का उल्लेख किया गया है, परंतु उक्त ग्रंथ में "राग सूही म. 5 असटपदी आं. घरु 10 काफी[187] म. 1 काफी घरु 10,[188] मारू काफ़ी[189] म. 1 घरु[190] 2, आसा घरु' 8 काफ़ी म. 5 विविध प्रकार से 'काफ़ी' शब्द का उल्लेख मिलता है। "काफ़ी" शीर्षक के अंतर्गत उक्त कृतियों का अध्ययन करने पर एक समान छंदोगति अवश्य परिलक्षित होती है, किंतु किन्हीं विशेष छंद नियमों का निर्वाह वहाँ नहीं मिलता है।

तालिका में संगृहीत संतों के निर्दिष्ट (कृतियों) छंदों के अतिरिक्त उनके पदों में अनिर्दिष्ट रूप में भी अनेक छंदों का प्रयोग मिलता है। संतों के काव्य में उसे उदाहरण देकर इन विविध प्रकार के छंदों का आगे उल्लेख किया गया है।

तालिका में शीर्षक रूप में निर्दिष्ट प्रमुख छंदनाम की प्रस्तुत संक्षिप्त विवेचना को यहीं समाप्त किया जाता है। आगे उक्त चर्चित विशिष्ट छंदों के उदाहरण एवं संतकवियों के पदों में अनुल्लिखित रूप में व्यवहृत छंदों से संबंधित विशिष्ट-अध्ययन प्रस्तुत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ख) संतकाव्य की विशिष्ट छंद-शैलियों में उपलब्ध अन्य छंदों की परिभाषाएँ एवं उदाहरण

निर्गुण संतकवियों ने अपने काव्य में छंदों का निर्देश बहुत कम किया है, परंतु उनके काव्य में छंद-जातियों के प्रतिनिधि ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है, जिनके शीर्षकों के अंतर्गत विविध छंदों के उदाहरण मिलते हैं, यथा, साखी, सलोक, पउड़ी, अष्टपदी, सवैया, सोलहा, डखणा, छंत आदि।

(अ) साखी

'साखी' का संक्षिप्त परिचय पीछे दिया जा चुका है। इस काव्य विधा का निर्गुण संतकाव्य में सर्वाधिक प्रचार रहा है। प्रायः सभी संतकवियों ने इस काव्य-शैली को अपनाया है। छंद की दृष्टि से साखियों में सर्वाधिक 'दोहा' छंद का प्रयोग हुआ है। यथा–

'पांणी केरा बुदबुदा, ऐसी हमारी जाति।
एक दिनां छिप जाहिंगे, तारे ज्यूं परभाति ॥'[191]

'दोहा' एक मात्रिक छंद है, जिसके विषम चरणों में 13 और सम चरणों में 11 मात्राएँ रहती हैं। इसके विषम चरणों अर्थात् प्रथम एवं तृतीय चरणों के आदि में जगण निषिद्ध है एवं अंत में लघु अनिवार्य है।

दोहा के अतिरिक्त 'सोरठा' का भी निर्देश 'साखी' के अंतर्गत संतों ने किया है, यथा–

'बिंजन होई तकार, तालिब होइ शकार जो।
सुंदर होइ छकार, उभय बरन नहिं देषिये ॥'[192]

सोरठा में सम अर्थात् दूसरे और चौथे चरणों में 13 और विषम अर्थात् पहले और तीसरे चरणों में 11 मात्राएँ होती हैं, इस प्रकार दोहा से उलटा, सोरठा है।

साखी के अंतर्गत 'दोही' शब्द का प्रयोग भी मिलता है। 'दोही' छंद में प्रथम और तृतीय चरण में 15 तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में 11 मात्राएँ हैं, अंत में लघु रहता है। कबीर की निम्न साखी में "दोही" का अस्तित्व द्रष्टव्य है;

'आकासे मुखि औंधा कुवां, पाताले पनिहारि।
ताका पांणीं को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि ॥'[193]

उक्त साखी में तृतीय चरण में "पांणीको" शब्द में चार मात्रा मानकर पढ़ा जाएगा, 'णीं और 'को' को 'णि' और 'कु' पढ़ा जाएगा।

इसी प्रकार 'दोही[194] हरिपद[195], गीता[196] तथा 'सार[197]' चौपई[198] छप्पय[199] छंद के भी अनेक उदाहरण साखियों में मिलते हैं। 'हरिपद' में विषम चरणों में 16 और सम चरणों में 11 मात्राएं रहती हैं, तथा अंत में गुरु लघु होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

'गीता' छंद में 14-12 पर यति होती है और अंत में गुरु लघु होते हैं। तथा 'सार' छंद में 16-12 पर यति रहती है और अंत में दो गुरु रहते हैं। 'चौपई' छंद में 15-15 पर विश्राम रहता है और अंत में एक गुरु तथा एक लघु का क्रम रहता है।

इसी प्रकार 'साखी' के अंतर्गत अनेक प्रकार के छंदों के उदाहरण मिलते हैं।

(आ) सलोक

आ.ग्रं. में प्रयुक्त 'सलोक' छंद 'साखी' का पर्याय है। उक्त छंद का 'सलोक' नाम संभवतः उसके संस्कृत के श्लोक की भांति संक्षिप्त एवं लोकप्रिय होने के कारण प्रसिद्ध हुआ।

'सलोक' शीर्षक के अंतर्गत भी अनेक छंदों का प्रयोग मिलता है।

आ.ग्रं. में "आसा दी वार" में 'हाकलि' छंद का प्रयोग हुआ है। 'हाकलि' छंद में प्रथम और द्वितीय चरण में 11 वर्ण तथा तृतीय और चतुर्थ पाद में 10 होते हैं, परंतु "हाकलि" का मुख्य नियम है कि तीन चौकल के पश्चात् एक गुरु रहता है।

'पढ़ पुसतक संधिआबादं,
सिंल पूजसि बगुल समाधं।
मुख झूठ बिभूषण सारं,
त्रैपाल तिहाल बिचारं ॥'[200]

'आसा की वार' में 'चौपदी' 'रूप' सलोक' का उदाहरण द्रष्टव्य है;

'विसमाद नाद विसमाद वेद।
विसमाद जीव विसमादु भेद ॥
विसमाद रूप बिसमादु रंग ।
विस्मादु नागे फिरहि जंत ॥[201]

'दोहा[202] रूप' 'सलोक' के सर्वाधिक उदाहरण आ. ग्रं. में मिलते हैं

'ताल गुपाल गोविंद प्रभ,
गहरि गंभीर अथाह।
दूसर नाहीं अवर को,
नानक बेपरवाह ॥'

आ.ग्रं. में कबीर की साखियाँ 'सलोक' शीर्षक के अंतर्गत संकलित हैं।

सलोक[203] शीर्षक के अंतर्गत 'सार' छंद का भी प्रयोग हुआ है

'जिनसि थापि जीआं कउ भेजे, जिनसि थापि लै जावै।
आपै थाप उथापै आप, एते वेस करावे ॥'

स्पष्ट है कि 'सलोक' के अंतर्गत संतकवियों ने अनेक छंदों का व्यवहार किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(इ) पउड़ी

आ.ग्रं. में 'पउड़ी' छंद का उल्लेख समस्त वारों, बावनअखरी आदि अनेक वाणियों में मिलता है, किंतु मुख्य रूप से यह 'वार' नामक काव्यविधा का ही छंद है, क्योंकि पउड़ी का वार के अतिरिक्त प्रयोग संभव है, परंतु वार की स्थिति पउड़ी के बिना कल्पित नहीं हो सकती।[204] केशोदास नामक एक कवि ने अपनी एक हिंदी-रचना में राजा अमरसिंह, पटियाला की 1774 ई. में भट्टी राजपूत रईसों से हुए युद्ध का वर्णन किया है। रचना का वर्ण्य-विषय युद्धवीर का महिमा-गान है। उसने अपनी 52 छंदों की रचना में दो पउड़ियों की भी रचना की है, जिन्हें 'पउड़ी' नाम न देकर उसने 'वार' छंद का शीर्षक दिया है। इससे भी यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है कि कवि-परंपरा में 'पउड़ी' छंद, वार काव्य-शैली, के छंद के रूप में भी प्रचलित था।

आ.ग्रं. में 'पउड़ी' के अनेक छंद-रूप मिलते हैं। गुरु नानक एवं गुरु अर्जुनदेव की बानी में उपलब्ध कुछ प्रमुख छंद रूप नीचे प्रस्तुत हैं;

(1) *'दोहा' रूप पउड़ी जिसमें 8 चरण रहते हैं:*

'गगा गोविंद गुण खहु, सासि सासि जप नीत।
कहा बिसासा देह का, बिलम न करिहौ मीत।
नह बारिक नह जोबनै नह बिरधी कछु बंध।
ओह बेरा नह बूझिऐ, जउ आइ परै जम फंधु।
गिआनी धिआनी चतुर पेखि, रहनु नहीं इह ठाइ।
छाडि छाडि सगली गई, मूढ़ तहा लपटाइ।
गुरु प्रसादि सिमरत रहे, जाहू मसतकि भाग।
नानक आए सफल ते, जाकउ प्रिअहि सुहाग ॥'[205]

(2) *'चौपदी'*[206] *रूप 'पउड़ी' में चार पद मिलते हैं:*

'भभा भरमु मिटावहु अपणा ॥
इआ संसार सगल है सुपना ॥
भरमे सुर नर देवी देवा।
भरमै सिध साधिक बह्मेवा ॥
भरमि भरमि मानुख डहकाये ॥
दुतर महा बिखम इह भाये ॥
गुरमुखि भ्रम भै मोह मिटाइआ ॥
नानक तेह परम सुख पाइआ ॥'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पउड़ी के इस रूप में हमें चौपाई, मात्रासमक छंद, अरिल्ल, पद्धरि तथा पादाकुलक आदि अनेक छंदों का प्रयोग मिलता है।

(3) 'पउड़ी' के अंतर्गत 'हंसगति' छंद का भी प्रयोग मिलता है, जिसके प्रति पाद में 20 मात्राएँ रहती हैं। 11-9 पर यति होती है:

'पड़िआ लेखेदार लेखा मंगीऐ।
बिण नावे कूड़िआर, अडखा तंगीऐ ॥'[207]

(4) 'निशानी' छंद का भी प्रयोग 'पउड़ी' शीर्षक के अंतर्गत हुआ है। 'निशानी' छंद में 5 चरण रहते हैं। प्रति चरण में 23 मात्राएँ होती हैं। 13-10 पर विश्राम एवं अंत में दो गुरु रहते हैं।

'मन रता गोविंद संग सच भोजन उनेड़े।
प्रीति लगी हरिनाम सिउ, ऐ हसती छोड़े ॥
राज मिलख खुसीआ घणी धिआइ मुंखु न मोड़ै।
ढाढी दरि प्रभ मंगणा, दरु कदे न छोड़े।
नानक मन तन चाउ ऐहु, नित प्रभ कउ लोड़े ॥'[208]

(5) पंचम गुरु की पदावली में 8 चरण की एक अन्य ' पउड़ी' मिलती है, जिसमें प्रति चरण 24 मात्राएँ रहती हैं। 13-14 पर यति एवं अंत में गुरु-लघु होता है। यथा;

'हे अचुत हे पारब्रह्म, अविनासी अघनास।
हे पूरण हे सरब में, दुख भंजन गुण तास ॥'[209]

मैंने पाया कि 'पउड़ी' छंद के अंतर्गत अनेक छंद रूप मिलते हैं। प्राचीन वार-साहित्य में लगभग 30-40 प्रकार की पउड़ियाँ मिलती हैं। इस छंद रूप के गेय होने के कारण ही संभवतः इसके अनेक भिन्न-भिन्न रूप, काव्य में दृष्टिगत होते हैं।

(ई) अष्टपदी

'अष्टपदी' का अर्थ है, आठ पद वाला छंद। किंतु आ. ग्रं. में अष्टपदियां 7, 9 अथवा 10 पाद की भी मिलती हैं।[210] ग्रंथ में प्रायः हर राग में गुरु कवियों की अष्टपदियाँ मिलती हैं और इन अष्टपदियों को ग्रंथ में, गुरुओं की रागबद्ध बानियों के पश्चात् स्थान मिला है। अष्टपदी एक प्राचीन गेय छंद रूप है। जयदेव की अष्टपदियाँ प्रसिद्ध ही हैं। 'अष्टपदी' शीर्षक के अंतर्गत गुरु-कवियों की बानी में अनेक छंदों का उल्लेख मिलता है, यथा,

(1) *'हुकम भया रहिणा नहीं, धुर फाटे चीरै*
इह मनु अवगुणि बंधिया, सदु देह सरीरै।'[211]

यहाँ 13-10 पर यति है और अंत में दो गुरु हैं, अतः 'उपमान' छंद कहा जा सकता है।

(2) गुरु नानक की निम्न अष्टपदी में 'सार'[212] छंद का प्रयोग द्रष्टव्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'चकवी नैन नींद नहिं चालै, बिनु पिर नींद न पाई।
सुर चरै प्रिउ देखे-नैनी निवि निवि लागै पाइ ॥1॥
पिर भावे प्रेम सखाई ॥
तिसु बिनु घड़ी नहि जगि जीवा जैसी पिआस तिआई ॥'

उक्त अष्टपदी में 16-12 पर यति एवं अंत में 2 गुरु हैं, अतः 'सार' छंद का रूप स्पष्ट है।

(3) म. 1 निम्न अष्टपदी में 'चौपाई'[213] का उदाहरण मिलता है। यथा;

"सिमरउ सिमर सिमर सुख पावउ।
कलि कलेस तन माहिं मिटावउ।"[214]

सवैया

इस छंद का संतों ने बहुत प्रयोग किया है। सुंदरदास का तो एक अंग 'सवैया' नाम से ही प्रसिद्ध हो गया है, जिसमें 'सवैया' छंद के दुर्मिल, हंसाल, इंदव, मनहर आदि अनेक रूप मिलते हैं।

म. 5 ने भी 'सवैया' छंद का बहुत प्रयोग किया है।[215] गेय होने के कारण संत-कवियों के बीच यह छंद भी पर्याप्त लोकप्रिय रहा है।

'वीर' सवैया में 31 मात्राएँ होती हैं। 16-15 पर विश्राम रहता है और अंत में गुरु लघु होता है। इसका उदाहरण म. 1 की बानी में द्रष्टव्य है।

'नाभि कमल तें ब्रह्म उपजे, वेद पढ़चि मुख कंठ सवारा।[216]
जाकी भगति करहि जन पूरे, मुनि जन सेवहि गुरु वीचार।'

(2) 'बाण' सवैये के उदाहरण भी आ. ग्रं. में मिलते हैं। इस सवैये में प्रति चरण 31 मात्राएँ रहती हैं, 16-15 पर यति एवं अंत में दो गुरु होते हैं यथा;[217]

'अंमृत नाम तुमारा ठाकुर,
ऐहु महारस जनहि पीओ।
जनम जनम चूकै भै भारे,
दुरित बिनासूयो भरम बीओ।'[218]

(3) सवैये का एक प्रकार 'मिलिन्द' है, जिसमें प्रति चरण 32 मात्राएँ होती हैं। 16-16 पर यति एवं अंत में यगण होता है।[219] इसका व्यवहार भी निर्गुण संत कवियों ने किया है यथा;

'गुण समूह फल सगल मनोरथ,
पूरण होई आस हमारी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काम, क्रोध, मद, मतसर तृिसना,
बिनस जाहि हरिनाम उचारी ॥'[220]

(4) 'समान' सवैये का प्रयोग भी संतकाव्य में मिलता है। इस छंद में प्रति चरण 32 मात्राएँ होती हैं।[221] 16-16 पर विश्राम एवं अंत में भगण (ऽ।।) होता है। 'सवैये स्त्री मुख वाचक' वाणी से एक उदाहरण प्रस्तुत है;

'ब्रह्मादिक सिव छंद मुनीसर,
रसिक रसिक ठाकुर गुन गावत।
रे मन मूढ़ सिमर सुखदाता,
नानकदास तुझै समझावत।'[222]

इस प्रकार संतों की पदावली में सवैये के अनेक भेदों के उदाहरण मिलते हैं।

(उ) सोलहा

जिस प्रकार आठ पद के छंद को 'अष्टपदी' संज्ञा दी गई है, उसी प्रकार सोलह पदों वाला छंद आ. ग्रं. में 'सोलहा' नाम से मिलता है। आ. ग्रं. में 'सोलहा' शीर्षक के अंतर्गत विशेषतः 'चित्रकला' छंद का अस्तित्व मिलता है। 'चित्रकला' छंद में प्रथम 16-16 पर यति होती है, पुनः 16-13 पर विश्राम होता है, यथा-'वृत्त चंद्रोदयकार के अनुसार;

'जाकी टुक में काह न मत्ता।
सोलहि अर सोलहि पे जत्ता।
पुनि सोलह तेरहि पर जानो जैसी भांति बखानिआं।
चित्रकला सो छंद कहावे, सम कहि के मन में अति भावे,
अंत एक गुरु आन सवारे, जैसी छबि सोलानिआ।'[223]
म. 5 का निम्न पद उक्त लक्षण के अनुसार तुलनीय है
'जाते बिरथा कोऊ नाहीं ॥ आठ पहर हरि रखु मन माही ॥
साध संगि भजु अचुत सुआमी, दरगह सोभा पावणा।
चारि पदारथ असट दसा सिधि। नामु निधानु सहज सुख नउ निधि ॥
सरब कलि आण जे मन रावणा ॥'[224]

(ऊ) डखणा

आ. ग्रं. में निर्गुण कवियों के पदों में अनेक स्थलों पर 'डखणा' शब्द का प्रयोग मिलता है। 'डखणा' वास्तव में कोई स्वतत्र छंद-जाति नहीं है, अपितु मुलतान-शाहीवाल के क्षेत्र की 'बोली' में लिखे जाने वाले दोनों को ही, 'डखणा' कहने का प्रचार है। इस 'बोली' (Dialect)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

में 'द' की अपेक्षा 'ड' तथा 'स' की अपेक्षा 'ह्' व्यंजन का प्रयोग होता है।[225]

छंद की दृष्टि से देखें तो उक्त शीर्षक के अंतर्गत उपलब्ध रचनाओं में अनेक छंद खोजे जा सकते हैं किंतु प्रमुख छंद दोहा अथवा सोरठा ही उप्रयुक्त हुए हैं। छंदगति की दृष्टि से एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत है।

डखणा ॥ *हठ मझाहू मा पिरी, पसे किउ दीदार।*
संत सरणाई लभणे, नानक प्राण अधार ॥[226]

कुछ विद्वानों के अनुसार 'डखणा' एक प्रकार का 'सलोक' (दोहा) तथा सिंधी भाषा में 'दोहे' का जिस प्रकार 'डोहे' हो जाता है, उसी प्रकार उक्त बोली में लिखित होने के कारण, उपर्युक्त पद्य (सिंधी बोली के अनुसार) 'डोहे' का अपभ्रष्ट रूप 'डखणे' शब्द हो गया।[227]

डॉ. सुरेंद्रसिंह कोहली के मतानुसर 'डखणा' शब्द का 'सिंधी' भाषा में अर्थ है, 'दक्षिण।' पंजाब के दक्षिणी भाग की भाषा 'सिंधी' ही 'दक्खणी' कही जाती है तथा इस भाषा में लिखे गए श्लोक (सलोक या दोहे) ही संभवतः 'डखणे' कहे जाते हैं।[228]

यह मत समीचीन जान पड़ता है, किंतु 'डखणे' नामक रचनाओं में प्रायः 'सलोक' की भांति अनेक शब्दों का व्यवहार हुआ है।

(ए) छंत

'छंत' शब्द 'छंद' का ही अपभ्रंश रूप प्रतीत होता है।[229] 'छंद' शब्द संस्कृत के 'छंदस्' से बना है, जिसका अर्थ है, एक छंद-विशेष तथा वैदिक ऋचाओं का पवित्र पाठ। इस प्रकार आ. ग्रं. में 'छंत' शब्द का व्यवहार उस छंद-विशेष का सूचक है, जिसमें परम तत्व की स्तुतिपरक पवित्र पद्य-रचना हुई है।[230]

प्रायः छंत में छः चरण रहते हैं और गुरुकवियों की इसमें प्रभूत पद-रचना मिलती है। इस शीर्षक के अंतर्गत हमें अनेक छंदों का प्रयोग मिलता है। छः पाद के कारण छंतों में प्रायः 'कुंडलिया' छंद का भी प्रयोग हुआ है। 'कुंडलिया' छंद' 'दोहा' और 'रोला' के सम्मिश्रण से बनता है। आदि में एक 'दोहा', उसके पश्चात् 'रोला' छंद को जोड़कर 6 पद होते हैं। प्रतिपद में 24 मात्राएं रहती हैं और आदि व अंत का पद एक सा मिलता होना चाहिए।[231] इसकी प्रमुख विशेषता है कि दोहे के चौथे पाद (11 मात्रा) की, रोला के प्रथम 11 मात्रा में पुनरावृत्ति की जाती है। दोहे का प्रथम पाद जिस अक्षर से प्रारंभ होता है, वही अक्षर रोला के चतुर्थ पाद के अंत में भी रखा जाता है।[232]

गुरु-कवियों ने गेयता के कारण, 'मेरी जिंदड़ीए', 'राम राज', 'राम जीउ', 'राम' आदि शब्दों का छंद की मात्रा-संख्याओं से बाहर प्रयोग किया है। कहीं-कहीं कुंडलिया छंद का बहुत सुंदर उदाहरण मिलता है, यद्यपि मात्राओं की दृष्टि से छंद-नियम का पूर्ण निर्वाह नहीं मिलता है।

'तू ठाकुरो बैरागरो, मैं जेही धण चेरी राम।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitized by eGangotri

तू सागरो रतनागरो, हउ सार न जाणा तेरी राम ॥
सार न जाणा तू बड दाणा करि मिहरंमति सांई।
किरपा कीजै सा मति दीजै आठ पहर तुधु ध्याई।
गरब न कीजै रैण हो वीजै, ता गति जीअरे तेरी।
सभ ऊपर नानक का ठाकुर, मै जेही धण चेरी राम।'[233]

कहीं-कहीं हुल्लास' छंद का उदाहरण भी 'छंतों' के अंतर्गत मिल जाता है। 'पादाकुलक' के अंत में एक त्रिभंगी छंद रखकर उस छंद विशिष्ट का नाम 'हुल्लास' रख दिया गया है।[234]

'अनदो अनद धण मै सो प्रभु डीठा राम ॥[235]
चाखिअड़ा चाखिअड़ा में हरि रसु मीठा राम ॥
हरि रसु मीठा मन महि वुठा सतिगुरु तुठा सहजु भइआ ॥
ग्रिह वसि आइआ मंगलु गाइया पंच दुसट ओए भागि गइआ।'

इस प्रकार पीछे दिखाया गया कि निर्गुण संत काव्य में छंदों के वाचक अनेक विशिष्ट शीर्षकों के अंतर्गत विभिन्न छंदों के उदाहरण मिलते हैं।

(ग) संत-पदावली में शीर्षक रूप में उल्लिखित छंदों की तालिका

अ-

अर्द्धभुजंगी, अर्द्धसवैया, अड़िल्ला, अनुष्टुप।

इ-

इंदव, इंद्रवज्र।

उ-

उल्लाला।

क-

कुंडलिया, कुंडली, केतकी सवैया, काफ़ी।

ग-

गीतक, गीता।

च-

चौपाइया, चंपक, चामर, चंदाणा, चपेट, चौपई, चौबोला।

छ-

छप्पय, छंद, छंत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ड-

डुमिला (द्रुमिला), डखणा।

द-

दोहा।

न -

नंदा, नराय, नीसानी।

प -

पवंगम, पद्धड़ी, पायक्का, पउड़ी।

ब-

बरवै, बोधक, बिज्जुमाला।

भ-

भुजंगप्रयात।

म-

मोहिनी, मडिल्ला, मोतीदाम, मालती, मनहर।

र-

रोड़ा (रोला), रासा, रंगिक्का, रुचिरा, रेखता, रमैनी।

ल-

लीला।

व-

वीरसवैया।

श-

शार्दूलविक्रीड़ित।

स-

सोरठा, सवैया, साखी, सलोक,

ह-

हरसंषाणां।

त्र-

त्रोटक, त्रिभंगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(घ) हिंदी निर्गुण काव्यधारा के 'पद' अंश में प्रयुक्त प्रमुख छंद

पद शैली मूलतः गेय होती है, अतः सामान्यतः किसी काव्यधारा के 'पद' अंश में प्रयुक्त छंदों का विवेचन अपेक्षित नहीं माना जाता किंतु छंद का संगीत से प्रगाढ़ संबंध है और कुछ छंद, संगीत की दृष्टि से अन्य छंदों की अपेक्षा अधिक उपयोगी होते हैं यथा, मात्रिक छंद, वर्णिक छंदों की अपेक्षा संगीत के अधिक उपयुक्त होते हैं और मात्रिक छंदों में भी कतिपय छंद अधिक संगीतानुकूल होते हैं, इन सब दृष्टियों से निर्गुण काव्यधारा के पद-साहित्य में प्रयुक्त प्रमुख छंदों का विशेष अध्ययन यहाँ किया गया है। उक्त विशिष्ट-अध्ययन के फलस्वरूप हमें निम्नलिखित तथ्यों की उपलब्धि होती है।

(1) संत पदावली में प्रायः 16-16, 16-11, 16-12, और 16-14 मात्राक्रम मिलता है तथा जिन छंदों का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है, वे हैं, सार, सरसी, उपमान, विष्णुपद आदि।

(2) संतों के पद भाग में कतिपय छंदनाम ऐसे मिलते हैं, जिनका प्रयोग बहुत अधिक नहीं हुआ तथापि स्वतंत्र रूप से अथवा एक दो अन्य छंदों के मिश्रण सहित पर्याप्त मात्रा में उनका समावेश हो गया है, यथा चांद्रायण, विद्या, ताटंक, रोला, हंसाल, राधिका, चौपई, मुक्तामणि, गीतिका, विधाता, झूलना, रेखता, रूपमाला आदि।

(3) कुछ छंद इस प्रकार के भी पदों में मिलते हैं, जिनका प्रयोग बहुत कम मिलता है, यथा, लोकायत, योग, वीर, कज्जल, हरिगीतिका, रुचिरा तथा दिग्पाल आदि।

(4) इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं एक ही पद में अनेक छंदों का मिश्रण मिलता है।

(5) कहीं-कहीं टेकं, पादाकुलक की रखकर, आगे पूरे पद में 'सार' छंद का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं टेक में एक ही छंद का प्रयोग कर, पूरे पद में गेयता के कारण मात्राक्रम अस्त-व्यस्त मिलता है।

संत पदावली में प्रयुक्त हुए सभी प्रमुख छंदों का विवरण एवं उदाहरण आगे प्रस्तुत है।

संतों के पदों में गेय एवं बंध तत्त्व के कारण, अनेक छन्दों का अस्तित्व खोजा जा सकता है। प्रबंध की मर्यादा को देखते हुए इस ओर यथासंभव प्रयास कर प्रस्तुत अध्याय में किए अपने अध्ययन-विशिष्ट को संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। संतों के पदों में उपलब्ध प्रमुख छंदों का विवरण नीचे प्रस्तुत है।

उपमान

संतों के पद-साहित्य में 'उपमान' छंद का बहुल प्रयोग मिलता है। लगभग प्रत्येक संत कवि ने इस छंद का प्रयोग किया है। 'उपमान' छंद, 23 मात्राओं का छंद है। इसमें 13-10 मात्राओं पर यति का नियम रहता है और अंत में दो गुरु (ऽऽ) रहते हैं। संत पदावली में से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं।

(1) 'अकथ कहांणी प्रेम की, कछू कही न जाई।
गूंगे केरी सरकरा, बैठे मुसकाई ॥ टेक ॥
मोत्रि बिनां अरु बीज बिन, तरवर एक गाई।
अनंत फल प्रकासिया, गुर दीया बताई ॥
मन थिर बैसि बिचारिया, रांमहि ल्यौ लाई।
झूठी अनभे बिस्तरी, सब थोथा बाई ॥
कहै कबीर सकति कछु नांहीं, गुर भया सहाई।
आंवण जांणी मिटि गई मन मनहि समाई ॥'[236]

(2) 'तूं अगाध तूं अगाध, तूं अगाध देवा।[237]
निगम नेति नेति कहें, जानें नहि मेवा ॥ (टेक)
ब्रह्मादिक विष्णु शंकर, सेस हू बषानें।
आदि अन्ति मद्धि तुमहि, कोऊ नहिं जानैं ॥ 1 ॥
सनकादिक नारदादि (क) सारदादि (क) गावें।
सुर नर मुनि गन गंधर्व, कोऊ नहिं पावें ॥ 2 ॥
साध सिद्धि थकित भये, चतुर बहु सयानां।
सुंदरदास कहा कहे, अति ही हैरानां ॥ 3 ॥

सुंदरदास ने इस छंद का बहुत प्रयोग किया है। सुं ग्रं. द्वि. खं. में पृ. 859 प. सं. 4, पृ. 860 प. सं. 5, पृ. 863, प. सं. 10, पृ. 863 प. सं. 11, पृ. 864 प. सं. 12, पृ. 896 पद सं. 3 आदि अनेक पदों में उक्त छंद का प्रयोग हुआ है।

(3) 'मैं बंदा बेखरीदु, सचु साहिबु मेरा ॥[238]
जीउ पिंउ समु तिसदा, समु किछु है तेरा ॥1॥
माण निमाणे तूं धणी, तेरा भरवासा ॥
बिनु सोच अनटेक है, सो जाणहु काचा ॥1॥ रहाउ ॥

(4) 'नाम लगन छूटे नहीं, सोई साधु सयाना हो।
माटी के बरतन बन्यो, पानी ले साना हो।
बिनसत बार न लगि है, राजा क्या राना हो।
क्या सराय का बासना, सब लोग बिगाना हो।[239]"

(5) 'का जोगी मुद्रा करे, साहिब गति न्यारी ॥ टेक॥[240]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नेती धोती वह करे, बहु भांति संवारी।
बाजीगर का पेखना, सब देखन हारी ॥ 1 ॥
झाड़ी जंगल वे फिरें, अंधे बैपारी।
पूजा तर्पन जाप में, भूले ब्रह्मचारी ॥ 2 ॥

'उपमान' छंद के उदाहरण लगभग हर संत कवि के पदों में मिलते हैं, अतः यह संतों का एक प्रिय छंद कहा जा सकता है और पद-शैली में व्यवहृत होने के कारण संगीत से इसका घनिष्ठ संबंध भी स्वतः सिद्ध है।

दिग्पाल

इस छंद में 24 मात्राएँ होती हैं। 12-12 पर यति होती है। 5वीं और 7वीं मात्रा सदा लघु होती है। संतों के काव्य में इसका प्रयोग भी मिलता है, यथा,

'बातों मुक्ति न होइहै, छांड़े चतुराई हो।[241]
एक नाम जाने बिना, भूला दुनियाई हो ॥ 1 ॥
वेद कतेब भवजाल है, मरि है बौराई हो।
मुक्ति-भेद-कछु और है, कोई बिरलै पाई हो ॥ 2 ॥'

सार

यह छंद पदों में सर्वाधिक प्रयुक्त होता है। इसमें 16-12 पर यति होती है और अंत में दो गुरु (ऽऽ) रहते हैं। संतों के पदों में भी इस छंद का बहुत प्रयोग मिलता है, यथा-क. सा.की श. द्वि. भा. 6।12, 13/28, क. सा. की श.-प्र. भा. 8/3 आदि। वैसे 'सार' छंद प्रायः पदों में प्रयुक्त होता है। 16-16, 16-10, 16-12, 16-11 आदि मात्राओं का विधान प्रायः पदों में मिलता है।

चांद्रायण

इस छंद में 11-10 पर यति होती है। 11वीं मात्रा जगणांत और 10 वीं रगणांत होती है। संतकाव्य में यह छंद भी व्यवहृत हुआ है।

'चल सतगुरु की हाट, ज्ञान बुद्धि लाइये।
कीजै साहेब से हेत, परम पद पाइये।'[242]

विष्णुपद

छंद में 16-10 पर यति होती है और अंत में गुरु होता है। इस छंद का पद-साहित्य में बहुत प्रयोग होता है। संत काव्य में भी इसका बहुल प्रयोग हुआ है। एक उदाहरण प्रस्तुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है:

'गुरु ने मोहिं दीन्ही अजब जड़ी ॥
सौ जड़ी मोहि प्यारी लगतु हे, अमृत रसन भरी।
कायानगर अजब इक बंगला, तामें गुप्त धरी।
पांच नाग पचीसों नागिन, सूंघन तुरत मरी।
या कारे ने सब जग खायो, सतगुरु देख डरी।
कहत कबीर सुनो भाई साथी, ले परिवार तरी।'[243]

सरसी

संत काव्य में 'सरसी' छंद का बहुत प्रयोग मिलता है। इस छेद में 16-11 पर यति होती है और अंत में गुरु लघु होता है। इस छंद को 'समुंदर' भी कहते हैं। संतों की पदावली में से एक छंद का उदाहरण प्रस्तुत है।

'कैसे जीवेगी बिरहिनी पिया बिन, कीजै कौन उपाय ॥
दिनस न भूख रैन नहिं सुख है, जैसे कलिजुग जाय।
खेलत फाग छांड़ि चलु सुंदर, तज चलु धन और धाम।'[244]

विधाता

इस छंद की गति गज़ल की गति के अनुसार होती है। इसमें 28 मात्राएँ होती हैं। 14-14 पर यति होती है। पहली, आठवीं और पंद्रहवीं मात्रा लघु होती है। यथाः

'हमन हैं इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या।
रहें आज़ाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या।'[245]
और भी देखिए;
'चली मैं खोज में पिय की, मिटी नहिं सोच यह जिय की ॥
रहे नित पास ही मेरे, न पाऊं यार को हेरे ॥
बि़कल चहुं ओर को धाऊं, तबहु नहिं कंत को पाऊं ॥
धरूँ केहि भांति से धीरा, गयो गिरि हाथ से हीरा ॥'[246]

ताटंक

इस छंद का भी संतों ने प्रचुर प्रयोग किया है। 'ताटंक' छंद में 30 मात्राएँ होती हैं। 16-14 पर यति होती है, अंत में मगण होता है। संतकाव्य में से इस छंद का एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'साधो यह तन ठाठ तूंबरे का ॥
ऐंचत तार मरोरत खूंटी, निकसत राग हजूरे का।
टूटे तार बिखरि गई खूँटी, हो गया धरम धूरे का।'[247]

विधा

इस छंद में 28 मात्राएँ होती हैं। 14-14 पर यति होती है। आदि में लघु होता है और अंत में यगण (ISS) होता है। कबीर का निम्न पद उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है

'गुरु से कर मेल गँवारा, का सोचत बारम्बारा।
जब पार उतरना चाहिये, तब केवट से मिलि रहिये।
जब उतरि जाय भव पारा, तब छूटे यह संसारा।
जब दरसन न देखा चाहिये, तब दर्पन मांजत रहिये।'[248]

लोकायत

इस छंद में 16-16 पर यति होती है। कबीर के निम्न पद में 'लोकायत' छंद का प्रयोग मिलता है।

'सोच सतगुर की बलिहारी, जिन यह कुंजी कुफल उघारी।
नखशिख साहिब है भरपूर, सो साहिब क्यों कहिये दूर।'[249]

गीतिका

इस छंद का भी संतकाव्य में प्रचुर प्रयोग मिलता है। इस छंद में 14-12 पर और अंत में एक लघु और एक गुरु होता है। यथा-

'पूरब पश्चिम देख दक्खिन, उत्तर रहे ठहराइ के।
जहाँ देखो गम्म गुरु की, तहीं तत्त समाइ के ॥
सुरत उत्तर पास किलके, पुहुप दीप तें आइ के।
लाइ लौ की डोर बाँधे, संत पकरे जाइकै।'[250]

योग

इस छंद में 20 मात्राएँ होती हैं। 12-8 मात्राओं पर यति होती है और अंत में यगण रहता है। कबीर के निम्न पद में 'योग' छंद का अस्तित्व मिलता है।

'यह कलिना कोई अपनो का संग बोलिये रे।
ज्यों मैदानी रुख, अकेला डोलिये रे ॥
माया के मदमाते, सुने नहिं कोई रे।
क्या राजा क्या रंग, बियाकुल दोई रे।'[251]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुगीता अथवा सुगीतिका

इस छंद में चार चरण होते हैं। प्रति चरण में 25 मात्राएँ होती हैं। प्रथम यति 15 मात्रा पर, द्वितीय यति 10 मात्राओं पर होती है। अंत में दो गुरु होते हैं। गुरु नानक के निम्न पद में उक्त छंद का उदाहरण द्रष्टव्य है,

'तू करता आप अभुल्ल हैं, भुल्लण विच नाहीं।
तू करहि सु सच्चे भला है, गुरु सबदि बुझाही।'[252]

कलस

इस छंद में प्रति चरण 12 मात्राएं होती हैं, अंत में दो गुरु होते हैं, यथा,

'हम घर साजन आए,
साचे मेल मिलाए।'[253]

गीता

इस छंद में 26 मात्राएँ होती हैं। 14-12 पर यति होती है। अंत में 1 गुरु और एक लघु होता है। म. 5 के निम्न पद में 'गीता' का रूप स्पष्ट है,

'मोती मंदिर ऊसरहि, रतनी त होई जड़ाउ।
कसतूरि कुंगू अगर, चंदन, लीप आवहि चाउं ॥'[254]

कज्जल

इस छंद में 14 मात्राएँ होती हैं, अंत में एक गुरु लघु होता है। आ. ग्रं. के निम्न पदांश में उक्त छंद का उदाहरण मिलता है।

'असंख मूरख अंध घोर। असंख चोर हरामखोर।'[255]

हंसाल छंद

इस छंद का सुंदरदास की पदावली में निर्दिष्ट रूप में प्रयोग मिलता है, किंतु प्रायः सभी संतों के पदों में भी इसका अनिर्दिष्ट रूप में व्यवहार मिलता है। इस छंद में 37 मात्राएँ होती हैं। 20-17 मात्राओं पर यति होती है, एवं अंत में यगण (ISI) होता है। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं।

(1) *'चला जब लोक को सोक सब त्यागिया,*
हंस को रूप सतगुर बनाई।
मृंग ज्यों कटि को पलटि भृंगे किया,
आप परम सम रंग दै लै उड़ाई ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छोड़िना सूत मलकूत को पहुँचिआ,
विश्नु की ठाकुरी दीख जाई।
इंद्र कुबेर जहँ रंभ को नृत्य है,
देव तैंतीस कोटिक रहाई ॥'[256]

(2) *'ज्ञान का गेंद कर सुरति का दंड कर,*
खेल चौगान मैदान मांहीं, ।
जगत का भरमाना छोड़ दे बालके,
आय जा भेख भगवंत पाहीं ॥'[257]

(III भाग) : गायन-शैली

प्रस्तुत अध्याय के प्रथम दो खंडों में क्रमशः 'प्रबंध' और 'छंद' की दृष्टि से संतकाव्य का विश्लेषण किया जा चुका है। इस तृतीय खंड में विविध गायन-शैलियों के आधार पर संगीत के विभिन्न स्तरों की दृष्टि से संतकाव्य का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रबंध, छंद और गायन-शैली तीनों तत्वों का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। 'छंद' को तो हमारे शास्त्रज्ञों ने 'प्रबंध' के अंतर्गत ही स्थान दे दिया है, जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं और 'गायनशैली' का भी 'प्रबंध' के साथ अपरिहार्य संबंध है। प्रत्येक प्रबंध का शास्त्रीय, सुगम शास्त्रीय, सुगम संगीत, छंदोगान या पद्यगान अथवा लोक-संगीत में से किसी न किसी गायन शैली से संबंध अवश्य रहता है। प्रबंध में स्वर, ताल और पद का एकत्र समावेश रहता है। और दूसरी ओर किसी गीत की गायन-शैली के निश्चय-हेतु, उक्त तीनों तत्त्वों का अध्ययन अनिवार्य है। इस प्रकार, प्रबंध और गायनशैली का परस्पर सुदृढ़ संबंध स्पष्ट है।

हिंदी के निर्गुण संतकवियों ने विशुद्ध शास्त्रीय संगीत, सुगम शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, लोक संगीत, छंदोगान अथवा पद्यगान आदि संगीत के प्रायः सभी स्तरों के पदों की रचना की है। यह सत्य है कि संतों ने केवल कहरा, बिरहुली, मंगल आदि केवल लोक संगीत की विविध शैलियों का ही अपने पदों में निर्देश किया है। उन्होंने शुद्ध शास्त्रीय संगीत की ध्रुपद तथा ख्याल शैलियों, सुगम शास्त्रीय संगीत की ठुमरी, होरी तथा भजन आदि और सुगम संगीत की गज़ल, लावनी और रेखता आदि शैलियों का अपने पदों पर गायन शैली के शीर्षक के रूप में निर्देश नहीं किया। हमने गु. सं. एवं रा.क. दोनों ग्रंथों में संकलित संतों[258] के पदों में निर्दिष्ट राग-ताल के आधार पर तथा संतकाव्यसंग्रहों में संगृहीत पदों के रचनागत (भाषा-शैली तथा छंद आदि) वैशिष्ट्यानुसार उक्त शैलियों के निश्चय कर, तत्संबंधी विवेचन एवं विश्लेषण, इस अध्याय-खंड में प्रस्तुत किया है। दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया आदि जिन छंदों में निबद्ध संतों की रचनाओं के साथ राग, ताल का उल्लेख नहीं मिलता है, उन्हें छंदोगान अथवा पद्यगान शैलियों के अंतर्गत रखा जा सकता है। संत पदावली में उपलब्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उक्त विभिन्न गायन-शैलियों के निर्माण के प्रमुख आधार[259] निम्नलिखित हैं।

(1) शब्दरचना की अपेक्षा स्वर और लय की प्रधानता अथवा गौणता अथवा दोनों का समान उपयोग अथवा शब्द रचना की अपेक्षाकृत प्रधानता।

(2) राग के बंधनों की कठोरता अथवा शिथिलता।

(3) भाव पक्ष अथवा कला पक्ष की प्रधानता।

(4) रागालप्ति (जिस प्रकार की ध्रुपद शैली में की जाती है अथवा रूपकालप्ति (जैसी ख्याल अथवा ठुमरी शैली में की जाती है) की प्रधानता।

संतों के काव्य संग्रहों एवं उनके पदों का गेय स्वरूप प्रस्तुत करने वाले ग्रंथों में प्राप्त गायन शैलियों का उक्त आधारों के अनुसार संगीत के विभिन्न स्तरों की दृष्टि से निम्नलिखित विभाजन किया जा सकता है।

(1) विशुद्ध शास्त्रीय संगीत-कोटि

(अ) ध्रुपद शैली

इसमें राग-नियमों का कठोर बंधन, रागालप्ति की विशेषता, छंदोबद्ध शब्द रचना तथा स्वर-लय-संयोजना का समान स्थान, कलापक्ष और भावपक्ष का समान महत्त्व, स्वर-स्थैर्य तथा विलम्बित गति के कारण गंभीरता आदि तत्त्वों का वैशिष्ट्य रहता है।

संतों के पद-संग्रहों में ध्रुपद शैली का निर्देश तो नहीं मिलता, किंतु गु.सं. तथा आ.ग्रंथ में उनके अनेक पद उक्त शैली में स्वरतालबद्ध मिलते हैं, जिससे यह स्पष्ट है कि गायक वर्ग में, उक्त शैली में उनके पद-गायन की परंपरा अवश्य रही थी। रा.क. में संत नामदेव के ध्रुपद शैली के पदों के अंतर्गत गौरी और टोड़ी दो राग-नाम मिलते हैं।

रा. क. भाग 2, में 'कबीर बीजक' के पद पृथक् रूप से संगृहीत हैं। इन पदों में 'धमार'[260] शैली के अनेक पद 'बसंत' राग के नामान्तर्गत मिलते हैं। यद्यपि कबीर के इन सभी पदों में 'होली' का वर्णन नहीं मिलता, तथापि उक्त पदों में होरी उत्सव से संबधित 'वसंत' (राग) एवं 'धमार' ताल का उल्लेख विशेष ध्यातव्य है। रा. क. में क. बी. के अतिरिक्त कबीर के अन्य संगृहीत पदों में भैरवी[261] और लाचारी[262] रागों के साथ 'धमार' ताल का निर्देश मिलता है, तथा चौताल का निर्देश 'सोरठ' राग के अंतर्गत मिलता है।[263]

आज 'लाचारी' (टोड़ी?) राग विशेष प्रचलित राग नहीं है, अतः 'लाचारी' और 'सोरठ' रागों में आज 'ध्रुपद' गायन नितान्त अप्रचलित हो गया है।

रा.क. में सुंदरदास का 'सवैया' अथवा 'सुंदर विलास' ग्रंथ पूरा राग-तालबद्ध मिलता है तथा इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि संभवतः 'सवैयों' की शब्द रचना लंबी होने के कारण इन सवैयों में अधिकांश सवैये 'चौताल' में ही निबद्ध हैं।

ध्रुपदशैली के अंतर्गत धमार, सूल अथवा सूलफ़ाकता, झपताल विलंबित तथा ब्रह्मतालादि तालों को स्थान मिला है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रा. क. में ज्ञान तत्त्व सागर 'शीर्षक से सुंदरदास के 'सवैया' नामक संकलित ग्रंथ में, ध्रुपदशैली की उक्त तालों से संबद्ध रागों की तालिका नीचे प्रस्तुत है।

भैरव, विभास, ललित, अलैयाबेलावल, देवगिरि, ककुभ, गूजरी, (टोड़ी?), देशी टोड़ी, सारंग, मधुमास, बड़हंस, भीमपलाश, मालकोंश, हमीर, छायानट, नट, अड़ाना, बागेश्वरी, केदार, बिहाग, सोरठ, खम्माच, जयजयवन्ती, अहरी (आमीरी?), सिंधु, वसंत, बहार, जंगला, पीलू, छायानट, मलार, सुधमलार, सुघराई, मेघ, झंझोटी, नटमलार और ब्रह्मराग आदि।

इस प्रकार, सुंदरदास के 'सवैया' ग्रंथ में, ध्रुपद शैली के अंतर्गत आज के प्रायः सभी प्रचलित राग मिलते हैं, किंतु इन राग नामों में खमाज, पीलू तथा झिंझोटी आदि क्षुद्र प्रकृति के रागों का उल्लेख अवश्य आश्चर्य का विषय है, क्योंकि आज ये राग प्रायः ठुमरी अंग में ही प्रचलित हैं और अधुना प्रचार की दृष्टि से ध्रुपद शैली के योग्य गंभीरता की संभावना इन रागों में कम ही आंकी जा सकती है।

गु.सं.[264] में संत नामदेव, कबीर, गुरु नानक एवं गुरु अर्जुनदेव, हमारे विवेच्यकाल के इन चार कवियों के ध्रुपदशैली के पदों में निम्नांकित रागनामों का उल्लेख मिलता है।

माझ, गौड़ी, ललिता, आसा, आसावरी, देवगंधारी, बड़हंस, हुसैनी, टोड़ी, बैराड़ी, सूही, बिलावल, जेजावंती, बिलावल, केदारा, भैरव, आनंदभैरव, बसंत, कानड़ा[265], दरबारी कानड़ा, कोंसी कानड़ा, कल्याण, शुद्ध कल्याण, प्रभाती, विभास आदि।

उक्त रागों में गौड़ी-ललिता, जैजावंती-बिलावल, मिश्र राग आज नितांत अप्रचलित हैं। इसके अतिरिक्त, 'माझ' तथा 'आसा' जैसे प्रादेशिक अथवा सीमित क्षेत्र में प्रचलित रागों में ध्रुपद शैली के गीत भी आज प्रचार में नहीं हैं। संभवतः उक्त रागों में ध्रुपद शैली का प्रचार संतों के विशिष्ट गायक वर्ग तक ही सीमित रहा है।

प्रस्तुत संदर्भ में एक बात विशेष उल्लेखनीय है, आ. ग्रं. में 'पड़ताल'[266] शीर्षक के अंतर्गत संतों, विशेषतः पंचम गुरु के अनेक पद मिलते हैं। गु.सं. में इन पदों की स्वरलिपियाँ दो से अधिक तालों में निबद्ध हैं। इस ताल-विशेष के अंतर्गत निबद्ध पदों के गेय स्वरूप में एकताल, तीनताल, ढाईताल आदि ख्याल एवं सुगम संगीत की तालों के साथ चारताल अथवा चौताल, धमार, सूल आदि ध्रुपद शैली की तालों का भी प्रचुर उपयोग किया गया है, किंतु ध्रुपद-शैली के साथ ख्याल तथा सुगम संगीत शैली के मिश्रण के कारण इस (पड़ताल में निबद्ध) गीतशैली को ध्रुपदशैली एवं विशुद्ध शास्त्रीय संगीत-शैली के अंतर्गत स्थान नहीं दिया गया।

(आ) ख्याल शैली

यह विशुद्ध शास्त्रीय-संगीत की द्वितीय, लोकप्रिय शैली है। ख्याल शैली में राग-नियमों का बंधन ध्रुपद की अपेक्षा कुछ कम कठोर होता है। अर्थात् राग-ताल आदि तत्वों के शास्त्रीय नियमों का पूर्णतः निर्वाह अपेक्षित होने पर भी इसमें स्वर-लय के अलंकरण के सभी संभव प्रयोगों के लिए कल्पनाशक्ति का उपयोग विहित है। ध्रुपद में से उद्भूत होने के कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ख्याल तथा ध्रुपद परस्पर अंगांगीभाव से संबद्ध हैं, किंतु ख्याल शैली ध्रुपद शैली की अपेक्षा, चंचल होने के कारण, तात्विक दृष्टि से समानधर्मा होते हुए भी स्थूल रूप ध्रुपद से पृथक् हो जाती है। ख्याल में छंदोबद्ध शब्द रचना की रक्षा की अपेक्षा, स्वर-लय के अलंकरण की प्रधानता रहती है, इसी कारण इस शैली के अंतर्गत शब्द-रचना अतीव संक्षिप्त और प्रायः विकृत रूप में पाई जाती है। रागालप्ति की अपेक्षा रूपकालप्ति की इसमें विशेष एवं विस्तृत योजना रहती है। भावपक्ष तथा कलापक्ष की समान महत्ता होने पर भी इसमें ध्रुपद की तुलना में द्रुत लय रहने के कारण अपेक्षाकृत कम गांभीर्य रहता है।

इस शैली का बोध कराने वाले प्रमुख ताल हैं— त्रिताल, एकताल, झपताल,[267] तिलवाड़ा, आड़ा चौताल, दीपचंदी, झूमरा तथा यत्, खेमटा, जयश्री आदि।

गु.सं. में संतों की स्वरलिपियों के अंतर्गत उक्त तालनामों[268] के अतिरिक्त मत्तताल (9 मात्रा का), भानमती अथवा चार ताल की सवारी (11 मात्रा का ताल), जगपाल ताल (11 मात्रा का), जैताल (13 मात्रा का), चंचल (14 मात्रा का), फ़रोदस्त (14 मात्रा का), सवारी पांच ताल (15 मात्रा का), सिखर ताल (17 मात्रा का), खटताल (18 मात्रा का), इंद्रताल (19 मात्रा का), तथा मल्लताल अथवा असठताल[269] (21 मात्रा का) आदि तालनाम मिलते हैं, जो कि आज नितांत अप्रचलित हो चुके हैं, अतः यह निश्चय करना कठिन है कि इन सभी तालों का अथवा इनमें से किन-किन तालों को ध्रुपद शैली के अंतर्गत स्थान दिया जाए और किन्हें ख्याल शैली के अंतर्गत रखा जाए अथवा इनमें से किन तालों को सुगम-शास्त्रीय-संगीत के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाए।

ताल के विवेचन के पश्चात् अब संतों के पदों में, ख्याल शैली में निर्दिष्ट राग नाम पर यहाँ विचार करना आवश्यक है।

रा. क. में कबीर के ख्याल शैली के (क.बी. के अतिरिक्त पदों में) पदों में उपलब्ध रागनाम निम्नांकित हैं:

कलिंग, कलिंग-मारू, सिंधु, भैरवी, झिंझोटी, सोहनी, सिंदूरा, सारंग, भटियाल (भटियार?), आशावरी, जंगला, सिंधु-काफी, धनाश्री, पीलू, काफी, विहाग, कनाड़ी, (?) तथा प्रदीप आदि।

इन रागों में 'प्रदीप' राग आज प्रचार में नहीं है।

रा. क. द्वितीय खंड में 'क. बी.' के पदों में ख्यालशैली के अंतर्गत जिन रागनामों का उल्लेख किया गया है, वे निम्नलिखित हैं:

आशावरी, धनाश्री, जंगला, पूर्वी, पीलू, गौरी, भूपाली, एमन, केदारा, सोरठ, विहाग, खंबावती, परज, कलिंग, काफी, जोगिया, सिंधु, अहीरी तथा ईमन-झिंझोटी आदि।

उपर्युक्त रागों में से ख्याल शैली के अंतर्गत 'ईमन-झिंझोटी' तथा 'अहीरी' के अतिरिक्त अन्य सभी राग प्रचलित हैं।

रा.क. में द्वितीय खंड में ही सुंदरदास के 'सवैया' ग्रंथ के ख्याल शैली में निबद्ध छंदों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

के अंतर्गत निम्नलिखित रागनाम मिलते हैं:

ललित, सिंधु, खट, रामकली, जोगिया, आसावरी, बहार, पीलू, झिंझोटी, धनाश्री, मलार-सहाना, जयजयवन्ती, बिहारी, कांफी, प्रदीप और धनाश्री-मुल्तानी आदि।

उक्त रागों में मलार-सहाना तथा धनाश्री-मुलतानी मिश्र रागों तथा 'बिहारी' राग का आज ख्याल शैली में अधिक प्रचलन नहीं है।

गु.सं. में संतों के ख्याल शैली के पदों के अंतर्गत प्राप्त रागनाम निम्नांकित हैं :

(श्री) स्री, माझ, गौड़ी, गौड़ी चैती, गौड़ी-सरोष्ठ, आसा, आसावरी, गूजरी, देवगंधारी, बिहागड़ा, बड़हंस, सोरठ, धनासरी, टोड़ी, मियां की टोड़ी, बहादुरी टोड़ी, संघूरी टोड़ी, अहीरी टोड़ी, हुसैनी टोड़ी,[270] बैराडी, तिलंग, सूही, सूही-दलित, बिलावल, शुकल बिलावल, गोंड रामकली, नट, मालीगोड़ा, मारू, मारू बिहाग, तुरवारी, भैरव, अहीर भैरव, बसन्त, बसंत- हिंडोल, शुद्ध सारंग, गौड़मलार, मियां की मलार (शुद्ध कल्याण तथा जयजयवन्ती)।

इन रागों में ख्याल शैली में आज गौड़ी-चेती, गौड़ी-सोरठि, संधूरी-टोड़ी, अहीरी-टोड़ी, हुसैनी-टोडी, तथा सूही-ललित मिश्र-राग और तुखारी, वसंत-हिंडोल, बडहंस बैराड़ी तथा (केवल) मारू[271] रागों का अधिक प्रचार नहीं है।

(2) मिश्र अथवा सुगम शास्त्रीय-संगीत—कोटि

इसमें राग-नियमों का बंधन विशुद्ध शास्त्रीय संगीत की तुलना में बहुत शिथिल रहता है एवं शब्द-रचना अथवा पद को इसमें ख्याल की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है क्योंकि भाव-सृष्टि इसका प्रधान लक्ष्य रहता है। भावात्मकता-वृद्धि के लिए ही इसमें रूप-कालप्ति, बोल-बनाव के रूप में की जाती है तथा लयकारी के प्रदर्शन की अपेक्षा कल्पना-शक्ति द्वारा, पद के सुकुमार भावों के अभिव्यंजक शब्दों के लिए नए-नए बोल बनाकर, मृदुल वातावरण की सर्जना की जाती है। मिश्र अथवा सुगम शास्त्रीय संगीत में 'ध्रुपद' शैली के नितांत विपरीत 'नरम आवाज़' को महत्त्व दिया जाता है। इस गायन शैली में राग-नियमों के बंधन का सर्वथा अभाव न रहने पर भी कोमल भावों की सर्जना-हेतु उसके कठोर बंधन का निर्वाह नहीं किया जाता है। यह ख्याल की अपेक्षा मृदुल गायनशैली है, अतः इस शैली के गीतों में प्रायः प्रयुक्त होने वाले भैरवी, पीलू, खमाज, झिंझोटी, तिलंग, काफ़ी आदि राग विशेषतः कोमल भावों के प्रतिपादक होते हैं।

संतों की पदावली का गेय स्वरूप प्रस्तुत करने वाले ग्रंथों में संतों के सुगम शास्त्रीय संगीत की कोटि में स्थान पाने वाले पद निम्नलिखित शैलियों के अंतर्गत रखे जा सकते हैं।

(अ) ठुमरी, (आ) होरी, (इ) भजन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

(अ) ठुमरी शैलीः

रा.क.द्वि. खं. में कबीर के क. बी. के पदों के अंतर्गत 'ठुमरी शैली' के पदों में 'त्रिताल' का प्रयोग मिलता है और रागों में 'देश' राग का उल्लेख किया गया है।

टिप्पणी : रा. क. – द्वि. खं. में क. बी. के कई पदों में पृ. 455 पर ठुमरी शैली के अंतर्गत कोई रागनाम नहीं दिया गया केवल 'ठुमरी तिताला' शीर्षक है, दूसरी ओर पृ. 456 पर एक पद में तालनाम नहीं है। देश-ठुमरी, इस प्रकार केवल रागनाम ही दिया गया है।

प्रथम प्रसंग में जहाँ ठुमरी शैली के पदों में रागनाम नहीं है, वहाँ ग्रंथकार का अभिप्राय ऐसा समझा जा सकता है कि 'त्रिताल' में निबद्ध उक्त पदों को ठुमरी-शैली में प्रयुक्त होने वाले किसी भी क्षुद्र राग में गाया जा सकता है और द्वितीय प्रसंग में जहाँ 'ताल' नाम को निर्देश नहीं किया गया, वहाँ रागकल्पद्रुमकार का अभिप्राय यह हो सकता है कि उक्त विशिष्ट पद को राग 'देश' में 'ठुमरी' शैली से पद की शब्द-रचना के वैशिष्ट्यानुसार त्रिताल अथवा किसी भी अन्य ताल में 'बिठाया' जा सकता है।

वैसे ठुमरी 'शैली के गीतों में त्रिताल के अतिरिक्त दीपचंदी आदि तालों का प्रायः व्यवहार किया जाता है।

(आ) होरी शैलीः

इस शैली के गीतों में प्रायः 'होरी' उत्सव का वर्णन रहता है। संतों के 'होरी' शैली के गीतों में आत्मा और परमात्मा ही होली, वर्ण्य-विषय रहता है। इस शैली के पदों में प्रायः दीपचंदी अथवा त्रिताल आदि तालों का प्रयोग होता है। 'होरी' गीतों का पूरब में जन सामान्य में बहुत प्रचार है और इस प्रकार इन्हें लोक गीतों के अंतर्गत रखा जा सकता है, किंतु 'होरी' गीतों को प्रायः 'काफी' अथवा अन्य शास्त्रीय राग एवं तालों में सुगम शास्त्रीय संगीत के नियमानुसार भी गाया जाता है, अतः उक्त शैली को सुगम शास्त्रीय 'संगीत की कोटि में भी हमने यहाँ स्थान दिया है। हमारे विवेच्य काल के कवियों ने होरी' के अनेक पद लिखे हैं। रा.क. में संतों के 'होरी' विषयक आध्यात्मिक गीतों के अंतर्गत खेमटा, तिताला, धमार तथा दीपचंदी आदि तालनाम और भैरवी, काफी आदि रागनामों का उल्लेख मिलता है।

'धमार' पद' 'धम्माली' प्रबंध नाम का सुगम अथवा विकृत शब्द-रूप है और इस प्रबंध का वर्ण्य-विषय प्रायः 'होली' के उत्सव से संबंधित ही होता है।[272] अतः 'धमार' शीर्षक से अंकित पदों में भी प्रायः 'होली' उत्सव का वर्णन ही मिलता है। संतों के इस ताल में निबद्ध तथा होली वर्णन से संबंधित विभिन्न रागनामों के अंतर्गत् प्राप्त प्रायः सभी पदों को इस प्रकार 'सुगम शास्त्रीय' संगीत के अंतर्गत रखा जा सकता है

'होरी' शीर्षक से अभिहित संतों के वे पद, जिनमें राग-ताल का निर्देश नहीं किया गया, उन्हें हमने 'लोक संगीत' शैली के अंतर्गत स्थान दिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(इ) भजन शैलीः

आज की 'भजन-शैली' पर ख्याल तथा ठुमरी शैली का बहुत प्रभाव पड़ा है, अतः उक्त शैली को 'सुगम संगीत' के अंतर्गत स्थान न देकर 'सुगम शस्त्रीय संगीत' की कोटि में स्थान दिया गया है। आज की ख्याल तथा ठुमरी शैली की छाप से युक्त 'भजन-शैली' का इस शताब्दी में सर्वाधिक प्रचार पं. विष्णुदिगम्बर पलुस्करजी द्वारा हुआ एवं उनकी शिष्य परम्परा द्वारा विशेषतः इस शैली का देशव्यापी प्रचार हुआ है। पं. विष्णुदिगम्बरजी ने सुगम शास्त्रीय रीति से भजनों को प्रस्तुत कर आज की 'भजन शैली' का निर्माण किया, इसीलिए रा. क. आदि महत्त्वपूर्ण संगीत ग्रंथों में इस शैली का स्वतंत्र नामोल्लेख नहीं मिलता।[273] किंतु भक्ति-भावपूर्ण आध्यात्मिक पदों को 'विष्णुपद' कहने की लोक में सुदीर्घ परंपरा चली आ रही है। रा. क. में भी 'संगीत रागकल्पद्रुम' में विष्णुपदादि राग'[274] शीर्षक से अनेक पदों का संग्रह मिलता है। पंजाब में अभी भी पारम्परिक पदों को 'विशनपते' अथवा 'विशनपदे' कहने का प्रचार है। पंजाबी भाषा में विशनपदों का साहित्य विभिन्न राग-ताल में निबद्ध प्रकाशित पुस्तकों के रूप में भी देखने में आया है।[275] ये रागतालबद्ध विष्णुपद 'भजन' शैली के अंतर्गत रखे जा सकते हैं।

संतों का तो महत्त्वपूर्ण साहित्य ही भक्ति-साहित्य है, अतः स्थूल दृष्टि से उक्त समस्त पद-साहित्य को 'विष्णुपद' कहा जा सकता है।

यहाँ भजन के संबंध में एक बात उल्लेखनीय है। गुरुद्वारों में राग-तालबद्ध रूप में संत कवियों के 'शब्द' गायन की जो प्राचीन परम्परा अद्यतन चली आ रही है, वह भजन-शैली के समकक्ष कही जा सकती है। उस पर भी ख्याल तथा ठुमरी शैली की छाप लक्षित होती है। उसमें कुछ बोल आलाप, रूपकालप्ति, सरगम, थोड़ी लयकारी तथा कहीं-कहीं छोटा-मोटा कोई तान का टुकड़ा भी जोड़ दिया जाता है। राग-विशिष्ट के स्वरूप की भी गायन यथा-संभव रक्षा करता है, अतः उक्त 'शबद' गायन शैली को 'भजन' शैली के अंतर्गत रखना अनुचित नहीं कहा जा सकता है। सिक्खों के गुरुद्वारों की इस गायन-परंपरा के प्रसंग में वैष्णव मंदिरों में प्रचलित 'कीर्तन शैली का उल्लेख करना यहाँ अप्रासंगिक न होगा। वैष्णव मंदिरों (विशेषतः वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों) में सगुण भक्तों के पद गायन की जो प्राचीन परंपरा अद्यापि चली आ रही है, वह कबीरपंथी आदि निर्गुण संत संप्रदायों में प्रचलित संतों की पदगान-परंपरा की तुलना में बहुत विशुद्ध एवं लगभग अपरिवर्तनीय रूप में मिलती है। हमने वल्लभ-संप्रदाय के गायकों का गायन प्रत्यक्ष सुनकर उक्त कथन की सत्यता की जाँच की है। दूसरी ओर, कबीर पंथियों के पदगान को भी प्रत्यक्ष सुनकर हमने देखा कि वहां वल्लभ संप्रदाय की 'कीर्तन' शैली की भाँति परंपरा का निर्वाह नहीं रहा, अपितु सिनेमा के गीतों की धुनों को भी संतों के पदों के लिये ग्रहण कर लिया जाता है। यह एक दुःखद विषय है कि गुरुद्वारों में भी अब परंपरा के निर्वाह का मोह कम होता जा रहा है। निर्गुण संत संप्रदायों में, अवशिष्ट प्राचीन भजन अथवा शब्द-गान की प्राचीन परंपरा की रक्षा की आज अत्यंत आवश्यकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(3) सुगम संगीत-शैली-कोटि

इस में स्वरयोजना की अपेक्षा, शब्दयोजना का अधिक महत्त्व रहता है, इसलिए इसे 'ठुमरी' शैली से भी एक स्तर नीचे रखा गया है।

संत कवियों के 'सुगम संगीत' शैली के अंतर्गत प्राप्त होने वाले पदों में 'गजल' शैली का अस्तित्व भी मिलता है।

(अ) गज़ल

(अ) गज़ल—यद्यपि संत काव्य में 'गज़ल' शैली का निर्देश नहीं मिलता, किंतु कुछ पदों में पूर्णतः उक्त शैली का सा लय का निर्वाह मिलता है, यथा, दादू का निम्न पद द्रष्टव्य है।

'अल्लः तेरा ज़िकर फिकर कहते हैं,
आशिकां मुश्ताक तेरे, तर्स तर्स मरते हैं।
षलक पोश दिगर नेस, बैठे दिन मरते हैं।
दायम दरबार तेरे, गैर महल डरते हैं।
तन शहीद मन शहीन, रात दिवस लड़ते हैं।
ग्यांन तेरा ध्यांन तेरा, इश्क आग जलते हैं।
जान तेरा जिंद तेरा, पावों सिर धरते हैं।
दादू दीवान तेरा, ज़र ख़रीद धरके हैं।'[276]

उक्त पद 'दिगपाल' छंद में विरचित है एवं 'काफी' राग में निवद्ध है। उक्त छंद का लय-विधान कुछ इस प्रकार का रहता है कि इसे गज़ल की तर्ज़ पर ठेका 'कव्वाली' में गाया जा सकता है।[277]

इसी प्रकार 'विधाता' छंद, गायन-शैली की दृष्टि से 'गज़ल' के सर्वाधिक अनुकूल है[278] और इस छंद का संत कवियों ने प्रचुर प्रयोग किया है। इस छंद के अंतर्गत उपलब्ध संतों के पदों को 'गज़ल' गायन शैली के अंतर्गत रखा जा सकता है। संतों के दो पदांश उदाहरणार्थ यहाँ प्रस्तुत हैं।

(1) *'खलक सब रैन का सपना। समझ मन कोई नहीं अपना ॥*
कठिन है मोह की धारा। बहा सब जात संसारा ॥
घड़ा ज्यों नीर का फूटा। पत्र क्यों डार से टूटा ॥
ऐसे नर जात जिंदगानी। अजहुं तो चेत अभिमानी ॥'

(2) *'चली मैं खोज में पिय की, मिटी नहिं सोच यह जिय की ॥*
रहे नित पास ही मेरे, न पाऊं यार को हेरे ॥
बिकल चहुं और को धाऊं, तबहुं नहिं कंत को पाऊं ॥
धरूं केहि भांति से धीरा, गयो गिरि हाथ से हीरा ॥'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

(आ) राग-तालबद्ध लोकगीत-प्रकार

छंत, बारहमाहा, वार, थिंती, बावन अखरी, पट्टी, रुती, सोहिला, अलाहणी, तथा आरती इत्यादि अनेक लोकगीत प्रकारों के अंतर्गत बहुत पदों की रचना की है। रागबद्ध होने के कारण उक्त लोकगीत प्रकारों को 'सुगम संगीत' के अंतर्गत स्थान दिया जा सकता है। संतों के सुगम संगीत शैली के पदों में रूपक, दादरा, कहरवा, दीपचंदी, पडड़ी तथा ढाई ताल आदि तालनामों का उल्लेख मिलता है।

रा. क., द्वि. खं. में कबीर के पदों कहरवा, ताल के साथ 'बरखा' राग का उल्लेख मिलता है। चाचरी, हिंडोला और बसंत लोकगीत प्रकार हैं किंतु रा.क. में, क. बी. में इनके अंतर्गत धनाश्री और बसंत राग-नामों का उल्लेख मिलता है, अतः इन्हें भी यहाँ 'सुगम संगीत' के अंतर्गत स्थान दिया जा सकता है।

गु. सं. में संतों के सुगम संगीत शैली के पदों के अंतर्गत निम्नलिखित राग मिलते हैं।

आसा, गूजरी, वडहंस, सोरठि, धनासरी, टोडी, अहीरी टोडी, शुक्ल बिलावल, रामकली, माली गोड़ा, बसंत (वार), सारंग तथा प्रभाती।

उक्त सभी राग सुगम संगीत शैली के अंतर्गत हैं,यद्यपि ये विशेषतः गुरुद्वारों में प्रचलित हैं।

(4) छंदोगान अथवा पद्यगान-कोटि

इस शैली के अंतर्गत दोहा, सोरठा, चौपाई, सवैया, चौबोला, हरिगीतिका आदि छंदों का सस्वर पाठ रहता है। संतों की रागनाम सहित उक्त छंदों में बद्ध सभी कृतियाँ इस छंदोगान की शैली के अंतर्गत रखी जा सकती हैं। इस गीत शैली में 'गीत' तत्व की अपेक्षा 'पाठ्य' का अधिक महत्त्व रहता है।

संत कवियों की साखियां, सुंदरदास का 'सवैया' ग्रंथ, कबीर की रमैनियां आदि समस्त रागताल के निर्देश से रहित छंदोबद्ध रचनाएँ 'छंदोगान' की कोटि के अंतर्गत रखी जा सकती हैं। इनमें विषय-वस्तु की ही प्रधानता रहती है और स्वर, लय के अलंकरण का यहाँ नगण्य स्थान रहता है। आज का अति प्रचलित कविता-पाठ भी इसी श्रेणी के अंतर्गत रखा जाएगा।

रा. क. में 'क. बी. तथा सुंदरदास के 'ज्ञानतत्व-सागर' शीर्षक 'सवैया' ग्रंथ के अंतर्गत दोहा, चौपाई और कवित्त, सवैया आदि छंदोगान कोटि की रचनाओं में निम्नांकित 70 रागों के नाम मिलते हैं।

खट्ट, अलैया, धनाश्री, बिलावल, बिहाग, परज, सोरठ, सहाना, भैरव, आसावरी, आसावरी-सोरठ, गांधार, कनाड़ी, खंभाइच, कानड़ा, कलिंग, भटियार सिंधु, अहीरी, बिहारी, बिभास, ललित, अल्हैया बिलावल, देवगिरि, ककुभ, रामकली, सिंधु, भैरवी, जोगिया, तोड़ी, गुर्जरी, देसी तोड़ी, सारंग, मधुमास, बड़हंस, भीमपलास, मालकौंस, हमीर, छायानट, नट, अड़ाना,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बागेश्री, केदारा, खंभाच, जैजैवन्ती, अहेरी, वसंत, बहार, जंगला, पीलू, झिंझोटी, काफी, मल्हार सहाना, मल्हार, सुद्ध मल्हार, सुघराई, बिहारी बिहाग, मेघ, नट-मल्हार, प्रदीप, ब्रह्मराग, धनाश्री, मुलतानी, पूरबी, गोरी, भूपाली, कलिंगगौरी, एमन, देश, खम्भावती, मारू और एमन-झिंझोटी।

जबकि उक्त संत कवियों के उपर्युक्त ग्रंथों के स्वतंत्र संस्करणों में किसी रागनाम का उल्लेख नहीं मिलता। इन रागनाम रहित संतों की समस्त रचनाओं को छंदोगान शैली के अंतर्गत स्थान दिया जा सकता है।

(5) लोक-संगीत-कोटि

इस शैली के अंतर्गत संतों की अनेक रचनाएँ मिलती हैं। निर्गुण कवि जन कवि थे, अतः उन्होंने लोक में प्रचलित प्रायः सभी गीत शैलियों को अपनाया एवं इन गीत शैलियों का अनुकरण कर उन्होंने आध्यात्मिक पद सहित्य की रचना की है।

संतों द्वारा प्रयुक्त 'लोक संगीत' शैली की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं।

रमैनी, शबद, विप्रमतीसी, कहरा, वसंत, चांचर, बेली, बिरहुली, हिंडोला, जंतसार, छंत, मंगल, काफ़ी, वार, होरी, सतवार, थिंती, पहरे, बारहमासा, पट्टी, सोहिला, अलाहुणीआं, आरती, रुती, हिंडोला आदि।

इन समस्त लोकगीत शैलियों का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत विवेचन के पश्चात् पृथक् रूप से आगे किया गया है।

रा. क. में सुंदरदास के 'ज्ञानतत्वसागर' शीर्षकस्थ सवैयों में 'लावनी' नामक लोकगीतशैली के नामान्तर्गत 19 सवैये मिलते हैं। इनके साथ रागनाम का निर्देश नहीं है, अतः इन्हें हम 'लोकसंगीत' शैली में रख सकते हैं। एक सवैये में 'लावनी' शीर्षक के साथ 'सिंधु' राग का निर्देश मिलता है,[279] इसे 'सुगम संगीत' के अंतर्गत रखा जा सकता है। 'लावनी' नामक लोकगीत का विवरण आगे दिया गया है। हमने ऊपर विशुद्ध शास्त्रीय, सुगम शास्त्रीय, सुगम संगीत, छंदोगान एंव लोक संगीत इन 5 गायन शैलियों के परिप्रेक्ष्य में संतकाव्य का अध्ययन किया है।

गायन शैली की दृष्टि से संत काव्य के विशेष अध्ययन द्वारा संत साहित्य में पद के रचनागत वैशिष्ट्यानुसार भी गायन की कतिपय विशिष्ट शैलियों का बोध होता हे। यथा, 'कबीर साहेब की शब्दावली' में एक स्थान पर पहले दोहा' रखा गया है और तत्पश्चात् दोहे के भाव से संबद्ध पद की योजना मिलती है, उदाहरणार्थ;

(1) *कबीर फ़कीरी अजब है, जो गुरु मिले फ़कीर।*
संसय सोक निवारि के, निरमल करे सरीर ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ शब्द ॥

संत जन करत साहिबी तन में ॥
पाँच पचीस फौज यह मन की, खेलें भीतर तन में।
सतगुरु सबद में मुरचा काटो, बैठो जुगत के घर में ॥
बंक नाल का साधन करिके, चढ़ि गए सूर गगन में।
अष्ट कंवलदल फूल रह्यो है, परखे तत्त नजर में ॥
पच्छिम दिसि की खिड़की खोलो, मन रहे प्रेम मगन में।
काम क्रोध मद लोभ निवारो, लहरि लेहु या तन में ॥
संष घंट सहनाई बाजै, सोभा सिंध महल में।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, अजर साहिब लख घट में ॥[230]

इस प्रकार की गायन-शैली कबीर-पंथियों में आज भी प्रचलित है। प्रस्तुत शोधप्रबंध के संदर्भ में कबीर पंथ में कबीर के पदगान की परंपरा से मुझे अवगत कराने के लिए माननीय डॉ. प्रेमलता शर्मा जी (अध्यक्षः संगीत शास्त्र एवं अनुसंधान, बी.एच.यू.) ने अपने निवास स्थान पर एक विशेष आयोजन किया था, जिसमें कबीर पंथियों द्वारा गाए गए पदों में हमें तीन प्रकार की पदगान-शैलियाँ दिखाई दीं।

(1) एक अन्यतम शैली में गायक को जिस भाव का पद गाना अभिप्रेत हो, पद से पूर्व वह उसी भाव का एक अथवा एकाधिक दोहे गाता है। क. सा. की श. वाला उक्त पद इसी शैली का है। यह आवश्यक नहीं है कि दोहे और पद का कवि एक ही हो, दो अथवा दो से अधिक भी हो सकते हैं। यथा आ. ग्रं. में 'वार'[231] नामक कृतियों में 'सलोक' और 'पउड़ी' के रचयिता में क़िंतु उक्त उदाहरण में दोहा और पद दोनों में कबीर की मनिता है।

(2) कबीर पंथियों के पद गान की द्वितीय शैली में गायक को जिस भाव का पद गाना अभीष्ट हो उस पद के भाव से भिन्न भाव का एक अथवा एकाधिक दोहे वह पद लेखक या अपने संप्रदाय के किसी अन्य संत कवि के गाता है।

(3) तृतीय शैली में मुख्य गायक पद से पूर्व पद के भाव से संबद्ध अथवा असंबद्ध कोई पद्यमय कथा गाता है तथा अन्य सहायक गायक टेक को पकड़कर गुख्य गायक की 'संगति' करते हैं। मुख्य गायक जल्दी-जल्दी कथा को समेटता है और तदनन्तर अपने संप्रदाय के किसी संत कवि का पद अथवा दोहे गाता है। कबीरपंथी गायक वाद्यों के रूप में केवल 'खंजरी' अथवा 'एकतारे' का प्रयोग करते हैं।

निर्गुण संतों के पदों में कहीं-कहीं ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं। जहाँ पद की प्रथम पंक्ति 'टेक' सहित पद रूप में रहती है, बीच में अंतरों के स्थान पर दोहे रहते हैं और अंत में पुनः विष्णुपद, सार अथवा सरसी आदि का पद काव्य-रूप में बहुधा प्रयुक्त होने वाले छंदों का प्रयोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिलता है। यथाः

(1) *मेरे सतगुरु पकड़ी बाँह, नहीं तो मैं बहि जाता ॥ टेक ॥*
करम काटि कोयला किया, ब्रह्म अगिनि परिचार।
लोभ मोह भ्रम जारिया, सतगुरु बड़े दयार ॥
कागा से हंसा किया, जाति बरन कुल खोय।,
दया दृष्टि से सहज सब, पातक डारे घोय ॥
अज्ञानी भटकत फिरै, जाति बरन अभिमान।
सतगुरु सबद सुनाइया, भनक पड़ी मेरे कान ॥
माया ममता तजि दई, विषया नहिं समाय।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, हद तजि बेहद जाय ॥[282]

(2) *मोर बनिजरवा लादे जाय, में तो देखहु न पोल्यों ॥*
करम के सरे धरम के पलरा, बेल पचीस लदाय।
भूल गई है सुमारग पैंडा, कोई नहिं देत बताय ॥
माया पापिन गर्बिया, बिपति न कहिये रोय।
जो माया होती नहीं, बिपति कहाँ से होय ॥
$ $ $ $
मंगन से क्या मांगिये, बिन माँगे जो देय।
कहै कबीर मैं हों नाहीं, को होनी होय सो होय ॥[283]

इस शैली के कबीर के एक पद में बीच-बीच में क्रम से 'रोला' और 'दोहा' छंदों की नियोजना साभिप्राय की गई है।[284]

(3) एक तृतीय शैली के पदों में पद एवं उसके पश्चात् साखियाँ मिलती हैं, एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है।

(1) *'साहिब हममें साहिब तुममें, जैसे तेल तिलन में।*[285]
मत कर बंदा गुमान दिल में, खोज देखिले तन में ॥
चांद सुरज के खंभ गाड़िके, प्रान आसन कर घट में।
इंगला पिंगला सुरत लगा के, कमल पार कर घर में ॥
कामें बैठी सुखमन नारी, झुला झुलत बंगलन में।
कोटि सूर जहं करत झिलिमिलि, नील सर सोता गगन में ॥
तीन ताप मिटि गे देंही के, निर्मल होई बैठी घट में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पांच चोर जहं पकरि मंगाये, झंडा रोपे निरगुन में ॥
पांच सहेली करत आरती, मनसा बाचा सतगुरु में।
अनहद घंटा बजै मृदंगा, तन सुख लेहि रतन में ॥
बिन पानी लागी जहं बरषा, मोती देखि न दिन में।
जहंवा मनुआ बिलम रह्यो है, लो हंस ब्रहमंड में ॥
इक इस ब्रहमंड छाइ रह्यो है, समझैं बिलै सूरा।
मुरख गंवार कहा समझेंगे, ज्ञान के घर है दूरा ॥
बड़े भाग अलमस्त रंग में, कबिरा बोले घर में।
हंस उबारन दुक्ख निवारन, आवागमन मिटै छिन में ॥
सांझ पड़े दिन बीतवे, चकवी दीन्हा दोइ।
चल चकवी वा देस को, जहाँ रैन ना होई ॥
चकवी बिछुरी सांझ की, आन मिलै परभात।
जो नर बिछुरे नाम से, दिवस मिलें नहिं रात ॥

पीछे हमने संतकाव्य में तीन प्रकार की पद शैलियाँ देखी हैं। सुगम शास्त्रीय संगीत एवं लोक-संगीत में इस प्रकार की पद परंपरा प्रचलन में है। बनारस में ठुमरी के अंत में पद जोड़कर गाने का विशेष प्रचार है। जनमानस को प्रभावित करने के लिए गायक प्रायः पद में दोहे आदि में, बीच में अथवा अंत में जोड़कर गाते हैं। पद के बीच में 'दोहा' जोड़ने को सामान्यतः 'छंद बोलना' कहा जाता है। चमत्कार वृद्धि ही इस गायन शैली का मूल ध्येय है। 'उलटबांसी' नामक पद शैली भी इसी (श्रोतागण के मानस में वैचित्र्य अथवा चमत्कार का वर्द्धन करने वाली) की शैली है। उक्त शैली में 'भजन' गाने की परंपरा (अर्थात् भजन के आदि, मध्य अथवा अंत में दोहे लगाकर भजन गाने की परंपरा) लोक में अत्यंत लोकप्रिय है।

उपर्युक्त गायन शैली के उदाहरण स्वरूप, ओंकारनाथ ठाकुर का एक सुप्रसिद्ध भजन प्रस्तुत किया जाता है। यह 'मीरा' का पद है और पद के अंत में स्वामी रामतीर्थ का एक पंजाबी पद जोड़कर वे इसे गाते थे।

'जोगी मत जा मत जा मत जा,
पांव परूं मैं तोरी
प्रेम भक्ति को पैंडो ही न्यारो, हमको गैन बता जा।
अगर चंदन की चिता रचाऊं, अंग में अंग मिला जा।
मत जा, मत जा,
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा,
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मीरा की भनिता वाली पंक्ति से पूर्व पं. ओंकारनाथ ठाकुर उक्त पद में स्वामी रामतीर्थ का निम्ननांकित पंजाबी पद जोड़कर गाते थे ;–

'भाग तिन्हां दे अच्छे, जिन्हां नूं राम मिले (टेक)।
जद 'मैं' सी तां दिलवर ना सी।
'मैं' निकसी पिया घट-घट वासी ॥
खसम मरे घर बस्से! भाग तिन्हां दे अच्छे ॥ 1 ॥
जद 'मैं' मार पिछांवल सुट्टिया।
प्रेम नगर चढ़ सेजे सुतिया ॥
इशक हुलारे दस्से! भाग तिन्हां दे अच्छे ॥ 2 ॥
चादर फूंक शरह दी सेकां।
अंखियाँ खोल दिलवर नूं देखां।
भरम शुबहे सब नस्से! भाग तिन्हां दे अच्छे ॥ 3 ॥

(रामवर्षा, भाग 1, 1945, पृ. 112)

पद के आदि, मध्य अंत में दोहा, चौपाई अथवा कोई अन्य छंद जोड़कर अताल एवं सताल दोनों प्रकार से गाया जाता है। परंतु सामान्यतः छंद 'अताल' ही गाया जाता है।

इस प्रकार संतों के पदों में प्राप्त विभिन्न गायन शैलियों का हमने पीछे अध्ययन किया। अब काव्य-संग्रहों में उपलब्ध होने वाली लोक संगीत की विभिन्न शैलियों का विवरण प्रस्तुत किया जाएगा।

संतकाव्य में व्यवहृत प्रमुख लोकगीत-शैलियाँ

(1) रमैनी

दोहा-चौपाई-शैली में बद्ध कथा काव्य 'रमैनी' है। कं. ग्रं. में सात रमैनियां हैं और क. बी. में 84 रमैनियां संगृहीत हैं। क.ग्रं. की पहली रमैनी राग 'सूहो' में लिखित एक पद ही है, क्योंकि इसमें दोहा-चौपाई वाली छंद शैली का अभाव है। इस प्रकार क. ग्रं. में 6 रमैनियों की ही स्थिति माननी चाहिए। क.बी. में संकलित रमैनियों में रागनाम का निर्देश नहीं है। वास्तव में 'रमैनी' किसी अतिप्राचीन लोक-प्रचलित गीति कथा-शैली से उद्भूत एवं विकसित हुई होगी।[286] इस तर्क की पुष्टि में यह संभावना की जा सकती है कि रामचरितमानस की दोहा-चौपाई वाली शैली की लोकप्रियता का आधारभूत कारण इस काव्य-रूप का पहले से ही लौकिक-कथा गीति-शैली के रूप में प्रचलन रहा हो। अतः इस तर्क के आधार पर हम दोहा-चौपाई, छंदोबद्ध कथाकाव्य की शैली को 'रामायण' कह सकते हैं और 'रामायण' से 'रामायणीं', 'रमयनी' और फिर 'रमैनी' हो जाना असंभव कल्पना नहीं।[287] इस प्रकार 'रमैनी'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का सीधा संबंध 'रामायण' से है। रामायणी शैली कथाकाव्यों की है। रामकथा वर्ण्यविषय वाले काव्यों को 'रामायण' कहने की परंपरा है। कबीर की उपर्युक्त रमैनियों का वर्ण्य-विषय यद्यपि रामकथा नहीं है, किंतु उनमें सृष्टि विकास की कथा का थोड़ा बहुत निर्वाह अवश्य कहीं-कहीं मिला है, यथा;

'जीव रूप एक अंतरबासा। अंतर जोति कीन्ह परगासा ॥
इच्छा रूपि नारी अवतरी। तासु नामु गाइत्री धरी ॥
तेहि नारी के पुत तीनि भाऊ। ब्रह्मा विस्नु महेसु नाऊं ॥
फिर ब्रह्मा पूछल महतारी। को तोर पुरुष केकरि तुम नारी ॥
तुम हम हम तुम अवर न कोई। तुमहि से पुरुष हमहि तोरि जोरी ॥
बाप पूत की एकै नारी, एकै माय बियाय।
ऐसा पूत सपूतन देखा, बापहि चीन्है धाय ॥[288]

(2) शब्द (शबद)

यह एक गीति-काव्य-प्रकार है और या कबीर के पदों में इसका निर्देश क.बी. तथा क.सा. की श. पुस्तकों में मिलता है। ये 'शब्द' 'सबद' संगीत-पक्ष की दृष्टि से लोकगीतों के सदृश हैं, अतः राग-रागिनियों के निर्देश से रहित हैं। 'शब्द', पद का ही पर्याय है। अतः पद शैली की भाँति हम इसे गेय-शैली मान सकते हैं। हिंदी-साहित्य में आदि काल अथवा इससे भी पूर्व अपभ्रंशकाल से ही गेय पदों की परंपरा मिलती है। अंतर इतना ही है कि क.बी. के इन शब्दों में राग-नाम का उल्लेख नहीं है और परंपरागत पदों में रागनाम का उल्लेख मिलता है। क.बी. के रागनाम से रहित इन 'शब्दों' को लोक प्रचलित गीतरूपों पर आधारित कहा जा सकता है।[289] इनमें अधिकतर 'सार' छंद का प्रयोग मिलता है। डॉ. भ्रमर के अनुसार इस (छंद की) लय में ही 'प्रभाती' गाई जाती है और अनेक लोकगीत भी इसी लय में गाए जाते हैं, जिन्हें 'भजन' कहा जाता है। संभवतः ये भजन और प्रभातियाँ कबीर के समय, लोकगीतों के रूप में प्रचलित रही हों और बीजक के शब्दों की रचना इसी लोक-प्रचलित गान-शैली के आधार पर हुई हो।[290] क.बी.के निम्न 'शब्द' के अनुसार 'साखी' और 'सबदी' गायन का भ्रमणशील साधुओं के एक संप्रदाय में कबीर से पूर्व ही प्रचार थाः

'आसन मारि डिंभ घरि बैठे मन में बहुत गुमाना।
पीतर पाथर पूजन लागे तीरथ बर्त भुलाना ॥
माला पहिरे टोपी पहिरे छाप तिलक अनुमाना।
साखी सबदी गावत भूले आन खबरि न जाना।'[291]

इस प्रकार उक्त शब्द से भी यह सिद्ध हो जाता है कि 'शब्द' या एक अति 'शबद'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राचीन लोकगीत-प्रकार है।

(3) विप्रमतीसी

क.बी. में 'विप्रमतीसी' नामक एक रचना मिलती है, जिसमें ब्राह्मणों की वाह्याडंबरपूर्ण बुद्धि का 30 अर्द्धालियों में वर्णन मिलता है। 'विप्रमतीसी' पद में 'तीसी' पद अर्द्धालियों की तीस संख्या का सूचक प्रतीत होता है और वर्ण्य-विषय को देखते हुए 'विप्रमतीसी' शब्द की अपेक्षा 'विप्रभतीसी' शब्द उपयुक्त प्रतीत होता है। संभवतः द्विउक्ति के कारण एक 'ति' शब्द का लोप हो गया है।[292] इस नाम से कोई लोकगीत प्रकार प्रचार में नहीं आया। इसमें चौपाई छंद की 30 अर्द्धालियां एवं अंत में साखी अथवा एक दोहा है और राग-निर्देश नहीं है। इस कृति को उक्त विशेषताओं के कारण एक लोकगीत-प्रकार माना जा सकता है। रचनागत वैशिष्ट्य हेतु कृति से 2 अर्द्धालियाँ यहाँ प्रस्तुत की जाती हैं।

'सुनहु सबन मिलि विप्रमतीसी।
हरि बिनु बूड़ी नाम मरीसी ॥ 1 ॥
ब्राह्मण ह्वै कै ब्रह्म न जानें।
घर में यज्ञ, प्रति ग्रह आनें ॥ 2 ॥'[293]

(4) कहरा

इस शीर्षक के अंतर्गत क.बी. में 12 पद मिलते हैं। इन 12 में से 8 वाँ पद तथा 12 वां पद क. ग्रं. में क्रमशः पद सं. 366 तथा 187 में किंचित् पाठ-भेद सहित मिलते हैं। डॉ. रवींद्र भ्रमर ने इसे 'लौकिक नृत्यगान-परक 'शैली का स्वरूप कहा है।[294] 'कहरा' वास्तव में कहारों का अतिप्रिय गीत-प्रकार है। इसे 'कहरवा' भी कहा जाता है। कहार जाति के लोग ढोल, मृदंग, ताल, झांझ और डफ आदि वाद्यों के ताल पर नाचते हुए इस गीत को गाते हैं। कबीर के एक कहरा की कुछ पंक्तियों से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है।

'ताल झांझ नल बाजत आवै,
कहरा सम कोई नाचे हो।
जेहि रंग दुलह बियाहन आये।
दुलहिन तेहि रंग राचे हो ॥'[295]

कबीर ने इस लोकप्रिय गान-शैली में आध्यात्मिक पदों की रचना की है। 'बीजक' में संकलित 'कहरा' में; 'कहरा' अथवा 'कहरवा' गीत-शैली की 'हो' नामक टेक भी इसकी पंक्तियों के अंत में प्रयुक्त हुई है। यथा

'राम नाम बिनु, राम नाम बिनु, मिथ्या जनम गमाई हो।
सेमर सेई सुआ जों जहड़े, ऊन परें पछिताई हो।'[296]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैसे तो कहारों में जो गीत गाए जाते हैं, वे अन्य जातियों में भी प्रचलित हैं, किंतु 'कहरवा' अथवा 'कहरा' कहारों में ही प्रचलित गीत-विशेष है। कहार लोग पालकी ढोते समय, विवाहोत्सव पर तथा स्वांग करते समय विभिन्न प्रकार के गीत एक ही धुन और लय में गाते हैं और यह गीत-विशेष 'कहरवा' कहा जाता है। 'कहरा' नामक गीत-प्रकार में कहार लोग प्रायः 'हुडुक' नामक वाद्य का प्रयोग करते हैं। इस लोक गीत प्रकार के अंतर्गत अनेक आध्यात्मिक पद भी गाए जाते हैं। यह उदाहरण द्रष्टव्य है;

'काया की नगरिया ते गगरिया भरि के लाव रे।
काया के अंदोलवा मां सुरतिया डोर लगाव रे।
नवनारी पनिहारी ठाढ़ी, परिगा पूरा दांव रे।
दिल दरियाई कुंआं भरो है, ताते भरि भरि लाव रे।
सबद धेलवा माथे धरि के, हौले हौले आव रे।
गगन अटारी ऊँचे चढ़ि के, देखे जग का भाव रे।
कामदिवानी आगे ठाढ़ी, टारे नाहीं पांव रे।
साहब कबीरा भरि भरि लावें, संतन का पिआव रे।
जरा मरण का संसय न्याटे, ऐसा कहरा गाव रे।[297]

(5) होरी

कबीर साहेब की शब्दावली, भाग 2 में 'होरी' शीर्षक के अंतर्गत कबीर के अनेक पद संगृहीत हैं। इन पदों में केसर, कुंकुम, अबीर, गुलाल, पिचकारी डफ और मृदंग आदि के माध्यम से आत्मा का परमात्मा से होली खेलना वर्णित है, किंतु यहाँ उल्लेखनीय है कि इन पदों का वर्ण्य-विषय सर्वत्र होली ही नहीं है। संभवतः होरी-गीतों की धुन में गेय होने के कारण, अन्य विषयों के पदों का भी होरी-गीतों में समावेश कर दिया गया है। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि लोक में भी काफ़ी आदि जिन रागों में होरी गई जाती है उन्हीं रागों में होरी से अपर भाव के पदों को भी 'होरी' नाम से गाया जाता है। हमने एक लोकगीत गायक (भांड) से निर्गुनपरक होरी-गीत सुना था, जिसमें उसने 'आई गवनवा की सारी, उमरि अबहिं मोरी बारी ॥'

कबीर के उक्त पद को 'काफ़ी' राग और 'दीपचंदी' ताल में 'होरी' कहकर गाया। ऐसा प्रतीत होता है कि होरी बहुधा काफ़ी राग में गाई जाती है। अतः राग में किसी भी भाव के पद को होरी कहकर होरी के ढंग से गा लिया जाता है।

आज सगुण भक्तों के पद गायकों अथवा कीर्तनकारों में भी यह बात देखी गई है। एक विशेष आयोजन में वल्लभ संप्रदाय के एक सुप्रसिद्ध वैष्णव कीर्तनकार द्वारा हमने एक होरी सुनी। यह होरी 'काफ़ी' राग और 'धमार' ताल में निबद्ध है और सूरदास द्वारा विरचित यह पद उक्त तथ्य की पुष्टि हेतु नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'बरजो यशोदा जी कान्ह ॥
मैं यमुना जल भरन जात रही मारग निकस्यो आन।
बरजत ही मोरी गागर फोरी, ले अबीर मुख सान।
सखि सब देत हैं ताना ॥
मेरो लाल पलना में झूले, बालक है नादान।
यह कहा जाने रस की बतियां, कहा जाने खेल जहाना।
कहा तुम भूली ज्ञाना ॥
तुम तुमरो सुत सांचो, हम ही करत हैं बहाना।
सूरदास ब्रजबासन त्यागो, ब्रज से अनत न जाना।
करो अपना मनमाना ॥'

इसी प्रकार 'होरी' शीर्षक के अंतर्गत क.सा.की श. में कबीर के अनेक सामान्य पद भी समाविष्ट हैं। इन पदों में राग-ताल का निर्देश नहीं इसीलिये हमने 'होरी' गीत प्रकार को 'लोकसंगीत' शैली के अंतर्गत स्थान दिया है।

(6) चांचर

क. बी. में 'चांचर' नाम से दो रचनाएँ मिलती हैं। प्रथम चाचरि में दोहा छंद का निर्देश भी है और इसी छंद का अधिक प्रयोग हुआ है। इस कृति में माया और देवताओं, जोगियों एवं समस्त सृष्टि पर प्रभाव चाचरि के रूपक द्वारा दिखाया गया है। दूसरी चांचर 28 पंक्तियों की रचना है और रचनागत वैशिष्ट्य को देखते हुए यह लोकगीत-शैली के अधिक निकट दृष्टिगत होती है क्योंकि लोकगीतों में प्रायः इस गीत को टेक 'मन बौरा हो' की भांति कोई न कोई टेक रहती है। इसकी प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'मन बौरा हो' पद का टेक की भांति प्रयोग हुआ है। इस द्वितीय चांचर की रचनाशैली का आ.ग्र. के राग 'गउड़ी' के पद सं. 57, पृ. 335 से बहुत साम्य है, उसके भी प्रत्येक चरण के अंत में 'मन बउरा रे' पद का प्रयोग हुआ है। क.बी. की उक्त दोनों 'चांचर' नामक कृतियाँ उक्त छंद एवं लय की दृष्टि से एक दूसरे से नितान्त भिन्न हैं। दोनों रचनाओं में से नीचे क्रमशः 4-4 पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं।

(1) दोहा— *'खेलति माया मोहनी जेर कियो संसार।*
कटि केहरि गजगामिणी, संशय कियो शृंगार ॥
रचै रंग की चूनरी, सुंदरि पहिरे आय।
शोभा अद्‌भुत रूप की, महिमा बरणि न जाय ॥'[298]

(2) *जारहु जग की नेहरा मन बौरा हो।*
जामें शोक संताप समझु मन बौरा हो ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काल बूत की हस्तिनी मन बौरा हो।

चित्र रचो जगदीश समुझ मन बौरा हो ॥[299]

फागुन मास के फाग और होरी नामक लोकगीतों की भाँति चांचर भी इसी मास का एक लोकप्रिय लोकगीत है। यह गीत वसंतोत्सव के शुभ अवसर पर गाया जाता है, अतः इनका प्रधान विषय 'होली खेलना' रहता है जैसा क.बी. की प्रथम चांचर में मिलता है।

बसंत पंचमी के दिन से लेकर होलिकोत्सव तक (होलिका दहन और दुरड्ढा तक) 'चांचर' और 'फाग' नामक लोकगीत बड़े उत्साह से गाये जाते हैं।[300]

'चांचर' गीत इसी नाम के एक नृत्य से भी संबद्ध होता है। बीजक के टीकाकार विचारदास शास्त्री के अनुसार 'चांचर एक प्रकार का फागुआ या फाग-होरी का खेल होता है। उक्त खेल में स्त्री और पुरुष दो दलों में विभक्त होकर जय और पराजय की अभिलाषा से, पिचकारी और डोलचियों से परस्पर प्रतियोगिता से समधिक जलक्रीड़ा करते हैं।'[301]

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार 'चांचर' 'चर्चरी' अथवा 'चांचरि' के दो अर्थ हैं—(1) हाथों में दो छोटे डंडे लेकर बालक और बालिकाओं का सामूहिक मंडली नृत्य, जिसे लकुट रास भी कहते हैं। (2) बसंत ऋतु में गाया जाने वाला राग, जिसके वर्ण्यविषय होरी-फाग आदि हैं।[302]

'चर्चरी' का काव्य-शैली के रूप में उल्लेख हमारे साहित्य में 13 वीं शताब्दी से होने लगा है। 13 वीं शती के जैनकवि जिनदत्तसूरि की पुस्तक 'चर्चरी' (अपभ्रंश में) के टीकाकार के अनुसार यह भाषा-निबद्ध गान, नाच-नाचकर गाया जाता है।'[303]

इस प्रकार लोक प्रचलित 'चर्चरी' या 'चांचर' गीत, नृत्य सहित गाया जाता है और इस लोकगीत की ही भित्ति पर कबीर की उक्त दोनों कृतियाँ रची गई हैं, ऐसी संभावना की जा सकती है।

(7) हिंडोला

वर्षाऋतु में, विशेषतः सावन मास में एक प्रकार का लोकगीत गाया जाता है जिसे हिंडोल, हिंडोरा अथवा झूलना कहते हैं। चौमासे में हिंडोले अथवा झूले की प्रकृति क्रीड़ा और हिंडोले के गीत, लोक में गाए जाते हैं। क.बी. में 'हिंडोला' शीर्षक से तीन रचनाएँ मिलती हैं, जिनमें सावन के झूलनागीतों का अनुकरण है। लोक में हिंडोले के इस प्रकार के गीत सावन में गाए जाते हैं।

'झूला पड़ा कदम की डारी,

झूलें कृष्ण बिहारी ना।'

संतों ने आध्यात्मिक 'हिंडोरा' गीत लिखे हैं। कबीर बीजक एवं कबीर ग्रंथावली (18 वां पद) के हिंडोले में व्यापक रूपकों द्वारा सृष्टि रूपी हिंडोले का योगपरक वर्णन किया गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। यथा

'हिंडोलना झूलै सब जग आय।
जहं पाप पुण्य के खंभ दोऊ मेरु माया नाया।
तहं कर्म पटुली बैठि के को कौन झूलै आय ॥
यह लोभ मरुवा विषय भमरा काम कीला ठानि।
दोउ शुभो अशुभ बनाय डाड़ी गह्यो दूनौ पानि ॥

तथा

'हिंडोलना तहां झूलै आतम राम।
प्रेम भगति हिंडोलना, सब संतनि को विश्राम ॥
चंद सूर दोइ खंभवा, बंकनालि की डोरि।
झूलें पंच पियारियां, तहां झूलै जीया मोर ॥

इन झूला-गीतों के वर्ण्यविषय के अंतर्गत कभी-कभी 'कजली' गीतों की भांति 'पावस-वर्णन' भी आ जाता है। यह कहना अनुचित न होगा कि लोक में जो स्थान 'कजली' का है, साहित्य में वही स्थान 'हिंडोले' का है तथा संतों ने संभवतः लोक में प्रचलित 'हिंडोला' या 'झूला' नामक लोकगीत के अनुकरण पर ही हिंडोला' नामक साहित्यिक रचनाएँ लिखी हैं।

(8) वसंत

हमारे लोकगीतों का बहुत बड़ा अंश विभिन्न ऋतुओं से संबंधित होता है। उत्तरी भारत के हिंदी जनपदों में इस प्रकार के अनेक लोकगीत-प्रकार मिलते हैं। 'बसंत' ऋतु में ही 'चैत' या 'चैता' गाया जाता है। ये दिन बसंत ऋतु के होते हैं और चेता के गीतों में बसंत की प्राकृतिक छटा एवं प्राणीजगत् का मानसोल्लास वर्णित रहता है।

हिंदी में 'बसंत' नामक काव्य-प्रकार साहित्य में अतिप्राचीन है। विद्यापति ने भी 'बसंत' काव्य रूप को अपनाया था और उनके काव्य में 'बसंत' का बहुत सुंदर वर्णन मिलता है।[304] आ. ग्रं. में रागु 'बसंत' के अंतर्गत 8 पद संकलित हैं और क.ग्रं. में इस प्रकार के पदों की संख्या 13 हैं। क. बी. में 'बसंत' शीर्षक से 12 रचनाएँ मिलती हैं। इनमें चतुर्थ, पंचम, छठा, सातवां, आठवां, नवां, दसवां, ग्यारहवां और बारहवां बसंत में संख्यक पद में'बसंत' वर्ण्य-विषय नहीं है, अतः इन रचनाओं को 'बसंत' के अंतर्गत रखना उचित नहीं प्रतीत होता है। इन कृतियों के वर्ण्यविषय प्रायः वे ही हैं, जोकि कबीर की अन्य सामान्य कृतियों के हैं।[305] संतों की जिन कृतियों में बसंत ऋतु का उल्लास, प्राकृतिक छटा, हर्ष अथवा विषाद (क्रमशः संयोग और वियोग में) का चित्रण हो, उन्हें ही 'बसंत' शीर्षक के अंतर्गत रखना उचित है। 'बसंत' नामक कृतियों में बसंत ऋतु के होली आदि उत्सवों का वर्णन न होकर, केवल वसंत ऋत्वागमन, उसका प्राकृतिक सौंदर्य एवं प्राणी-जगत् पर उसका प्रभाव हो अथवा आध्यात्मिक-बसंत-वर्णन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

हो। अथवा 'बसंत' शीर्षक के अंतर्गत बसंत ऋतु के सभी पर्वों का स्थूल रूप से या आध्यात्मिक-अर्थ में वर्णन है।

'सखि आज हमारे गृह बसंत।
सुख उपज्यो अब मिले कंत॥
पिया मिलरे मन भायो अनंद, दूरि गये सब दोष दुंद।
अब नहिं व्यापै संस सोग, पल पल दरसन सरस भोग।
जहं बिन कर बाजै बजैं बैन, निरखि देख तहं बिना नैन।
धुनि सुन थाक्यो चपल चित्त, पल न बिसारौं देखौं नित्त।
जहं दीपक जेहि बरे आगि, सिव सनकादिक रहें लागि।
कहें कबीर जहं गुरु प्रताप, तहं तो नहीं पुन्न पाप॥'[306]

संतों ने आध्यात्मिक-बसंत का चित्रण किया है। संतकाव्य में संगृहीत सभी बसंत- चित्रण की कृतियों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि वसंत नामक काव्य रूप की मूल प्रेरणा, अधुना प्रचलित वसंत-गीत चैता, घाटों, चौताल अथवा फाग आदि लोकगीतों से ली गई है। यह भी संभव है कि 'बसंत' राग के स्वरूप का मूल उत्स, वर्ण्य-विषय-विशेष को लेकर गाई जाने वाली कोई लोक धुन हो। शास्त्रीय-संगीत कहाँ तक लोक संगीत का ऋणी है, इस प्रकार के गहन अध्ययन द्वारा ही उक्त तथ्यों पर प्रकाश पड़ सकता है।

(9) बारहमासा

बारहमासा अथवा बारहमाहा वह गीत-विधा है, जिसमें किसी विरह-विंदग्धा नायिका की, प्रकृति के 12 मासों के ऋतु-परिवर्तन के साथ-साथ क्रमशः उत्तरोत्तर उद्दीप्त होने वाली प्रिय-मिलन की तड़प का वर्णन रहता है। भारतीय परंपरानुसार बारहमासों के अंत में दो बिछुड़ी हुई आत्माओं का मिलन करवा दिया जाता है।

'बारहमासा' नामक गीतों में विषय की विविधता मिलती है। पत्नी की प्रवासी पति के विरहातुरता के अतिरिक्त महात्मा की भगवान् के दर्शनार्थ[307] पिता की पुत्र के मिलन-हेतु व्याकुलता[308] तथा उपदेश[309] आदि अनेकानेक विषय[310] बारहमासों में निरूपित किए जाते हैं, किंतु विरह की आतुर पुकार, प्रायः उनका मुख्य स्वर रहता है।

लोक-साहित्य में बारहमासों का अत्यधिक प्रचार है और यह परंपरा बहुत प्राचीन दृष्टिगत होती है। साहित्य में बारहमासों की परंपरा लोकसाहित्य से गृहीत हुई ऐसा कहना संभवतः अनुचित न होगा और लोक-साहित्य में बारहमासों की परंपरा संभवतः कालिदास से भी पूर्व, साहित्य में प्रचलित 'षट्ऋतु वर्णन' के रूपान्तर से ग्रहण की गई, क्योंकि लोक- साहित्य में 'षट्ऋतु वर्णन' का प्रचलन नहीं है।[311]

अतः यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि जब साहित्यिक 'षट्ऋतु वर्णन' ने लोक साहित्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का रूप धारण किया तो वह 'बारहमासा' 'कहलाया।[312] वास्तव में 'बारहमासों' एवं 'षट्ऋतु वर्णन' में अंतर केवल इतना ही है कि 'बारहमासों' में 'षट्ऋतु' विवरण की अपेक्षा बारहमासों का वर्णन रहता है। तथा संयोग श्रृंगार का स्थान विप्रलंभ श्रृंगार ले लेता है।

बारहमासों में सर्वप्राचीन बारहमासा जिन धर्मसूरि कृत 'बारहना' 'कहा जाता है, जो जोकि 13 वीं शताब्दी की रचना है।[313]

बारहमासा को साहित्य एवं लोकगीत दोनों विधाओं में समान महत्त्व मिला है। संत कवि जनता के कविं थे, अतः उन्होंने लोकगीतों की विविध शैलियों को ग्रहण कर, अनेक आधारों पर आध्यात्मिक पदों की रचना की। संतों की बारहमासा कृतियाँ, उनकी उक्त प्रवृत्ति की ही द्योतक हैं।[314]

आ. ग्रं. में हमें दो 'बारहमासा' कृतियाँ मिलती हैं। एक 'बारहमासा' 'तुखारी' राग में गुरु नानक द्वारा विरचित है।[315] द्वितीय कृति गुरु अर्जुनदेव द्वारा 'माझ' राग में विरचित है।[316] पद्मजी के मतानुसार गुरु नानक का उक्त बारहमासा[317] पंजाबी साहित्य (अद्यतन उपलब्ध) में सर्वप्रथम है।

जिस प्रकार 'वार' काव्यशैली के लिये 'पउड़ी छंद निश्चित है, उस प्रकार 'बारहमासा' के लिए कोई छंद विशेष निश्चित नहीं है, इसी कारण बारहमासा-साहित्य में अनेक प्रकार के छंद मिलते हैं। प्राचीन बारहमासों में अधिकतर 'छंत' का व्यवहार हुआ है, जिसके अंतर्गत अनेक छंदोगतियां मिलती हैं। गुरु नानक तथा गुरु अर्जुनदेव के बारहमासों में भी छंत, छंद के शीर्षक के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जिसके अंतर्गत विभिन्न छंद मिलते हैं। अतः यहां भी अनेक छंदों का व्यवहार हुआ है। दोहा का प्रयोग द्रष्टव्य;

धेनु दुधे ते बाहरी, कितै न आवै काम।
जल बिनु राख कुमलावती, उपजहि नाही दाम॥"[318]

सार छंद का प्रयोगः

सभ तेरे तू मेरा प्रीतम, निसिबासर रंगि लावे।
नानक प्रिउ प्रिउ चहै बबीहा, कोकिल सबदि सुहावे।"[319]

इसी प्रकार इन बारहमाहों के अंतर्गत अनेक छंदों का प्रयोग मिलता है।

'बारहमासा' वर्षा-ऋतु में गाया जाता है और लोकगीतों के रूप में यह अत्यंत लोकप्रिय गीत है। इसी प्रकार साहित्य में भी यह शास्त्रीय राग-ताल में बद्ध गेयरूप में प्रचलित रहा है। पंजाबी के बारहमाहा साहित्य के अध्ययन से हमें उसमें विविध राग-ताल का उल्लेख मिलता है। यथा, बारांमाहे काफ़ी पहाड़ी-ताल धमार, काफ़ी बडहंस, तार 3, काफ़ी सिंधड़ा तार 3, काफ़ी देस तार 3, काफ़ी मलार तार 3, काफ़ी धनासरी तार 3, काफ़ी देस तार 3, लंबे काफ़ी रामकली तार धमार, काफ़ी भैरवी तार धमार, काफ़ी पीलू तार धमार, काफ़ी बसंत तार सूलफाख्ता।[320]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये सब राग-ताल एक ही बारहमासा में पाए जाते हैं। यद्यपि उक्त बारहमासे के लेखक बाबा देसराज की उक्त रचना लगभग 1887 ई. की है,[321] किंतु वे एक पर्यटनशील साधु थे, इससे इतना तो समझ में आता ही है कि संत समाज में बारहमासों को राग-ताल में गाने की परंपरा बहुत पूर्व से चली आती रही होगी।

इसी प्रकार यहाँ 'काफ़ी के संबंध में भी स्पष्ट हो गया कि यह एक प्राचीन गीतप्रकार-विशेष है।

पं. बा. मा. में एक बारहमासा कृति में 'बिशनपदे' शीर्षक मिलता है,[322] जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य में भक्तिपरक 'बारहमासों' को पदरूप में गाने की परंपरा भी अति दीर्घ काल से रही होगी।

इस प्रकार गुरु नानक एवं गुरु अर्जुनदेव द्वारा लिखी 'बारहमासा' नामक कृतियों को भक्ति-साहित्य में प्रचलित काव्यरूप भी कहा जा सकता है और ये कृतियाँ लोकगीत प्रकार-विशेष, वर्ण्यविषय, भाषा शैली आदि की दृष्टि से लोक-संगीत की कोटि की रचनाएँ तो हैं ही।

(10) काफ़ी

यह एक रागिनी-विशेष का नाम है, किंतु आ. ग्र. में इसका राग के रूप में स्वतंत्र प्रयोग नहीं हुआ, अपितु सूही म. 1 काफ़ी घरू 10,[323] मारू काफ़ी म. 1 घरू 2[324] आसा घरु 8 काफ़ी म. 5[325], राग सूही म. 5 असटपदीआं घरु 10 काफ़ी[326] आदि इन विभिन्न रूपों में अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है।

'काफ़ी' शीर्षक के अंतर्गत प्राप्त उक्त पदों के विश्लेषण द्वारा इनमें एक समान छंद गति लक्षित होती है। उदाहरण के लिए उक्त चारों विशिष्ट बानियों में से क्रमशः चार-चार चरण प्रस्तुत हैं:

(1) *माणस जनमु दुर्लभु गुरमुखि पाइआ ॥*
मनु तनु होइ सुलभु जे सतिगुरू भाइआ ॥
चलै जनमु सवारि वरवरु सचु लै ॥
पति पाये दरबारि सतिगुर सबदि मे ॥

(2) *आवउ बंझउ डुंमणी किती मित्र करेउ ।*
साधन ढोइ न लहै वादी किउ धीरेउ ॥
मँडा मनु रता आपनड़े पिर नालि ॥
हउ घोलि घुमाई रवंनीऐ, कीसी हिक मोरी नदरि निहालि।

(3) *मैं बंदा बेखरीदु सचु साहिबु मेरा ॥*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीउ पिंडु सभु तिसदा सभु किछु है तेरा ॥
माणु निमाणी तूं धणी तेरा भरवासा।
बिनु साचे अनटेक है सो जाणहु काचा ॥

(4) *जे भुली जे चुकी साई भी ताहिंजी काढीआ ॥*
जिन्हां नेहु दूजाणे लागा झूरि भरहू से बाढीआ ॥
हउँ न छोडउँ कंत पासरा ॥
सदा रंगीला लाल पिआरा एहु महिंजा आसरा ॥

उपर्युक्त उदाहरणों में यद्यपि मात्रा-भेद वर्तमान है, किंतु छंदोगति सर्वत्र एक समान है।

'श्री गुरु ग्रंथ कोष' में रागों में इसका स्वतंत्र प्रयोग न होने के कारण, इसे छंद-प्रकार माना गया है।[327]

म. 1 की बानी में राग 'मारू' के साथ एक स्थान पर 'काफ़ी[328] का उल्लेख मिलता है। क्या यहाँ 'मारू' के साथ 'काफ़ी' रागिनी के सम्मिश्रण का अर्थ समझा जाए?

वास्तव में 'काफ़ी' एक गीत-प्रकार भी है, उसी प्रकार 'मारू' को भी एक गीत-प्रकार माना जा सकता है। राजस्थान में 'ढोला मारू' नामक लोक-कथा लोक-गीत के रूप में बहुत प्रचार में है। जैसे पंजाब में 'हीर रांझा' का लोक-गीत रूप में प्रचलन है तथा उक्त प्रबंधगीत 'हरि' नाम से ही प्रसिद्ध हो गया है, उसी प्रकार नायक 'मारू' और नायिका 'मारुणि' का उक्त गीत-प्रकार 'मारू' नाम से प्रचलित कहा जा सकता है।

म. 1 की बानी में उक्त 'मारू काफ़ी' शीर्षक में 'मारू' और 'काफ़ी' दोनों में से हमें किसी एक को राग और अन्य को गीत प्रकार मानना होगा। 'मारू' नाम से आज कोई राग शास्त्रीय-संगीत में प्रचलित नहीं है। 'मारू बिहाग' राग नाम का प्रचलन अवश्य है, किंतु मारू विहाग और काफ़ी राग का मिश्रण न सुनने में आया है और न ही संभवतः रंजक ही सिद्ध हो सकता है, इसका कारण यह है कि दोनों रागों में सम्यक् मिश्रण का कोई सन्धिस्थल दिखाई नहीं देता।

आ. ग्रं. तथा सूफ़ी कवियों द्वारा प्रयुक्त काफ़ियों का वर्ण्यविषय भगवद्-अनुरक्ति है। 'काफ़ी' शब्द को फ़ारसी 'कैफ' शब्द का अपभ्रंश रूप कहा गया है, जिसका अर्थ है, 'मदोन्मत्त व्यक्ति'। गुरुकवि एवं सूफ़ी कवि भगवत्प्रेम में मतवाले होकर जिस काव्य-रूप में वर्णित भगवत्प्रेम में अनुरक्त व्यक्ति का जीवन, उसके लक्षण, उसकी दिनचर्या एवं अनुभवों का वर्णन करते थे एवं जनसामान्य को प्रभु-प्रेमोन्मतत्ता की उच्च स्थिति प्राप्त करने का उपदेश देते थे, उसे 'कैफ़ी' अथवा 'काफ़ी' कहा गया।[329]

भाई कान्हसिंह के मतानुसार, अरबी भाषा में 'काफ़ी' शब्छ, छंद का वह पद्यांश है, जो स्थाई अथवा 'रहाउ' हो सकता है तथा जिसके पीछे गायन के समय, और पद जोड़कर, पुनः-पुनः गीत के विश्राम स्थल पर पहुँचा जाए।[330]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूफ़ी कवियों द्वारा गाए जाने वाले विशेष प्रकार के भगवद्रति विषयक वे पद जिनके पीछे सारी गायक मंडली मुख्य गायक के गाए पद को दोहराती है, वे पद भी 'काफ़ी' नाम से प्रसिद्ध हैं।[331]

'ख्याल' तथा 'टप्पे' की भाँति काफ़ी को एक देशी प्रबन्ध भी कहा गया है।[332]

आ. ग्रं. में काफ़ियां विशेषतः आसा, तिलंग, सूही और मारू आदि क्षुद्र प्रकृति के रागों में मिलती हैं, अतः इन रागों के अंतर्गत 'काफ़ी' शब्द के एक विशेष-प्रकार की गायन-शैली का बोध कराता है।

पंजाब के लोक-गीतों में बुल्लेशाह की काफ़ियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं, जिनमें प्रायः 'अड़िल्ल' छंद का प्रयोग मिलता है।[333] किंतु काफ़ियों में सर्वत्र एक ही छंद का प्रयोग नहीं मिलता है। यह एक गेय-शैली होने के कारण, इसमें मात्रा-भेदं स्वाभाविक हैं। यथा,मयां बख़्श की एक काफ़ी द्रष्टव्य है, जिसमें प्रति चरण 16 मात्राएं मिलती हैं तथा अंतिम पाद 'रहाउ' वाली पंक्ति में 12 मात्राएँ हैं।

'मिठड़ी पौण मोर मन भावे,
कोइल मस्ति आवाज सुनावे,
कैसे गीत पपीहा गावे,
झिम झिम मेघ मलारे ॥'[334]

आ. ग्रं. में संकलित गुरु कवियों की काफ़ियों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'काफ़ी वस्तुतः कोई विशेष छंद जाति नहीं है। (यद्यपि उसमें एक समान छंदोगति के नियम का निर्वाह भी मिलता है।) अपितु आ. ग्रं. में उसका विशेष उल्लेख एक विशिष्ट लोक प्रसिद्ध गायन शैली के रूप में ही हुआ है।[335] आ. ग्र. में जहाँ उसका प्रयोग किसी राग के साथ मिश्र रूप में नहीं हुआ है, वहां 'काफ़ी' को लोक-गीत शैली का एक प्रकार विशेष ही समझना चाहिए।' 'ट्रैडीशनल डिवोशनल म्यूज़िक टाइप एंड केरिक्टरिसटिक्स' '(Traditional, Devotional Music Type and Characterstics) शीर्षक आकाशवाणी की एक टंकित तालिका[336] के अनुसार' काफ़ियाँ जालंधर शहर में प्रचलित हैं और ये आसा, मांड और काफ़ी आदि रागों में गाई जाती हैं। ये प्रायः सूफ़ी कवियों शाह हुसैन, बुल्लेशाह और शेख़ फ़रीद आदि द्वारा निर्मित हैं। गायन में इसकी एक निर्धारित शैली और विशेष ठेका है।[337]

(11) बिरहुली

क. बी. में एक संक्षिप्त रचना 'बिरहुली' नाम से मिलती है, जिसकी प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'बिरहुली' शब्द का व्यवहार मिलता है, यथा;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'आदि अंत नहिं होत बिरहुली। नहिं जड़ पल्लव पड़े बिरहुली ॥
निशि बासर नहिं होत बिरहुली। पानी पवन न होत बिरहुली ॥
ब्रह्मा आदि सनकादि बिरहुली। कथि गये योग अपार बिरहुली ॥
मास असाढ़हि शीत बिरहुली। बोइन सातों बीज बिरहुली ॥
नित गाड़ै नित संचे बिरहुली। नित नव पल्लव पड़े बिरहुली ॥'[338]

शिवव्रत के अनुसार 'बिरहुली' पूरब में गाया जाने वाला एक राग है।[339] यह मत 'बिरहुली' को एक लोकगीत प्रकार सिद्ध करता है। वास्तव में 'बिरहुली' गारुड़ियों के विष उतारने का एक गीत-विशेष है।[340] इस तथ्य का संकेत कबीर की उक्त रचना में तथा निम्ननांकित पंक्तियों में भी मिलता है।

'फूल एक मल फुल बिरहुली। फूलि रहल संसार बिरहुली।
ते फुल वंदे भक्ति बिरहुली। बाँधि के राउर जाय बिरहुली।
ते फुल लेही संत बिरहुली। डसिगो बेतल सांप बिरहुली।
विषहर मंत्र न मान बिरहुली। गाडुरि बेले आर बिरहुली ॥'[341]

लोक में सर्प का विष उतारने के लिए 'बिरहुली' नामक एक मंत्र प्रसिद्ध है। लोक-प्रचलित विश्वास के अनुसार इस मंत्र के अथवा इसी प्रकार के कुछ अन्य मंत्रों के पाठ द्वारा सर्प-दंशित प्राणी की जीव-रक्षा हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर की 'बीजक' में संगृहीत 'बिरहुली' नामक कृति, उक्त लोक-विश्वास से अनुप्रेरित होकर ही लिखी गई है। रचना में काव्यरूप की दृष्टि से लोक-प्रचलित गारुड़ियों की गीत-शैली है एवं वर्ण्यविषय की दृष्टि से, माया रूपी सर्पिणी का विष उतारने के लिए, भक्ति रूप मंत्र का महत्त्व इसमें वर्णित है।[342]

इस प्रकार बीजक की 'बिरहुली' नामक कृति एक लोक-प्रचलित मंत्र-रूप एवं गीत- रूप पर आधारित प्रतीत होती है। बंगाल के लोक-जीवन में, उक्त कोटि के विषहरी अथवा 'बिरहुली' नामक गीत, आज भी प्रचलित हैं। ये गीत 'मनसा' देवी के पूजा गीत[343] हैं। बी. के सरकार के अनुसार 'माल्दा में 'तन्त्रविभूति' तथा 'जगज्जीवन' नामक दो बिरहुली गीतों के संग्रह-ग्रंथ भी प्राप्य हैं और इस प्रकार के गीत जनता में सर्पदंशन से जीव-रक्षा के लिये अथवा उपचार-हेतु मंत्रोपचार के रूप में प्रचलित किए गए थे।[344]

'सती सोरठी योगी बृजाभार' नामक एक लोक-कथा-काव्य में कृति के एक पद में 'तर्ज विहुला' शीर्षक के अंतर्गत नायक को सर्प काटने की बात, उसका मंत्र द्वारा उपचार एवं आध्यात्मिक अर्थ, ये सब तथ्य मिलते हैं,[345] जिससे यह संकेत अवश्य मिलता है कि लोक में 'बिरहुली' अथवा 'बिहुला' नामक लोकगीत-प्रकार में भक्ति तत्त्व को भी अपनाया जाता था। कबीर की उक्त कृति मूल रूप में इसी लोकगीत-शैली के अनुकरण पर आधारित है, ऐसा कहा जा सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(12) लावनी

इस गायन-शैली का जन्म महाराष्ट्र में हुआ था, ऐसा कहा जाता है। 'लावनी' को मराठी में 'लावणी' कहा जाता है।[346] आचार्य विनयमोहन शर्मा के अनुसार, इसका संबंध लवण अथवा लावण्य से है।[347] लावनी को महाराष्ट्र का समृद्ध लोकगीत-प्रकार कहा जा सकता है।

रा. क., द्वितीय खंड में सुंदरदास के कुछ सवैयों[348] के साथ 'लावनी' शीर्षक का उल्लेख मिलता है, जिससे यह प्रकट होता है कि गायकों में उक्त सवैयों को 'लावनी' के ढंग पर गाने का भी प्रचार रहा होगा। लावनियां भक्ति एवं शृंगार-दोनों प्रकार के विषयों को लेकर लिखी गई हैं और इनका सर्वाधिक प्रचार अपनी जन्म भूमि महाराष्ट्र में ही है। लावनी गीत-प्रकार के रूप में तो प्रचलित है ही, किंतु कहीं-कहीं तालस्थानीय रूप में भी इसका व्यवहार मिलता है। (द्रष्टव्यः रा. क., भाग 2, पृ. 433) पर सुंदरदास के एक पद में 'सिंधु-लावनी' इस प्रकार का उल्लेख मिलता है। यहाँ 'लावनी' 'या तो ताल का वाचक कहा जा सकता है अथवा गायन-शैली का निदर्शक है, अथवा यह संभावना हो सकती है कि मुद्रण की भूल से 'लावनी' राग के पूर्व न होकर बाद में छाप गया है।

लावनी महाराष्ट्र में प्रचलित शृंगारिक गीत-प्रकार के रूप में तथा ग्राम्य-जनता में 'तमाशा' नामक मनोरंजन कार्यक्रम के अंतर्गत विशेष लोकप्रिय है।

'लावनी' एक 8 मात्रा के ताल में रूप में भी प्रचलित है।[349] इस प्रकार 'लावनी' एक विशिष्ट गीत-शैली एवं ताल-नाम दोनों रूपों में प्रचार में मिलता है।[350]

(13) छंत

'छंत' शब्द पंजाब के एक प्रचलित लोकगीत-प्रकार का बोधक है। डॉ. तारन सिंह के अनुसार 'छंत' पंजाब में विवाह-संस्कार के प्रसंग पर गाए जाने वाले 'टप्पा' (पंजाब का एक विशेष लोकगीत-प्रकार) गीतों को कहते हैं। यथा,

'दूलह का रूप अनूप, दुलहन पाया राम।
दुलहन के भल भाग, जाग मनाया राम।'[351]

गुरु कवियों ने भी उक्त लोकगीत के ढंग पर आध्यात्मिक विषय को लेकर 'छंत' लिखे हैं। पंचम गुरु का निम्न 'छंत' उपर्युक्त लोकगीत के रूप में प्रचलित 'छंत' के साथ शैली की दृष्टि से तुलनीय है।

'गुरु मिलि लभाजी, रामु पियारा राम।
इहु तनु मनु दितड़ा, वारो वारा राम।'[352]

'छंद' शब्द संस्कृत के 'छंदस्' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है, एक छंद-विशेष तथा वैदिक ऋचाओं का पवित्र पाठ। इस प्रकार, आदि ग्रंथ में 'छंत' शब्द का व्यवहार उस छंद-विशेष का सूचक है, जिसमें परमतत्त्व की स्तुतिपरक पवित्र (पद्य) रचना हुई हो।[353]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिंदी में 'छंद' शब्द का प्रयोग हरिगीतिका अथवा अन्य अनेक छंदों के लिए प्रयुक्त हुआ है।[354] आ. ग्रं. में 'छंत' शीर्षक से उपलब्ध गुरु कवियों की रचनाओं के साथ विभिन्न रागों एवं 'घरों' का भी उल्लेख मिलता है। ग्रंथ में 'छंतों' का अष्टपदियों के बाद स्थान मिलता है तथा इस शीर्षक के अंतर्गत हमें, अनेक छंदों का प्रयोग मिलता है।[355]

गुरु-कवियों ने इस लोकगीत-प्रकार को समृद्ध-साहित्य-रूप प्रदान किया है और विभिन्न राग-रागिनियों के नामोल्लेख सहित ग्रंथ में प्रस्तुत किया है। लोकगीतों की भांति छंतों में वर्णों का अनुप्रास, विशिष्ट शब्दों की पुनरावृत्ति अथवा किन्हीं विशेष अक्षरों, पंक्तियों या अर्द्धपंक्तियों की पुनः आवृत्ति आदि विशेषताएँ मिलती हैं।[356]

वैसे तो 'छंत' नामक रचनाओं में, रागों का निर्देश रहने के कारण, इन्हें लोक-संगीत वर्ग के अंतर्गत रखना उचित नहीं, किंतु इन छंतों की भाषा-शैली पंजाब में लोकगीत-रूप में प्रचलित 'छंतों' की भाषा-शैली से बहुत मिलती है, अतः संभाव्य है कि गुरु-कवियों ने उपर्युक्त लोकगीत-प्रकार को लोक में से ही ग्रहण किया हो। इसी आधार पर उक्त कृतियों को यहाँ लोकगीत-संगीत की उच्च कोटि में स्थान दिया गया है।

(14) बेलि

इस नाम से एक काव्य-परंपरा राजस्थान में प्रसिद्ध है। 'बेलि' अथवा 'बेलियाँ' नाम से कुछ गीत भी राजस्थान में लोकप्रिय हैं और चारण कवियों ने भी इनको अपनाया है। इस कोटि के गीतों का गायन पूर्वी भारत में भी प्रचलित है।[357] डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, 'वह (बेलि काव्यरूप) राजस्थान से बिहार तक फैले हुए एक विशेष श्रेणी के गान का प्रतिनिधित्व करता है।'[358] बेलि नामक काव्य का संबंध भक्ति-साहित्य से है, किंतु बेलि काव्य का वर्ण्यविषय, प्रमुख रूप से देवतुल्य श्रद्धेय पुरुषों का गुणगान करना रहा है। ये पुरुष राजा-महाराजा, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, धर्माचार्य, और लौकिक देवता आदि रहे हैं। जैन बेलियों में भी जहाँ केवल 'भव संबोधन कीजै' उपदेश दिया गया है, वहाँ भी आरंभ तथा अंत में तीर्थंकरों और धर्माचार्यों का प्रायः स्तवन कर लिया गया है।[359] पृथ्वीराज कृत 'बेलि क्रिसन रुक्मिणी री' ग्रंथ इसी परंपरा का ग्रंथ है। जैन बेलि-काव्यों में, अध्यात्म विषय को लेकर लिखे गए ग्रंथों की भी परंपरा मिलती है, जिनमें संसार की असारता, माया-बंधन आदि से अवगत हो, जीव को ईश्वरोन्मुख करने के लिए इंद्रिय-निग्रह आदि का उपदेश दिया गया है। इस प्रकार के भक्ति-बेलि-साहित्य में पंचेन्द्रिय बेलि, चिहुगति वेलि, पंचगति वेलि, बृहदगर्भ बेलि, जीववेलड़ी, चार कषाय वेलि, क्रोधवेलि, बारह भावना वेलि, प्रतिभाधिकार वेलि आदि ग्रंथों का नाम उल्लेखनीय है।[360]

वेलि-साहित्य का प्रमुख तत्त्व है गेयता। जैन साधुओं में इस कोटि के साहित्य की रचना, गायन एवं (काव्य) पाठ का भी प्रचार रहा है। कई पंथों में लोक-वेलियाँ अब भी गाई जाती हैं। वेलि-काव्य विभिन्न छंदों में लिखा गया है। जैन वेलियों में दोहा, कुंडलिया, सार, सखी, सरसी, हरिपद आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। लौकिक वेलियां लोक-धुन-प्रधान हैं।[361]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

कबीर बीजक[362] में कबीर के नाम से एक कृति 'वेलि' शीर्षक के अंतर्गत संगृहीत है, जिसकी भाषा, शैली और छांदसिक लयात्मकता इस कृति को लोकगीत-शैली के अनुकरण पर लिखित सिद्ध करती है। इस कृति में प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'हो रमैया राम' की टेक है, जिसमें उक्त रचना किसी लोक धुन-पर लिखी प्रतीत होती है।[363] रचना का वर्ण्य विषय, अध्यात्म है। कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा।

'हंसा सरवर सरी में हो रमैया राम।
जागत चोर घर मूसे, हो रमैया राम ॥
जो जागल सो पागल, हो रमैया राम।
सोवत गैल बिगोय, हो रमैया राम ॥
आजु बसेरा नियरे, हो रमैया राम ।
कालि बसेरा बड़ि दूरि, हो रमैया राम ॥
जैहौं बिराने देस, हो रमैया राम ।
नैन चाहुगे पूरि, हो रमैया राम ॥'[364]

(15) अलाहुणी

प्रिय स्वजन की मृत्यु के समय शोकातुर हो, बिछुड़ी आत्मा के प्रति किए गए गुण-कथन के गीत-विशेष को 'अलाहुणी' कहते हैं।[365] ज्ञानी लालसिंह के अनुसार 'अलाहर्णीं' 'अलाहणा' अथवा 'सलाहणा' शब्द एक ही 'प्रशंसा' अर्थ के सूचक हैं। अर्थात् 'आलहुणी' भी मृतात्मा का यश-कथन ही होता है।[366]

यथाः-

'पेइअड़ा बल पेड़अड़ा अमीर का मरना
पेइअड़ा सुरग बिबान मा तैंनू हरहर करदे लै चले शिव-शिव करत बिहार मा।
पुत्तज पोते आपने होर रोवे सभ परवार मा।
जाय उतारा गंग सिर अंबा ठंडी छांव मा।
चंदन चीरी काठीआ तुलसी लाम्बू देव मा।
तैनूं खड़े उड़ीके देवते, तू सुरगापुर में आव मा।
रोवण सभे गोपीआं मोहीआं जादोरख मा।'[367]

इन अलाहुणियों की तर्ज़ पर ही गुरुजी ने गायन -हेतु 5 अलाहुणियों की रचना की है। जैसेः

'बाबा आइआ है उठ चलणा इह जग झूठ पसारोवा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सचा घरु सचड़ै सेवीऐ सचु खरा सचि आरोवा।'[368]

गुरुजी ने इन अलाहुणियों में मायिक-जीव को मृत्यु की अनिवार्यता का स्मरण करा, सत्य रूप परमेश्वर में 'लौ' लगाने का उपदेश दिया है तथा आत्मा अजर, अमर है, यह ज्ञान दिया है।

ये पद राग 'बड़हंसु' में प्राप्त हैं। इनमें से 2 पदों के साथ राग 'बड़हंसु' म. 1 घरु 5 अलाहुणीआं' का उल्लेख है तो अन्य 2 पदों के साथ 'बडहंस म. 1 दखणी तथा शेष 1 पद के साथ केवल 'बडहंस म. 1' का उल्लेख मिलता है।

'बडहंसु' म. 1 घरु 5 अलाहुणीआं का अर्थ है कि गुरु नानक की प्रस्तुत अलाहुणियों को राग 'बडहंसु' और 'घरु 5' में गाना चाहिए। 'अलाहुणी' शीर्षक केवल वर्ण्य-विषय का सूचक है।

अन्य दो पदों पर 'वडहंस' राग नाम का वाचक है और 'दखणी' शब्द का उल्लेख म. 1 के बाद आया है, अतः यह (दखणी) रागनाम का सूचक नहीं, अपितु पद की भाषा की विशिष्टता का द्योतक प्रतीत होता है।

(16) वार

आदिग्रंथ के प्रणेता गुरुकवि, जनकवि थे। अतः उन्होंने मानव-जीवन को भक्ति-पूरित बनाने के लिये विवाह, मृत्यु आदि जीवन के विविध प्रमुख प्रसंगों पर गाए जाने वाले घोड़ी, लावां, छंत, अलाहुणी आदि समाज में प्रचलित संस्कारगीतों का आधार ग्रहण किया, यह हम पीछे देख चुके हैं, उसी प्रकार उन्होंने युद्धादि के प्रसंग पर युद्धवीरों के यश को लेकर गाई जाने वाली 'वार' नामक तत्कालीन अति प्रचलित लोकगीत विधा को अपनाकर, आध्यात्मिक वारों की रचना की।

'वार' शब्द अनेकार्थवाची है, अतएव इस काव्य-शैली के प्रतिपाद्य विषय के संबंध में भी हमें अनेक मतभेद मिलते हैं।

'वार' का एक प्रसिद्ध अर्थ है 'आक्रमण करना' अतः जिस काव्य में युद्धों, आक्रमणों आदि का वर्णन हो, वह 'वारकाव्य' है।[369]

'वार' का अर्थ रोकना भी है। शूरवीरों के द्वारा युद्धादि की रोकथाम के लिए किए गए प्रयत्न का उल्लेख जिस काव्य में हो, वह 'वारकाव्य' है, ऐसी भी एक मान्यता है।[370]

कुछ विचारकों के अनुसार 'वार' का अर्थ है 'पुनरावृत्ति।' ढाढी लोग शूरवीरों के कीर्तिगीतों को बारम्बार दोहराकर सुनाते हैं, अतः इस विधा का नाम 'वार' पड़ा।[371]

'वार' अथवा 'बार' द्वार को भी कहते हैं, क्योंकि चारण अथवा भाट लोग शूरवीरों के द्वार पर खड़े होकर वीरगीतों का गायन करते थे, अतः इस काव्यशैली को 'वार' कहते हैं।[372]

राजस्थानी में 'वार' शब्द का अर्थ है "सहायता के लिये पुकारना।' क्योंकि भाट लोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri.

द्वार पर शूरवीरों की कीर्ति गा-गाकर अपनी आर्थिक सहायता के लिये पुकार करते थे, अतः इन गीतों का नाम 'वार' प्रचलित हो गया होगा।[373]

पंजाबी साहित्य में 'वार' उस पद्य-रचना को कहते हैं, जिसमें किसी शूरवीर के रणभूमि में प्रदर्शित शौर्य का उल्लेख हो। 'वार' में किसी मनुष्य का संपूर्ण जीवन न दिखाकर, जीवन की एक प्रमुख झांकी ही दिखाई जाती है।[374]

एस.एस. अमोल के अनुसार, पंजाब की वीरता भरी काव्य-शैली का नाम 'वार' है। वारों में शूरवीरों का यश-कथन होता है। 'वारें' युद्ध के लिए प्रयाण कर रही सेनाओं के आगे गाई जाती हैं ताकि वे जोश में भरकर अरि दल का दमन करने में सफल हो सकें अथवा वारें ढाढी लोग 'ढड सारंगी' के साथ बड़े-बड़े अमीर-उमराव तथा राजा-महाराजाओं के समक्ष गाते थे, जिनमें उनके पूर्वजों का यश रहता था।[375]

कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार 'वार' शब्द का मूल 'वार्त्ता' पद है। पंजाब अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण सदा से युद्धों का अखाड़ा बना रहा है। ढाढियों ने इन युद्धों में शौर्य दिखलाने वाले वीरों के वार्त्ता-वृत्तांत को ही अपने गीतों का वर्ण्य-विषय बनाया और इसका नाम ही 'वार्त्ता' पड़ गया। 'वार' शब्द उसी 'वार्त्ता' पद का संक्षिप्त रूप प्रतीत होता है। यद्यपि आज 'वार' शब्द का अर्थ-विस्तार हो गया है और यह अनेक अर्थों में व्यवहृत होता है, किंतु सर्वप्रथम इसका साहित्यिक प्रयोग 'वार्ता' से ही रूढ़ हुआ होगा।[376] इस संबंध में पं. तारा सिंह का भी यही मंत है।[377]

डॉ. सुरेंद्रसिंह कोहली के अनुसार 'वार' शब्द 'वरण' (praise) से बना है, जिसका अर्थ है, 'प्रशंसा करना'। वार में किसी शूरवीर की प्रशंसा गाई जाती है। पंजाबी में एक मुहावरा है 'यार गावणा' जोकि प्रशंसा करने के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। अतः चारण अथवा भाट लोगों के द्वारा शूरवीरों का स्तुति गान ही 'वार' है।[378] ज्ञानी लालसिंह एवं पंडित नारायण सिंह का भी इस संबंध में मत द्रष्टव्य है।[379]

आदि ग्रंथ में, विभिन्न 17 रागों में 22 वारें संगृहीत हैं, जिनमें से प्रथम गुरु की वारें, माझ, आसा और मल्हार-इन तीन रागों में निबद्ध हैं तथा पंचम की 6 वारें; गौड़ी, गूजरी, जैतसिरी, रामकली, मारू और बसंत इन छः रागों में उपलब्ध हैं।

गुरु अर्जुन ने ग्रंथ की वारों अर्थात् 'पउड़ियों के संग्रह' में उसी गुरु के अथवा अन्य गुरुओं के भाव-सदृश्य वाले 'सलोकु' मिलाकर गुरुओं की वाणी में ही वारों के अंतर्निहित भावों की व्याख्या का मौलिक संपादन-कार्य किया है। नीचे प्रथम एवं पंचम गुरु कवियों की वारों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

माझ की वार : यह वार प्रथम गुरु द्वारा लिखित है। इसमें 27 पउड़ियां हैं और सलोकु मिलाकर इसमें 73 पद हैं। इस वार के लिए 'मलक मुरीद तथा चंद्रहड़ा सोहिआ की धुनि' पर गाने का निर्देश है।[380] मलक मुरीद तथा चंद्रहड़ा दो वीर राजपूत थे, स्थानाभाव के कारण उनकी कहानी यहाँ उद्धृत नहीं की जाती[381], केवल इसकी गायन संबंधी विशेषताओं पर प्रकाश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डालने का प्रयत्न किया जाएगा।

मा. प्रेमसिंह ने 'माझ की वार' की मूल धुन की जो स्वरलिपि दी है, वह निम्नलिखित है;

माझ धुन : ताल तीन[382]

प	प	प	ध	ध – म		प	प	ध	न	नी	नी	नी	सांऽ	सां	सां
का	ब	ल	वि	च	मु	री	द	सा	ह	फड़ि	या	व	ड	जोर	ऽ
×				2				0				2			
रे	नि	नि	नि	सा	सा	सा	सा								
फ	ड़ि	या	व	उ	जो	र	ऽ								

वार माझ की 'बजाने का ढंग[383]

ते	रा	ना	अम	स	च	है	अ	भ	ई	ई	आ	आ	आ
ध	म	गा	रे	स	स	नि़	नि़	रे	सा	सा	सा	सा	सा
ते	रा	ना	ऽम	स	च	है	ऽ	भ	ई	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

'गुर वाणी संगीत' में 'हमें' माझ की वार में से 4 'सलोकों' की स्वरलिपि मिलती है, जोकि 'माझ' राग की अपेक्षा, राग 'शुकल बिलावल'. दादरा' ताल में मिलती है, फिर भी यह स्वरलिपि सीने-ब-सीने प्राप्त की गई है, अतः इसे यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

राग शुकल बिलावल, दादरा, विलम्बित[384]

नदिया होवहि घेणबा सुंभ होवहि दुधु घीउ ॥
सगली धरती सकर होवे सुखी करे नित जीउ ॥
परबतू सुइना रूपा होवे हीरे लाल जड़ाउ ॥
भी तू है सालाहणा आखण लहै न चाउ ॥1॥ म. 1 ॥
भार अठारह मेवा होवे गरुड़ा होइ सुश्राउ ॥
चंद सूरजु दुइ फिर दे रखीअहि निह चलु होवे थाउ ॥
भी तू है सालाहणा आखण लहं न चाउ ॥ 2 ॥ म. 1 ॥
जे देहे दुखु लाइऔ पाप गरह दुई राहु ॥
रतु पीणे राजे सिरे उपरि रखीअहि ऐवे जापै भाउ ॥
भी तूं है सालाहणा आखणा आखण लेहे न चाउ ॥ 3 ॥ म. 1 ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizaction by eGangotri

अगी पाला कपड़ होवे खाणा होवे वाउ ॥

सुरगे दीआ मोहणीआ इसतरीआ होवनि नानक सभा जाउ ॥

भी तूं है सालाहणा आखण लहै न चाउ ॥ 4 ॥[385]

स्वरलिपि - स्थायी[386]-ताल दादरा

रेग	रे	ग	गम	धप	ध	मग	म	रे	स	—	—
मीऽ	ऽ	तूं	रेऽ	ऽऽ	सा	लाऽ	ऽ	ह	णा	ऽ	ऽ
×			0			×			0		
गरे	ग	ग	गम	निध	धप	प	—	—	गम	रेग	रे
आऽख		ण	लऽ	रेऽ	नऽ	चा	ऽ	ऽ	उऽ	ऽऽ	ऽ
×			0			×			0		

अंतरा

पऽ	प	प	निध	निऽ	—	सं	—	सं	सं	—	—
नउ	दी	आं	होऽ	वहि	ऽ	घे	ऽ	ण	वा	ऽ	ऽ
×			0			×			0		
^सं^ध	नि	नि	निसं	रें	रें	सनि	सं	—	धनि	धप	—
सुं	म	हो	वहि	द	घु	धीऽ	ऽ	ऽ	उऽ	ऽऽ	ऽ
×			0			×			0		

आसा दी बारः 'आसा की वार' जोकि प्रथम गुरु की कृति है, उसे आ. ग्रं में 'टुंडे अस राजे की धुनि' पर गाने का निर्देश मिलता है।

आसा धुनः ताल 3[387]

भबकिओं शेर सरदूल राइ रण मारू बज्जे।

मऽ	म	म	—	म	प	पप	पऽ	प	संनी	सं	नी	सं	स	नी	ध	म	प	ऽप
भब	कि	यो	ऽ	शे	ऽ	रस	रदू	ल	राऽ	ऽ	ऽ	ऽ	इ	रण	माँ	रू	ब	ज्जे
×				2				0						3				

गौड़ी की वार म. 5: को 'राय कमाल दी मौजदी की वार की धुन' के अनुसार गाने का निर्देश है। राय कमाल दी मौजदी वार की धुन निम्नलिखित है;

धुन की प्रथम पंक्तिः 'राणा राइ कमाल दी रण मारा वाही।'[388]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धुन, तार 3:

रें	रें	रें	रें	रें	रें	सं	रें	रें	सं	रें	सांऽ	नी	नी	नी	नी
रा	णा	रा	इ	क	मा	ऽ	ल	दी	ऽ	ऽ	रण	मा	रा	वा	ही
×				2				0				3			
सां	नी	ध	प	म	म	प	प	ग	म	प	प	रे	स	स	—
वा	म	वा	रण	मा	रा	वा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ही	ऽ
×				2				0				3			

मौज दी तलवंडियों चढ़िया सा बाही। ढाली अंबर छाइया फुले अब काही। जुटे आयो साहलणे नेजे झलकाही। मौजे घर बधाइयाँ घर चाचे धाही।

सां	नी	धऽ	प	म	म	ध	म	ग	ग	ग	रे	सा	सा	सा	सा।
मौ	जे	घर	ब	धा	इ	यँा	ऽ	घ	र	ऽ	ऽ	चा	चे	धा	ही
×				2				0				2			

गौड़ी की वार बजाने का ढंग;[389]

सां नी ध प म म ध म रे सा स स सा स।
ते रा ना म स च है अ जे इ ई आ आ अ

वार मलार की धुनः म0 1 की कृति है, जिसे ' राणे कैलास तथा मालदे' की धुन पर गाने का आ. ग्रं में निर्देश है। (आ. ग्रं. पृ. 1278)।

मलार की धुन की प्रथम पंक्तिः

'धरत घोड़ा परवत पलाण सिर टट्टर अंबर ॥'[390]

धुनः[391]

नी नी नी नी सां सां सां सां सां प म प प।
धरत घोड़ा पर ब त प ला ण सिर ट ट्टर अ बर
ध नि सं नी प म प प।
वा ऽ ऽ सिर ट ट्टर अं बर।

वार मलार को गाने का ढंग[392]:

रें नि सां नि नि प र रे सा स सा।
ते रा नाम सत त है अ पे इ ई आ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धुनों द्वारा निर्दिष्ट उक्त चारों वारों की मूल धुनों के कुछ उपलब्ध पद्यांश छांदसिक लयात्मकता की दृष्टि से नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं।[393]

(1) *माझ की वारः म.1, धुन-मलक मुरीद तथा चंद्रहड़ा सोहीआ की वार'*

'काबल विच मुरीद खां फड़िया वड जोर ॥
चंद्रहड़ा लै फौज को चढ़िआ बड़ तोर ॥
दोहां कंधारां मूंहि जुड़ दमाये दौर ॥
ससतर मजूते सूरिआं सिर बद्धे टौर ॥
होली खेले चंद्रहड़ा रंग लग्गे सौर ॥
दोवें तरफा जुट्टीआं सर वग्गण कौर ॥
मैं भी राई सदाइसां वड़िआ लाहौर ॥
दोनों सूरे साम्हणे जूझे उस ठौर ॥'

(2) *गौड़ी की वार म. 5 धुन : राई कमालदी मौजदी की धार (की धुन)*

'राणा राई कमालदी रण भारा वांही।
मोजदी तलवंडीओं चढ़िआ साचांही।
ढालीं अंबर आइआ फुल्ले अक कांहीं।
जुट्टे आहमो साहमणे नेजे झलकांहीं।
भोजे घर बधाइआं घर चाचे धांही।'

(3) *आसा की वार म. 1 धुन-टुंडे असराजे की वार (की धुन)*

'भभकियों शेर सरदूल राइ रण मारू बज्जे ॥
खान सुलतान बड सूरमे विच रण दे गज्जे ॥
खत लिखे टुंडे असराज नूं पातशाही अज्जे ॥
टिक्के सारंग बाप ने दित्ता भर लज्जे ॥
फते पाइ असराज़ जी शाही घर सज्जे ॥'

(4) *मलार की वार म. 4 धुनः राणे कैलास तथा मालदे की वार (की धुन)*

'धरति घोड़ा परबत पलाण सिर टट्टर अंबर ॥
नौ से नदी नड़िनवें राणा जल कंबर ॥
ढुका राइ अभीर देव कर मेघ अडंबर ॥
आनत खंडा राणिआं कैलाशे अंदर ॥
बिज्जल जिओं चमकाणीआं तेगां विच अंबर ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मालदेव कैलाश नूं बन्हिआ कर संबर ॥
माल देउ खट्टिआ वांग शाह सिकंदर ॥'

(17) सोहिला

आ. ग्रं. में 'सोहिला' नाम से एक रचना संगृहीत है। सामान्यतः पूज्य व्यक्तियों गुरु, संत, संन्यासी आदि महामानवों का 'स्तुतिगान' 'सोहिला' कहलाता है।[394] वास्तव में 'सोहिला' का अर्थ है, गुणगान।[395] अर्थात् ईश्वर का गुणगान। उक्त शीर्षक के अंतर्गत गुरु कवियों के 5 पद मिलते हैं, जिनमें से पमक गुरु के दो पद 'गौड़ी दीपकी' रागनाम के अंतर्गत संगृहीत हैं। इसके अतिरिक्त प्रथम गुरु की ही विरचित 'आरती' नामक कृति राग 'धनासरी' में है। राग 'गौड़ी-पूरबी' में म. 4 का एक पद है तथा इसी राग में म. 5 का 1 पद सम्मिलित है। इस प्रकार उपर्युक्त 5 कृतियां अथवा पद 'सोहिला' शीर्षक के अंतर्गत संकलित हैं। सिक्खों के नित्य-कर्म में इस बानी को अत्यंत महत्त्व प्राप्त है और इसका पाठ नियमित रात्रि को शय्यागत होते समय किया जाता है। प्रायः यह (बानी) कीर्तन-सोहिला' नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि पहर रात्रि तक कीर्तन करने के पश्चात् इस बानी का पाठ किया जाता है। उक्त बानी में परमात्मा की कीर्ति का गान किया गया है, जोकि बानी की प्रथम पंक्तियों में 'सोहिला' शब्द-प्रयोग द्वारा स्पष्ट हो जाता है।

'जै घरि कीरति आखीये करते का होइ बीचारो।
तितु घरि गावहु सोहिला, सिवरहु सिरनजनहारो ॥
तुम गावहु मेरे निरभय का सोहिला,
हउ वारी जितु सोहिलै सदा सुख होय ॥'[396]

उक्त कृति में एक 'आरती' शीर्षक पद भी संकलित होने के कारण इसे 'आरती सोहिला' कहने का भी प्रचार है, किंतु ग्रंथ में रचना का शीर्षक केवल 'सोहिला' ही दिया गया है। सामान्य खुशी के प्रसंगों पर गाए जाने वाले गीत भी 'सोहिले' कहलाते हैं।[397] किंतु गुरु-कवियों ने ईश्वर के 'सोहिले' गाए हैं। इस बानी के अंतर्गत रागों का भी निर्देश मिलता है, तथापि उक्त कृति, लोक-प्रचलित 'सोहिला' गीत-शैली के आधार पर अथवा उससे प्रेरित होकर लिखी गई प्रतीत होती है।

(18) रुती

बारहमासे की भाँति निर्गुण कवियों ने 'रुती' नामक लौकिक काव्यरूप को भी अपनाया है। आ. ग्रं. में म. 5 की 'रामकली' रागनाम के अंतर्गत एक 'रुती' शीर्षक रचना मिलती है। 'रुती' का अर्थ है, 'षड्ऋतु' वर्णन। 'संस्कृत काव्य में 'षड्ऋतु' वर्णन की परंपरा सुदीर्घ प्राचीन रही है। इस कोटि की रचनाओं में 'वसंत' (चैत्र, वैशाख), ग्रीष्म (ज्येष्ठ, आषाढ़), वर्षा (सावन,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाद्रपद), शरद (असौज, कार्तिक), हेमन्त (मार्गशीष, पौष), शिशिर (माघ, फाल्गुन) इन छः ऋतुओं का आनंदमय वर्णन रहता है। 'षड्ऋतु' वर्णन का ही विकसित काव्य-रूप 'बारहमासा' कहा जा सकता है जोकि संभवतः प्रथम काव्यरूप से ही उद्भूत हुआ।[398]

ऐसा कहा जाता है कि 'षड्ऋतु' वर्णन में केवल संयोग एवं प्रसन्नता (प्रकृति की सुंदरता का सुफल खुशी) ही चित्रित की जाती थी, जबकि 'बारहमासा' काव्यों में छः ऋतुओं की अपेक्षा, वर्ष के बारहमासों का आधार ग्रहण कर, विरह-वियोग का अधिक वर्णन किया जाता रहा है। यथा मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' में (1528 ई.) पद्मिनी की, रंगरेलियों का चित्रण, 'षड्ऋतु वर्णन' शीर्षक के अंतर्गत है, जबकि रानी नागमती की विरह-विदग्धता का वर्णन 'बारहमासा' के अंतर्गत है।[399] यद्यपि भारतीय सिद्धांतानुसार दुःख के बाद सुख अथवा बिछुड़न के पश्चात् मिलन 'बारहमासा' में भी दिखाया जाता है, किंतु, 'षड्ऋतु वर्णन' में प्राकृतिक अद्भुत छटा एवं मौज-बहारों का ही प्रायः वर्णन रहता है।

यद्यपि यह सत्य है कि लौकिक काव्य-रूपों में 'बारहमासा' अत्यंत प्रचलित है और 'षड्ऋतुवर्णन' कहीं सुनने में नहीं आया, जबकि साहित्य में 'षड्ऋतु वर्णन' के उदाहरण स्वरूप प्रभूत ग्रंथ मिलते हैं। ऐसा कहा जा सकता है कि जब साहित्यिक 'षड्ऋतु वर्णन' ने लौकिक रूप धारण किया तो वह विकसित रूप में 'बारहमासा' नाम से लोक में प्रचलित एवं लोकप्रिय हुआ।[400]

गुरु अर्जुन की 'रुती' नामक रचना 'सलोक' (प्रायः दोहा छंद) एवं 'छंतों' में लिखित है। इस रचना में 'बारहमासा' काव्य-रूप से केवल इतना ही अंतर है कि यहाँ वर्ष के बारह-मासों की अपेक्षा, छः ऋतुएँ वर्ण्य-विषय का माध्यम बनी हैं।

इस प्रकार 'बारहमासा' 'षड्ऋतु वर्णन' का ही विकसित काव्य-रूप कहा जा सकता है।

(19) मंगल

यह एक अति लोकप्रिय गायन-शैली है, जिसका लोक-गीत रूप में प्रचार बंगाल से लेकर उत्तर प्रदेश तक है। विवाहोत्सव, पुत्र-जन्म आदि के अवसर पर अथवा किसी भी खुशी के प्रसंग में 'मंगल' नामक लोक-गीत गाया जाता है। निर्गुण संत कवियों ने इसे साहित्यिक रूप दिया है, किन्तु मूल रूप में यह एक लौकिक काव्य-रूप अथवा लोकगीत-प्रकार ही है।[401] कहीं कहीं 'सोहर' (पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में गाया जाने वाला गीत-प्रकार विशेष) अथवा 'सोहिला' को भी 'मंगल' कह दिया जाता है।[402]

संत कवियों ने लोकगीतों शैली पर अनेक 'मंगल' गीत लिखे हैं। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

(1) *'साई के संग सासुर आई।*

संग न सूती स्वाद न मानी, गयो यौवन सपने की नाई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जना चारि मिलि लगन शोचाई, जना पांच मिलि मंडप छाई।
सखी सहेली मंगल गावें, दुख सुख माथे हरदि चढ़ाई।
नाना रूप परी मन भांवरि, गांठी जोरि भई पतिआई।
अरघ दै दै चली सुवासिनि, चौकहि रांड भई संग सांई।
भयो विवाह चली बिन दूलह, बाट जान समधी समुझाई।
कह कबीर हम गौने जैबै, तरब कंत लै तूर बजाई ॥[103]

(2) नल को ढाढ़स देखो आई। कछु अकथ कथा है भाई।
सिंह शार्दूल एकहर जोतिनि सीकस बोइनि घाना।
बन की मलुइया चाखुरे फेरे, छागर भये किसाना।
कागा कपरा धोवन लागे, बकुला किररै दांता ।
माछी मूड़ मुड़ावन लागी, हमहूं जाब कराता।
छेरी बाघहि ब्याह होत हैं, मंगल गावें गाई।
बन के रोझ धै दाइज दीन्हो, गोह लोकं दे जाई।
कहै कबीर सुनो हो संतो, जो यह पद अर्थावे।
सोई पंडित सोई ज्ञाता, सोई भक्ति कहावे।[104]

(3) 'अगमपुरी को ध्यान खबर सतगुरु करी।
लीजै तत्त विचार, सुरत मन में धरी।
सुरत निरत दोउ संग, अगम को गम कियो।
सबर विबेक विचार, छिपा चित में दियो।
गुरु के सबद लौ लाय, अगोचर घर कियो।
सबद उठै झनकार, अलख तहं लखि लियो।
अलख लखो लौ लाय, डोरि आगे धरो।
जल मगार वह देस, केल हंसा करो।
सतगुरु डोरी लाय, पुकारें जीव को।
हंसा चले संभालि, मिलन निज पीव को।
मंगला कहें कबीर, सो गुरमुख पास है।
हंसा आये लोक, अमर घर वास है।[105]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri.

कबीर साहेब की शब्दावली चतुर्थ भाग में 'राग मंगल' शीर्षक के अंतर्गत 12 शब्द हैं।[406] आ. ग्रं में महला 5 की 'मंगल' शीर्षक से एक कृति राग 'बिलावल' में संकलित है, जो कि 'सलोक' (प्रायः दोहा छंद) और' छंत (छंदों) में लिखित है।[407]

इस प्रकार संत काव्य में 'मंगल' शीर्षक से अनेक पद मिलते हैं। क. ग्रं सुं. ग्रं., कबीर की बानी आदि पुस्तकों में 'मंगल' शीर्षक के बिना भी अनेक 'मंगल' गीत संकलित हैं, यथा;

'दुलहनी गावहु मंगलचार।
हम घर आये हो, राजा राम भरतार।
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत बराती।
रामदेव मोरे पाहुनें आये, मैं जोबन में माती।
सरीर सरोवर बेदी करिहूं, ब्रह्मा वेद उचार ।
रामदेव संगि मांवंर लैहूं, धंनि धंनि भाग हमार।
सुर तैतीसूं कौतिक आये, मुनियर सहस अठ्यासी।
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरुषि एक अविनासी ॥'[408]

पौराणिक उपाख्यानमूलक मंगल काव्य की परंपरा बंगाल में 14 वीं शताब्दी ई. के पूर्व ही आरंभ हो चुकी थी। महाप्रभु चैतन्य के आविर्भाव से बहुत पूर्व ही मंगल-काव्य, बंगीय लोक-जीवन में पूर्ण रूप से समादृत थे। बंगला-साहित्य के इतिहास में इन मंगल-काव्यों को 'धर्म मंगल' की संज्ञा दी गई है। इन मंगल-काव्यों में पौराणिक उपाख्यानों के माध्यम से धर्म की व्याख्या की गई है।[409]

विनय कुमार सरकार के अनुसार उक्त कोटि के समस्त 'मंगल' मूलतः गीत-संग्रह हैं। 'गंभीरा' उत्सव में 'धर्मपूजा' के अवसर पर ये मंगल-काव्य गाए जाते हैं और इनके साथ नृत्य और संगीत का भी अनुष्ठान रहता है।[410]

डॉ. भ्रमर के अनुसार इन मंगल-काव्यों से निर्गुण संतों के 'मंगल' गीतों का कुछ न कुछ संबंध अवश्य है।[411] इस संबंध में निश्चयपूर्वक तभी कुछ कहा जा सकता है, यदि उक्त दोनों प्रकार के मंगल काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए।

क. सा. की श. चतुर्थ भाग में 'गारी' शीर्षक के अंतर्गत 3 पद संगृहीत हैं।[412] विवाह आदि संस्कारों एवं होली आदि पर्वों में 'गारी' गायन का बहुत प्रचार है।

इसी पद संग्रह में 'जंतसार' शीर्षक के अंतर्गत 2 पद हैं।[413] 'जंतसार' चक्की पीसते समय स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले गीतों को कहते हैं। लोकगीतों में भी कबीर की पद शैली के निर्गुणपरक 'जंतसार' गीत प्रचलित हैं। नीचे उदाहरण दिए गए हैं।

संगीत में 'दादरा' एक ताल नाम के रूप में सुपरिचित है, किंतु कबीर के उक्त पद-संग्रह में 'राग दादरा' शीर्षक से 2 पद संकलित हैं।

राग, ताल और गीतशैली, इन तीनों के नामों में परस्पर विनिमय बहुत स्थानों पर देखा जाता है। उक्त स्थल पर 'दादरा' तालनाम की अपेक्षा, एक विशिष्ट गीत-शैली के रूप में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उल्लिखित है। कभी-कभी 'दादरा' से भिन्न ताल में भी 'दादरा' शैली के गीत मिलते हैं। 'दादरा' की ही भाँति 'ध्रुपद' एक गायन-शैली है, किंतु प्रचार में 'चौताल' को भी प्रायः 'ध्रुपद' कह दिया जाता है। इसी प्रकार 'धमार' एक ताल-विशेष (14 मात्राओं का) है किंतु उक्त ताल में गाए जाने वाले गीत को भी 'धमार' कहने का प्रचार है। 'होरी' नामक गीत-प्रकार के साथ बजने वाले 'दीपचंदी' (14 मात्रा) ताल का भी इसी प्रकार 'होरी' ताल-नाम प्रचलित है। 'मारू' एक राग-विशेष है, परंतु राजस्थान में 'ढोला मारू' नाम से एक विशेष गीत-शैली का भी प्रचार है, जिसका उल्लेख हम पीछे चतुर्थ अध्याय में कर चुके हैं।

इस प्रकार, राग-नाम, ताल-नाम अथवा गीत-शैली, शैली-नामों का एक दूसरे का स्थानापन्न होना, आश्चर्य का विषय नहीं है।[414]

क. सा. की श. में 'दादरा' का केवल लोक-गीत शैली के रूप में उल्लेख मिलता है, उसके साथ ताल नाम नहीं दिया गया।[415]

उक्त पुस्तक में 'रेखता' शीर्षक के अंतर्गत संगृहीत 20 छंद हैं, इन्हें भी लोक-गीत शैली में रखा जा सकता है। गीत-शैली के रूप में 'रेखता' का उल्लेख रा. क. में भी मिलता है।[416] कबीर के उक्त रेखता वाले सभी पदों में प्रायः 'हंसाल' छंद (20 और 17 मात्राओं के विश्राम से 37 मात्राएं, अंत में यगण) अथवा द्वितीय झूलना' छंद (10, 10, 10 और 7 मात्राओं के विश्राम से 37 मात्राएं, अंत में यगण) का व्यवहार मिलता है।

क. सा. की श. में मिलने वाले उक्त लोक-गीत प्रकारों का उपुर्यक्त पुस्तक में से नीचे एक-एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है।

(20) गारी

सतगुरु साहिब पाहुने आये, का लै करों मेहमान जी ॥
निरति के गेंडुवा गंगा जल पानी, परसे सुमति सयानी जी ॥
प्रथम लालसा लुचई आई, जुगत जलेबी आनी जी ॥
भात कि भाजी सील कि सेमा, बने कराल करेला जी ॥
हिय के हींग हृदय के हरदी, तत्त के तेल बघारे जी ॥
डारे धोइ विचार के जल से, करमन के करुवाई जी ॥
यह जोवनार रच्यो घट भीतर, सतगुरु न्योति बुलाए जी ॥
जेवन बैठे साहिब मोरे, उठत प्रेम रस मारी जी ॥
कहें कबीर गारी की महिमा, उपमा बरनि न जाई जी ॥"[417]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

 CC0. In Public Domain, Digitized by eGangotri

(21) जँतसार

इस शीर्षक के अंतर्गत मिलने वाले दोनों पदों में प्रत्येक प्रथम पंक्ति के अंत में 'हे सजनी, अहे सजनी' तथा प्रत्येक द्वितीय पंक्ति में ' रे की' शब्दों का प्रयोग द्रष्टव्य है। लोक-गीतों में भी 'रे की' पद का टेक के रूप में उक्त ढंग से प्रयोग मिलता है। तुलना-हेतु एक लोकगीत भी नीचे उद्धृत किया गया है। प्रथम, कबीर का एक 'जंतसार' गीत नीचे प्रस्तुत है:

'अपने पिया की मैं होइबों सोहागिनी-अहे सजनी।
भइया तजि संइयां संग लागब रे की ॥
संइयां के दुअरिया अनहद बाजा बाजै अहे सजनी।
नाचहिं सुरति सोहागिन रे की ॥
गंग जमुन के औघट घटिया हो अहे सजनी
तेहि पर जोगिया मठ छावल रे की ॥
देहों सतगुरु सुर्ती के बिरवा हो अहे सजनी।
जोगिया दरस देखे जाइब रे की ॥
दास कबीर या गावलें लगनिया हो अहे सजनी।
सतगुरु अलख लगाल रे की ॥'[418]

'सती सोरठी योगी बृजाभार' नामक लोक-कथा-काव्य में प्राप्त पदों में 'रे की' पद का टेक के रूप में बहुत प्रयोग मिलता है, उक्त पद से तुलना हेतु दो पंक्तियां नीचे प्रस्तुत की जाती हैं:

'पुजी तो गइले आजु मन के मनसवा हो।
गोतिन से अरज सुनावेलि रे की ॥'[419]

इस प्रकार 'टेक' के विभिन्न शब्दों की भांति 'रे की' शब्द का प्रयोग भी लोक-गीतों में प्रचलित है।

लोक में निर्गुण भाव के 'जँतसार' पदों का भी बहुत प्रचार मिलता है। एक गीत का कुछ अंश प्रस्तुत है।

'अब ना जाने क्या पड़ी गुइयां गई ससुराल में।
सब कहे ना चुप रहे औ रोव ना जियरा छोड़ के।
हो खुशी खुशी सासुरे चली जा, मोह माया तोड़ के।
खाली रह गई नेहरवा के, नातै छोटी ननदी री ॥
ससुरारी में पीसै कै पड़िहैं, जांते छोटी ननदी री ॥ टेक ॥
करम के साथी न होवैं नेहरे के लोगवा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जनम के साथी न होवें, नेहरे के लोगवा।
करमे के साथी करतार, छोटी ननदी।
ससुरारी में बनल हो ननदी,
अद्भुत जोड़ी जाता हो,
जे मन धातु चौरासी लखल छोटी ननदी ॥
भाव भरम के बोली ठोली, मारें ली जेठानी हो,
दाग देवर दिल लागै ना सुधारें छोटी ननदी।
शांत सलोने साजन सुनिहैं,
अब गितिया रसीली हो,
प्रेम के पिसना तब निगरें,
निधारें छोटी ननदी ॥
पीस के पिसना साजन खातिर,
चित चलनी में धरके हो,
अरें चिंता चोकर चाल के,
निसारै छोटी ननदी।
पवित्रता के पानी लेके, पुन्य परात में सारे हो।
धरम के नेमिया से, सुंदर रोटी बेले हो।
तो रीझ बलमवा तब वे जइवै, तब सब रोस भुलाई हो।
आदर से परोस के जैवाई छोटी ननदी।
रीझ बलमवा जब हो रजैहैं, आपन पियु अपने में पाई।
जब देखा मैं भरम गंवाई, भीतर पियु अपने में पाई।
ससुरारी में पीसे के परिहै, जातै छोटी ननदी ॥[420]

(22) दादरा

लोकगीत की दृष्टि से निम्नलिखित 'दादरा' गीतशैली के पद की भाषा-शैली द्रष्टव्य है;

'रमैया की दुलहिन ने लूटा बाजार ॥ टेक ॥
सुरपुर लूटा नाग पुर लूटा, तिन लोक मचि गइ हाहाकार।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारद मुनि के परी पिछार।
स्त्रिंगी की मिंगी करि डारी, पारासर के उदर विदार।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कनफूंका चिदाकासी लूटे, जोगेसुर करत बिचार।
हम तो बचि गये साहिब दया से, सब्द डार गहि उतरे पार।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, इस ठगनी से रहो हुसियार ॥'[421]

(23) रेखता

इन पदों में 'हंसाल' छंद का प्रयोग मिलता है, यथा;

'चला जब लोक को सोक सब त्यागिया,
हंस को रूप सतगुरु बनाइ ॥
भृंग ज्यों कीटि को पलटि भृंगे किया
आप सम रंग दै लै उड़ाई ॥'[422]

इस प्रकार संतकाव्य में लोकगीत की विभिन्न शैलियां लौकिक रूप में अथवा साहित्यिक रूप में मिलती हैं।

कबीर-ग्रंथावली, आदिग्रंथ आदि संतों के काव्य संग्रहों में अनेक पद तो हू-ब-हू लोकगीतों की शैलियों का अनुकरण प्रतीत होते हैं, यथा, कबीर के निम्न दो पदों में पति के लिए 'नणद के भइया' और 'नणद के वीर' आदि शब्दों का प्रयोग लोकगीतों की शैली की दृष्टि से द्रष्टव्य है,

(1) *'चरखा जिनि जरै।*
कातौंगी हजरी का सूत, नणद के भइया की सौं ॥
जलि जाई थलि ऊपजी, आई नगर में आप।
एक अचंभा देखिया, बिटिया जायो बाप।
बावल मेरा ब्याह करि, बर उत्यम ले जाहि।
जब लगि बर पावे, नहीं, तव लग तूं हीं व्याहि ॥
सबधी के घरि लुबधी आयो, आन 'बहू के भाइ।'
चूल्ह अगनि बताइ करि, फल सौ दीयो ठठाइ ॥
सब जगही मर जाइयो, एक बढ़इया जिनि मरे।
सब रांडनि को साथ, चरषा को धरै ॥
कहै कबीर सो पंडित ज्ञाता, सो या पदहि बिचारे।
पहले परचे गुर मिले, तो पीछें सतगुरु तारे ॥'[423]

उक्त पद में 'बावल मेरा व्याह करि, बर उत्यम ले जाहि'[424] वाकय तथा 'बहू के भाई'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदि पद भी उक्त दृष्टि से ध्यातव्य हैं।

(2) *'अब मोहि ले चलि नणद के वीर, अपनें देसा।*
इन पंचनि मिलि लूटी हूं, कुसंग आहि बदेसा॥
गंग तीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहानां।
सातों बिरही मेरे नीपजै, पंचूं मोर किसानां॥
कहै कबीर यहु अकथ कथा है, कहतां कही न जाई।
सहज भाई जिहिं ऊपजै, ते रमि रहे समाई॥'[125]

इस प्रकार के पूर्णतः लोकगीतों की शैली के अनुकरण पर लिखे गये कबीर के कुछ प्रसिद्ध अन्य पद भी यहाँ उद्धृत किए जाते हैं:

(3) *'खेल ले नैहरवा दिन चारि।*
पहिली पठौनी तीन जन आयो, नौवा बाम्हन बारि।
बाबुलजी मैं पैंया तोरी लागों, अब की गवन दे टारि।
दुसरी पठौनी आपै आए, लैके डोलिया कहार।
धरि बहियां डोलिया बैठारिन, कोउ न लागै गोहार।
ले डोलिया जाइ बन में उतारिन, कोई नहिं संगी हमार।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, इक घर हैं दस द्वार॥'[126]

(4) *'कलजुग में प्यारी मेहरिया।*[127]
बात कहत मुंह फारि खातु है, मिली धमधुसरि धंगरिया।
भीतर रहत तों घूंघट काढ़त, बाहर मारत बजरिया।
सास ससुर को लातन मारत, खसम को मारत लतरिया।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, जमपुर जावै मेहरिया।'

(5) *आज सुहाग की रात पियारी*
क्या सोवे मिलने की बारी॥ 1॥
आये ढोल बजावत बाजत,
बनरी ढांपि रही मुख लाजन।
खोल घुंघट मुख देखेगा साजन॥ 2॥
सिर सोहै सेहरा हाथ सोहै कंगना।
झूमत आवे बन्ना मेरे अंगना॥ 3॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहत कबीर कर दरपन लीजै।

अब मन मानै सोई सोई कीजै ॥ 4 ॥[128]

संत कवि जनता-जनार्दन के कवि थे, अतः उक्त कोटि के अनेक पद उनके काव्यसंग्रहों में मिलते हैं और यह निश्चित है कि लोकगीत-शैली के सर्वाधिक पद 'कबीर' के नाम से प्रकाशित काव्य-संग्रहों में मिलते हैं, यद्यपि यह अलग बात है कि उनमें अधिक संख्या, प्रक्षिप्त पदों की भी हो सकती है।

इस प्रकार, पीछे हमने विभिन्न लोकगीत-प्रकारों का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया। अब आ. ग्रं. में गायन-हेतु संगृहीत विशिष्ट निर्देशों की संक्षिप्त विवेचना की जाएगी। ये 'विशिष्ट निर्देश' भी वास्तव में विविध लोकगीत-शैलियों के अंग ही हैं, ऐसा समझना चाहिए। पृथक् रूप से इनको स्पष्ट करने की आवश्यकता महसूस हुई इसीलिये इन्हें लोकगीत-शैलियों से अलग कर दिया गया।

(6) आदिग्रंथ में गायन-हेतु उल्लिखित विशिष्ट निर्देशों का मर्म

घरुः

आ. ग्रं. में संतों के रागबद्ध पदों के साथ 'घरों' का उल्लेख मिलता है। ग्रंथ में इन घरों की संख्या 17 अंक तक मिलती है।

उक्त प्रसंग में 'घरु' शब्द स्वरचक्र अथवा तालप्रकार का व्यंजक प्रतीत होता है। इस संबंध में अभी तक कुछ निश्चय नहीं हो सका है तथा विद्वानों में पर्याप्त मतभेद मिलता है।

कुछ विद्वान् आ. ग्रं. में प्रयुक्त 'घरु' नामक विशिष्ट शब्द का अर्थ 'ताल' अथवा 'तार' (सप्तक?) मानते हैं।[429]

जहाँ तक 'घरु' शब्द को 'ताल' का वाचक मानने का प्रश्न है, उक्त मतावलंबी विद्वानों ने यह स्पष्ट नहीं किया कि उपर्युक्त 17 'घर' किन - किन तालनामों के बोधक हैं। आ. ग्रं. समाविष्ट बानियों का गुरुद्वारों में अद्यावधि प्रचलित प्राचीन गायन-परंपरा के अनुसार लिखी गई सरदार ज्ञानसिंह की पुस्तक गु. सं. में केवल एकताल, तीनताल, चारताल, पंजताल (पांच मात्राओं की ताल) खटताल तथा असठताल आदि का उल्लेख है[430], किंतु 17 मात्राओं तक के सूचक अन्य संपूर्ण तालनामों का यहाँ उल्लेख नहीं मिलता।

इसके अतिरिक्त यहाँ विचारणीय है कि यदि 'घरु' का अर्थ हम 'ताल' मान भी लें तो आ. ग्रं. में जहाँ गुरु-कवियों की बानी के साथ 'पड़ताल' शब्द का उल्लेख मिलता है और उसके साथ ही 'घरु' की भी कोई निश्चित अंक संख्या रहती है, वहाँ 'घरु' का अर्थ क्या लेना होगा? इस संबंध में उक्त मत के समर्थक एक विद्वान् का मत है कि, 'क्योंकि 'पड़ताल'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का अर्थ है, एक से अधिक तालों में गाना, अतः 'पड़ताल' वाले पद का प्रथमतः जिस ताल से गायन प्रारंभ करना होगा, उसके साथ उद्धृत घरु संख्या का सर्व प्रथम प्रयुक्त होने वाली ताल की ओर संकेत है।[431] किंतु 17 अंक संख्या से अधुना प्रचलित किन 17 तालों का अर्थ ग्रहण किया जाए, इस संबंध में कुछ निश्चित नहीं हो सका।

जहाँ तक 'घरु' का अर्थ तार अर्थात् सप्तक से लिया जाता है,[432] यह मत आश्चर्यजनक है, क्योंकि तीन सप्तक से ऊँचा गान प्रायः न देखा गया है और न ही सुना गया है, फिर 17 सप्तक तक गायन की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतः इस मत को भी ठीक नहीं माना जा सकता।

कतिपय विद्वान 'घरु' का संबंध तर्ज़ अथवा सांगीतिक-स्वरलिपि से मानते हैं। उनके अनुसार किसी पद के साथ संलग्न 'घरु' की विभिन्न अंक संख्याओं का निर्देश यह रहता है कि उक्त पद को उसके साथ संलग्न अंक की स्वरलिपि के अनुसार गाया जाए।[433] किंतु कौन सी 'धुनि' किस अंक की है, इस संबंध में कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता।

पंडित तारासिंह के अनुसार संगीतशास्त्र में सात स्वर ही मूल स्वर माने गए हैं, अतः अष्टमादि घरों को स्वर का स्वरूप कैसे दिया जा सकता है, अतः 'घरु' स्वर संदर्भ नहीं और ग्रहस्थान भी नहीं, क्योंकि किसी भी रागविशेष का एक मुख्य स्वर ही ग्रहस्वर होता है, अतः यदि रागों के ग्रहस्थानों को घर मानें तो भी एक-एक राग में बहुत-बहुत घर होने से संगति नहीं बैठती, अतः घर उतरी-चढ़ी स्थिति स्वरों के भेदों से रागों का प्रकार-विशेष है।[434]

कोमल और शुद्ध स्वरों के भेद से रागों के ऐसे प्रकार-विशेष आज सिक्ख-रबाबियों एवं रागियों में भी कहीं सुनने में नहीं आते, अतः इस संबंध में पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं हो पाता।[435]

डॉ. धर्मपाल मैनी ने भी अपनी पुस्तक 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब एक परिचय' में इस शब्द के विवेचन की ओर ध्यान नहीं दिया।

डॉ. जयराम मिश्र ने भी इस संबंध में अनिश्चय के कारण 'घरु' को तालों अथवा सुरों के सांकेतिक चिह्न मात्र कहकर छोड़ दिया है।[436]

'श्री गुरु ग्रंथ कोष' में 'घरु' का प्रासंगिक अर्थ राग के प्रधान स्वर की संख्या तथा तीन 'ग्रामों के विशेष स्वरों को 'घरु' कहा गया है।[4] यह मत बहुत समीचीन प्रतीत होता है।[437]

आ. ग्रं. में हम 'राग' को 'थाट' की भांति एक व्यापक स्वर-विधान मान सकते हैं। और 'घरु' संख्याओं को उसके अंतर्गत अवान्तर विभाग माना जा सकता है। जिस प्रकार ग्रह, अंश, न्यास, मूर्छना, एवं जातिभेद से (औडुव-षाडवादि) एक ही स्वरावली में से अनेक प्रकार के स्वर-सन्निवेश बनाए जा सकते हैं, उसी प्रकार 'घरु' को भी राग में वैशिष्ट्य लाने का एक प्रकार विशेष कहा जा सकता है, जिसकी गायन-परंपरा आज लुप्त हो चुकी है, ऐसा माना जा सकता है, क्योंकि 'दरबार साहिब' मैं अमृतसर के पुराने रागियों में भी आज इस परंपरा का निर्वाह नहीं देखा जाता और इस संबंध में उनमें अभी तक अज्ञान बना हुआ है।[438]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धुनें:

आदिग्रंथ में 22 वारों का उल्लेख मिलता है, जिनमें से 9 वारों पर गायन-हेतु धुनों का निर्देश मिलता है, यथा,

1. वार माझ की तथा सलोक म. 1, 'मुरीद तथा चंद्रहड़ा सोहीआ कौ धुनी गावणी।'
2. गौड़ी की वार म. 5, 'राइ कमाल दी भोज दी की वार की धुनि ऊपर गावणी।'
3. आसा म. 1, वार सलोका नालि सलोक भी पहले-पहले के लिखे टुंडे असराजे की धुनि।'
4. गूजरी की वार महला 3, 'सिकंदर बिराहिम की बार की धुनि गाउणी।'
5. बडहंस की वार म. 4, 'लला बहलीमा की धुनि गाबणी।'
6. रामकली की वार म. 3, 'जोधे वीरै पूरबकी की धुनि।'
7. सारंग की.वार म. 4, 'राइ महमे हसने की धुनि।'
8. वार मलार की म. 1, 'राणे कैलास तथा मालदे की धुनि।
9. कानेड़े की वार म. 4, 'मूसे की वार की धुनि।'

ये नौ वारों पर निर्दिष्ट नौ धुनें छठी पातशाही द्वारा निर्दिष्ट कही जाती हैं, परंतु इस संबंध में प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है।[439] इन नौ धुनों को तत्कालीन युद्ध-वीरों के यशोगान में गाई गई प्रसिद्ध वारों की 'धुन' (तर्ज) पर गाने का आदेश है। छठे गुरु को जीवन पर्यन्त युद्धों में ही लड़ना पड़ा था, अतः कहा जाता है कि जिन शूरवीरों ने अपने शौर्य से लोक-परलोक में यश कमाया और उनके यश गाकर ढाढियों ने अन्य शूरवीरों को उत्साहित करने के हेतु उन्हें वारें सुनाईं, वे ही वारें ढाढियों ने छठे गुरु को सुनाईं, जिनमें से उन्होंने 9 वारों की धुनि पसंद करके उन्हें आ. ग्रं. में स्थान दिया। म. 1 तथा म. 5 की वारों पर निर्दिष्ट धुनों का आगे विवरण दिया जा रहा है।

एक सुआनु के घरि गावणा

यह गायन-हेतु विशिष्ट निर्देश है, जिसका उल्लेख आ. ग्रं. में, 'सिरी' राग में कबीर के 3 पदों को गाने के लिए मिलता है।[440] 'श्री' राग में महला 1 के एक पद की प्रथम पंक्ति है 'एक सुआनु दुइ सुआनी नालि।'[441] इस पद को वहां 'घरु 4' में गाने का निर्देश किया गया है, इसी घरु संख्या 4 के अनुसार उक्त शीर्षक 'एक सुआनु के घरि गावणा' के अंतर्गत कबीर के 3 पदों को गाने का ऊपर निर्देश किया गया है।[442]

यानड़ीए के घरि गावणा

आ. ग्रं में कहीं-कहीं पद में गायन हेतु घरु-संख्या का निर्देश न कर उस पद को किसी अन्य विशेष पद के प्रथम कुछ शब्दों के अनुसार गाने का संकेत किया जाता है,[443]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे—'एक सुआन के घरि गावणा,[444] इसी प्रकार राग विलावल , म. 5 के एक पद के ऊपर 'यानड़ीए के घरि गावणा' शीर्षक का उल्लेख मिलता है[445] तथा राग तिलंग, म. 1 के एक पद की प्रथम पंक्ति में 'इआनड़ीए मानड़ा काइ करेहि' में 'इआनड़ीए' शब्द का व्यवहार किया गया है, कतिपय विद्वानों के अनुसार 'इ' और 'आ' की संयुक्त ध्वनि की प्रतीति 'य' की ही भांति होती है, अतः 'यानड़ीए' और 'इयानड़ीए' दोनों शब्दों में कोई अंतर नहीं, अपितु एक ही अर्थ के द्योतक हैं, अतः राग बिलावल महला 5 के उक्त पद 'यानड़ीए के घरि गावणा' शीर्षक वाले पद को राग तिलंग, म. 1 के 'इआनड़ीए मानड़ा काइ करेहि' पर निर्दिष्ट घरु संख्या के अनुसार गाने का निर्देश किया गया है।[446]

परंतु यहाँ एक तथ्य विचारणीय है कि म. 5 के (यानड़ीए के घरि गावणा वाले) राग 'बिलावल' वाले पद को गाने के लिए घरु सं. 2 का निर्देश मिलता है तथा (इआनड़ीए मानड़ा काइ करेहि वाले) म. 1, के राग 'तिलंग' वाले पद को गाने के हेतु घरु सं. 3 का उल्लेख मिलता है, अतः म. 5 के उक्त पद को 'यानड़ीए के घरि गावणा' शीर्षक के अनुसार किस घरु संख्या में गाने का आशय लेना चाहिए?

डॉ. चरणसिंह ने 'घरु' का अर्थ ताल लिया है, अतः उनके मतानुसार उक्त शीर्षक का संकेत यह है कि उसके अंतर्गत पद को दो भिन्न तालों में भी और तीन तालों में भी गाया जा सकता है।[447] हम आंशिक रूप से डॉ. साहब के मत से सहमत हैं, किंतु 'घरु' का अर्थ जैसा कि हम पीछे स्पष्ट कर चुके हैं, तदनुसार यहाँ भी इसका अर्थ 'ताल' न लेकर वह विशिष्ट अर्थ ही लेना होगा, अतः उक्त निर्देश का अर्थ हुआ कि उसके अंतर्गत पद को घरु 2 और 3 दोनों (घरु संख्याओं) में गाया जा सकता है।

बिरहड़े : आसा म. 5, घरू 4, छंतां की जति

यह वाणी 'आसा' राग में महला 5 की कृति है, जिसमें प्रभु-प्रियतम से बिछुड़ी जीवात्मा की मिलन-हेतु तड़प वर्णित है, यथा,

'इह तनु बैची संत पहि प्यारे, प्रीतम देह मिलाइ।'[448]

बिरहगीत होने के कारण ही सम्भवतः इस बानी को 'बिरहड़े' कहा गया है।[449]

'आसा राग में घरु 4 छंतां की जति' गायन-हेतु निर्देश है, अर्थात् इस शीर्षक के अन्तर्गत तीनों पदों को घरु 4 में गाए जाने वाले छंतों के ढंग पर गाना चाहिए।

रहोए के छंतों के घर

'यानड़ीए के घरि गावणा' 'पहिरिआ के घरि गावणा' तथा 'एक सुआनु के घरि गावणा' की भांति 'रहोए के छंतों के घर' भी गायन हेतु निर्देश सूचक शीर्षक है। यह निर्देश आ. ग्रं. में राग 'गौड़ी वेरागणि' में म. 5 की वाणी को गाने के लिए किया गया है।[450]

डॉ. चरण सिंह ने आ. ग्रं. में गायन-हेतु उल्लिखित उक्त शीर्षक की संगीत शास्त्र में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी खोज के अनुसार 'स्थाय' अथवा 'ठाय' के 96 भेदों में से 'स्थायीना' नामक 'स्थाय' ठाय के एक भेद का उल्लेख किया है। उनके अनुसार 'जब पद के सभी चरणों के अंत का ठहराव विश्रामपूर्वक विशेष ढंग से उच्चार किया जाए, उसे 'स्थायीन' कहा जाता है तथा जब उस स्थायीना के साथ रागखंड का प्रयोग हो, तब उसे 'स्थायीना स्थायी' कहा जाता है।[451]

डॉ. साहब ने उक्त मत की पुष्टि में कोई ग्रंथ-संदर्भ नहीं दिया है। सं. र. अथवा अन्य किसी भी प्रकाशित संगीतशास्त्र के ग्रंथ में 'स्थायीना' नामक 'स्थाय' के किसी भेद का उल्लेख नहीं मिलता। स्थाय (ठाय) के शास्त्रों में 96 भेद वर्णित हैं, जिनमें 'स्थायीना' नामक 'स्थाय' का कोई भेद नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ. साहब ने उक्त खोज के प्रसंग में स्वयं किसी संगीतशास्त्र के ग्रंथ को नहीं देखा होगा, अपितु उन्होंने किसी से सुने-सुनाये के आधार पर ही उक्त मत निर्धारित कर लिया होगा।

'छंत' नामक गीतशैली, पंजाबी लोकगीतों का एक प्रसिद्ध प्रकार है, जोकि अद्यापि प्रायः बच्चों के चेचक निकल आने पर ग्रामीण-वृद्धा- स्त्रियों द्वारा गाया जाता है। इन छंतों क़ा तुकांत 'रहाउ' की भाँति बारंबार ठहराव सहित एवं पुनरावर्तन द्वारा रस उत्पन्न कर गाया जाता है और ऐसा कहा जाता है कि ये छंद प्रायः तीन ताल में गाए जाते हैं, उसी प्रकार 'गौड़ी बैरागणि' के निम्न शबद 'कोई राम पियारो गावे' को भी तीन ताल में गान को आदेश है।[452]

वास्तव में 'रहोए' शब्द का अर्थ है, जो पद 'रहाउ' की भाँति रह-रहकर अर्थात् पुनरावृत्ति द्वारा गाया जाए।[453]

इस प्रकार 'रहोए छंतों के घर' का अर्थ हुआ, 'छंद' नामक़ लोकगीत के प्रकार के वे पद, जो किसी विशेष शब्द के ठहराव तथा पुनरावर्तन द्वारा गाए जाते हैं, उन्हीं की गेय-रीति से घरु संख्या तीन में म. 5 का निर्दिष्ट पद गाया जाए।[454]

डॉ. कोहली भी 'छंत' को लोकगीत का एक प्रकार मानते हैं तथा 'रहोए' शब्द, उनके अनुसार 'रहाउ' से बना है जिसका अर्थ है, ठहराव तथा पुनरावर्तन।[455]

अतः उक्त प्रसंग में म. 5 के पद-विशेष को 'रहाउ' सहित छंतों की रीति पर गाने का निर्देश है।[456]

छंद की दृष्टि से उक्त पद में प्रायः 'चौपाई' का प्रयोग मिलता है।

उपसंहार

पीछे हमने निर्गुण संतकाव्य में उपलब्ध विभिन्न स्तरों की गायन-शैलियों का वर्गीकरण कर इन विविध गायन शैलियों के साथ विभिन्न रागों एवं तालों का संबंध, लोकसंगीत के विविध प्रकारों का संक्षिप्त परिचय तथा आ. ग्रं में गायन-हेतु उल्लिखित अनेक विशिष्ट निर्देशों का परिचयात्मक विवरण दिया है। उक्त विषयों का समग्र दृष्टि से अध्ययन करने पर अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों की ओर ध्यान आकृष्ट होता है। संक्षेप में उनका नीचे उल्लेख किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है।

(1) हमारे शास्त्रकारों ने विभिन्न गायन-शैलियों का स्तर-विभाजन करते हुए शास्त्रीय-संगीत को प्रथम कोटि में स्थान दिया है।[157] इसका कारण है, विशुद्ध शास्त्रीय संगीत में नियमों का कठोर बंधन, भावपक्ष एवं कलापक्ष का समन्वय, लक्ष्य; मनोरंजन की अपेक्षा, नादब्रह्म का साक्षात्कार और निर्माताओं का शास्त्रज्ञ होना आदि तत्त्वों की प्राथमिकता; जब कि इसके विपरीत, सुगम शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, पद्यगान एवं लोकसंगीत में नियमों का अपेक्षाकृत शिथिल बंध रहता है। भावपक्ष एवं कलापक्ष में से किसी एक पक्ष का प्राधान्य और अन्य की गौणता रहती है। लक्ष्य, मनोरंजन होता है तथा निर्माताओं के लिए 'शास्त्र' से पूर्णतः परिचित होना भी तुलना की दृष्टि से कम अपेक्षित रहता है अतः उक्त गायन-शैलियों को क्रमशः निम्नतर स्तरों में स्थान दिया गया है। यह विषय अत्यंत व्यापक है। शोध-प्रबंध की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए विषय की विस्तृत चर्चा करना यहाँ संभव नहीं, अतः निर्देश-मात्र करके ही संतोष मान लिया गया है।

गायन-शैलियों के वर्गीकृत उक्त विभिन्न स्तरों का उल्लेख करने के पश्चात् संगीत -शास्त्र में किए गए संगीत के महत्त्वपूर्ण एवं मूल-विभाजन 'मार्ग' और 'देशी' की भी संतकाव्य में स्थिति पर, यहाँ थोड़ा विचार कर लेना स्थानीय होगा।

भारतीय संगीतशास्त्र में 'मार्ग' और 'देशी' का विभाजन मूलतः 'प्रयोजन' पर आधारित है।[158] 'मार्ग' संगीत का लक्ष्य 'महोदय' कहा गया है और इस 'नियताभ्युदयप्रदः' अर्थात् निश्चित रूप से अभ्युदय (आत्मोत्थान) करने वाला कहा गया है। 'देशी' को "देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरंजनम" अर्थात् जो देश के व्यक्तियों को रुचिकर होता है और उनके हृदयों का रंजन करता है, कहा है।

परंपरागत रूप से 'मार्ग' को निःश्रेयस् प्रदान करने वाला माना गया है और 'देशी' को मनोरंजनकारी-मात्र कहा गया है। दर्शन की परिभाषा में 'मार्ग' को 'भूमा'[159] की स्थिति का तादात्म्य कराने वाला, उच्च-कोटि का आध्यात्मिक संगीत कहा जा सकता है और 'देशी' को 'अल्प'[160] की अभिव्यक्ति का माध्यम कह सकते हैं।[461]

मार्ग को कभी-कभी अनाहत नाद का प्रयोग भी समझ लिया जाता है, किंतु 'मार्ग' और 'देशी' में इंद्रियजन्य व्यापार अनिवार्य रहता है, जबकि अनाहत नाद में इंद्रियजन्य व्यापार का सर्वथा अभाव रहता है। 'मार्ग' इंद्रियजन्य व्यापार से संबंधित होते हुए भी अलौकिक एवं निःश्रेयस प्रदान करने वाला है।

हमारे शास्त्रों में नाट्य से स्वतंत्र प्रयुक्त होने वाले रागों को ही 'देशी' राग कहा गया है। ग्रामरागों को मार्ग का प्रतिनिधि माना गया है और ग्रामराग संभवतः नाट्य के प्रसंग में ही प्रयुक्त होते थे। इससे यह समझा जा सकता है कि नाट्य में प्रयुक्त संगीत का स्तर अन्य संगीत की अपेक्षा उच्च कोटि का माना गया है। अर्थात् नाट्य उपवेद अथवा पंचम है, अतः वह अपने शुद्ध स्वरूप में अनिवार्यतः निःश्रेयस् का साधक है और यही गुण उसमें प्रयुक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होने वाले संगीत में भी माना जा सकता है, किंतु नाट्य से स्वतंत्र संगीत लौकिक प्रयोजन का साधक भी हो सकता है, अतः उसे 'देशी' के अंतर्गत रखा गया।

'मार्ग' और 'देशी' में प्रयोग की दृष्टि से भी एक अंतर यहाँ उल्लेखनीय है। 'मार्ग' संगीत, प्रयोक्ता के अपने आनंद तक ही सीमित रहता है, वह स्वान्तः सुखाय 'होता है, श्रोता के लिए उसका प्रयोग नहीं होता, दूसरी और 'देशी' का प्रयोग श्रोताओं को आह्लादित करने के लिए होता है अथवा इसी बात को यों कह सकते हैं कि 'देशी' के प्रयोक्ता के लिए ' 'सर्वान्तः सुख' में ही 'स्वान्तः सुख' निहित रहता है। इस प्रकार, प्रयोग की दृष्टि से भी संगीत के कोटि-द्वय में स्थूल अंतर रहता है।

अब हमें देखना यह है कि निर्गुण संत काव्य को 'मार्ग' की श्रेणी में रखा जाए अथवा 'देशी' की कोटि में?

संतों की संगीत-साधना, आत्म-साधना अथवा आत्म-स्वरूप की उपलब्धि के उच्च उद्देश्य से अनुस्यूत थी, जैसा कि हम शोध प्रबंध के द्वितीयाध्याय में देख चुके हैं, अतः प्रयोजन की दृष्टि से समस्त निर्गुण संत काव्य को 'मार्ग' की श्रेणी में रखा जा सकता है। यह निर्विवाद है कि भारतीय संगीत; अध्यात्म-साधना का अंग है और इस साधना के साथ मार्ग-संगीत का प्रत्यक्ष संबंध अवश्य है। अतः तत्त्व की दृष्टि से निर्गुण संतकाव्य को 'मार्ग-संगीत' के अंतर्गत स्थान दिया जा सकता है। किंतु स्वरूप की दृष्टि से यह 'देशी' कोटि का कहा जाएगा। 'मार्ग' में (1) जाति और ग्रामराग, (2) गीतक के 14 भेद, (3) मार्गतालों इत्यादि स्वर-संदर्भों एवं तालों के नाम के रूप में जिन तत्त्वों की व्यवस्था रहती है, उस दृष्टि से संत काव्य को 'देशी' की कोटि में ही स्थान मिलेगा।

प्रस्तुत अध्याय-खंड में संत पदावली में मिलने वाली विविध गायन-शैलियों से संयुक्त रागों का अध्ययन करने पर अनेक निष्कर्ष निकलते हैं।

ध्रुपद तथा ख्याल शैली से संबद्ध रागों के तीन वर्ग बनाए जा सकते हैं।

(अ) प्रथम वर्ग, उन रागों का बनाया जा सकता है, जिनमें दोनों शैलियों का प्रायः समान रूप से विस्तार मिलता है। यथा, गौड़ी, भैरव, टोड़ी, वडहंस, सूही, देवगंधारी, बिलावल आदि।

(आ) द्वितीय वर्ग, उन रागों का बन सकता है, जिनमें किसी एक शैली की प्रधानता हो। संतकाव्य में मिलने वाले ख्याल शैली-प्रधान राग आसा, माझ, सोरठ आसावरी, गूजरी, धनाश्री, वसंत और सारंग आदि हैं।

तथा ध्रुपद-शैली-प्रधान राग, विभास और कान्हड़ा आदि हैं।

(इ) संतों की राग-ताल-निबद्ध पदावली में मिलने वाले तृतीय वर्ग के वे राग हैं, जो प्रायः किसी एक शैली तक ही सीमित हैं।

वैराड़ी, मारू, तुखारी और खट् राग केवल ख्याल शैली तक सीमित हैं। विभास और कान्हड़ा तथा दरबारी में ध्रुपद भी मिलते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज के प्रचार की दृष्टि से देखें तों संतों की ध्रुपद और ख्याल शैली में निबद्ध पदावली में अनेक रागनाम ऐसे मिलते हैं, जो आज प्रचार में नहीं रहे, यथा तुखारी, बैराड़ी और खट् आदि।

इसके विपरीत जयजयवन्ती और भीमपलासी आदि अधुना बहु-प्रचलित रागों का विशेष उल्लेख, ध्यातव्य है।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब अध्ययन-विभाग पंजाबी यूनिर्वसिटी, पटियाला ने सन् 1996 में गुरुवाणी के दरबारी गायकों भाई अवतार सिंह तथा भाई गुरचरण सिंह जी के द्वारा लिखित पुस्तक प्रकाशित की है 'गुरु बाणी संगीत प्राचीन रीत रतनावली।' इसमें गुरुबाणी की 492 स्वर लिपियाँ दी गई हैं और आज नितांत अप्रचलित रागों के भी स्वरूप दिए गए हैं। तुखारी, खट, माझ, गौड़ी बैरागणी, गौड़ी गुआरेरी, वडहंस, सोरठ, धनश्री भीमधनाश्री, जैतश्री, बैराड़ी तथा इनके अन्य रागों से मिश्रण वाले स्वरूप भी मिलते हैं। पौड़ियों और वारों की धुनें भी मिलती हैं।

इसी प्रकार; भानमती, जगपाल, जै, फ़रोदस्त, पंजताल सवारी, खट, अष्ट, शिखर, इंद्र, ढाई तथा पौड़ी आदि तालें भी शास्त्रीय-संगीत में प्रचलन में नहीं हैं, गुरुद्वारों में, रागियों में इनका चलन अवश्य होगा जोकि शोध का स्वतंत्र विषय हो सकता है।

ठुमरी शैली में संतों के बहुत कम पद मिलते हैं। रा. क. में सुंदरदास के 'सवैया' ग्रंथ के कुछ सवैयों में ठुमरी शैली के निर्देश के साथ 'सिंधु'[462] राग का उल्लेख है।

रा. क. में 'कबीर बीजक' के कुछ पदों में भी ठुमरी शैली का निर्देश किया गया है, किंतु यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि उक्त पदों के साथ 'ठुमरी तिताला'[463] यह उल्लेख ही मिलता है, रागनाम का यहाँ निर्देश नहीं किया गया। इस विषय में हम पीछे विचार कर चुके हैं।

रा. क. में सुंदरदास के सवैयों और कबीर के पदों का ठुमरी शैली में पाया जाना, इस बात का द्योतक है कि निर्गुण संतों के उक्त सवैयों एवं पदों का रा. क. के संग्रह काल के समय प्रचलन अवश्य रहा होगा।

(3) आ. ग्रं. में 'पड़ताल'[464] शीर्षक से संतों के अनेक पद संगृहीत है जिनकी स्वरलिपि गु. सं. में दी गई है। इन 'पड़ताल' वाले विभिन्न पदों की स्वरलिपि के साथ चारताल, रूपक, एकताल (यक्का) सूलफाक या सूलताल, त्रिताल, सवारी पांचताल (15 मात्रा) तथा ढाई ताल (7 मात्रा) इन कुल 7 तालों का प्रयोग मिलता है। इन पदों के साथ आसावारी, वडहंस, धनासरी (धनाश्री), सिंधूरी-टोड़ी, सूही, बिलावल, रामकली, नट, भैरव, वंसत, सारंग और कानड़ा (दरबारी) ये 12 रागनाम संबद्ध हैं।

इस प्रकार 'पड़ताल' वाले पदों में ध्रुपद और ख्याल दोनों शैलियों के ताल मिलते हैं और दूसरी ओर गंभीर एवं क्षुद्र प्रकृति के, ये दोनों वर्ग के रागनाम जुड़े हैं।

अब प्रश्न यह है कि 'पड़ताल' से संबद्ध पदों को किस गायन-शैली में सम्मिलित किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाए?

किसी-किसी पड़ताल में (अ) सभी ख्यालशैली के ताल मिलते हैं, यथा- 'बिलावल'[465] की पड़ताल में त्रिताल, ढाई ताल और एकताल, सारंग[466] की पड़तालों (दो पड़तालों सारंग में) क्रमशः त्रिताल, एकताल, तथा एकताल और रूपक ख्यालशैली की दो-दो तालों का प्रयोग मिलता है।

(अ) दूसरी ओर, ऐसी पड़तालें भी मिलती हैं, जिनमें विशुद्ध ध्रुपदशैली के चारताल, सूलताल आदि तालों के साथ एकताल, त्रिताल, जैताल, चंचल ताल और रूपक आदि ख्याल शैली की तालों का मिश्रण मिलता है। जैसे; सिंधूरी-टोड़ी'[467] की पड़ताल में चौताल और सूलताल के साथ जैताल का प्रयोग हुआ है, 'कानड़ा'[468] की पड़ताल में सूलताल और चारताल के साथ चंचल ताल का सम्मिश्रण मिलता है।

उपर्युक्त अध्ययन के परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकलता है कि 'पड़ताल' स्वयं ही एक विशिष्ट गायन शैली है, जोकि ध्रुपद एवं ख्याल शैली का मिश्र रूप कही जा सकती है, कभी-कभी विशुद्ध ख्याल शैली में भी इसका प्रयोग होता होगा, किंतु विशुद्ध ध्रुपद शैली के अंतर्गत इसे नहीं रखा जा सकता है।

इस संदर्भ में एक बात की ओर विशेष ध्यान जाता है कि गु. सं. में संगृहीत पड़तालों में झपताल और दादरा तालों का प्रयोग नहीं मिलता।

(4) गायनशैली के निर्णय की दृष्टि से गु. सं. में संतों की स्वरलिपियों में प्रयुक्त बड़े-बड़े ताल इंद्र, खट, भानमती, मल्ल आदि पर भी विचार करना यहाँ आवश्यक है। उक्त तालों में गायन आज नितांत अप्रचलित है। इंद्रताल 19 मात्रा का ताल है, खटताल 18 मात्रा का है, भानमती 11 मात्रा का ताल है और मल्लताल 21 मात्राओं का ताल है।[469]

गु. सं. में कबीर के 'खटताल' में निबद्ध एक पद की स्वरलिपि में ध्रुपद अंग की भांति स्थायी, अंतरा, संचारी और आभांग चारों धातुओं का प्रयोग मिलता है, अतः 'खटताल' को ध्रुपद शैली में विहित ताल माना जाए?

(5) कबीर के पद-संग्रहों में उनके पदों के अंतर्गत बहुत कम रागों का नामोल्लेख मिलता है, किंतु रा. क. में उनके पद विभिन्न रागों एवं तालों में मिलते हैं और यही नहीं ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी, छंदोगान तथा लोकसंगीत आदि आज की सभी प्रचलित गायन-शैलियों का तालों द्वारा अथवा स्पष्ट निर्देश भी मिलता है। रा.क. में क.बी. के दो पदों में 'चाचरी' लोकगीतशैली के दो पद 'धनाश्री तिताला'[470] में निबद्ध हैं, 'हिंडोला' के पद भी 'धनाश्री-तिताला'[471] में निबद्ध हैं। इसी प्रकार, 'वसंत' वर्ण्य विषय के पद एवं उक्त वर्ण्य विषय से इतर विषयों के 'बसंत' शीर्षक वाले प्रायः सभी पदों के साथ 'धमार' ताल का निर्देश भी ध्यान देने योग्य है।

सुंदरदास के 'सवैया' ग्रंथ के अंतर्गत रागनामों का निर्देश उनके किसी स्वतंत्र संस्करण में नहीं मिलता, किंतु यह केवल रा. क. ग्रंथ का वैशिष्ट्य है कि उसमें सुंदरदास का उक्त संपूर्ण ग्रंथ राग-तालबद्ध है और उसमें विविध राग-तालों के निर्देश के अतिरिक्त धमार, ख्याल, ठुमरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और लावनी आदि आज की प्रचलित विभिन्न गायन-शैलियों का उल्लेख भी मिलता है। इसके अतिरिक्त इन सवैयों में ध्रुपद-शैली का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है।

रा. क. की भांति गु. सं. ग्रंथ में संत नामदेव, कबीर, नानक और गुरु अर्जुनदेव हमारे इन चार विवेच्य कवियों के पदों में विभिन्न राग-ताल का निर्देश मिलता है। इस ग्रंथ का एक निजी वैशिष्ट्य यह है कि संतों के विभिन्न राग-तालबद्ध पदों की स्वर-लिपियां भी इसमें दी गई हैं। उक्त ग्रंथ में भी संतों के ध्रुपद, ख्याल, सुगम शास्त्रीय, तथा सुगम संगीत आदि विविध गायन-शैलियों का तालों द्वारा निर्देश मिलता है। इसके अतिरिक्त 'पड़ताल' और 'पउड़ी' आदि कुछ विशिष्ट गायनशैलियों के वाचक तालनाम भी मिलते हैं। गायन में जिनका प्रयोग संभवतः आज गुरुद्वारों अथवा किन्हीं विशेष गायक-वर्गों तक ही सीमित है।

इस प्रकार रा. क. तथा गु. सं. के विविध राग, ताल एवं गायन शैलियों से संबंधित उल्लेख का आधार सामान्य गायक वर्ग में प्रचलित परंपरा का ही रहा होगा अथवा ऐसा भी मान सकते हैं कि कोई निर्गुण पंथी ही विशेष गायक रहे हों, जिन्होंने संप्रदाय के अनुराग से उक्त पदों एवं सवैयों को विभिन्न रागों, तालों और गायन शैलियों में निबद्ध कर लिया हो।[472]

(6) क. बी., क. सा. की श. तथा आ. ग्रं. आदि पद-संग्रहों में मिलने वाले संतों के विविध लोकगीत-शैलियों के पद भी आज के प्रचार की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। नागर- जीवन के ग्राम्य जीवन पर प्रभाव के परिणामस्वरूप इन प्रभूत लोकगीत-शैलियों में से रमैनी, बेलि, बिरहुली, वार, अलाहुणी, छंत आदि आज या तो प्रचार से नितांत लुप्त हो चुकी हैं अथवा एकदम अप्रचलित होकर किन्हीं इने-गिने व्यक्तियों के पास गुप्त धरोहर के रूप में रह गई हैं। वारों की मूल धुनों का गायन में आज प्रायः पूर्णतः लोप हो चुका है।

आ. ग्रं. के 'विशिष्ट निर्देशों' में संतों की 'बानी' का 17 घरों में गायन आज संभवतः अस्तित्व में नहीं रहा।

इस प्रकार संत पदावली में मिलने वाली लोकगीत शैलियों के विशाल भंडार एवं वैभव की सुरक्षा अथवा इस अमूल्य गीत-निधि के प्रकार की आज नितांत आवश्यकता है।

संदर्भ :

1. हिं. सा. के शृं. यु. में सं. का. – डा. हेमलता भटनागर, अप्रकाशित शोध प्रबंध, पृ. 376।
2. रा. क. का वि. अ.–पृ. 99।
3. 'संज्ञात्तयं निबद्धस्य प्रबंधो, वस्तु, रूपकम् ॥' –सं. स. –4,6 'प्रबंधो, रूपकं, वस्तु तस्य संज्ञात्रयं विदुः ॥'
4. "Literally Prabandha means pra (prakr :- shtarupena) that in which the parts are strongly tied up onto a single whole."– इ. म्यू. जर. पृ. 25
5. प्र. का शा. अः ए. सं. दि.-पृ. 15।
6. इसे अर्द्ध धार्मिक संगीत कहा जा सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

7. The term prabandha has been in vogue in Indian musical parlance since the time of Matanga's Brihaddeshi i.e. since the early centuries of the christian era. It was used for denoting various forms of compositions in Desi music, Semisecular music." Indian Music Journal p. 25
8. डॉ. प्रेमलता शर्मा ने प्र. का शा. अः ए.स. दि. पुस्तिका में में इस ओर सराहनीय प्रयास किया है। प्रस्तुत समस्त विवरण उक्त पुस्तक में से ही लिया गया है। द्रष्टव्यः पृ. 11-12
9. पूर्व खंड में प्रबंधाध्याय भी समाविष्ट।
10. मतंग कृत 'बृहद्देशी' ग्रंथ अधुना उपलब्ध संगीत शास्त्र का सर्वप्रथम ग्रंथ है। प्र. का शा. अः ए. सं. दि.-पृ. 12।
11. प्रबंध में भी नाट्य के तत्त्वों का यत्किंचित समावेश सहज ही रहता है। वही, पृ.12।
12. प्र. का शा. अः ए. सं. दि.—पृ. 16।
13. प्र. का शा. अः ए.सं. अ.—पृ. 16।
14. प्र. का शा. अः ए. सं. अ.-पृ. 16।
15. रा.क.का वि. अ. - पृ. 97।
16. यद्यपि संगीत रत्नाकर तथा संगीतराज की तुलना में इन मध्य युगीन ग्रंथों में विषय का स्पर्श मात्र है।
17. यह विवरण संगीतराज प्र. ख. की भूमिका पृ. 149 से लिया गया है तथा द्रष्टव्य रा. क. का वि. अ. — पृ. 72।
18. प्र. का शा. अः ए. सं. दि.पृ. 21।
19. वही, पृ. वही।
20. इस विषय का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत अध्याय के 'ख' भाग में किया गया है।
21. कहीं-कहीं आठ की अपेक्षा 7, 9, 10 अथवा 11 पाद की अष्टपदियाँ भी आ. ग्रं. में संकलित हैं, किंतु इस प्रकार का पाद क्रम में व्यतिक्रम जयदेव की अष्टपदियों में भी पाया जाता है, द्रष्टव्य-गी. गो. 512। वास्तव में नामानुसार अष्टपदी पाद की गेय रचना को ही कहा जाता है।
22. प्र. का शा. अः ए. सं. दि.-पृ. 21।
23. आ. ग्र. मारू सोलहे, म. 1 पृ. 1020 तथा 1081।
24. वही, पृ. 497 मूजरी म. 5 घरु 2।
25. वही, "थिंती गुड्डी म. 5 पृ. 296, राग गड्डी थिंती कबीरजी" पृ. 343, बिलावल म. 1 थिंती घरु 10 जति पृ. 838।
26. वही "पृ. 344 रागु गड्डी वार कबीर जीउ के 7।
27. वही पृ. 133 तथा पृ. 1107।
28. वहीं पृ. 927।
29. गीत गोविन्द।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

30. गी. गो., 13 /।
31. आ.ग्रं., पृ. 80।
32. आ. ग्रं. पृ. 250।
33. वही, पृ. 262।
34. वही, गौड़ी कबीरजी, पृ. 337।
35. गु. सं.- पृ. 5।
36. यथा, पं. ओंकारनाथ ठाकुर की शिष्य-परम्परा में निम्न अष्टपदी का गायन मैंने सुना है। अष्टपदी एवं उसकी स्वरलिपि नीचे प्रस्तुत है। गायन के कारण यहाँ अष्टपदी की प्रथम पंक्ति को प्रथम अन्तरा बना लिया गया है।

कविवर जयदेव जी अष्टपदी

स्थायी —जय जय देव हरे

अन्तरा -1. श्रित कमला कुच, मण्डल धृत कुण्डल हे।
कलित ललित वनमाल, जय जय देव हरे।।

अन्तरा -2. दिनमणि मण्डल, मण्डन भवखण्डन हे।
मुनिजन मानस हंस, जय जय देव हरे।।

अन्तरा-3. कालिय विष घर, गंजन जनरंजन हे।
यदुकुल नलिन दिनेश, जय जय देव हरे।।

अन्तरा-4. मधु-मुर नरक- विनाशन गरुड़ासन हे।
सुरकुल-केलि-निदानं, जय जय देव हरे।।

अन्तरा-5. अमल कमल दल, लोचन भवमोचन हे।
त्रिभुवन भवन-निधान, जय जय देव हरे।।

अन्तरा-6. जनकसुता कृत, भूषण जितदूषण हे।
समर-शमित-दशकण्ठ, जय जय देव हरे।।

अन्तरा-7. अभिनव जलधर, सुन्दर धृत मन्दर हे।
श्री मुखचन्द्र चकोर, जय जय देव हरे।।

अन्तरा-8. तव चरणे प्रणतावयमिति भावय हे।
कुरु कुशलं प्रणतेश, जय जय देव हरे।।

37. आ. ग्रं. - 10/5।
38. गु. सं. पृ. 72/ आ. ग्रं. बिलावलु म. 5, पृ. 823।
39. गु. सं. पृ. 41 आ. ग्रं. तिलंग नामदेवजी, पृ. 727।
40. गु.सं., पृ. 42।
41. गु. सं.-पृ. 55।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

42. गु.सं.पृ. 130, आ. ग्रं. नट पड़ताल-म. 5, पृ. 980।
43. आठ मात्राओं में तीन ताल का ठेका लगेगा।
44. गु.सं. पृ. 131।
45. वही, 8 मात्राएं, तीनताल में निबद्ध हैं।
46. गु.सं.पृ. 27, आ. ग्रं. रामकली म. 5, पृ. 901।
47. वही, पृ. 28।
48. गु. सं. पृ. 38 आ. ग्रं. सवैये स्त्री मुख म. 5, पृ. 1386।
49. वही, पृ. 39।
50. संचारी आभोग इकट्ठे गाओ, वही, पृ. 39।
51. प्र. का शा. अ. ए. सं. दि. पृ. 16।
52. सुं. ग्रं. दि. खं.–880/ 2।
53. सुं. ग्रं. द्वि. खं.–834/ 5
54. गांधर्व शब्द का उल्लेख भरत ने सामान्य अर्थ 'संगीत' के लिए किया है और उसमें स्वर, ताल और पद का समावेश माना है।

    "गांधर्वमिति विज्ञेयं स्वरताल पदाश्रयम्।
    गान्धर्वं त्रिविधं विद्यात् स्वरतालपदात्मकम्।।" ना. शा. 28/8,12
55. उक्त विवरण 'सं. रा.' भूमिका, पृ. 148 से लिया गया है।
56. द्रष्टव्य ह-रा. क. का वि. अ. में 'रा. क. में उपलब्ध प्रबंधभेद, पंचम अध्याय।
57. संतों के पद पूर्वापर सम्बन्ध से रहित प्रायः फुटकर रूप में उपलब्ध होते हैं, अतः 'सूड' प्रबन्धों की दृष्टि से संत काव्य का विश्लेषण नहीं किया गया।
58. यत्र स्यूर्मूरयो रागाः स स्याद रागकदम्बकः। सं. रा. पृ. 549
59. सुं. ग्रं. द्वि. खं. पृ. 944 चोबोला सं. 9-10।
60. सुं. ग्रं. द्वि. ख. 945/12
61. आ. ग्रं-पृ. 253।
62. 'ममा' व्यंजन की उक्त कृति में दो पौड़ियां हैं।
63. कृति का प्रारम्भिक निम्न दोहा द्रष्टव्य है:–

    'बावन अक्षर ठोक त्रय सब कछु इनही माहिं।
    जे अक्खर खिरि जाहिगे, आइ अक्खरु इन महि नाहिं।'

    कृति का अंतिम पदांश भी इस प्रसंग में द्रष्टव्य है,

    'बावन अक्खर जौरे आन। सक्या न अक्खरु एक पछानि।।
    संत का सबद कबीरा कहै। पंडित होइ सो अनभै रहै।।
    पंडित लोगह का व्यवहार। ज्ञानवन्त को तत्व बीचार।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाकै जीय जैसी बुधि होई। कहि कबीर जानैगा सोई।।

—कबीर, ग्रन्थावली, परिशिष्ट, 239/1

64. क. ग्रं., परिशिष्ट, 237/152

65. 'मातृका प्रबन्ध का उल्लेख सं. र. तथा सं. राज आदि ग्रंथों में भी है। द्रष्टव्य प्र. का. शा. अः ए. सं. दि.—पृ. 20।

66. सुं. ग्रं. प्र. खं, 218/ 10-11-12

67. सुं. ग्रं. द्वि. खं. 793/ 1

68. सुं. ग्रं. पृ. 400।

69. कोष्ठक में लिखित व्यंजन (उक्त कृति में) संपादक द्वारा आरोपित भी कहे जा सकते हैं।

70. क. सा. की श., भाग 4, 22/1

71. आ. ग्रं., पृ. 432।

72. द्रष्टव्य : चि. का. मी. - पृ. 24, "आकृत्यात्मक चित्रबन्धानां (खड्गचक्रादीनां मूला प्रवृत्तिः श्रव्यस्य दृश्यते न्यासरूपैव वर्तत। श्रव्यस्य दृश्यते भि व्यक्तेश्चूडान्तनिदर्शनमस्माकं संगीत रागध्यानपरंपरायां विद्यते। श्रव्य रागस्य दृश्यरूपध्यानं विवृतमस्माकं संगीतशास्त्रै। वेदपाठस्य ध्वज-जटा-माला-रथ-इत्याद्यष्टभेदेष्वाकृतिसूचकानि कतिपयनामानि सन्ति। अत्रापि श्रव्यवर्णविन्यासस्य क्रममेदस्य दृश्यकल्पनैवोपजीव्या। तद्वत् संगीतस्य स्वरसंदर्भरूपिष्वलंकारेषु कतिपयनामान्याकृतिसूचकानि विद्यन्ते। यथा— वैणी-उर्भिश्येन-आवर्तआदीनि। संगीतप्रबन्धानां नामस्वपि चक्रवाल-क्रौंचपद-स्वस्तिक (रागकदम्बप्रबन्धभेदः) इतीदृगाकृतिसूचकसंज्ञा उपलभ्यन्ते। तद्वदेवच्छन्दसामपि दृश्यसूचकनामानि प्राभ्यन्ते, यथा-कमल-कांची-किरीट-चक्रचपद-चक्र-चक्रपद इत्यादिनि। गीतप्रबन्धेष्वपि तत्सदृशी प्रवृत्तिः कतिपय प्रबन्धभेदानां जनयित्तिति त्रायते तज्ज्ञैः। उदाहरणार्थ-स्वरार्थ प्रबन्ध स्वरसंज्ञानां केंकैताक्षराणां "स - रि - ग - म - प - ध - नी - सां" तत्तन्नादात्मकस्वरूपसंश्लैषणार्थकल्पना क्रियते। यथा—"गागरी सिर पर धरी" सगरे गाम में, धाम धाम में। कैवाड़प्रबन्ध पाटाक्षरैः (वाद्यजनितध्वनिसूचकाक्षरैः) सार्थक निरर्थका च गीतरचना क्रियते, इयमेका धुना 'त्रिवट'— इति नाम्नां ख्याता

73. "पंचवक्त्रोद्‌मवैस्तालैः पंचभिः क्रमयोजितैः।

प्रतिबद्धः प्रबन्धो यं पंचतालेश्वराभिधः।।" (सं. राज, 4/3/593/2)

74. आलिक्रमप्रबन्धानामुद्देशोथ प्रतन्यते।

पंचतालेश्वरस्तालार्णवौ रागकदम्बकः।। (वही 4/2/553/30)

75. गुरु वाणी संगीत पृ. 119-20 तथा आ. ग्रं. पृ. 830

रागु बिलावलु, म. 5 घरु 13, पड़तालु।

76. पृ. 121, गु. सं.।

77. पृ. 121, गु. सं.।

78. वही, पृ. 122।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

79. द्रष्टव्य सं. राज, प्र. उ. (प्रंबधोल्लास) 602/10
द्रष्टव्य, "प्रबन्ध का शास्त्रीय अध्ययन : एक संक्षिक दिग्दर्शन; डॉ. कु. प्रेमलता शर्मा, पृ. 22।
80. सुं. ग्रं., द्वि खं. 834/5।
81. सं. राज, पृ. 604-5।
82. "द्विपदी तोटकश्चक्रवालः सरभलीलकः।
कलहंसाभिघः कौंचपदाख्यः कन्दनामकः।।33।।
इस सन्दोहनामाथ राजचूड़ामणिस्तथा।।
एतें त्रिंशत् समाख्यकताः प्रबन्धा आलिसंश्रयाः।।34।। (वही, पृ. 554)
83. आ ग्रं. पृ. 202-3।
84. वही पृ. 357।
85. आं. ग्रं., पृ. 483।
86. सुं ग्रं. द्वि. ख. 830/1।
87. स्वा. दा. द. की बा.-358/3।
88. आ. ग्रं. पृ. 1360।
89. 'गाथा गुंफ गोपाल कथं मथं मान मरदनह।
हतं पंच सत्रैण नानक हरि बाणे प्रहारणह।।6।।'
तथा-'गाथा गूढ़ अपारं समझणं बिरला जनह।
संसार कामं तजणं नानक गोबिंद रमणं साघ संगमह।।10।। (वही, पृ. 1360)
90. 'चरणारविंद मन बिद्धं सिद्धं सरब कुसलणह।
गाथा गावंति नानक भवंपरा पूरवणह।।18।। (वही, पृ. 1360)
91. सं. राज, 260/505।
92. वही, पृ. 472।
93. 'आर्याभेदाः उक्ताः षष्ठ लेत्वेक एकस्मिन्।
आर्यवेयं गाथा प्राकृत भाषापथे विनिर्दिष्टा।।12।। (वही, पृ. 42)
94. आलिक्रमप्रबन्धानामुद्देशो थ प्रतन्यते।
पंचतालेश्वरस्तालार्णवो रागकदम्बकः।।30।।
स्वरार्थो मातृका गद्यं दण्डको ध्वनिकुट्टिकी।।
आर्या गाथा द्विपथको वर्णो वर्णस्वरो घटः।।31।। (वही, 553/30-31)
95. हि. छ. प्र.-पृ. 9।
96. द्रष्टव्य : रघुनन्दन शास्त्री का मत, वही पृ. 73-4-5।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

97. बद्धा प्राकृतभाषामिर्गाथार्येव निगद्यते।
सा त्रिपदी पंचपदी षट्पदयापि च कथ्यते।।89।। (सं. राज, पृ. 600)

98. निर. (पत्रिका)-पृ. 21।

99. आ. ग्रं. –पृ. 1360।

100. 'दोहा' छन्द के विषम पादों (1, 3 पाद में) 13 मात्रा और सम पादों में 11 मात्रा-क्रम का विधान रहता है।

101. रा. क. का वि. अ. -पृ.।

102. 'छन्दसा द्विपथेन स्याद् द्विपथो नाम रूपकम्।
स संस्कृतैर्द्विपथको दोहकः प्राकृतेः स्मृतः।।91।। (सं . राज, पृ. 600)

103. 'अतालं केचिदिच्छन्ति गानमेतस्य तद्विदः।
तालहीनः सतालो वा प्रबन्धो यं चतुर्विधः।।93।। (वही, पृ. 601)

104. सु. ग्रं. द्वि. खं.– पृ. 688 दो. सं. 9,10, 11 तथा पृ. 945 दो. सं. 12।

105. निर (पत्रिका), पृ. 16-17।

106. बिलावल-तिताल, शिशयोवाच
'समुझो पुरुष विराट् जो कीन्हों आपु बगान।
कबते हो कब लौ रहत, कहिये सब परिमाण ॥'
गुरु उवाच-बिलावल-तिताला
'ब्रह्मा ही की आयु ते, यासो वध्यो पुमान।
सुनि अब तोसो कहतु हों, ताको सबै विधान।' (रा.क. द्वि. ख.- पृ. 350)

107. 'गुरु दाता गुरु हिव्रै घरु गुरु दीपकु तिह लेइ।
अमर पदारथु नानका,. मनि मानिओ सुखु होइ।'
आ. ग्रं. वार माझ की तथा सलोक म. 1, पृ. 137 तथा 'गौड़ी बावन अख़री म. 5 सलोकु पृ. 250 से 262 तक और वही 'गौड़ी सुखमनी, म. 5 सलोकु पृ. 262 से 296 आदि।

108. दोहे को किसी राग ताल विशिष्ट में निबद्ध कर शास्त्रीय संगीत में सताल गाने का प्रचार है। विशेषतः ख्याल गायन में दोहे की दोनों पंक्तियों को क्रमशः स्थायी, अंतरा बनाकर गाया जाता है, आगे उदाहरण दिया गया है। दोहे का अताल गायन, सुगम संगीत में बहु प्रचलित है। कबीर पंथियों से हमने प्रत्यक्ष भी दोहे का अताल रूप में गायन सुना है।

109. 'होत न बारम्बार, मानस जनम दुर्लभ है।
बन फल पाके भूमि गिरे, बहुरि न लागहिं डार।'
– राग बिलावल, त्रितालः अपने गुरु पं. दिलीपचंद्र वेदी जी से गायन में मौखिक परंपरा से प्राप्त।

110. 'प्रीतम को पतियाँ लिखूं, जो कोई होवे विदेस।
तन में मन में रम रहा, वाको कवन संदेस।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

कबीर का दोहा, राग पटदीप, त्रिताल, अपने गुरुजी से प्राप्त।

111. स्तूयन्ते देवता यत्र तालरागानुगैः पदेः।
शृंगारादिरसैरिष्टः सा प्रोक्ता स्तवमंजरी ॥ 16 ॥ (सं. राज, पृ. 610/12)

112. क. ग्रं. 161/ 379।

113. क. ग्रं. 164/ 390।

114. संत सुधा सार (वृहत्)-वि.हरि, प्र. सं. सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली।

115. स्वा. दा. द. की बा. 516/ 378।

116. आ. ग्रं. गौड़ी बावन अखरी, म. 5 पृ. 261।

117. सं. राज, पृ. 615/ 65।

118. स्वा. दा. द. की बा. –426। 166।

119. वही, 425/ 165।

120. स्वा. दा. द. की बा. - 442/ 199।

121. सुं. ग्रं., द्वि. खं. - 905/5 ।

122. क. ग्रं. - 69/ 1।

123. रा. क. का वि. अध्य.।

124. रा. क. - पृ.।

125. रा. क. - ।

126. वहीं पृ.।

127. सुं. ग्रं.-पृ. सं. 13/ 31।

128. वही, 13/ 32।

129. वही, 14/33।

130. वही, 14/ 34-35।

131. स्वा. दा. द. की बा.- 79/127-28 तथा 80/129-30।

132. वही- 365-66/22।

133. स्वा. दा. द. की बा. - 413/138।

134. क. सा. की श0 - द्वि. भाग, पृ. 471।

135. सं. राज, 554/ 40।

136. स्वा. दा. द. की बा. - 484/ 297 ।

137. 'प्रहेलिकादयो ये न्ये तेऽपि दत्लीमिदा मताः।' —सं. राज, 617। 40

138. सुं. ग्रं. द्वि. खं. 874-75/ 8।

139. क. ग्रं. 72/ 11।

140. वही, 88/ 80।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

141. द्रष्टव्य : निर. (पत्रिका)-पृ. 22, डॉ. चरणसिंह का मत।
142. 'त्रिपदी षट्पदीवस्तु विजयस्त्रिपदाह्वयः।
चतुष्पदी पंचमङ्गिः रुमातिलककन्दुको ॥
पंच्वत्वरिंशदिमे प्रकीर्णाः स्युः प्रबंधाः । —सं. राज, पृ. 554 तथा द्रष्टव्य, पृ. 613 भी
143. आ. ग्रं. पृ. - 96-97।
144. सं. का. 127/ 8।
145. द्रष्टव्यः प्र. का शा. अ. ए. सं. दि.- डॉ. प्रेमलता शर्मा, पृ. 21।
146. रा. क. का वि. अ. - प्र.।
147. सं. राज-भूमिका, पृ. 149।
148. सुं. ग्रं. द्वि. खं. 931/ 1।
149. सुं ग्रं द्वि. खं.- 931/ 1।
150. सं. राज, पृ. 554, 609।
151. सुं. ग्रं. द्वि. खं.-880/2।
152. स्वां. दा. द. की बा. -'अथ सूरातन कौ अंग पृ. 287 अंग सं. 24, सुं ग्रं., द्वि. खं. 'सवैया' के अंतर्गत 'सूरातन का अंग पृ. 484 तथा 'साखी' के अंतर्गत' सूरातन कौ अंग 'पृ. 738 वही। क. ग्रं-'सूरातन कौ अंग, पृ. 53।
153. सं. राज, पृ. 554 छं. सं. 39, 42, पृ. 612 भी द्रष्टव्य।
154. द्रष्टव्यः डॉ. चरणासिंह का मत, 'निरगुणियारा' (पत्रिका, पंजाबी भाषा में) 5-20 जुलाई, 1945, पृ. 25।
155. आ. ग्रं. पृ. 497।
156. गूंगे एवं जंगली जातियों के 'असभ्य' व्यक्ति 'संकेत' शैली का प्रयोग करते हैं।
157. छंद और ताल का समानान्तर स्वरूप प्रस्तुत अध्याय के 'क' भाग में पीछे दिखाया जा चुका है, अतः यहाँ उक्त विषय की व्याख्या नहीं की गई।
158. द्रष्टव्यः हि. छं. प्र. पृ. 27।
159. छं. शा. की भू.—चूर्णिका, पृ. ङ।
160. बृहद्देशी, श्लोक।
161. इस विषय पर डॉ. पुत्तूलाल शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिंदी काव्य में छंद योजना 'तथा डॉ शिवनन्दन प्रसाद ने 'मात्रिक छंदों का विकास' पुस्तक में सराहनीय कार्य किया है।
162. द्रष्टव्यः छं. शा. की भू.-पृ. 91।
163. मा. छं. का वि.-पृ. 156।
164. इन निर्दिष्ट छंदों में से अधिकांश छंद सुंदरदास द्वारा व्यवहृत हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

165. 'नीसांनी छन्द' 23 मात्रा का छन्द होता है। 13-10 पर यति और अंत मैं दो गुरु होते हैं। 'नीसांनी' शब्द का उक्त ग्रंथों में श्लेषार्थ पहचान अथवा लक्षण भी है, यथा-'गुरु गोविन्द प्रसाद तें प्रकटी मुख बांनी। जैसो बुद्धि प्रकाश है बरनों नीसांनी। 'द्रष्टव्य : सुं. ग्रं प्र. सं. पृ. 205 पा. टि.

166. 'स्वाभीजी के पद ही नहीं सवैये और अष्टक भी दादू द्वारों, मंडलियों, समाजों, मेलों और अन्य अवसरों पर साधु लोग और गवैये गाते हैं।

वही, भूमिका भाग 'जीवन चरित्र', पृ. 112।

167. सुन्दरदास ने 'गीतक' और 'छन्द' दोनों छंदों का एक छन्द के अर्थ में ही प्रयोग किया है, द्रष्टव्य : सुं. ग्रं. खं., पृ. 289। 'अजब ख्याल अष्टक। 'गीतक और छंद दोनों छंदनाम 'हरिगीतिका' छंद के पर्याय प्रतीत होते हैं, 16-12 पर यति और अंत में एक लघु-गुरु का विधान रहता है।

168. स्रग्विणी 'छंद में 4 रगण होते हैं। (द्रष्टव्य छं. प्र. पृ. 149) उक्त लक्षण नवमाष्टक की निम्न पंक्तियों के साथ तुलनीय है।

आदि तूं अंत तूं मध्यम तूं व्योमवत्। वायु तूं नीर तूं भूमितत् ॥

पंच हू तत्त्व तूं, देह तेही करे। हे हरे हे हरे हे हरे हे हरे ॥ 1 ॥' -सुं ग्रं., प्र. ख.-पृ. 265।

169. वही, पृ. 303 से 306 द्रष्टव्य।

170. छं. प्र.- पृ. 73।

171. छं प्र-पृ. 72।

172. द्रष्टव्यः सुं. ग्रं. प्र. खं.- पृ. 369-70।

173. जयदामा (Jaydaman)—परिशिष्ट 'वर्णवृत समचतुष्पदी, पृ. 126।

174. जयदामा (Jaydaman)—परिशिष्ट 'वर्णवृत समचतुष्पदी, पृ. 126।

175. वही, पृ. 130।

176. क. सा. की प. —पृ. 184।

177. क.बी. (हरक संस्करण) 124/ 353।

178. क. ग्रं. पृ. 38 (प्र.सं.)।

179. वही, पृ. 56।

180. गु. दि.- पृ. 86।

181. हि. भ. सा. में लो. त. -पृ. 130।

182. हिं. का. --राहुल सांस्कृत्यायन, पृ. 26।

183. हिं भ. सा में लो. त.—पृ. 170-71।

184. क. बी.-विचारदास शास्त्री, इलाहाबाद, 1954 रमैनी सं. 2।

185. निर. पृ. 44।

186. गु. दि.—पृ. 227 से 40 तक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

187. आ. ग्रं., पृ. - 761।
188. वही, पृ. - 751।
189. वही, पृ. - 1014।
190. वही, पृ - 396।
191. क. ग्रं. 57/ 14।
192. सु. ग्रं. द्वि. खं.-795 / 14।
193. क. ग्रं. 12/ 45।
194. क. बी.-सा. सं. 44 पृ. 372।
195. वही, सा. सं. 39 पृ. 371।
196. वही, सा. सं. 41 पृ. 372।
197. वही, सा. सं. 26 पृ. 369।
198. वही, सा. सं. 150 पृ. 391।
199. क. ग्रं. सा. सं. 1 पृ. 57।
200. आ. ग्रं.।
201. वही, पृ. 463।
202. वही, बावनअखरी, पृ. 252।
203. वार सारंग म. 1 पृ. 1138।
204. द्रष्टव्यः पं. वा.-प्यारा सिंह पद्म, पृ. 20।
205. वही, पृ. 254।
206. वही, पृ. 258।
207. वही, पृ. 1288।
208. वही, वार गौड़ी 5 पृ.323।
209. वही, बावन अखरी, पृ. 261।
210. गी. गो. में भी, पृ.।
211. आ. ग्रं.-मारू राग म. 1 अष्टपदी, पृ. 10-12।
212. वही, राग मलार म. 1 अष्टपदियां, पृ. 1273।
213. 'चौपाई' छंद में 15 मात्राओं पर यति एवं अंत में गुरु लघु रहता है।
214. 'सुखमणी' (कृति) म. 5 आ. ग्र.-पृ. 262।
215. आ. ग्रं.-पृ. सवैये स्त्री मुखवाक, म. 5।
216. आ. ग्रं. गूजरी मं. 1, पृ. 489।
217. बाण सवैये का लक्षण, द्रष्टव्य गु. दि. पृ. 88।
218. वही, आसा म. 5 पृ.।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitized by eGangotri

219. लक्षण के लिए द्रष्टव्यः गु. दि.-पृ. 91।
220. सु. आ. ग्रं.-सवैये स्त्री मुखवाक म. 5, पृ. 1388।
221. गु. दि.-पृ. 93।
222. आ. ग्रं. सवैए स्त्री मुख वाचक म. 5-पृ. 1388।
223. निर. (पत्रिका) से उद्धृत पृ. 14।
224. आ. ग्रं.—मारू सोलहे म. 5।
225. द्रष्टव्य श्री. गु. ग्रं. को., प्र. भा. पृ. 569 तथा तुलनीय उक्त लक्षण आ. ग्रं. पृ. 80 तथा पृ. 1094 पर अंकित 'डखणे' नामक कृतियों से।
226. आ. ग्रं.-पृ. 80।
227. गु.नि.मं.-पृ. 196।
228. "Dakhna is a Sindhi word for 'दखग' (Dakhen) which means 'South'. The language of the southern areas of the punjab i.e. Sindhi is known as 'दखिणीं' (Dekhni) and shoekas written in that language are known 'डखणे' Dakhne."
229. निरं (पत्रिका)-पृ. 24 तथा 'ए. क्रि. स्ट. आं. आ. ग्रं.-पृ. 80।
230. ए. क्रि. स्ट. आं. आ. ग्रं.-पृ. 80।
231. छं. प्र.-पृ. 97।
232. हिं. छं. प्र.-पृ. 69।
233. आ. ग्रं. राग सूही छंत म. 5 घरु 3-पृ. 779।
234. 'सोरह सोरह कल चरणन पे, ऐसे पादाकुलक बरन कै।
आदि सुपादा कुलक बखानौ, तापर छंद त्रिभंगी ठानो।
ठानो तिरभंगी, छंद सुअंगी, है बहुरंगी, मनहिं हरै।
चवसट्ठि कलाकरि, सो आगे घरि, वसु चरणन कवि, तासु घरै॥
हुल्लास सुछन्दा, आनंद कंदा, जसवर चंदा रूप रजै।
यों छंद बखाने सब मन मानै, जाके बरणत, सुकवि सजै॥' -छं. प्र.-पृ. 75-
235. आ. ग्रं.-त्रासा छंत म. 5-पृ. 452।
236. क. ग्रं. - 104। 156
237. सुं. ग्रु.-द्वि. खं.- 850/ 1
238. आ. ग्रं.- आसा घरु 8 काफी म. 5 पृ. 396।
239. क. सा. की श. द्वि. भा. 4/7।
240. वही, 11/ 25।
241. वही, 4/ 6।
242. क. सा. की श. - प्र.. भा. - 1/ 1।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

243. वही– 12/ 14 ।
244. क. सा. की श. - प्र. भा. 10/ 10 ।
245. वही– 16/ 25।
246. वही, द्वि. भा.–71/ 14।
247. क. सा. की श.– प्र. मा.–47/ 54।
248. वही – द्वि. भा. – 12/ 27 ।
249. वही–द्वि. भा. –20/ 6 ।
250. क. सा. की श. –द्वि. भा., 100-1/6।
251. वही, – द्वि. भा. 102/ 10 ।
252. वार पडड़ी 1 पडड़ी सं. 4।
253. सूही छंत म. 1।
254. सिरी राग म. 1।
255. आ.ग्रं. 4/ 18 ।
256. क. वच. 89/ 17 ।
257. वही, 102/ 28 ।
258. रा. क. में हमारे विवेच्य काल के कवियों में केवल कबीर, सुंदरदास तथा नामदेव के पद संकलित हैं। नानक नामांकित पद नं. 1 के हैं और म. 5 के हैं। गु. सं. में नामदेव, कबीर नानक और गुरु अर्जुन हमारे विवेच्यकाल के इन चार कवियों के ही पद तालबद्ध हैं, अतः उक्त दोनों ग्रंथों में, इन्हीं संतों के पदों में निर्दिष्ट राग-ताल का प्रस्तुत विशिष्ट अध्ययन में उपयोग किया गया है।
259. संगीत के विभिन्न स्तरों की प्रतिपादक उक्त विभिन्न गायन शैलियों के निर्माण के आधारों से संबंधित उपर्युक्त विवरण रा. क. का वि. अ. पृ. 107 से लिया गया है।
260. संगीतशास्त्र में 'धमार' शब्द 'होली' से संबंधित गीत विशेष एवं इस प्रकार के गीतों के साथ बजने वाले ताल विशेष (14 मात्रा का) दोनों प्रसंगों में प्रयुक्त होता है और 'धमार' गीतों को 'ध्रुपद' शैली के अंतर्गत स्थान दिया है।
261. रा. क., द्वि. खं. - पृ. 228।
262. वही, प्र. खं- पृ. 224 प. स. 3।
263. वहीं, द्वि. खं. –पृ. 364।
264. गु. सं. में संतों के पदों की स्वरलिपियों के लेखक द्वारा दो भाग किए गए हैं। भूमिका भाग में पृ. 'ख' और 'ग' में उनके अपने दिए गए मत को देखते हुए उक्त द्वितीय भाग की स्वरलिपियाँ 'प्रथम भाग की स्वर लिपियों की अपेक्षा, पारम्परिक प्रतीत होती हैं। अतः संतों के पदों में गायन-शैलियों के अध्ययन में, इस भाग के राग-ताल का उपयोग नहीं किया गया। प्रथम भाग में प्रयुक्त राग-नाम अधिकतर आ. ग्रं. के अनुसार हैं, किंतु अनेक स्थलों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर अपर राग-नाम भी मिलते हैं तथापि उनका प्रयोग गुरु बानी-गायकों में, परंपरा से चला आ रहा है, अतः प्रस्तुत अध्याय में संतों के पदों में गायन शैलियों के बोध हेतु उनका ग्रहण कर लिया गया है।

265. 'कानड़ा' राग से आज' दरबारी कानड़ा' का भाव ग्रहण किया जाता है, किंतु गु. सं. में 'कानड़ा' और 'दरबारी कानड़ा ' का पृथक-पृथक स्वरूप दिया गया है। इसका विस्तृत विवेचन चतुर्थ अध्याय के 'क' भाग में देखिये।

266. 'पड़ताल' की व्याख्या भी चतुर्थ अध्याय के 'क' भाग में की गई है।

267. 'झपताल' का प्रयोग ध्रुपद तथा ख्याल दोनों शैलियों में होता है।

268. दीपचंदी, झूमरा, खेमटा, और यत् तालों का गु. सं. में प्रयोग नहीं मिलता। दीपचंदी, खेमटा, और यत् का उल्लेख संतों के पदों के अंतर्गत किया गया है, किंतु अधुना अति प्रचलित, 'झूमरा' ताल को उक्त दोनों ग्रंथों में स्थान नहीं मिला। 'जयतश्री' ताल का उल्लेख भी रा. क. में मिलता है।

269. इन तालों के लिए द्रष्टव्य गु. सं. पृ. ड., च, छ, और ज।

270. आ. ग्रं. में संतों के पदों में 'टोड़ी' के किसी प्रकार का उल्लेख नहीं है, केवल 'टोड़ी' रागनाम है।

271. आज 'मारू' नाम से ख्याल शैली में किसी रागनाम का प्रचार नहीं है, 'मारू बिहाग' अवश्य आज अत्यंत प्रचलित है।

272. 'धम्माली' प्रबंध का विवरण प्रस्तुत अध्याय के 'क' भाग में देखिये।

273. द्रष्टव्यः रा. क. का. वि. अ. –पृ. 109।

274. द्रष्टव्यः रा. का. तृ. खं, पृ. 86।

275. द्रष्टव्यः 'बिशनपदे' पुस्तक खुशहाल राए (संभवतः 16 वीं शताब्दी का कोई वाग्गेयकार) कृत उक्त पुस्तक सैन्ट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला, की एक हस्तलिखित पुस्तक के आधार पर तैयार की गई है।

276. स्वा. दा. द. की ला–534/ 423।

277. हि. छं. प्र. –द्रष्टव्य, पृ. 58।

278. वही, पृ. 61।

279. द्रष्टव्य : रा. क. –द्वि खं. पृ. 433।

280. क. सा. की श. – द्वि. भा. –19/4।

281. आ. ग्र. में संगृहीत 'वार' नामक कृतियों में 'पउड़ी' और 'सलोक' दोनों छंदों का लेखक सर्वत्र एक ही नहीं है। पउड़ी लेखक 'वार' नामक कृति का रचयिता कहलाता है और 'सलोक' पउड़ीकर्ता अथवा अन्य किसी एक अथवा एकाधिक कवियों के भी होते हैं।

282. क. सा. की श. – 22/ 13।

283. वही, 31/ 8।

284. वही, 28-29/ 4।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

285. वही, 47 / 2।
286. हिं भ. सा. में लो. त. – पृ. 132।
287. वही, पृ. 131।
288. क.बी. –विचारदास शास्त्री, (टीकाकार)-रमैनी सं. 2।
289. डॉ भ्रमर का मत, हि. भ. सा. में लो. त. – पृ. 129।
290. वही, पृ. वही।
291. क. बी. – वि. शास्त्री, श. सं. 4।
292. क. सा. की प. –पृ. 206-पं. चतुर्वेदी।
293. क. बी. –संपादकः विश्वनाथसिंह, पृ. 415।
294. हि. भ. सा. में लो. त. –पृ. 147।
295. क. बी. – इलाहाबाद, 1954 पृ. 257।
296. वही, पृ. 263।
297. हि. सा. का वृ. इति. षोडश भाग – पृ. 228-229।
298. क. बी. –पृ. 425।
299. वही, पृ. 428।
300. हि. भ. सा. में लो. त. – पृ. 151-52।
301. वही, पृ. 152।
302. झांसी, सं. 2012, पृ. 182 सं. 7।
303. हि. भ. सा. में लो. त. –पृ. 152।
304. वि. की पदा. – रमावृक्ष बेनीपुरी, द्वि. सं.-पृ. 240।
305. द्रष्ठव्य : क. सा. की प. – प्र. सं.–पृ. 202।
306. क. सा. की श, द्वि. भा. –69/ 26।
307. आ. ग्रं.–पृ. 1107 तुरवारी छंत म. 1 बारहमासा।
308. पं. बा. मा.-प्या. पद्म, बारांमाह श्री रामचंद्रजी का (ले. गुरुदास सिंह, पृ. 72)
309. आ. ग्रं. बारहमाहा, मांझ म. 5 घरु 4 पृ. 133।
310. द्रष्टव्यः पं. बा. मा. –पद्म, पृ. 48, ए।
311. द्रष्टव्यः पं. बा. मा. –पदम्, पृ. 37।
312. द्रष्टव्यः पं. पद्मजी का मत, पृ. 43।
313. द्रष्टव्यः अगरचंदनाहटाजी का मत, 'ना. प्र.' पत्रिका सं. 2010, अंक 4, पृ. 430।
314. द्रष्टव्यः पं. बा. मा. पद्मजी का मत, पृ. 46।
315. आ. ग्र. – पृ. 1107।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

316. वही, पृ. 133।
317. पं. बा. मा. – पृ. –46।
318. आ. ग्रं. पृ. 133।
319. वही, पृ. 1107।
320. पं. बा. मा.–बारांमाह बाबा देसराज, पृ. 232।
321. वही–पृ. 48 'घ'।
322. वही–बारांमाह भगवानसिंह बनूड़ी–पृ. 251।
323. द्रष्टव्य : आ. ग्रं., पृ. 751।
324. वही–पृ. 1014।
325. वही, पृ. 396।
326. वही, पृ. 761।
327. श्री गु. ग्रं. को. –प्र. भा., पृ. 329।
328. आ. ग्रं. पृ. 1014 'मारू काफ़ी म. 1 घरु 2।
329. द्रष्टव्य : ए क्रि. स्ट. आं. आं. ग्रं.-पृ. 89।
330. गु. छं. दि.–पृ 140।
331. गु. छं. सद.–पृ. 141।
332. निरगुणियारा (पत्रिका)–पृ. 19।
333. यथा : 'उठ जाग घुराड़े मार नहीं। तूं एस जहानों जावेंगी।
फिर कदम न एथे पावेंगीं। इह जोबन रूप लुटावेंगी।
तूं रहिणा विच संसार नहीं। मुँहआई वात न जावेगी
उह शौह असाथों वख नहीं। बिन शहु तों दूजा कक्ख नहीं।
पर देखन वाली अक्ख नहीं। इह जाने पई दुख सहिं दी है।'
–द्रष्टव्यः गु. छ. दि. पृ. 142
334. द्रष्टव्य : गु. छं. दि. –पृ. 142।
335. द्रष्टव्य : वही, पृ. 142।
236. उक्त तालिका मुझे डॉ. प्रेमलता शर्मा के सौजन्य से प्राप्त हुई ।
337. "Kafian : Based on Ragas and Raginis like Asa, Maund and Kafi, Composi tions of Soori poets like shah Hussain, Bullah shah and Skeikh Farid. It has got special Theka and set style of singing." (आकाशवाणी की तालिका से उद्धृत)
338. क. बी. (रीवां नरेश द्वारा संपादित)–पृ 434।
339. क. सा. की प.–परशुराम चतुर्वेदी, सं. 2011, पृ. 206।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

340. हिं. सा. का आ. का.—पटना, 1952, पृ. 104।

341. क. बी. —पृ. 434।

342. हिं. भ. सा. में लो. त. —पृ. 139।

343. वही, पृ. 140।

344. "Two old books on the songs of Mansa are still extant in, Malda under the names of 'Tantravibhuti' and 'Jagajivana'. These songs were circulated among the people as charms against the ravages of snakes."

The Folk Elements in Hindu–B.K. Sarkar, Calcutta, 1917, पृ. 127-28, उद्धृत हिं भ. सा. में लो. तं.-वृ. 140। पाद टिप्पणी से।

345. स. सो. यो. बृ. —पंवारा केशरेहिंद बाबू महादेव प्रसाद सिंह 'घनश्याम', प्र. खं.-पृ. 7।

346. द्रष्टव्यः हिं. को म. सं. की दे. —विनय मोहन शर्मा, पृ. 231।

347. वही।

348. द्रष्टव्यः रा. क., द्वि. खं.—430/1-2-3-4, मनोहर छंद 431/1-2-3, इंद्रवज्र छंद 431-32/10 सवैये, 433/1।

349. द्रष्टव्यः ता. दी., भाग 1, मन्नूजी मृदंगाचार्य, पृ. 16।

350. द्रष्टव्यः रा. क. का वि. अ. —पृ. 60।

351. 'छंत पंजाबी विआह-शादी ते गाण वाले टप्पे गीत हन '—गु. ना. चिं. ते क. —पृ. 81।

352. श्री गु. नि. सा. —पं. तारा सिंह-पृ. 414।

353. आ. ग्रं. —पृ. 576।

354. द्रष्टव्य : बा. का. तुलसीदास।

355. द्रष्टव्य : इसी शोध-प्रबंध के इसी अध्याय का 'ख' भाग तथा गु. दि. भाई कान्हसिंह, पृ. - 189।

356. 'तू ठाकुरो बैरागरो मैं जेही घण चेरी राम।
तू सागरो रतनागरो में हउ सार न जाणा तेरी राम।
सार न जाणा तू वडदाता करि मिहरमति सांई।
किरपा कीजै सा मति दीजै आठ पहर तुध ध्याई।
गरब न कीजै रेण हो वीजै, ता गति जीअरे तेरी।
सभ ऊपर नानक का ठाकुर में जेही धण बेरी राम।'
— आ. ग्रं. राग सूही छंत म. 5 घरु 3 पृ. 779।
तथाः- सखी आउ सखि वसि आउ सखी असी पिर का मंगल गावहु।
तजि मान सखी तजि मान सखी, मह अपणे प्रीतम भावह।'
— वही, म. 5 बिलावल, पृ. 847।
'गोविंदा मेरे गोविंदा प्राण अधारा मेरे गोविंदा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

किरपाला मेरे किरपाला, दानदातारा मेरे किरपाला।' — वही, रामकली, छंत, म. 5, पृ. 924।

357. हिं. भ. सा. में लो. तं.—पृ. 158।

358. वि. और वि. -पृ 222।

359. अनेकांत (पत्रिका) अक्टूबर, 1962, पृ. 190।

360. वही, पृ. वही।

361. वही, पृ. 191।

362. क. बी.—विचारदास शास्त्री (टीकाकार) इलाहाबाद 1954 बेलि-1 पृ. 293।

363. द्रष्टव्यः डॉ. भ्रमर का मत, हिं भ. सा. में लो. त. —पृ. 158।

364. क. बी.-विचारदास शास्त्री, पृ. 293 तथा क. बी. —रीवांनरेश विश्वनाथ सिंह, पृ. 420।

365. द्रष्टव्य : श्री गुरु ग्रंथ कोष, प्रथम भाग, पृ. 79।

तथा 'किसे दे वियोग विच वैरागमई गीत गाउण का नाम' अलाहुणीआं' है। गु. नि. मं. पृ. 476।

366. वही, पृ. 473।

367. द्रष्टव्यः 'श्री गुरमत निणय सागर'—पं. तारासिंह पृ. 412।

368. राग वडहंसु मं. 1 घरु 5 अलाहुणीआं, पृ. 581।

369. 'वार अथवा' जंगनामा 'इक्को ही अरथ रखण वाले दो शबद हन, जिन्हां दा विषय है वीररसी कविता विच जंगां जुद्धां दा वरणन। पंजाबी विच जंगां जुद्धां दे आजमई कावि रूप वरणन दा नां है 'वार' जां 'वारां' ते फारसी विच 'जंगनामे।'

आलोचना (पत्रिका) 'पंजाव दीआं इतिहासिक वारा' लेख पृ. 10, दिसं. 1958।

370. द्रष्टव्य : पं. वा., प्यारासिंह पद्म, पृ. 18 तथा निरगुणियारा (पत्रिका) 5-20 जुलाई, 1945, द्रष्टव्यः डॉ. चरणसिंह का मत, पृ. 90।

संस्कृत विव 'वी' धातु तों 'वारण' पद बणदा है, जिसका अरथ है- रोक, हल्ले अगे रोकथाम। 'द्रष्टव्य : निरगुणियारा, पृ. 89, डॉ. चरणसिंह।

371. द्रष्टव्यः पं. वा., पृ. 18।

372. वही।

373. वही, पृ. 17।

374. सत्ते बलबंड की वार, साहिब सिंह पृ. 9।

375. अमोल बाई वारां सटीक, पृ. 2।

376. पंजाबी वारां, पृ. 18-19।

377. 'वार नाम वृत्तांत दा है' श्री गु. नि. सा. पृ. 411।

378. द्रष्टव्यः ए. क्रि. स्ट. आं. आं. ग्रं. पृ. 69।

379. गु. नि. मं. पृ. 263 तथा' बाई वारां सटीक'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प्रथम भाग) क्रमशः पृ. 1।

380. गु. सं. निरणे, भाग चतुर्थ, पृ. 5।
381. कहानी के लिए द्रष्टव्य : गु शं सं. नि. वही।
382. वही, रतन संगीत भंडार, भाग दूजा, पृ. 29।
383. वही, पृ. 29।
384. गु. सं. पृ. 123।
385. वार माझ की, म0 1, आ. ग्रं. पृ. 141।
386. गु. सं. –पृ. 124।
387. गु. सं. पर हु. तक मि. खोज 'का भाग 2' रतनसंगीत भंडार मास्टर भाई प्रेमसिंह, पृ. 35।
388. गुरमत सं. पर हुण तक मिली खोज दा दूजा भाग, गुरमत संगीत रतन भंडार, पृ. 32।
389. वही।
390. गुरमत संगीत रतन भंडार-मास्टर प्रेमसिंह, पृ. 93।
391. वही।
392. वही।
393. ये पदांश अथवा मूल धुनों के काव्यांश 'बाई वारां सटीक' पं. नैरणसिंह कृत पुस्तक में से उद्धृत किए जा रहे हैं। द्रष्टव्य : बा. वा. स. संस्क. द्वितीय, पृ. सं. क्रमशः 31, 130, 149, 550।
394. 'पीर फ़कीर के जस के गीत का नाम 'सोहला' है। द्रष्टव्य : गु. नि. सा. –पृ. 413।
395. द्रष्टव्यः ए. क्रि. स्ट. आं. आ. ग्रं.–पृ. 89 तथा 'निरगुणियारा' पृ. 13।
396. आ. ग्रं. –पृ. 12।
397. द्रष्टव्यः गु. नि. मं. –ज्ञानीलालसिंह-पृ. 112
398. पं. बा. मा.–प्यारासिंह पद्म, संस्क. प्रथम, पृ. 35।
399. पं. बा. भा.–प्यारासिंह पद्म, संस्फ. प्रथम, पृ. 35।
400. वही, द्रष्टव्य : पृ. 44।
401. हिं. म. सा. में लो. त.–पृ. 124।
402. वही–पृ. 140।
403. क.बी.–259/ 54।
404. वही, 261/ 55।
405. क.सा.की श –द्वि. भा., तृ. सं. – 99/ 5।
406. वही, चः मा.–तृ. सं.–पृ. 1 से 10 तक।
407. आ. ग्रं. 'बिलावल म. 5 छंत मंगल, पृ. 847-48।
408. क.ग्रं.– 9/1।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

409. आं. रिलि. कल्ट्, एस. बी. दासगुप्ता, कलकत्ता, 1946 पृ. 30 उद्धृत (उक्त उद्धरण) हिं. भ. सा. में लो. ता. –पृ. 144।

410. दी फो एलि. में. इन हिं. कल्च. कलकत्ता, 1917, पृ. 125।

411. हिं. भ. सा. में लो. त. –पृ. 144।

412. क. सा. की श.–च. भा.-पृ. 18-19।

413. वही-पृ. 10-11-12।

414. द्रष्टव्य : रा. क. का. वि. अ.–पृ. 65।

415. द्रष्टव्य : क. सा. की श. च. मा. –पृ. 21-22।

416. रा. क. प्र. खं.–'रेखता-कलिंग' पृ. 688।

417. क. सा. की श. – चतुर्थ भाग 10/ 1।

418. क. सा. की श. – च. मा. 19/2।

419. खं. प्र.-पृ. 28-29।

420. उक्त 'जंतसार' गीत हमने बनारस में एक लोकगीत गायक से सुना।

421. क. सा. की श.-च.मा. -22/2।

422. वही-15/2।

423. क. ग्रं. 72-73/13।

424. इस प्रकार की पंक्तियाँ लोकगीतों में प्रायः पाई जाती हैं, उदाहरण के लिये नीचे पंजाबी के एक प्रसिद्ध लोकगीत का कुछ अंश दिया जाता है, जिसमें पुत्री अपने पिता से कन्हैया की भांति सुंदर और गुणी पति ढूंढ़ने के लिए आग्रह करती है।

'बेटी चन्नण दे ओल्ले ओल्ले क्यों खड़ी?

नी मैं तां खड़ी सां बाबल जी दे कोल बाबल वर लोड़िये।

नी जाइये किहो जिहा वर लोड़िये?

जिवें तारियां विच्चों चान्ह, चन्नां विच्चों कान्ह कन्हैया वर लोड़िये ॥

अर्थात् मां बिटिया से प्रश्न पूछती है कि तुम चंदन के वृक्ष की ओट में क्यों खड़ी हो? बेटी उत्तर देती है कि मैं तो अपने पिता के पास खड़ी हूँ कि मेरे लिये वर ढूंढ़िए (क्योंकि वह अब युवा हो चली है)। तब मां अथवा पिता पूछते हैं कि बिटिया, तुम्हारे लिए कैसा वर ढूंढ़ा जाए? बेटी का उत्तर है कि जैसे नक्षत्रों में चांद, इसी प्रकार गुणवान् पुरुषों में कन्हैया जैसा वर मेरे लिए ढूंढ़ो।

425. क. ग्रं. 73/ 14।

426. क. वच. 167/ 176।

427. क. सा. की श.–द्वि. भा. –44/40।

428. वही, 68। 8।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

429. 'जे घर पहिला जां दूजा आदि लिखिया होवे तां इह राग ताल जां तार दा सूचक है। भाव इह शबद पंज, दस आदि तार विच गावो। तार, ताल ते घर इक्को बात है।' गु. नि. मं., पृ., 189 तथा निर. (पत्रिका)-पृ. 21-22 पर द्रष्टव्य डॉ. चरणसिंह का मत। अर्थात् यदि 'घर' एक, दो आदि लिखा हो तो यह राग का 'ताल' अथवा 'तार' हैं, भाव यह (अमुक, संबंधित), शबद' (पद) पांच, दस आदि तार में गाओ। तार, ताल और घर पर्यायवाची शब्द हैं।

430. द्रष्टव्यः गु. सं.-पृ. 'ड.' से 'ज' तक।

431. गुरुबाग, कमच्छा, काशी-गुरुद्वारे के ग्रंथीजी का अभिमत (प्रत्यक्ष संपर्क द्वारा प्राप्त विचार)।

432. गु. अ. की वा.—भूमिका, पृ. 23।

433. There is frequent use of the word 'Ghar' which means the tunes and also the musical notation. The musical Notation denotes the pitch of the notes. With the word "Ghar" is added the number of musical notation, which carries the instruction that hymn or hymns under such "Ghar" and number be sung according to the musical notation of the given number."

—ए. क्रि. स्ट. आं. आ. ग्रं. -पृ. 98।

434. द्रष्टव्यः श्री गु. नि. सा.—पृ. 460-67।

435. 'गुरु के रागी, रबाबी लोगों को भी परंपरा से एक अरथ का निस्चे नहीं। याही ते रागी, रबाबी कोई स्वरों को घर कहे हैं, कोई ताल को घर कहे हैं।

—वही, पृ. 460।

436. 'तालों या सुरों के टिकाने के निमित गुरुबाणी में 1 से 17 घर दिये गये हैं। ये 'घरु' संगीतज्ञों के लिए गायन के संकेत हैं—द्रष्टव्य -ना. वा. पृ. 100।

437. 'श्री गुरु ग्रंथ साहिबजी दे शब्दां के ऊपर कई जगहां सूचना मात्र 'घर' लिखिया है। इसमें तो मुराद गाये जाण वाले साज़ां राग दी प्रधान घर दी संख्या दसण तों है। बजाए जाणवाले साजां विच तिन ग्राम हुंदे हन। ग्राम (पिंड) घरां तो बणदा है, सो तिन्नां ग्रामां दीआं सुरां दे टिकाणें 'घर' हन। 'श्री गु. ग्रं. को. प्रं भा. पृ. 456।

438. 'घरु' दा अरथ नहीं, ताल बणदा नहीं, सुरां दे टिकाणे या श्रुतियां किहा जांदा है, पर इह दसणवाला कोई नहीं मिलदा।' सरदार ज्ञानसिंह। (पत्र-व्यवहार द्वारा प्राप्त विचारों में से उद्धृत)

439. दोहिरा। 'ढाढी नित प्रति गुरु ढिग जो घन बार सुनाइ ॥
तिन महिं नव धुन, प्रभु सुनु, ग्रंथ माहिं सु चढाइ ॥' —श्री गु. ग्रं. प्र. ग्रं., म. 6 पृ. 416।

440. आ. ग्रं. श्री राग, पृ. 91-92।

441. वही, पृ. 24।

442. द्रष्टव्य डॉ. सुरेंद्रसिंह कोहली का मत, 'ए क्रि. स्ट. आं. आ. ग्रं.—पृ. 98 तथा 'निरगुणियारा, जुलाई 1945, पृ. 12 पर डॉ. चरणसिंह का मत।

443. "Sometimes instead of giving the number of musical Notation, there is reference

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

to the first few words of a hymn instructing there by to sing the hymn in question according to the number given on the particular hymn." द्रष्टव्य : डॉ. कोहली का मत 'ए क्रि. स्ट. आं. आ. ग्रं. पृ. 98।

444. आ. ग्रं. पृ. 91।

445. आ. ग्रं. पृ. 802।

446. द्रष्टव्य : डॉ. चरणसिंह का मतः निरगुणियारा, जुलाई, 1945, पृ. 49-50।

447. द्रष्टव्य : निरगुणियारा, पृ. 49-50।

448. आ. ग्रं. पृ. 431।

449. "The word "Birahare" is a formation from 'Birha', which means separation" अर्थात् 'बिरहड़े' शब्द बिरहा से बना है, जिसका अर्थ है, बिलगाव।

ए. क्रि. स्ट. आं. आ. ग्रं. पृ. 90।

450. आ. ग्रं. –पृ. 203।

451. गुरमत संगीत पर हुणतक मिली खोज, 4 था भाग, द्वि. खं.–पृ. 44।

452. द्रष्टव्य, वही।

453. वही।

454. द्रष्टव्यः डॉ. चरण सिंह का मत, वही पृ. 85-6।

455. "Chhant is a type of folk song. The word Rahoe is from 'Rahao', which means pause and repetition, therefore the chhants in which the women pause and repeat the verses, while singing are the chhants of Rahoe. µ, – fØ– LV– vka– vka-xza-&i`-99 iknfVIi.kh lsm/̀rA

456. द्रष्टव्य : ज्ञानी लाल सिंह का मत, गु. नि. मं.-पृ. 292।

457. अप्रकाशित लेख 'लाइट क्लासिकल म्यूज़िक' –डॉ प्रेमलता शर्मा, आकाशवाणी से प्रसारित। (डॉ. प्रेमलता शर्मा के सौजन्य से प्राप्त)

458. वही।

459. 'यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाथ।'

अर्थात् जहाँ (व्यक्ति) किसी को नहीं देखता, कुछ नहीं सुनता और कुछ भी नहीं जानता, वह 'भूमा' है। द्रष्टव्य : छां. उप. सप्तम अध्याय, चतुर्थ खंडः 'ज्ञान खंड' (108 उपनिषदों का) संपा.-श्री राम शर्मा आचार्य, पृ. 331।

विशेषः : इस उपनिषद् (छां. उप.) में 'भूमा' और 'अल्प' की विस्तार से व्याख्या की गई है।

460. 'यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यद्विजानाति तदल्पं।'

अर्थात जहाँ अन्य को देखता है अन्य को सुनता है, अन्य को जानता है, वह 'अल्प' है।

वही, पृ. 331।

461. 'मार्ग' और 'देशी' से संबंधित उक्त समस्त विवरण डॉ. प्रेमलता शर्मा जी के लेख 'भारतीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत-शास्त्र में 'मार्ग' तथा 'देशी' का विभाजन (अप्रकाशित) से लिया गया है।

462. रा. क. द्वि. खं, पृ. 433।

463. वही, पृ. 455-56।

464. 'पड़ताल' का लक्षण चतुर्थ अध्याय के 'ख' खंड में देखिये।

465. गु. सं. –पृ. 119।

466. वही–पृ. 185 तथा 189।

467. वही–पृ. 96।

468. वही–पृ. 208।

469. उक्त तालों के ठेके गु. सं. में।

470. रा. क., द्वि. खं.–पृ. 488।

471. वही, पृ. 489।

472. द्रष्टव्यः 'रा. क. का. वि. अ.'–में डॉ. चित्तरंजन ज्योतिषी का मत, षष्ठ अध्याय, पृ.।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धैवत : षष्ठ अध्याय

हिंदी के निर्गुण संतकाव्य में प्रयुक्त रसों का, संगीत के संदर्भ में अध्ययन

रस; काव्य एवं अन्य समस्त कलाओं की आत्मा है एवं सहृदय पाठक, श्रोता अथवा दर्शक के अंतस् में वह अनिवार्य चेतना के रूप में निगूढ़ रहता है। जिस प्रकार काव्य में रसोद्रेक शब्द एवं अर्थ-चमत्कारादि तत्त्वों पर निर्भर रहता है, उसी प्रकार संगीत में रसाभिव्यक्ति मुख्यतः स्वरों के लगाव एवं उनसे अर्थ-रूप में (कल्पना में) बनने वाले (स्थायी) भावादि तत्वों पर अवलम्बित रहती है।

शास्त्रों में भारतीय संगीत के सातों स्वरों के पृथक्-पृथक् रस निश्चित किए गए हैं। नाट्यशास्त्र प्रणेता भरत के अनुसार;

'हास्य और श्रृंगार में मध्यम तथा पंचम, वीर, रौद्र और अद्भुत रसों में षड़ज और ऋषभ का प्रयोग विहित है, करुण रस में गांधार और निषाद तथा वीभत्स और भयानक रसों में धैवत स्वरों का प्रयोग करना चाहिए।[1]

संगीत रत्नाकर के अनुसार, 'सा और रे वीर, अद्भुत और रौद्र रस का; ध वीभत्स और भयानक रसों का; ग और नी करुण रस का तथा म और प हास्य और श्रृंगार रसों के प्रकाशन में सहायक होते हैं।[2]

इस प्रकार शार्ङ्गदेव भी स्वरों के व्यक्तिगत रसों के संबंध में भरतमुनि से पूर्णतः सहमत हैं।

संगीत मकरन्दकार, नवें रस शांतरस की भी संगीत में सत्ता मानते हैं और स्वरों के निजी रसों के प्रसंग में उनका मत भरतमुनि से कुछ भिन्न है। वे, 'षड़ज में अद्भुत तथा वीर, ऋषभ में रौद्र, गांधार में शांत, मध्यम में हास्य, पंचम में श्रृंगार, धैवत में वीभत्स और निषाद में करुण रस[3] मानते हैं।

इस प्रकार शास्त्रग्रंथकारों ने विभिन्न स्वरों के निजी विशिष्ट रस माने हैं किंतु क्रियात्मक दृष्टिकोण से उक्त स्वरों के विभिन्न स्वतंत्र रस मानना बहुत कठिन जान पड़ता है। वास्तव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में यह विषय बहुत जटिल है और क्रियात्मक रूप से गवेषणात्मक अध्ययन की अपेक्षा रखता है।

संगीत के क्षेत्र में रस की विवेचना सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र में मिलती है। नाट्यशास्त्र में अन्य समस्त कलाओं की भांति संगीत-कला को भी 'नाट्य' के अंतर्गत स्थान मिला है। 'नाट्य' में श्रव्य और दृश्य दोनों तत्वों का योग रहने के कारण 'नाट्य' को संभवतः कला-मात्र की पूर्णाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम मानकर उसके संदर्भ में ही समस्त कलाओं की व्याख्या कर दी गई है।

'नाट्य, क्या है? 'अवस्थानुकृति नाट्यम्' अर्थात् जीवन की किसी भी अवस्था का अनुकरण 'नाट्य' है।[4]

कोई भी कला जीवन की अवस्था-विशेष के रूप में 'नाट्य' से पृथक् नहीं रह सकती, अतः नाट्य तत्त्व की सत्ता उसमें प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो परोक्ष रूप से अवश्य निहित रहती है। गीत में जहाँ पद रहता है, वहाँ तो कोई न कोई अवस्था स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप में रहती ही है। पद रहित गीत अथवा वाद्य में भी राग और ताल के माध्यम से कोई न कोई अवस्था, श्रोताओं की कल्पना में अवश्य कौंध जाती है। 'अवस्था' के रूप में 'नाट्य' की यह सार्वभौम सत्ता अन्य कलाओं की भांति संगीत में भी विद्यमान रहती है।

संगीत में जहाँ स्वर और ताल के चमत्कार-प्रदर्शन द्वारा कलापक्ष को प्रमुखता देना लक्ष्य रहता है, वहाँ बात दूसरी है। किंतु यदि भावपक्ष को मुख्यता देना गायक का ध्येय हो तो पद के रहने पर उसके अनुरूप स्वर-लय-योजना की अपेक्षा रहती है।[5] और पद के अभाव में निरंतर गायन अथवा वादन के समय भी किसी न किसी अवस्था की मन में कल्पना अवश्य रहती है।

इस प्रकार, संगीत में भावपक्ष को पुष्ट करना पद का प्रमुख लक्ष्य होता है, इसीलिए स्वर, लय के साथ-साथ, पद का भी गीत में बहुत महत्त्व है। यदि पद राग की प्रकृति एवं रस[6] के अनुकूल हो तो वह राग के भावचित्र को स्पष्ट करने में सहायक होता है, अतः रागों में उनके रसों के प्रतिकूल पदों का गायन दोष माना जाएगा। शास्त्रीय संगीत के अधुना प्रचलित 'पद' अंश को इस दृष्टि से बहुत दोषपूर्ण कहा जा सकता है। हिन्दी के निर्गुण-संतकाव्य का इस दृष्टि से अध्ययन भी बहुत महत्त्व रखता है, किन्तु स्थानाभाव के कारण एवं रागों के रसों का निधार्रण क्रियात्मक रूप से वैज्ञानिक और प्रामाणिक न होने के कारण यहाँ उक्त विषय पर प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

निर्गुण-संतकाव्य में यद्यपि शीर्ष रस शांत रस है, तथापि उसमें प्रायः सभी रसों के अभिव्यंजक पद मिलते हैं। संतों द्वारा प्रयुक्त इन समस्त रसों के उदाहरण देते हुए, काव्य के नवरसों की संगीत में स्थिति पर यहाँ कुछ विचार किया जाएगा।

प्रथम, संगीत में रस-निष्पत्ति की प्रक्रिया पर थोड़ा विचार कर लेना यहाँ स्थानीय एवं प्रासंगिक होगा। नाट्यशास्त्र के प्रसिद्ध रस-सूत्र के अनुसार विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से (स्थायी भाव की रस रूप में) रस- निष्पत्ति होती है[7]।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitized by eGangotri

विभाव, अनुभाव, संचारी भाव, सात्विक भाव तथा स्थायी भाव, ये सभी रस-निष्पत्ति में सहायक होने वाले रसोपकरण हैं। इन विविध रसोपकरणों में विभाव (आलंबन विभाव) का किसी भी कला के माध्यम से सहृदय के साथ सर्वाधिक प्रत्यक्ष संबंध रहता है। विभाव स्थायी-भाव एवं संचारी-भावों को जागृत करता है, अतः कला के माध्यम से ऐसी 'अवस्था' को प्रस्तुत करना, जिससे रति, शोक और उत्साह आदि स्थायी-भाव जागृत हों, आस्वादनीय बन जाएं, विभाव है।

जिन पात्रों के माध्यम से भाव-विशेष को जगाने के अनुकूल 'अवस्था' प्रस्तुत की जाती है वे 'आलम्बन' विभाव हैं तथा जो स्थितियां पात्र-विशेष अथवा आलंबन के हृदय में भाव-विशेष (स्थायी भाव) को उद्दीप्त करती हैं, वे 'उद्दीपन' विभाव हैं।

संगीत में आलंबन विभाव, पात्र-विशेष के रूप में प्रायः नहीं रहता। जहाँ पद से रहित रागालप्ति अथवा वाद्यवादन रहता है, वहाँ तो पात्र का प्रश्न ही नहीं उठता, किंतु गीत में जब पद रहता भी है, तब भी अधुना प्रचलित पद्धति में सभी पद प्रकीर्ण अर्थात् फुटकर रहते हैं। यहाँ तक कि राग के 'बड़े' और 'छोटे' ख्याल में भी, पात्र की दृष्टि से परस्पर कोई संबंध नहीं होता। इस स्थिति में पात्र-विशेष के साथ पद का संबंध या तो बिल्कुल ही नहीं होता और या यह संबंध रहने पर भी कथावस्तु के अभाव में, पात्र-विशेष की सत्ता इतनी क्षीण रहती है कि गायक और श्रोता साधारणीकरण के द्वारा उसे सर्वसामान्य रूप में ग्रहण करते हैं।

उद्दीपन विभाव को भी, इसी प्रकार पद के द्वारा अभिव्यक्त करने का गीत में बहुत कम अवकाश रहता है, क्योंकि गीत में पद की अपेक्षा स्वर और ताल का महत्त्व अधिक रहता है।

आलंबन एवं उद्दीपन विभाव की भाँति अनुभाव का भी रसनिष्पत्ति में बहुत योग रहता है। श्रव्यकाव्य में शब्दों द्वारा अनुभाव को प्रकट किया जाता है और गीत में भी पद द्वारा ऐसा किया जा सकता है, केवल इतना अवश्य है कि उपयुक्त स्वर, काकु, लय और स्थान आदि का यथास्थान प्रयोग आवश्यक होगा।

सात्विक भावों अश्रु, कम्प, पुलक और स्वरभंगादि का गीत, वाद्य एवं नृत्य; संगीत के तीनों अंगों में स्थान रहता है। सात्विक भावों की स्थिति गीत में पद द्वारा तथा पद, स्वर और लय अर्थात् गीत के समष्टिगत प्रभाव द्वारा दोनों प्रकार से मानी जा सकती है। वाद्य में स्वर, लय के माध्यम द्वारा और नृत्य में विभिन्न हावों-भावों एवं मुद्राओं द्वारा सात्विक-भावों का उद्रेक होता देखा जाता है।

स्थायी भाव और संचारी भावों के प्रसंग में संगीत तथा अन्य ललित कलाओं के क्षेत्र में भी काव्यकला की सी ही स्थिति है, क्योंकि उन्हें जागृत करने का माध्यम भिन्न होने पर भी उनके स्वरूप में कोई अंतर नहीं रहता।

संगीत कला के प्रसंग में रसनिष्पत्ति; स्वर-लय के वैचित्र्य, पद की रागभावानुकूलता, गायक के व्यक्तित्व, उसकी मनःस्थिति, कला-पटुता एवं श्रोतागण के स्तर प्रभृति अनेक तत्त्वों पर अवलम्बित रहती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाट्यशास्त्र में संगीत कला में रस की स्थिति पर केवल दो उल्लेख मिलते हैं। प्रथम, जाति-प्रकरण में भरत ने लिखा है कि भिन्न-भिन्न जातियों (राग गायन से पूर्व संगीत के क्षेत्र में जाति-गायन का प्रचलन था) का किस-किस रस की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए।[8]

द्वितीय, वाद्यसंगीत में रसाभिव्यक्ति की चर्चा करते समय उन्होंने लिखा है कि, 'हास्य और श्रृंगार रस में मध्यम, पंचम; वीर, रौद्र और अद्‌भुत रस में षड्ज, ऋषभ; करुण रस में गांधार, निषाद और वीभत्स एवं भयानक रसों में धैवत का प्रयोग करना चाहिए।[9]

कुछ विद्वान् स्वरों की तीव्र और कोमलादि अवस्था पर भी विभिन्न रसों की अवतारणा को निर्भर मानते हैं[10], किंतु संगीत में रसाभिव्यक्ति सप्तकभेद, स्वरों के उच्चारभेद, स्पर्शभेद, गमकादि प्रयोगभेद, लयभेद, (ताल या लय की द्रुत, मध्य या विलम्बित गति) राग की चंचल अथवा गंभीर प्रकृति एवं उसके समकक्ष की निजी प्रकृति, गायक की संगीत-साधना का लक्ष्य और श्रोतृवर्ग का स्तर तथा पद आदि अनेक तत्त्वों पर अवलम्बित रहती है।[11]

इस प्रकार, संगीत में रस की दृष्टि से स्वर का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है। आचार्य बृहस्पति के अनुसार, 'स्वरसन्निवेश के द्वारा रस-प्रक्रिया में स्थायीभाव का आलम्बन 'अंश स्वर' होता है, जिसकी संज्ञा 'स्थायी स्वर' होती है। स्थायी स्वर का 'संवादी स्वर' उद्दीपन विभाव' का कार्य करता है, 'प्रयुज्यमान अनुवादी स्वर' अनुभाव का कार्य करते हैं और 'स्थायी स्वर' को उभारते रहते हैं एवं 'संचारी स्वर' 'संचारी भावों' के प्रकाशक होते हैं।[12] किंतु रस-निष्पत्ति में स्वर के साथ-साथ ताल और पद के महत्त्व की भी संगीत में उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतः संगीत में स्वर, ताल और पद तीनों तत्त्वों का रसोद्रेक की दृष्टि से महत्त्व मानना होगा, यद्यपि यह सत्य है कि अधुना प्रचलित शास्त्रीय संगीत में स्वर और ताल की अपेक्षा पद का स्थान बहुत गौण रहता है।

संगीत में पद की अपेक्षा स्वर और ताल का माध्यम अधिक सबल रहने पर भी, रस की दृष्टि से संतकाव्य पर विचार करते समय हमें पद का ही अवलंब ग्रहण करना पड़ता है, क्योंकि नामोल्लिखित रूप में प्राप्त राग-ताल द्वारा रसों का निर्धारण अति दुष्कर है, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है।

हमारे विवेच्य काल के निर्गुण संतकवियों के पदसंग्रहों में प्रायः काव्य के समस्त प्रतिनिधि रसों के प्रतिपादक पद मिलते हैं। संतकाव्य का मुख्य रस, शान्तरस है। संतकाव्य में इस रस की स्थिति अंगीरस के समान कही जा सकती है एवं अन्य प्रयुक्त रस अंगीरस, शातंरस के विभिन्न अंगों के रूप में, कहे जा सकते हैं।

<u>शांतरस</u> के दो उदाहरण निम्नांकित हैं;

1. *'राम थोरे दिन कों का धन करना,*
   धंधा बहुत निहाइति मरनां ॥
   कोटी धज साह हस्ती बंध राजा, क्रिपन को धन कौनें काजा।
   धन के गरीब राम नहिं जांनां, ना गाहै जंम पैं गुदरांना ॥
   कहै कबीर चेतहु रे भाई, हंस गया कछु संगि न जाई।'[13]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

2. *झूठो धन झूठो धाम झूठो सुख झूठो काम,*
झूठो देह झूठो नाम धरि कै भुलायो है।
झठो तात झूठी मात झूठे सुत दारा भ्रात,
झूठो हित मानि मानि झूठो मन लायो है।
झूठो लेन झूठो देन झूठो मुख बोलै बैन,
झूठै झूठै करै फेन झूठ ही को धायो है।
झूठो ही है मेरो तेरो झूठो ही में पचि गयो,
सुंदर कहत सांच कबहुं न आयो है।[14]'

संतकाव्य में शृंगार (संयोग शृंगार एवं वियोग शृंगार) उभय रस का भी बहुल प्रयोग मिलता है, किंतु संतों के इन पदों को विशुद्ध शृंगार रस के पद नहीं कहा जा सकता, वे शांतरस के ही अंगरूप में प्रयुक्त हुए हैं। नीचे संयोग शृंगार और विप्रलम्भ शृंगार का एक- एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है।

3. *'दुलहनी गावहु मंगलचार।*
हम घरि आये हो, राजा रांम भरतार॥
तन रत करि मैं मन रत करिहूं, पंचतत बराती।
रामदेव मोरे पाहुनें आये, मैं जोबन में माती।
सरीर सरोवर बेदी करिहूं, ब्रह्मा बेद उचार।
रामदेव संगि भांवरि लैहूं, धनि धनि भाग हमार।
सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनियर सहस अठयासी।
कहैं कबीर हमं व्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी[15]।

3. *'अजहूं न निकसे प्राण कठोर*
दर्सन बिना बहुत दिन बीते, सुंदर प्रीतम मोर॥
चारि प्रहर चार्‌यों जुगं बीते, रैनि गँवाई भोर।
अवधि गई अजहूं नहिं आये, कतहूं रहे चितचोर।
कबहूं नैन निरषि नहिं देषे, मारग चितवत तोर।
दादू अैसें आतुर विरहिणि, जैसे चंद चकोर।[16]

संतों की पदावली में शांतरस के आनुषंगिक रस के रूप में वीर रस के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं, यथा;

1. *हाथ में गहे खड़ग मारबे को एक पग,*
तन मन आपनो समरपण कीनो है।
आगे कर मीच कोसों परयो डाकि रण बीच,
टूक टूक होइके भगाय दल दीनो है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खाय लौन श्याम को हरामखोर कैसे हाय,
नाम जात जगत् में जीत्यो मन तीनो है।
सुंदर कहत ऐसो कोऊ एक शूरबीर,
शीश को उतारि कै सुयश जाय लीनो है।[17]

2. *महामत्त हाथी मन राख्यो है पकरि जिन।*
अति ही प्रचंड जामें बहुत गुमान है ॥
काम, क्रोध, लोभ, मोह बांधे चारयो पांव पुनि,
छूटने न पावे नेक प्राण पीलवान है ॥
कबहूं जो करे और सावधान सांझ भोर,
सदा एक हाथ में अकुंश गुरु ज्ञान है ॥
सुंदर कहत और काहू के न बश होय,
ऐसो कौन शूरबीर साधु के समान है[18] ॥

संतों ने मानव-शरीर के प्रति जुगुप्सा का भाव व्यंजित करके व्यक्ति को देह-ममत्व से विरक्ति करवाकर ईशभक्ति की ओर प्रेरित करने के लिए अनेक पद लिखे हैं, जिन्हें वीभत्स रस के प्रतिपादक कहा जा सकता है।

1. *'या शरीर माहिं तू अनेक सुख मानि रइयो,*
ताहि तू बिचार यामें कौन बात भली है।
मेद मज्जा मांस रग रगन में रक्त भरयो,
पेट हू पिटारी सी में ठौर ठौर भली है ॥
हाड़न सों मुख भरयो हाड़न के नैन नाक,
हाथ पांव सोऊ सब हाड़न की नली है ॥
सुंदर कहत याही देख जनि भूलै कोय,
भीतर भंगारि भरी ऊपर ते कली है[19] ॥

2. *हाड़ को पिंजर चाम मढ़यो,*
सब माँहिं भरयो मलमूत्र बिकारा ॥
थूक रु लार परै मुख ते पुनि,
व्याधि बहै सब औरहू द्वारा ॥
मांस की जीभ सों खाय सबै कछु,
ताही ते ताके है कौन विचारा ॥
ऐसे शरीर में पैठि के सुंदर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

 CC0. In Public Domain, Digitized by eGangotri

कैसे के कीजिये शौच अचारा[20] ॥

संतकवियों द्वारा विरचित उलटबांसियों में अद्‌भुत-रस का परिपाक देखा जा सकता है, एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत है

1. *एक अचंभा देखा रे भाई,*
ठाढ़ा सिंध चरावै गाई ॥
पहलें पूत पीछे भाई माई, चेला के गुरु लागै पाई।
बैलहि डारि गूंनि धरि आई, कुत्ता कूं लै गई बिलाई ॥
तलि करि साषा ऊपरि करि मूल, बहुत भांति लागे जड़फूल ॥
कहै कबीर या पद को बूझै, ताकूं तीन्यूं त्रिभुवन सूझें।[21]

इस प्रकार शांत, शृंगार, वीर, वीभत्स और अद्‌भुत आदि सभी प्रमुख रसों के अभिव्यंजक पद संतकाव्य में मिलते हैं। इन रसों के अतिरिक्त हास्य, करुण भयानक आदि रसों के प्रतिपादक पद भी संतों के पद संग्रहों में खोजे जा सकते हैं।

हास्य रस का एक उदाहरण प्रस्तुत है;
'कीधौं पेट चूल्हा कीधौं भाट्ठी कीधौं भार आय,
जोई कछु झोंकिये सो सब जरि जात है।
कीधौं पेट थल कीधौं बाँबी कीधौं सागर है,
जितो जल परै तितो सकल समात है।
कीधौं पेट दैत्य कीधौं भूत प्रेत राक्षस है,
खावों खावों करै, कबों नेक न अघात है।
सुंदर कहत प्रभु कौन पाप लायो पेट,
जबतें जनम भयो तबहीं ते खात है[22] *।'*
संतों की उलटबांसियों में भी हास्य रस के अनेक उदाहरण मिलते हैं।
बाबल मेरा ब्याहि करि, बर उत्यम ले जाहि।
जब लगि बर पावै नहीं, तब लग तूं हीं ब्याहि ॥[23]*'*

संतों के विप्रलंभ-शृंगार के अनेक वर्णनों में करुण भाव की व्यंजना मिलती है। यथा,

कब देखूं मेरे राम सनेही,
जा बिन दुख पावै मेरी देही ॥
हूं तेरा पंथ निहारूं स्वामी
कबर मिलहुगे अंतरजामी।
जैसें जल बिन मीन तलपै।
ऐसे हरि बिन मेरा जियरा कलपै।
निसदिन हरि बिन नींद न आवै,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दरस पियासी राम क्यूं सचु पावै।
कहै कबीर अब विलम्ब न कीजै,
अपनो जांनि मोहि दरसन दीजै[24]।'

वास्तव में इसे करुण रस का पद नहीं कहा जा सकता। इस पद में करुणा का भाव अवश्य है, किंतु करुण रस में इष्टनाश, अनिष्ट-प्राप्ति आदि तत्त्व रहते हैं[25]

हास्य और करुण आदि रसों की भांति भयानक और रौद्र आदि रसों के भी संतकाव्य में उदाहरण खोजे जा सकते हैं, किंतु इन रसों की संतकाव्य में यदि कहीं सत्ता है तो नितांत गौण रसों की भांति ही इनका अस्तित्व होगा। संतकाव्य में प्रमुख रसों में शांत और अद्भुत रसों का ही स्थान परिलक्षित होता है। अन्य रस शांत रस के आनुषंगिक होकर गौणरूप से ही प्रयुक्त हुए हैं।

तद्वत् संगीत में भी कुछ रसों की स्थिति, प्रमुख रसों की भांति एवं अन्य रसों की गौण रसों की भांति कही जा सकती है।

संगीत में सामान्यतः शांत, अद्भुत, करुण, शृंगार (संयोग एवं वियोग शृंगार दोनों) और वीर (युद्धवीर ही नहीं अपितु उत्साह, उल्लास उमंगादि का सामान्य स्वरूप भी यहाँ वीर के अर्थ में अभिप्रेत है) इन 5 मुख्य रसों का ही स्थान दृष्टिगत होता है। शांत के अंतर्गत भक्ति का भी समावेश मान लिया जाता है। रौद्र, वीभत्स, भयानक और हास्य रसों की नाट्य से स्वतंत्र संगीत में संचारी भावों के रूप में ही स्थिति मानी जा सकती है, क्योंकि किसी भी राग में रौद्र वीभत्स, भयानक या हास्य पूरे समय तक स्थायी भावों की भांति विद्यमान रहें, यह संभव नहीं। विभिन्न गमक प्रयोग से, काकुभेद से या स्थानभेद से किन्हीं रागों के गायन अथवा वादन द्वारा उक्त रसों की बीच-बीच में अवतारणा अवश्य की जा सकती है, किंतु नाट्य से स्वतंत्र संगीत में उपर्युक्त राग रंजक नहीं हो सकते, संचारी भावों के रूप में ही इनका अस्तित्व स्वीकार किया जा सकता है। जिस प्रकार श्रीपाद् रूपगोस्वामी ने मुख्य तथा गौण भक्ति रसों का विभाजन किया है, उसी प्रकार संगीत में भी मुख्य तथा गौण रसों का वर्गीकरण नितांत अपेक्षित दृष्टिगत होता है।[26]

अन्य सभी कलाओं की भांति संगीत में भी शृंगार रस को प्रमुखता मिली है। शृंगार के उभय भेद; संयोग एवं विप्रलम्भ को संगीत में प्रमुख स्थान मिला है।

शृंगार के पश्चात् द्वितीय स्थान भक्ति अथवा शान्तरस का है। संतों की शृंगार (आध्यात्मिक) अध्यात्मज्ञान तथा तत्त्वज्ञान-विषयक समस्त रचनाएँ, भक्ति अथवा शांतरस के अंतर्गत रखी जा सकती हैं।

अद्भुत रस की स्थिति, कला में सर्वमान्य है। कोई भी लोकोत्तर वस्तु, अद्भुत रस की अनुभूति करा सकती है और प्रत्येक उत्कृष्ट ललित कला की अनुभूति लोकोत्तर ही रहती है, किंतु संगीत में तान-प्रयोग, ताल की भिड़ंत, तिहाई, आड़-कुआड़ आदि लयकारियों के प्रदर्शन, विवादी स्वरों अथवा राग के सम्मान्य स्वर-संदर्भ के कुशल एवं विचित्र प्रयोगों में अद्भुत रस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का स्थान, विशेष-रूप से माना जा सकता है।

संगीत में करुण रस की स्थिति विशेष विचारणीय है। साहित्य में करुणा का मृत्युजनित वियोग से ही विशेष संबंध रहता है, परंतु संगीत में हम चित्त को द्रवित करने वाली किसी भी स्वरावली को प्रायः करुणा-अभिव्यंजक मान लेते हैं। संगीत में इसी कोटि के करुण रस का विशेष स्थान है।[27]

अभिनय अथवा काव्य में हास्य रस की स्थिति परचेष्टानुकरण, विकृत वेष, मुख-विकृति, प्रलापादि प्रसंगों में देखी जाती है, किंतु संगीत में स्वर-लय के माध्यम से हास्य रस का अस्तित्व अन्य गायकों या गायकों के अनुकरण, विकृत मुखमुद्रा, हाथ-पांव पटकने, हास्य पैदा करने वाले विकृत (रूप में) स्वर लगाव, एवं दोषपूर्ण ढंग से तान-गायन आदि में माना जा सकता है, किंतु स्मरण रहे कि शास्त्र-ग्रंथों में संगीतज्ञ के लिए विकृत मुखमुद्रा, दोषपूर्ण ढंग से स्वरलगाव एवं तानप्रयोगादि को दोष माना गया है।[28]

वीररस के तीन भेद दानवीर, दयावीर और धर्मवीर माने गए हैं। संगीत में जिन रागों को वीररसानुकूल कहा गया है, वे उत्साह, उमंग अथवा उल्लास के ही सूचक होते हैं। 'वीर' से वहाँ, उत्साह 'या' ओज का सामान्य अर्थ ही अभिप्रेत होता है। ध्रुपद की रागालप्ति में गाई जानेवाली ओजगुण से युक्त गमक-प्रधान-शैली को भी उक्त अर्थ में वीररस के अंतर्गत स्थान दिया जा सकता है।

इस प्रकार, काव्य के नवरसों का, संगीत में स्थान-विषयक संक्षिप्त अध्ययन ऊपर किया गया है क्योंकि उक्त अध्ययन-विशेष का हमारे शोध के प्रकृत विषय से प्रत्यक्ष संबंध है। विषय की जटिलता, विद्वानों का मतभेद एवं प्रबंध की सीमा को देखते हुए विस्तृत रूप से विषय पर विचार किया जाना संभव नहीं हो सका, अतः संक्षेप में ही उक्त विषय पर प्रकाश डालने का यहाँ लघु प्रयास किया गया है।

संदर्भ

1. 'हास्यश्रृंगारयोः कार्यौ स्वरा मध्यम पंचमो।
षडजर्षभो च कर्त्तव्यो वीर रौद्राद्भुतेष्वथ ॥
गांधारश्च निषादश्च कर्त्तव्यो करुणे रसे।
धैवतश्च प्रयोक्तव्यो वीभत्से च भयानके।'
(नां. शा. एकोनत्रिंशत्तमो ऽध्यायः, श्लो. सं. 17-18)
2. 'स री वीरो ऽद्भुते रौद्रेधो वीभत्से भयानके।
कार्यौ गा नी तु करुणे हास्य श्रृंगारयौर्मपो।'
(सं. र., प्र. भा., पृ. 96, श्लो. सं. 59)
3. षडजस्याअद्भुतवीरौ व ऋषभस्य च रौद्रकः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गांधारस्य च शान्ति च हास्याख्यं मध्यमस्य च ॥
पंचमस्य च श्रृंगारो वीभत्सो धैवतस्य च।
करुणा च निषादस्य सप्तस्थान रसा नवं ॥
—सं. म.-नारद, सं. मंगेश रामकृष्ण तेलंग,
श्लो. सं. 47-48।

4. द्रष्टव्यः रा. क. का. वि. अ. -पृ. 170
5. शास्त्रीय संगीत में अधुना प्रचार में इस ओर से घोर उपेक्षा दृष्टिगत होती है। सामान्यतः स्वर-लय के लालित्य द्वारा ही भावपक्ष को पुष्ट बनाया जाता है, पद के अनुरूप स्वर-संयोजना की ओर ध्यान नहीं दिया जाता।
6. रागों के रस निश्चित करना अत्यंत कठिन है और यह विषय अभी संगीत-शास्त्रकारों के गहन अध्ययन, परिशीलन एवं उनकी साधना की अपेक्षा रखता है। आचार्य बृहस्पति के अनुसार 'संगीत प्रयोज्य प्रचलित ध्वनियों की स्वरसंज्ञायें किसी कारण से परिवर्तित हो गई हैं। उस परिवर्तन के कारणों की खोज करके प्राचीन एवं प्रचलित पद्धतियों में रस संबंधी सिद्धांतों के सामंजस्य के दर्शन के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है।'
(भ. का. सं. सि.-आचार्य, बृहस्पति, प्राक्कथन पृ. 30)
7. 'विभावानुभाव. व्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।'
ना. शा. —6,32,274।
8. 'यस्मांजायते रसप्रतीतिराम्यत इति जातयः।'
—म.को.-मतंग, पृ. 227।
9. ना. शा, 29। 16—18.।
10. द्रष्टव्यः सं. अ., तृ. सं. विश्वंभरनाथ भट्ट, पृ. 9।
11. सं. तां., भाग 3, पृ. 18-19 द्रष्टव्य।
12. भ. का. सं. सि. —पृ. 270।
13. क. ग्रं.—99—92।
14. सुं. वि.—11वां सं.—23 । 40।
15. क. ग्रं.—69। 10
16. दा. द. की बा.—6। 359।
17. सु. वि. —2। 14।
18. वही — 13।149।
19. सुं. वि. —2/ 67।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

20. वही–3/ 68।

21. क. ग्रं. – 11/ 72।22. सु. वि.–3/ 56।

22. सु. वि. -3/56।

23. क.ग्र. –13/ 73।

24. क.ग्र. –244/ 122।

25. द्रष्टव्य : इष्टनाशादनिष्टापि : करुणाख्यो रसो भवेत्।
सा. द. 3 222

26. द्रष्टव्य : डॉ. चितरंजन ज्योतिषी का मत, रा. क. का. वि. अ.–पृ. 171

27. वही-पृ. 172

28. वही, ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निषादः सप्तम अध्याय

शास्त्रीय संगीत के 'पद' अंश में, हिंदी-निर्गुण-काव्य का अस्तित्व

स्वर और ताल की भांति शास्त्रीय संगीत में "पद" को भी बहुत महत्त्व प्राप्त है। आज सर्वसामान्य में प्रचलित "संगीत" शब्द के लिए "भरत" ने नाट्यशास्त्र के 28 वें अध्याय में "गांधर्व" शब्द का प्रयोग किया है और "गांधर्व" में उन्होंने स्वर, ताल और पद इन तीनों तत्त्वों का समावेश माना है।[1] "प्रबंध" जिसे कि हम आज की 'बंदिश' अथवा 'चीज़' शब्द का पर्याय कह सकते हैं, उसमें भी स्वर, ताल और पद, तीनों तत्त्वों का एकत्र समावेश है।[2] क्योंकि, शास्त्रीय-संगीत में प्रचलित बन्दिशों में हिंदी-निर्गुण-काव्य का अस्तित्त्व; स्वर अथवा तालरचना के माध्यम से देखा जाना संभव नहीं है, अतः प्रस्तुत अध्याय में शास्त्रीय-संगीत के "पद" अंश को ही आधार बनाकर उक्त अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

संगीत में प्रचलित निर्गुणपरक पदों में हमें, हिंदी की निर्गुण काव्यधारा के प्रायः सभी प्रमुख तत्त्व मिलते हैं, अतः निर्गुणभक्ति के प्रभाव की दृष्टि से उक्त पदों की उपयोगिता समझ इन्हें विषयानुसार यथास्थान वर्गीकृत, कर प्रस्तुत किया गया है। इन पदों का संकलन आधुनिक प्रचार के आधार पर बने शास्त्रीय-संगीत के प्रतिनिधि पद-संग्रहों भातखंडे कृत "क्रमिक पुस्तक मालिका" के छः भागों, राजा नवाब अली कृत "मारिफ़ुन्नगमात" के तीन भागों, पटवर्द्धन जी कृत "रागविज्ञान" के 5 भागों तथा पं. ओंकारनाथ ठाकुर प्रणीत 'संगीतांजलि' के छः भागों से किया गया है। इन पुस्तकों में उपलब्ध हिंदी के प्रमुख निर्गुणोपासक कवियों के पदों का संग्रह पृथक् रूप से कर लिया गया है।

श्रीकृष्णानंद व्यासदेव विरचित "रागकल्पद्रुम" भारतीय संगीत की दृष्टि से एक ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रंथ है। इसे हम भारतीय संगीत का विश्वकोष कह सकते हैं। न केवल संगीत की दृष्टि से अपितु हिंदी-साहित्य के इतिहास की दृष्टि से भी यह ग्रंथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रंथ में हिंदी के 'निर्गुण' और 'सगुण' भक्तों के पदों का विपुल भंडार मिलता है। ग्रंथ की संगीत एवं साहित्य, उभय दृष्टि से ऐतिहासिक महत्ता को देखते हुए इसमें से हिंदी के प्रमुख निर्गुण भक्तों के पदों का संग्रह* विषयानुसार तालिकाओं में प्रस्तुतं किया गया है।

उक्त ग्रंथ में आज्ञातनामा कवियों के अनेक निर्गुणपरक पदों को देख कर, तत्कालीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाग्गेयकारों पर हिंदी के निर्गुणोपासक भक्तों का स्पष्ट प्रभाव कहा जा सकता है। निर्गुण भक्ति के प्रभाव के परिचायक इन अज्ञातनामा कवियों के पदों का भी पृथक् रूप से संग्रह कर लिया गया है।

वाग्गेयकार तानसेन और बैजू के विपुल राशि में उपलब्ध निर्गुण भक्ति के पदों को हिंदी की निर्गुणभक्ति-धारा के प्रभाव का परिणाम कहा जा सकता है। तानसेन द्वारा किये गए इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों के वर्णन के लिए भी यही बात कही जा सकती है।

सं. 1983 में प्रकाशित श्री. "भक्तराम" की पुस्तक "राग रत्नाकर" को हिंदी के 'निर्गुण' एवं 'सगुण' भक्तों के अनेक रागतालबद्ध पदों के संग्रह की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कृति कहा जा सकता है। इस ग्रंथ में संत-नामदेव, कबीर, रैदास, नानक, गुरु अर्जुनदेव, सुंदरदास प्रभृति 'निर्गुणी' संतों के रागताल नामांकित पदों का विशाल संग्रह किया गया है किंतु सुंदरदास के केवल दो ही पदों के साथ रागनाम संयुक्त हैं। इस ग्रंथ में संकलित अन्य निर्गुणी-कवियों के पदों का "आदिग्रंथ" के पदों के साथ मिलान करने पर पता चला कि इन पदों को प्रायः रागनाम सहित वहीं से संगृहीत कर लिया गया है। न केवल गुरु नानक और गुरु अर्जुनदेव की बानी ही, अपितु संत नामदेव तथा कबीर आदि हिंदी के प्रमुख निर्गुणी संतों के पदों के रागनाम भी प्रायः "आदिग्रंथ" के अनुसार हैं। पाठभेद भी प्रायः नहीं मिलता। कहीं-कहीं ही कोई पद अथवा पद का रागनाम, आदिग्रंथ के बाहर से लिया गया है। उदाहरण के लिए प्रमुख निर्गुणी कवियों के कुछ पदों को आदिग्रंथ के पदों के साथ तुलनात्मक रूप से दिखाया गया है।

उक्त ग्रंथ में गुरु नानक तथा गुरु अर्जुनदेव जी के पदों में आदिग्रंथ की तुलना में, रागनाम संबंधी एक अंतर उल्लेखनीय है, वह यह कि "आदिग्रंथ" में जिन पदों पर "आसा" रागनाम मिलता है, वहां "रागरत्नाकर" में प्रायः "आसावरी" कर दिया गया है। इसका एक कारण तो हम यह भी मान सकते हैं कि आज "आसा" राग के गायन का प्रचार बहुत कम है तथा संग्रहकार की राग-ज्ञान संबंधी अल्पज्ञता भी एक कारण कही जा सकती है कि राग 'आसा' और 'आसावरी' में उन्होंने कोई अंतर न समझा हो, जबकि दोनों रागों के स्वरूप में कोई साम्य नहीं है। रागकल्पद्रुमकार की भाँति 'रागरत्नाकरकार', उच्चकोटि के संगीतज्ञ निश्चय ही नहीं थे।

"रागकल्पद्रुम" के "नानक" नामांकित पदों के संबंध में एक बात विशेष ध्यातव्य है कि सामान्यतया "नानक" के नाम से मिलने वाले सभी पदों को "भ्रान्तिवश" नानक के पद समझ लिया जाता है, जोकि उचित नहीं। रागकल्पद्रुमकार को भी इन पदों के संबंध में यहां भ्रान्ति हुई थी, ऐसा जान पड़ता है।[3] उक्त ग्रंथ में प्राप्त "नानक" के नाम से मिलने वाले इन सभी पदों की आदिग्रंथ के साथ तुलना करने पर पता चला कि इनमें से अधिकांश पद महला", अर्थात् गुरु तेगबहादुर के हैं और एक दो पद "आदिग्रंथ" में नहीं हैं। नानक के नाम से प्रसिद्ध "इस दम दा मैनूं कीवे भरोसा" पद आदि-ग्रंथ में नहीं है और यह पद भी संभवतः कबीर के नाम से प्रचलित 'घूंघट का पट खोल रे तोको पीव मिलेंगे" आदि पदों की भाँति गायक-वर्ग में लोकप्रिय होने के कारण ही उक्त ग्रंथ में "नानक" का पद समझकर संकलित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर लिया गया है।

"रागकल्पद्रुम" का संकलन गायकवर्ग में से प्रस्तुत होने के कारण प्रमुख निर्गुण संतकवियों के पदों के साथ रागनाम-वैविध्य मिलता है जबकि संतकवियों के स्वतंत्र पदसंग्रहों की मूलप्रतियों में रागनाम बहुत अल्प संख्या में मिलते हैं। विशेषतः कबीरदास के "कबीर बीजक" तथा सुंदरदास के "सुंदर विलास" की मूल प्रतियों में जहाँ पदों के साथ कहीं रागनाम का उल्लेख नहीं मिलता, वहाँ 'रागकल्पद्रुम' में इन्हीं पद्यों के साथ कहीं रागनाम का उल्लेख नहीं मिलता, वहाँ रागकल्पद्रुम में इन्हीं पद्यों के साथ प्रायः 70 रागों के नाम अंकित हैं, इससे यह सूचित होता है कि ये पद्य उस काल में या तो सामान्य गायक-वर्ग में विशेष प्रचलित रहे होंगे अथवा कोई निर्गुण-पंथी ही विशेष गायक रहे होंगे, जिन्होंने संप्रदाय के अनुराग से सब पद्यों/पदों को शास्त्रीय रागतालों में निबद्ध कर लिया होगा।[4] तथ्य कुछ भी रहा हो, यह तो मानना ही होगा कि उक्त ग्रंथ के राग संबंधी उल्लेख का आधार गायकवर्ग में प्रचलित परंपरा पर ही रहा होगा, तभी शास्त्रीय-संगीत में निर्गुण भक्ति के ये पद स्थान पा सके हैं।

इस प्रकार, शास्त्रीय-संगीत के "पद" अंश में हिंदी निर्गुण-काव्य का अस्तित्व अक्षुण्ण रूप से वर्तमान मिलता है।

शास्त्रीय-संगीत में प्रचलित निर्गुणपरक पदों के विषय निर्गुण-निराकार ब्रह्म की उपासना, गुरु माहात्म्य, नाममहिमा, ज्ञानमहिमा, अनाहतनाद, उपदेश अथवा चेतावनी, विनय, भक्ति, बाह्याचार विरोध (योग, तीर्थ, व्रत, आदि की निस्सारता) एवं अंतः साधना पर बल आदि हिंदी-निर्गुण संत काव्य के प्रभाव का परिणाम कहे जा सकते हैं, अतः विषयानुसार संकलित चीज़ों की सूची यहाँ प्रस्तुत है।

निर्गुण-निराकार ब्रह्म की उपासना से संबंधित ध्रुपद शैली में प्राप्त पद

क्रमांक	रागनाम	गायन शैली व ताल	प्रथम पंक्ति	पुस्तक एवं पृ. सं.
1.	देसी	ध्रुपद-झपताल (विलं.)	निरंजन कीजे मुकति मेरी	मारिफुन्नगमात भाग2.पृ. 281
2.	तोड़ी	चौताल-ध्रुपद	मेरे तो अल्ला नाम को	क्र.पु.मा.2, पृ. 475
3.	ललित	ध्रुपद-चौताल	नारायण तेरी गत अगाध	क्र.पु.मा. 4, पृ. 520।
4.	श्री	वही	नरहर नरोत्तम नारायन	वही, भाग 3, पृ. 381।
5.	हंसनारायणी	वही	मेरे तो राम नाम	संगीत (पत्रिका) आसावरी घाट अंक, पृ. 131 अंक वर्ष 27।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

निर्गुण निराकार-ब्रह्मोपासना संबंधित ख्याल-शैली में प्राप्त पद

क्रमांक	रागनाम	तालनाम	प्रथमपंक्ति	पुस्तक व पृ. सं.
1.	यमन	एकताल	भज मन करुणा-निधान	क्र.पु.मा.2, पृ. 22-23
2.	देशकार	त्रिताल	हरिको नाम उचार तू नर	क्र.पु.मा. 4, पृ. 241
3.	दरबारी-कानड़ा	एकताल	सुमिरन कर मन पवित्र	वही, पृ. 91, 52, 63
4.	देसी	झपताल	निरंजन कीजे मलमुक्त	क्र. पु. मा. 6, पृ. 35 3
5.	बरवा	वही	सोच समझ मन, अब	वही, पृ. 135

सद्गुरु की महिमा संगीतज्ञों ने भी निर्गुणी कवियों की भांति खूब गाई है, क्योंकि गोविंद[5] अथवा नादब्रह्म से साक्षात्कार कराने वाला महामना गुरु ही हो सकता है।[6] अतः वह अभिनन्दनीय है।

गुरु महिमा के ख्याल शैली में प्राप्त पद;

क्र.	रागनाम	तालनाम	प्रथम पंक्ति	पुस्तक नाम व पृ.सं.
1.	हमीर	त्रिताल	नमन करूँ मैं गुरु	क्र.पु.मा. 3, पृ. 73
2.	दरबारी कानड़ा	त्रिताल	जो गुरु कृपा करे	वही, भाग, 4, पृ. 651
3.	अडाणा	वही	मूढ़ अबुध नर तज	वही, पृ. 719

विशेषः कबीर आदि निर्गुण संतकवियों की भांति संगीतज्ञों ने भी "सद्गुरु" शब्द का प्रयोग कहीं-कहीं ब्रह्म के लिए किया है।

द्रष्टव्यः "सोच समझ मन मीत पियरवा सद्गुरु नाम करे सुमरनवा।"

(राग केदार-त्रिताल, क्र.पु.मा.भाग 3, पृ. 124)

संगीत में नाम-महिमा के ध्रुपद-शैली के उपलब्ध पद प्रस्तुत हैं

क्रमांक	रागनाम	तालनाम	प्रथम पंक्ति	पुस्तक व पृ. सं.
1.	झीलफ (सादरा)	झपताल	नाम ही केवल सह–सानन	क्र.पु. मा. 5, पृ. 405।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम-महिमा के ख्याल-शैली के पद

क्रमांक	रागनाम	तालनाम	प्रथम पंक्ति	पुस्तक एवं पृ. सं.
1.	यमन	त्रिताल (म.ल.)	भज हरि नाम तू	क्र.पु.भा.2. पृ. 37
2.	अल्हैया बिलावल	एकताल	ते हरि नाम नाहीं	रा.वि.3, पृ. 17 3
3.	वही	त्रिताल	सुमिरन कर भज	वही, पृ. 176
4.	गौड़ सारंग	वही	भज मन राम नाम	क्र.पु. भा 4, पृ. 146
5.	देशकार	वही	हरि को नाम उचार	वही, पृ. 249
6.	वही	वही	हरि हरि नाम ले	वही, पृ. 252
7.	ललित	एकताल	अरे मन राम नाम	रा.वि. 3, पृ. 69
8.	मुलतानी	त्रिताल	नाम भजन का	वही, पृ. 118
9.	देवगिरि	वही	सुमिर सुमिर नर	रा.वि. 4, पृ. 199

ज्ञान की उच्चतम अवस्था में निर्गुणी भक्त को जो अलौकिक आनंदानुभूति होती है, वैसी ज्ञानजन्य आनंदानुभूति की स्थिति का परिचय "हरिदास डागुर" के निम्न पद से मिलता है;

ध्रुपद-भैरव-झपताल'

ज्ञान मदमाते जे नैन निसदिन,
तिनको कबहू न होत खुमारी।
सत के प्याले में धर्म भर भर पियो,
रसना स्वाद लेत, लागी रहत जिय तारी।
तन कर माटी मनकर ज्ञान में,
पंचम आत्मा भूतकारी।
हरिदास डागुर पी को सुमिरन करत,
टपकत बूंद होत अधारी।

"अनाहत नाद" का वर्णन संगीत में खूब मिलता है। इस विषय के तानसेन और बैजू बावरा के पद आगे उनके अन्य पदों के साथ दिए जाएँगे। यहाँ अज्ञातनामा वाग्गेयकारों के ध्रुपद शैली के पद प्रस्तुत हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

क्रमांक	रागनाम	तालनाम	प्रथम पंक्ति	पुस्तक नाम एवं पृ.सं.
1.	तोड़ी	झपताल	आदि अनाहद नाद	क्र.पु.मा. 2, पृ. 468
2.	मारवा	चौताल	अनाहत नाद अकास	वही, पृ. 301
3.	पटमंजरी	वही	अनाहत नाद समुद्र	वही, भाग 5, पृ. 252

विशेषः संगीत-साधना का लक्ष्य नादब्रह्म की अनुभूति पाना है और निर्गुणिया कवि भी साधना की चरमावस्था के लिए नादयोग की बात करते हैं, जिसको सिद्ध कर लेने के पश्चात् उन्हें संगीतज्ञों की भांति अनहद-नाद सुनाई पड़ता है। गुरु नानक कहते हैं,

"पंज सबद धुनि अनहद बाजे, हम घरि साजन आए।"

(सूही छंत म.1 घरु 2 "गुरुमत निरणय-भाई जोधसिंह, 7 वीं. सं. पृ. 237)

चेतावनीपरक उपदेशात्मक पदों का शास्त्रीय संगीत में प्राचुर्य है, जिनमें से कई पद तो निर्गुणी कवियों के पदों का छायानुवाद से ही प्रतीत होते हैं। इन पदों में मनुष्य को भौतिक सुखों की मृगतृष्णा में भटकने की अपेक्षा, ईशसुमिरन द्वारा मानवजीवन को सफल बनाने का उपदेश दिया गया है। यह रूप, धन, यौवन, मानव देह-सभी कुछ नाशवान है, जगत् मिथ्या है, अतः संगीतज्ञों ने भी निर्गुणी कवियों की भांति इन बातों की सुधि दिलाकर, सांसारिक जीवों को अपना जीवन सुधारने की चेतावनी दी है।

निम्नांकित तालिका में उक्त विषय के ध्रुपद-शैली के पद प्रस्तुत हैं।

क्रमांक	रागनाम	तालनाम	प्रथम पंक्ति	पुस्तक नाम व पृ. सं.
1.	लच्छासाख	चौताल	अजहुं समझ रे मन	मारिफु. 2, पृ. 57
2.	भैरवी	वही	राम भज राम भज	मौखिक परंपरा से

शास्त्रीय संगीत में ख्याल-शैली में उपलब्ध उपदेशात्मक पद

क्रमांक	रागनाम	तालनाम	प्रथम पंक्ति	पुस्तक नाम व पृ. सं.
1.	केदार	त्रिताल	सोच समझ मन	क्र.पु.मा. 4, पृ..184
2.	कालिंगड़ा	वही	मूरख छांड वृथा	वही, 3, पृ. 96
3.	दरबारी कानड़ा	वही	समझता ना मन तू	वही, 4 पृ. 660
4.	तिलककामोद	वही	राम नाम सुमिरन	वही 3, पृ. 327
5.	शंकरा	वही	हरी हरी छांड के	वही 4, पृ. 237
6.	तोड़ी	झपताल	राम सुमिर मोरे प्यारे	वही 2, पृ. 444
7.	आसावरी	त्रिताल	अरे मन समझ समझ	वही 2, पृ. 361

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रमांक	रागनाम	तालनाम	प्रथम पंक्ति	पुस्तक नाम एवं पृ. सं.
8.	पूर्वी	त्रिताल	मन रे कहा भयो	रा. वि. 2, पृ. 47
9.	यमन	एकताल	भज मन करुणानिधान	क्र.पु.मा. 2, पृ. 22
10.	वही	त्रिताल	भज हरि नाम तू	वही, पृ. 37
11.	अल्हैया बिलावल	वही	रब सों नेह लगा	वही, पृ. 70
12.	वही	वही	मन कहा बिसारयो	रा. वि. 3, पृ. 178
13.	खमाज	वही	अरे मन हर सों	वही, पृ. 126
14.	मालकौंस	एकताल	रब कब सुमरोगे	वही 3, पृ. 705
15.	वही	त्रिताल	सुन रे मन मूरख	वही, पृ. 708
16.	वही	वही	दिन नीके बीते	वही, पृ. 717
17.	जौनपुरी	त्रिताल	हरि हरि भज मन	वही, पृ. 652
18.	पीलू	वही	नित उठि सुमिरन	वही, पृ. 617
19.	वही	वही	भज मन त्रिभुवननाथ	वही, पृ. 618
20.	वही	दीपचंदी	सोच समझ नादान	वही, पृ. 638
21.	सोहनी	त्रिताल	प्रभु को सुमिर	रा. वि. 2, पृ. 73
22.	तिलककामोद	वही	नरहरि को भजन नित	क्र.पु.मा.3,पृ. 302
23.	कालिंगड़ा	दादरा	राम नाम भजन	वही, पृ. 338
24.	वही	वही	मूरख छांड वृथा	वही, पृ. 96
25.	केदार	त्रिताल	गोरि हठ जिन	क्र.पु. मा. 3, पृ. 136
26.	हिंडोल	झपताल	आँख खोलि रे	वही, 4 पृ. 180
27.	शंकरा	त्रिताल	करना हो सो कर ले	वही, पृ. 215
28.	वसंत	एकताल	अरे मन गोविंद	वही, पृ. 396
29.	ललित	एकताल	मनुष जनम अतुल	वही, पृ. 496
30.	वही	वही	अरे मन राम नाम	रा. वि. 3, पृ. 69
31.	ललित	एकताल	अरे मना जू भज	रा.वि 3, पृ. 70
32.	अडाना	त्रिताल	मूढ़ अबुध नर	वही, पृ. 704
33.	मुलतानी	वही	अरे मन हरि	वही, पृ. 748
34.	मालीगौरा	वही	कर याद प्रभु	वही, 6 पृ. 59

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

क्रमांक	रागनाम	तालनाम	प्रथम पंक्ति	पुस्तक नाम एवं पृ. सं.
35.	नायकी कानड़ा	वही	पापी हरि मुख	वही, पृ. 247
36.	धानी	वही	अब मान मना	वही, पृ. 152
37.	जोगी	दीपचंदी	हरि बिन कोई	वही, पृ. 85
38.	सारंग	झपताल	गोरी जोबनवा	संगीतांजलि 2.पृ. 46
39.	हेमकल्याण	एकताल	गुण गायो पूरण	रा.वि. 4 पृ. 39
40.	देवगिरि	त्रिताल	सुमिर सुमिर नर	वही, पृ. 199
41.	मालश्री	झपताल	उठ रे मुसाफिर	क्र.पु. मा. 5, पृ. 81
42.	ककुभ	वही	काको भजन बिन	वही, पृ. 170
43.	तिलंग	त्रिताल	सजन तुम काहे	वही, पृ. 286
44.	गौरी	वही	भटकत काहे फिरे	वही, पृ. 423
45.	श्रीटंक	वही	हरि हरि कर मन	वही, पृ. 439

ख्याल-शैली में प्रचलित विनय और आत्मनिवेदन के पद

क्रमांक	रागनाम	तालनाम	प्रथम पंक्ति	पुस्तक नाम व पृ. सं.
1.	तिलककामोद	एकताल	अब तो लाज तोरे	मौखिक परंपरा से
2.	यमन	त्रिताल (विलं)	सुमरन करूँ मैं	क्र. पु. मा. 2, पृ. 40
3.	सरपरदा बिलावल	तीनताल	भाई मैं मन को मान	रा.वि 4, पृ. 180

बाह्याकर्मकांड तीर्थ, व्रत, योग आदि सच्ची भक्ति-भावना के बिना व्यर्थ हैं। इनकी निस्सारता एवं सच्चे भक्तिभाव तथा मानसिक पवित्रता, अंतस्साधना आदि का महत्त्व शास्त्रीय संगीत के पदों में मिलता है, जिसे हिंदी की निर्गुण काव्यधारा का प्रभाव कहा जा सकता है। दो पद (ख्याल-शैली) उदाहरणतया प्रस्तुत हैं।

राग-केदार-तीव्रा (म.ल.)[8]

स्थायीः *शरन कर तू गोबींद मेरे मन*

त्रिविध ताप हर तत छिन।

हर बिना सब व्यर्थ जीवन।

अंतराः *जोग जाग रु तप तीरथ,*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्ति बिन सब निष्फल करम।

एक नाम करत भवतरन, काहे न समझत मूढ़ मेरे मन।

राग - पीलू - त्रिताल (म.ल.)[9]

स्थायी- *हमारे तीरथ कौन करे।*

अंतरा- *मन में गंगा मन में जमना,*

भटकत कौन फिरे।

इस संबंध में राग 'तिलककामोद' का "मनरंग" का निम्न पद भी द्रष्टव्य है।

स्थायी– *"तीरथ को सब करें। देव पूजा करें। वासना न मरे।*

कैसे के भाव तरे।

अंतरा– *काया ध्रुवे पाक। कबहुं नहिं मन पाक। मनरंग की आस।*

नित रहे चरन में।[10]

राग-सोहनी-त्रिताल[11]

स्थायी– *प्रभु को सुमिर सुमिर मन मेरे।*

पाप कटें सब तेरे।

अंतरा– *नाम, दान, असनान निरारथ*

जब प्रीत नहीं मन तेरे।"

शास्त्रीय संगीत के "पद" अंश में निर्गुण-निराकार, निरंजन, आदि शब्दों के अतिरिक्त ब्रह्म के लिए साहेब, करतार, रहीम, करीम, सांईं, अलख, अगोचर, अविगत, अविनाशी आदि शब्दों के प्रयोग के रूप में हिंदी के निर्गुण काव्य का अस्तित्व मिलता है। उदाहरणार्थ कुछ पद प्रस्तुत हैं।

राग-यमन-त्रिताल (वि.ल.)[12]

स्थायी – *सुमरन करूँ मैं तोरा, तू साहेब मेरा।*

आवो मेरे गुन अवगुन, तन मने हार।

अंतरा– *तू ही दाता, तू ही करीम,*

तेरो हि नाम करतार।

राग–मुलतानी-त्रिताल[13]

स्थायी– *सुंदर सुरजनवा सांई रे।*

सांई रे, मन भाई रे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंतरा— निसदिन तुम्हारो ध्यान धरत हूँ,
आन मिलो रब सांईं रे।

राग-श्री-चौताल (विलं)[14]

स्थायी— नरहर नरोत्तम नारायन परब्रह्म,
पुरुषोत्तम परमेश्वर, अखिल निरंजन अविगति अविनाशि

अंतरा— अलख पुरुष आत्माराम, आदरूप अगोचर,
अंग अंग सकल घट।

रूपक-शैली में परतत्त्व से दाम्पत्य संबंध व्यक्त कर माधुर्य भाव से गाए पद संगीत में भी मिलते हैं। इस लोक को नैहर, परलोक को ससुराल और जीव को दुलहिन मानने का रूपक निर्गुणी संत में बड़ा प्रिय रहा है। शास्त्रीय संगीत के प्रचलित पदों मे़ं निर्गुणकाव्य के अस्तित्व के रूप में ये पद द्रष्टव्य हैं;

राग-भैरवी-पंजाबी त्रिताल (विलं.)[15]

अस्थयी — *बाबुल मोरा नैयर छूटो जाय।*

अंतरा — *चार कहार मिल डुलिया मंगावो,*
अपना बिगाना छूटो जाय।

वाग्गेयकार तानसेन भी निर्गुणी कवियों की भांति यह मानते हैं कि मन में ही हरि का वास है और एक परतत्त्व ही सारे ब्रह्मण्ड का रचयिता है, निर्गुण तथा सगुण अथवा निरंजन और साकार उसके दो रूप हैं। मन, वाणी से निर्मल रहकर भगवद्भजन करने में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता निहित है।

तानसेन के निरंजन निराकार-महिमा-गान के पद;

1. *मेरे मन मांहि हरिनाम, जिन रच्यौ अखिल धाम,*
काम, क्रोध, मोह, लोभ बह्यो जात संसार।
जिन रच्यौ स्वर्ग, मर्त्य और पाताल,
**निरंजन सोई साकार, निसदिन जप ले श्रीमुरार।*
दीनबंधु दीनानाथ काटत दुख द्वंद फंद,
ताही घरी पल-छिन न बिसार।
'तानसेन' कहै निरमल रहिये भजिये भगवान्,
मानुस जनम नहीं बारबार।[16]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

2. तू ही एक आदि, निरंजन निराकार नादरूप,
तेरौ ही पसारौ पूरौ सब संसार।
अलख, अव्यक्त, जग निस्तार करन तू ही,
एक पाक परवर अपरंपार ॥
जल-थल-धरिनी धवल तू ही पूरन,
सकल महिमंडल तेरो ही आधार।
"तानसेन को दुख-दारिद्र दूरि करौ, कर्त्ता हर्ता तू करतार।"[7]

3. रूप निरंजन अंजन रहित, ताहि बरनिबे कों–
उदित भये छहो शास्त्र अठारहों पुरान।
ताको भेद नहीं पावत शिव-सनकादिक
ब्रह्मा-नारद-शेष रटत वोहू ब्रह्म शिव घट व्यापक।
कोटि कोटि ब्रह्मांड रचत देख लेहु बुधिवान्।
आदि-अंत-मध्य वोही त्रैलोक चराचर,
वाही की इच्छा तैं करत वितान।
"तानसेन" के प्रभु सब जग व्यापि रहौ,
पूरन ब्रह्म अविनासी निरंकार अविनासी भगवान्।[8]

4. धरिनी-धरन, अधरन-दाता विधाता, विश्व भरन पोषन
भागवंत सौभाग तरन-तारन भक्तजन कौं,
सकल सुख करन मोखन ॥
आदी-अंत तुही रोम-रोम रमि राह्यौ सब में,
तू ही चर-अचर थावर-जंगम तोखन।
"तानसेन" तेरी अस्तुति कैसे करों अलख निरंजन,
निराकार ध्यान रहै तेरी दुरन हू बोलन ॥[9]

5. भक्ति-ज्ञान भक्तन की सेवा करि रे,
जब तेरी भगताई, सुमिरन करि हरि को।
कौन भरम भूलौ, भटकत फिरत अष्टयाम,
याद रख राम-कृष्ण कों, पारब्रह्म परमेश्वर कों ॥
निरंजन और निराकार, अलख जोति, जगतपति,
भक्त वत्सल गिरवर धर को ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"तानसेन के प्रभु को ध्यान धर निस-दिन,
घड़ी-घड़ी छिन-छिन वा विश्वंभर को[20] ।"

प्रभु-महिमा के पद

1. "तू ही ब्रह्मा, तू ही विष्णु, तू ही महादेव, तू ही गुरु, तू ही चेला
तू ही सोना तू ही सुंनार, तू ही कसौटी कसनहार,
तू ही दीपक तू ही मंदिर, तू ही मेला तू ही अकेला ॥
तू ही रैन तू ही दिन, तू ही पर्वत तू ही पाषान,
तू ही जल तू ही थल, तो ही सौं मेला ॥
"तानसेन" के प्रभु तू ही सबन में, तू ही छैला, तू ही अलबेला ॥[21]

2. "प्यारे! तू ही ब्रह्म, तू ही विष्णु, तू ही रुद्र, तू ही गुरु, तू ही चेला
तू ही जल, तू ही थल, तू ही प्रबल, तू ही अबल,
तू ही छैल, तू ही अलबेला ॥
तू ही ऊँच, तू ही नीच, तू ही पाप-पुन्य, तू ही बीच, तू ही मेला।
"तानसेन" कहै प्रभु कहां लौं बखानूं, तू ही बहुत, तू ही अकेला"॥[22]

3. "प्यारे! तू ही ब्रह्मा, तू ही विष्णु, तू ही रुद्र, तू ही शक्ति,
तू ही गणेश, तू ही सूरज।
तू ही जल, तू ही थल, तू ही पवन, तू ही आकास,
तू ही अधूरा, तू ही पूरा ॥
तू ही छैल, तू ही अलबेला, तू ही रोवत, तू ही हँसत,
तू ही उठत-बैठत-चल, तू ही दूरा।
"तानसेन" के प्रभु एकहि अनेक होइ, जग में व्यापि रहे हजूरा ॥[23]

ब्रह्म के लिए रब, साहेब, रहीम-करीम, करतार आदि शब्दों का प्रयोग तानसेन ने भी किया है।

1. "तुम रब, तुम साहेब, तुम ही करतार,
घट-घट पूरन जल-थल भर भार।
तुम ही रहीम, तुम ही करीम, गावत गुनी-गंधर्व, सुर-नर-नार।
तुम ही पूरन ब्रह्म, तुम ही अचल, तुम ही जगद्गुरु, तुम ही सरदार
कहैं "मियां तानसेन तुम ही आप,
तुम ही करत सकल जग को भव पार ॥[24]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तानसेन के नाम-महिमा सम्बन्धी पद

2. *ऐ मन, तू जो अपनो सुख चाहत है,*
घरी-घरी, पल-पल, छिन-छिन सुमिर लै श्री राम नाम।
जो जग जप-तप-नेम-धर्म-व्रत-संजम,
ज्ञान-ध्यान गहें दृढ़ हरि चरनन विस्राम ॥
और उपाव नाहीं कलिजुग में, कृष्ण-कृष्ण कहत होय आराम।
"तानसेन" प्रभु की चरन सरन गहि ले,
जासों पावे वैकुंठ धाम ॥[25]

महान् संगीतज्ञ तानसेन सप्तस्वरों की साधना द्वारा रामनाम सुमिरन की महत्ता प्रतिपादित करते हैं।

"सर्व ही मांगत जोहौं री माई, आगम भयो आवन परस।
जपत ही सर्व दुख-दारिद गयो जो तानसेन,
पिया हियरा हुलसाये अरस-परस ॥
राम ही नाम हिरदैं, धरों, प्रगट है अष्टजाम,
"तानसेन" पिया नित धरौ।
षरज-रिषभ-गांधार, मध्यम-पंचम-धैवत-निषाद,
श्री राम नाम सुमिरन कौ ॥[26]

अनाहत नाद-निरूपण संबंधी तानसेन के पद

"अनहद शब्द उपज्यो मो घट में,
ताको ध्यान धरूँ अष्टयाम ॥
खडज रिषभ गांधार, मध्यम पंचम धैवत,
निषाद पावै ज्यों अति अभिराम ॥
धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पदारथ पाये,
अब प्रगट्यौ नाद ब्रह्म सहस रूप आनंद-धाम।
धन-धन जोति स्वरूप अचरज कर,
और परसें "तानसेन" कंठ धाम ॥[27]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संत नामदेव, कबीर, नानक, गुरु अर्जुनदेव आदि निर्गुण संत कवियों की भांति तानसेन के पदों में भी पाँच सबद "बजने" का उल्लेख मिलता है।

"प्रथम ही आनंद रच्यौ, नीको घरी-महूरत पंचो
सब्द बजाये।"[128]

वाग्गेयकार तानसेन के निम्न चेतावनीपरक पदों में हिंदी के निर्गुण काव्य का अस्तित्व देखा जा सकता है। संतों के "चितावण को अंग" शीर्षक के अंतर्गत गाए जाने वाली साखियों से तानसेन के इन पदों का मिलान किया जा सकता है।

1. *रे मन जब लगि पिंड प्रान, तब लगि जग नांतो,*
सबहिन सौं व्यवहार।
जब लगि जीजिये, तब लगि हरि नाम लीजिये,
राग-रंग कीजिये, यह तन-मन नैंन-प्रान,
जात न लागै बार।
बालापन, तरुनाई अरु वृद्धावस्था,
पुनि पुनि जनम-मरन होत संसार।
"तानसेन" करि ले ध्यान विश्वंभर को,
यही पूंजी, यही जमा, यही है सार।[29]

2. *सुमिरन हरि को करौ रे, जासों होवे भवपार।*
यह सीख जान मान कह्यौ है पुरान में,
भगवान आप करतार।
दीनबंधु दयासिंधु पतित पावन आनंदकंद,
तोसों कहत हौं पुकार॥
"तानसेन" कहै निरमल सदा रहिये
नर देही नहीं बार-बार।[30]

3. *जनम यों ही गंवायौ बावरी, अब गहे न हरि के चरनन।*
हौं जान्यो प्रिय जोबन थिर रहेगो, भूली याही भरमन॥
लख चौरासी भटकत-भटकत, सरन सुमेरु पायो मनुष्य धरमन।
"तानसेन" के प्रभु सुमिरन करि ले, सुद्ध चित्त करमन॥[31]

4. *ए मन, जब लगि नैन प्रान, तब लगि जियन,*
सब काहू कौ दिदार।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब लगि जी जियै, तब लगि कीजियै,
राग-रंग घरी-घरी, पल-पल, छिन-छिन,
जात न लागै बार।
सांच ही बोलत, सांच ही तोलत, सांच ही कीजै,
बनज-बिहार।
"तानसेन" के प्रभु सांच ही में रम रहे,
या तें समझ बूझ देखिये, जग सपनों संसार ॥[32]

विशेषः तानसेन ने उक्त पद में सत्य में ही परमेश्वर का वास बतलाया है और संसारियों को मन से, वचन से, व्यवहार से, सत्यपूर्ण बनने का उपदेश दिया है। इस प्रकार के अनेकों पद नानक ने भी कहे हैं। तुलना हेतु कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं।

तानसेन द्वारा किया गया इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना का वर्णन

इड़ा, पिंगला, सुषुमना, तीनों नारी नाम ।
"तानसेन" संगीत मत, जानौं आवें काम ॥ 21 ॥
इड़ा बाम कहि पिंगला, दक्षिन मन में जान।
हृदय रहत है सुषुमना, ब्रह्मग्रंथि ज्यों मान ॥22॥[33]

इड़ादि लक्षण :

"ता ऊपर जिन प्रान जो, चढौ रहत है नित्त।
अध ऊरध कौं गति है, ज्यों नटुवा रहे चित्त ॥23॥[34]

ब्रह्मग्रंथि

द्वै अंगुल आधार पर, ह्वै अंगुल युग बीच।
षडे सुने स्वर जो कोऊ, अंगुल तेहि तेहि बीच ॥24॥
सूखम सिखा जो अगिन की, ताहि रंहत जो जान।
ता ऊपर नव अंगुली, चतुर रहै तोहि मान ॥25॥
ब्रह्मग्रंथि कों कह्यौ सब, सुर मुनि कह्यौ निरंध।
तामैं अंगुला चार जो, तरी रहत है कंध ॥26॥
"इडा पिंगला सुषमना, तीनो नाडी नाम ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"तानसेन" संगीत मत, जानौं आवें काम ॥22॥
इंगला वायव्य कही, दच्छिन पिंगला जान।
मध्य रहता है सुषमना, ब्रह्मरंध्र लौं मान ॥23॥
ता ऊपर जो प्रान लौं, चढो रहत है नित्त।
अध ऊरध कौं चलत है, ज्यों नटुवा रहे मित्त ॥24॥
द्वै अंगुल आधार पे, अंगुल द्वै ही नीच।
तप्त हेम के वरन सों, अंगुल द्वै ही बीच ॥[35]
"सूक्षम सिखा जो अगिन की, तहां रहत सो जान।
ता ऊपर नव अंगुली, चक्र रहत सो मान ॥26॥
तासों अंगुल चार रहि, ऊँचे देही कंध।
ब्रह्मग्रंथि ताकों कहैं, सुरपति सब निर्द्वंद्व ॥27॥[36]

वाग्गेयकार बैजू के निरंजन-निराकार अलख-अगोचर ब्रह्म महिमा के पद

1. "अनंत ब्रह्मांड के नायक परब्रह्म श्री श्रीधर महाराज॥
कृपासिंधु भक्तपाल सुखकरन कृपाल गरिब निवाज ॥
यह बिनती सुन लीजे तेरी अंत नहीं तूं अनंत पूजूँ।
तोहे बांधूँ भुज कर, जाए दुख भाज ॥
बैजू प्रभु आदि अलख अगोचर निरंजन निराकार।
भक्त काज कोटि कोटि रूप धरे संतन सिरताज ॥[37]
2. आदि पर ब्रह्म देवनारायण निरंजन निरंकार सोई साकार।
वाही ते त्रइलोक रचना रज तम पंच भूत वाही ते।
अठाइस तत्त्व जगत पसार॥
वही आदि वही अंत वही चराचर मधु भरपूर रहो संसार ॥
बैजू प्रभु करे से होय करता अकरता सकल कोट कोट ब्रह्मांड।
एक एक रोम प्रति ताहि भजो बारबार [38]
3. ए ब्रह्म तेरे ही ग्यान ध्यान सुमरन रहत,
जप तप संजम भक्ति बैहार॥
तूं ही तन, तूं ही मन, तूं ही रोम में रम रहो, तूं ही सब जग करतार।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तूं ही आदि, तूं ही मध्य, तूं ही अंत, तूं ही तंत, तूं ही साधु, तूं ही संत
तूं ही सर्व व्याप रहो संसार।
तूं ही रज, तूं ही तामस, तूं ही भक्तन कही अनेक होत भर रहों,
निरंजन निराकार बैजू तूं ही सार।[9]

4. निरंजन निरंकार परब्रह्म परमेश्वर एक ही अनेक होन व्याप्यो विश्वंभर ॥
अलख जोत अविनाशी जोती रूप जगतारन जगन्नाथ जगतपति जगजीवन जगधर ॥
वाही में सब जीव जंतु सुर नर मुनि गुनि ज्ञानि नाभि
कमल तें ब्रह्म प्रगटायो औ सतरूपा मन्वंतर ॥
कहे बैजू वही ब्रह्म, वही विराट, रूप, वही आप
अवतार भए चौबीस वपुधार ॥[10]

5. प्रथम ओंकार टेरो ब्रह्म चतुरानन जाकों अक्षर सब रंग
भरपूर रह्यो बानी तारन तरन ॥
अलख अपार अगम निगम रहत करत राग रंग उरधार धरन ॥
सगुन गुनरहित सरगुण निरगुन सब जग अधारन ॥
बैजू प्रभु आदि जोत निरंजन निराकार सूक्ष्म विराट रूप
घट घट ब्याप रही नारी नरन।[11]

6. रंग रंग के अनेक रंग रंगे विधना ताको वार न पार।
पशु पंछी सुर नर मुनि परमहंस भांत भांत के भांडे बनाये
स्वेत पीत श्याम रक्त है करतार।
तूं ही आदि, अंत तूं ही, तूं ही सब में रम रह्यो तोहरि तै
सब जग विस्तार।
एक ही अनेक होय ब्याप रहो घट घट बैजू प्रभु
निरंजन वही साकार।[12]

बैजू के प्रभु-महिमा के पद

1. प्यारे तूं ही ब्रह्म तूं ही विष्णु तूं ही रुद्र तूं ही शिव
शक्ति तूं ही तूं ही गणेश ॥
जल थल पवन पानि तूं ही, तेज तूं ही, आकाश तूं ही, अग्नि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तूं ही, जोत तूं ही सुरेश।
तूं ही ऊँच तूं ही नीच, तूं ही है सबहिन के बीच
तूं ही चंद, तूं ही दिनेश।
तूं ही एक, तूं ही अनेक, गुरु चेला तूं ही, अलेख बैजू बावरो
तोही सुमिरन तोहि तें कटत कलेश।[13]

2. तूं ही ब्रह्म तू ही विष्णु, तू ही गुरु तू ही चेला रे।
तू ही पवन तू ही पानी, तू ही रैन तू ही दिन,
तू ही बेली तू ही बेला रे।
तू ही सोना, तू ही सुनार, तू ही दीपक तू ही मंदिर,
तू ही दरपन तू ही देखा रे।
कहै "बैजू" बावरे" सबका तू ही पोषन प्रान,
तू ही बहुत तू ही अकेला रे।[14]

बैजू के नाम-माहात्म्य के पद

(1) "काहे कूं भटकत फिरत रे मन जपो हरिनाम जासों काम ॥
तीरथ व्रत नेम धर्म षटकर्म तज भज एक नाम ॥
कलिकाल और नांहीं एक रह्यो हरि ब्यौहार वही जप, वही तप, वही है धाम।
कहे बैजू बावरे सुन हो गुनी जन, सांचो, संसार मध एक ही है राम ॥[15]

(2) जोगी जती सती संन्यासी अवधूत जोग अडंबर भावे तुझ भेख धरे।
जप तप तें संजम जम कत दुख हरे करंत सब दुख हरे ॥
मन सुमरन ज्ञान ध्यान चित न हरि हरि केर कहै बैजू बावरे,
रसना रटत नाम जातें पाप सबही टरे।[16]

(3) नाम में रूप नाम में विद्या नाम में जप तप संजम रंजन।
नाम में ज्ञान ध्यान नाम में सुमरन नाम तिहारो दुख भंजन।
नाम ही तें जल पारवान तारे नाम ही प्रहलाद दुख गए दंदन।
नाम ही अजामिल बैकुंठ सिधारे बैजू नाम पवित्र भज्जन।[17]

(4) प्रथम उठ प्रात ही हरि हरि हरि हरि रट रे मन मेरे,
याते होवे सुफल अष्टजाम ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह लोक परलोक के स्वामी बैकुंठ होवे विश्राम ॥
दीनदयाल कृपाल भक्त वत्सल भक्त-जनन अभिराम ॥
बैजू बावरो रावरो कहाय के अब काहे कूं भटकत
चौरासी लक्ष धाम धाम ।[48]

(5) हरि नाम बोल ले सुगना तेरो जनम सुफल सब होय।
एक दिन प्रान पींजरा तें जब उड़ जायेगो, तब कछु न बस
चलि है हरि के चरण चित पोय।
वृथा जनम जात है तेरो तन के पातक ले धोय।
बैजू प्रभु परम कृपाल दयाल है पतित पावन है तोय।[49]

बैजू के चेतावनीपरक एवं उपदेशपूर्ण पद

(1) "त्रिस्नां कों तजि देहु क्षमा को भजन करहु मद मोको जीत लेहु
नित दया हिय में।
धारि पाप सों राखो दूर चित सत्य वचन मुख बोल
साधु पदवी जीय धारो।
सतपुरुषन के सेवन करो नम्रता अति विस्तारो सर्व गुण
सों आप गुप्त विद्वज्जन की सेवा करो
या में होवै निस्तारो।
मान अपमान त्यागो काम क्रोध दुरजन तें भागो ज्ञान ध्यान
अनुरागो हरि नाम उचारो।
कोमल वचन मुख भाखो एक ब्रह्म सब जग राखो बैजू प्रभु,
को घरी पल छिन निश दिन रटना रटो ताते होय
जग उधारो ।[50]

(2) समझ सोच ले मूरख निदान रे जग में दोय दिन के है
तेरे अभिमान रे ॥
आदि अंत वोही सबको प्रान रे कर ध्यान रे हरि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उर अंतर घट घट में समान रे ॥
जल थल भूमि अकास रे, सब ठोर जग को प्रकास रे,
जाकी धरो नित आस रे, सोइ है बैकुंठ निवास रे ॥
**और विकास दुविधा तज रे, हरि भज रे, बैजू चरन प्रभु होय*
रज रे, गोपाल भज जलज रे।[51]

शास्त्रीय संगीत में प्रचलित हिंदी के निर्गुण संत कवियों के बहुत से ब्रह्मतत्व-निरूपण संबंधी पद मिलते हैं-

(1) स्थायी – *"तू तो कछू भूमी नाहिं आप, तेज वायु नाहिं।*
व्योम पंच विषय नाहि, सो तो भ्रम कूप है।"

अंतरा – *तू तो कछू इंद्रि नाहिं, अंतः करण तू हि नाहिं।*
तीनों गून तू ही नाहिं, अंत : करण तू हि नाहिं।

संचारी – *तू तो अहंकार नाहिं, पुनी महततत्व नाहिं*
प्रकृति पुरुष तू हि नाहिं, तू तो सो अनूप है।

आभोग – *सुंदर विचार ऐसे शिष्य सो कहात गुरु।*
नांहि नाहिं करत रहत, तू हि तेरो रूप है।[52]

निम्नलिखित पद में काल का भयानक रूप दिखाकर ब्रह्म को अखंड कहा है,

राग-बागेश्रीः चौताल (विलं[53])

स्थायी – *काल सो न बलवंत, कोऊ नाहिं देखियत,*
सबको करत अंत, काल मध्य जोर है।

अंतरा – *काल ही को डर सुनीं, आगे सुर, नर, मुनि,*
जहां जहां जाइ तहां तहां वाको गौर है।

संचारी – *काल है भयानक, भयभीत सब की ये,*
लोक सर्व पर्तप ताल, काल ही कोर सोर है।

आभोग – *सुंदर काल को काल, एक ब्रह्म है अखंड।*
जसो काल डरे सोहि, चल्यो ऊह बोर है।

राग - जैतकल्याणः तीनताल (म.ल.)[54]

बाबुल कैसे बिसरा जाई। आदि में पति संग रल खेलूंगी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपा धरम समाई ॥ धृ. ॥
सतगुरु मेरे किरपा कीन्हीं, उत्तम बर पहनाई।

हिंदी के निर्गुण संतकवियों के शास्त्रीय संगीत में प्रचलित उपदेशपूर्ण पद

राग पूर्वीः तीनताल (म.ल.)[55]

स्थायी – *मन रे कहा भयो तैं बौरा।*
अहर्निश औधि घटै नहिं जाने,
भयो लोभ संग होरा।

अंतरा – *जो तन तें अपनो करि मान्यो,*
अरु सुंदर गृह नारी।
इनमें कछु तेरो रे नाहिंन, देखो सोच विचारी।

राग पूर्वीः तीनताल[56]

स्थायी – *साधो गोविंद के गुन गावो।*
मानुस जनम अमोलक पाये, बिरथा काहे गँवावो।

अंतरा – *पतित पुनीत दीन बांधव हरि, शरण ताहि तुम आवो।*

राग भैरवीः तीनताल (म.ल.)[57]

स्थायी – *हरि भजन को मान रे, मत कर मोह तू ॥धृ.॥*

अंतरा – *नयन दिये दरशन करने को, श्रवण दिये सुन ग्यान रे ॥1॥*
वदन दिया हरिगुण गाने को, हाथ दिये कर दान रे ॥2॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, कंचन निपजत खान रे ॥3॥

राग अल्हैया बिलावलः त्रिताल (म.ल.)[58]

स्थायी – *होत न बारंबार, मानस जनम दुर्लभ है।*

अंतरा – *बन फल पाके भूमि गिरे, बहुरि न लागहिं डार।*

राग भैरवीः चौताल[59]

स्थायी – *राम भज, राम भज, जनम सिरात है।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंतरा – कहो कहा बारबार, समझत न क्यों गँवार।
बिनसत न लागे बार, ओरे सम गात है।

संचारी – सकल भरम डारि दे, गोविंद को नाम ले,
अंत बार संग तेरे, ये ही एक जात है।

आभोग – विषिया विष ज्यों बिसार, प्रभु को जस हिये धार।
नानक जन कहे पुकार, औसर बिहात है।

राग मियांमल्हारः तीनताल (म.ल.)[60]

साधो मन का मान त्यागो।
काम क्रोध संगत दुर्जन की, तातें अहनिस भागो। धृ।
सुख दुख दोनों सम करि जाने, और मान अपमाना।
हरष शोक तें रहे अतीता, तिन जग तत्त्व पिछाना । 1।
अस्तुति निंदा दोऊ त्यागे, खोजे पद निरवाना।
जन नानक यह खेल कठिन है, किनहूं गुरु मुख जाना । 2।

राग पटदीपः झपताल[61]

राम जप राम जप राम जप बावरे। धृ.।
घोर भव नीरनिधि नाम निज नाव रे।
एकहि साधन सब रिद्धि सिद्धि साधी रे।

राग मांडः कहरवा[62]

स्थायी – भजो रे भैय्या राम गोबिंद हरी।
अंतरा 1 – जप तप साधन कछु नहिं लागत, खूटत नहीं गठरी।
2 – संतत संपत सुख के कारन, तासों भूल परी।
3 – कहत कबीर राम नहिं जा मुख, ता मुख धूल भरी।

राग कालिंगड़ाः त्रिताल[63]

स्थायी – तू तो राम सुमर जग लड़वा दे।
अंतरा – 1. कोरा कागद कोरी स्याही, लिखत पढत वाको पढवा दे।
अंतरा – 2. हाथी चालत अपनी गत को, कुतर मुकत वाको मुकवा दे।
अंतरा – 3. कहत कबीर सुनो भाई साधो, नरक पचत वाको पचवा दे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग हेमकल्याणः एकताल[64]

गुण गावो पूरण अविनाशी, काम, क्रोध विष जारे ॥ ध्रु. ॥
पूरे गुरु भेट्यो भ्रम अंधेरा, भज प्रेम भगति प्रभु मेरा ॥ 1 ॥

राग अडानाः तीनताल[65]

घूंघट का पट खोल रे, तोहे राम मिलेंगे ।धृ.।
घट घट रमता राम रमैया, कटुक वचन मत बोल रे। तोहे ।1।
रंग महल में दीप बरत है, आसन से मत डोल रे। तोहे . ।2।
कहत कबीर सुनो भाई साधू, अनहत बाजत ढोल रे। तोहे. ।3।

राग कल्याणः त्रिताल[66]

राम सिमर पछिताएगा मनुआ।
पापी ज्यूंडा लोभ करत है, आज काल उठ जायेगा।
लालच लागे भरम गँवाया, माया भरम भुलायेगा।
धन जोबन का गरब न कीजे, कागद ज्यों गल जायेगा।
ज्यों जम आये केश गह पटके, ता दिन कछू न बचायेगा।
सिमरन, भजन, दया नहीं कीन्हीं, तो मुख चोटा खायेगा।
धर्मराय जब लेखा मांगे, क्या मुख ले के जायेगा।
कहत "कबीर" सुनो रे संतो, साध संगत तर जायेगा।

राग बिलावलः त्रिताल[67]

बीत गये दिन भजन बिना रे
बाल अवस्था खेल गंवाई, जब जवानी तब मान घना रे।
लाहे कारन मूल गंवायो, अजहुं न गई मन की तृष्णा रे।
कहत "कबीर" सुनो भाई साधो, पार उतर गये संत जना रे।

राग पीलूः दीपचंदी(चाचर) बिलं.[68]

स्थायी – *सोच समझ नादान प्यारे, आशिक होकर सोना क्या रे।*
अंतरा – 1. *जिस नगरी में दान धरम नहीं, उस नगरी में रहना क्या रे।*
अंतरा – 2. *रूखा सूखा, ग़म का टुकड़ा, मीठा और सलोना क्या रे।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग भूपाल तोड़ीः एकताल[69]

जागि रे सब रैण बिहाणी, जाइ जनम अंजुली को पाणी ।धृ.।

सरवर पाणी तरवर छाया, निस दिन काल गरासे काया ।1।

राग सोहनीः त्रिताल[70]

स्थायी – *रहना नहिं देश बिराना है।*

यह संसार कागद की पुडिया, बूंद पड़े घुल जाना है।

अंतरा – *यह संसार कांटे की बाड़ी, उलझ पुलझ मरि जाना है।*

राग पूरियाः त्रिताल[71]

स्थायी – *नांगे आवन नांगे जाना। कोऊ न रहिहै राजा राना ।म।*

अंतरा – *राजा राम नौ निधि मेरे। संचै हेत करत धन तेरे ।1।*

राग चैतीगौरीः त्रिताल[72]

हरि बिन तेरो कौन सहाई।

काकी मात पिता सुत वनिता, को काहू को भाई ।धृ.।

धन धरणी अरु संपति नगरी, जो मान्यो अपनाई ।1।

तन छूटे कछू संग ना चाले, कहा ताहि लपटाई ।2।

दीन दयाल सदा दुख भंजन, तासों रुचि न बढ़ाई ।3।

नानक कहत जगत सब मिथ्या, ज्यों सपना रैनाई ।4।

राग यमन कल्याणः त्रिताल[73]

सब कुछ जीवत को व्यौहार।

मांत पिता, भाई सुत बांधव, अरु पुन गृह की नार।

तन में प्रान होत जब न्यारे, प्रेत प्रेत पुकार।

आध घड़ी कोऊ नहिं राखे, घर से देत निकार।

मृग तृसना ज्यों जग रचना यह, देखो हृदें विचार।

कह "नानक" भजु रामनाम नित, जा तें होत उधार।

राग काफ़ीः त्रिताल[74]

प्रीतम जान लियो मन मांही।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने सुख स्नेही जग फादयो, को काहू को नाहीं।
सुख में आन बहुत मिल बैठत, रहत चहूं दिस घेरे।
विपति पड़ी सब ही संग छांडत, कोऊ न आवत नेरे।
घर की नार बहुत हित जास्यों, सदा रहत संग लागी।
जब ही हंस तजी यह काया, प्रेत प्रेत कर भागी।
एह विधि को व्योहार बन्यो, जासों नेहू लगायो।
अंत बार "नानक" बिन हरि जी, कोऊ काम न आयो।

राग विभासः एकताल[75]

संत सदा उपदेश बतावत, केश सभी शिर श्वेत भए हैं।
तू ममता अजहूं नहिं छांडत, मौत ने आय संदेश दये हैं।

कबीर द्वारा साधक की ब्रह्मरंध्र में चित्तवृत्ति लग जाने पर "शून्य" स्थिति की अनुभूति का वर्णन गौड़सारंग में प्रचलित है।

राग - गौड़सारंगः त्रिताल[76]

स्थायी — *मन तहां गगन समाय (साधो)।*
धुनि सुनि सुनि के मगन हवै।
अंतरा — *नहिं आवे नहिं जाय, सुन्य सब्द स्थिति पावही।*

साधु — संग महिमा के निर्गुण-संत कवियों के शास्त्रीय-संगीत में प्रचलित पद

राग शंकराः रूपक ताल[77]

बिसर गई सब तात पराई, जब तें साधु-संगत मोहे पाई।
ना कोई बैरी नाहीं बेगाना, सकल संग हमरी बन आई।

राग श्रीः त्रिताल[78]

स्थायी — *प्रभु एहि मनोरथ मेरा।*
कृपा निधान दयाल मोहि दीजे, कर संतन का चेरा।
अंतरा — *प्रातहिं काल लागो जन चरनी, निशि वासर दर्शन पावो।*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग केदारः त्रिताल[79]

स्थायी — *शरन आयो नाथ निधान, नाम प्रीति लागी मन भीतर।*
मांगत को हरि दान।

अंतरा-1 — *सुखदायी पूरन परमेश्वर, करी कृपा राखो मोरि आन।*
देहो प्रीति साध संग स्वामी, हरिगुन रसाल बखान।

अंतरा-2— *गोपाल दयाला गोविंद तुम, दामोदर निरमल कथा ग्यान।*
नानक को हरि के रंग रंग हो चरन कमल संग ध्यान।

राग पूरिया धनाश्रीः तीनताल[80]

गंगा के संग सरिता बिगरी। सो गंगा सरिता होय निबरी । धृ.।
बिगरयो कबीरा राम दुहाई। सांच भयो अन कतहिं न जाई। 1।
चंदन के संग तरुवर बिगरयो। सो तरवर चंदन होय निबरयो । 2।
पारस के संग तांबा बिगरयो। सो तांबा कंचन होय निबर्‌यो । 3।
संतन संग कबीरा बिगरयो। कबीर रामहिं होय बिरयो ।4।

हिंदी के निर्गुणोपासक कवियों के "अनन्य प्रीति" के पद

राग पटदीपः त्रिताल[81]

स्थायी — *प्रीतम को पतियां लिखूं।*
जो कोई होवे विदेस।

अंतरा — *तन में, मन में, रम रह्या।*
वाको कवन संदेस।

राग दुर्गाकल्याणः तीनताल[82]

चरण कमल की आस प्यारे। यम किंकर नस गये बिचारे। धृ.।
दरश तेरे की प्यास मन लागी। सहज आनंद बसै बैरागी । 1।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"राग रत्नाकर" एवं आदिग्रंथ में प्राप्त कबीर के पदों की राग-नाम की दृष्टि से तुलना

क्र. सं.	प्रथमपंक्ति (रा.र)	रा.र.में रागनाम व पृ. सं.	आ.ग्रं.में रागनाम व पृ. सं.
1.	अब मोहि जलत राम	गौड़ी पृ. 481	गौड़ी, पृ. 323
2.	माधो जलकी प्यास	वही।	वही।
3.	जब हम एको एक	वही।	वही। पृ. 324
4.	अंधकार सुख	वही।	वही, पृ. 325
5.	जो जन परमित	वही, पृ. 482	वही।
6.	अवर मूये क्या	वही।	वही।
7.	स्थावर जंगम	वही।	वही।
8.	चोआ चंदन	वही।	वही।
9.	यम ते उलट भये हैं	वही, पृ. 483	वही, पृ. 326
10.	कंचन सो पाइये	वही।	वही, पृ. 327
11.	जिहि मरने सम	वही।	वही।
12.	जाके हरि सा	वही।	वही, पृ. 327
13.	दिन सत संग	वही।	वही।
14.	विषम व्यापा	वही।	वही।
15.	जिहिं कुल पूत	वही, पृ. 484	वही।
16.	जो जन लेहिं	वही।	वही।
17.	जिहि मुख पांचों	वही।	वही, पृ. 329
18.	आपै पावक आपे	वही।	वही।
19.	ना मैं योग ध्यान	वही।	वही।
20.	जिहिं सिर	वही।	वही, पृ. 330।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्र. सं.	प्रथमपंक्ति (रा.र)	रा.र.में रागनाम व पृ. सं.	आ.ग्रं.में रागनाम व पृ. सं.	विशेष
21.	कौन को पूत	सोरठ, वही।	गौड़ी, पृ.331	कहीं कहीं आ. ग्रं. से अलग रागनाम प्रयुक्त हुआ है।
22.	संत मिले कछु	गौड़, पृ.518	गुंड, पृ. 870	"गौड़" को ही गुंड लिखा है।
23.	अस्तुति निंदा दोऊ	केदार, पृ. 430	वही, पृ. 1123	
24.	हरि बिन कौन	सारंग, पृ. 548	वही, पृ. 1253	
25.	धृग रे नर नारी	धनाश्री, 578		आदिग्रंथ में यह पद नहीं है।

"राग रत्नाकर" एवं 'आदिग्रंथ' में प्राप्त "नानक" के पदों की राग-नाम की दृष्टि से तुलना

क्र. सं.	प्रथम पंक्ति (रा.र)	रा.र.में रागनाम व पृ. सं.	आ.ग्रं.में रागनाम व पृ. सं.	विशेष
1.	गगन में थाल रवि चंद	धनाश्री, पृ. 475	धनासरी, पृ. 663	
2.	मोती तां मंदर	श्री, पृ. 476	श्री, पृ. 14	
3.	ब्रह्म गर्व कीया	गौरी, पृ. 480.481	गौरी, पृ. 4225	
4.	पवन उपाय धरी	आसावरी, पृ. 499	आसा, पृ. 350	"आसावरी की जगह आ. ग्रं. में "आसा" राग नाम
5.	यह अर्जगुफ़तम	तिलंग, पृ. 508	तिलंग, 721।	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्र. सं.	प्रथमपंक्ति (रा.र)	रा.र.में रागनाम व पृ. सं.	आ.ग्रं.में रागनाम व पृ. सं.	विशेष
1.	देव पाहन तारीयले	गौरीचैती, पृ. 489	गौडी, पृ.345	गौरीचैती की जगह आ.ग्रं. गौड़ी।
2.	एक अनेक व्यापक	आसावरी, पृ. 493	आसा.पृ. 485	आ.ग्रं. में आसा।
3.	जो राज देहिं	गूजरी, पृ. 494	वही, पृ. 425	कोई भेद नहीं।
4.	पार परोसिन	सोरठ, पृ. 502	वही, पृ.657	
5.	गहरी करके नीव	धनाश्री, पृ. 506	धनासरी, पृ. 392	
6.	मैं अंधले की टेक	तिलंग, पृ. 509	वही, पृ. 727	
7.	हले यारां	वही।	वही।	
8.	मोकों तार ले	वही।	वही।	
9.	आनीले कागद	रामकली, 523	वही, पृ. 972	
10.	धन्य धन्य राम	मालीगौड़, 524	वही, पृ. 988	

"राग रत्नाकर" में प्राप्त गुरु अर्जुन देव की वाणी की 'आदिग्रंथ' में सुलभ वाणी से तुलना

क्र. सं.	प्रथम पंक्ति (रा.र)	रा.र.में रागनाम व पृ. सं.	आ.ग्रं.में रागनाम व पृ. सं.	विशेष
1.	काहे रे मन चितवै	गूजरी, पृ. 474	चउपदे म. 5,495	पाठभेद नहीं।
2.	करों बिनती सुन मेरे मीता	गौरी पूरबी, 476		
3.	जाकउ मुशकल अति बने	श्री, पृ. 476	अष्टपदियां, पृ. 70	
4.	पारब्रह्म	अपरं देवा	माझ, पृ. 478 पृ. 98	
5.	जाके वश खान सुल तान	गौरी, पृ. 478	पृ. 182	
6.	बडे-बड़े जो दीसहिं लोग	गौरी, पृ. 479	पृ. 188	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्र. सं.	प्रथम पंक्ति (रा.र)	रा.र.में रागनाम व पृ. सं.	आ.ग्र.में रागनाम व पृ. सं.	विशेष
7.	कितै प्रकारन तूटी प्रीत	धनाश्री, पृ. 479	पृ. 684 धनासरी	
8.	थिर धर बैसो हरि जन	गौरी, वही	पृ. 201 गौड़ी	
9.	उबरत राज राम की	गौरी, पृ. 480	पृ. 215	
10.	राज मिलत जोबन	आसावरी, 490	आसा, 379	आसावरी की जगह "आसा" राग
11.	जिस नीच को कोई	वही।	वही, 385	
12.	उक्ति सियानप	वही।	वही, 387	
13.	चरन कमल की आस	वही, 491	वही, 389	
21.	जेती समग्री	सोरठ, वही	614	
22.	रतन छांड कौडी	वही, 498	615	
23.	गुण गाओ पूरण	वही,	वही	
24.	माया मोह मगन	वही, 488	वही, 616	
25.	सकल वनस्पति	वही, 499	वही, 617	
26.	अविनाशी जीवन को	वही,	वही	
27.	रामदास सरोवर	वही	वही, 625	
28.	बड़े-बड़े राजन	धनाश्री, 504	वही, 672	
29.	हरि एक सिमर	वही, 504-5	वही, 679	
30.	धायो रे मन	टोडी, 507	वही, 712	
31.	मांगों दान	वही, 508	वही, 713	
32.	बाजीगर जैसे	सूही, 510	738	
33.	सेव तोरी माँगू न	वही।	738	
34.	बुरे काम को	वही	वही	
35.	कवन काग	वही, 511	740	
36.	सुमिर सुमिर	वही	वही	
37.	भली सुहावी	वही	745	
38.	संतां के कारज	वही	783	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्र. सं.	प्रथम पंक्ति (रा.र)	रा.र.में रागनाम व पृ. सं.	आ.ग्रं.में रागनाम व पृ. सं.	विशेष
39.	मन में सिंचो	बिलावल, 513	807	
40.	ताती वाउ न लागई	वही।	819	
41.	प्रभु जी तूं मेरे	वही	820	
42.	निभानें को जो देतो	गौड़, 516	863	
43.	गुरु की मूरत मन में	वही, 517	864	
44.	राम नाम संग कर	वही,	865	
45.	अचरज कथा	वही	865	
46.	चार पुकार रहि	रामकली, 520	886	
47.	कौडी बदले	वही, 521	892	
48.	गऊ को चोर	वही।	वही	
49.	उर पै धरती।	मारु, 525	998	
50.	पांच बरष को	वही	999	
51.	हरि बिन जन्म	केदार, 529	1120	
52.	बिसरत नाहि	वही।	1121	
53.	तू मेरा पिता	भैरव 532	1144	
54.	प्रथमे छोड़ी पराई	वही।	1147	
55.	सुख नहीं बहुतै	वही।	वही,	
56.	लाज मरै जो नाम	वही, 533	1149	
57.	नाम लेत कछु	वही।	1150	
58.	सुन सखी मन	बड़ंहस, 543	1192	
59.	ठाकुर तुम शरणाई	सांर, 546	1218	
60.	गोविंद जी तूं	वही।	1226	

"रागरत्नाकर" में प्राप्त सुंदरदास के पदों में केवल निम्नांकित दो पद ही रागबद्ध मिलते हैं।

राग माली गोड[63]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरु ज्ञान को विश्वास गह जिन भ्रमे दूजी ठोर रे ॥
योग यज्ञ कलेश तप व्रत नाम तुल्य न ओर रे ॥
सब संत यूं ही कहत हैं श्रुति सिमृत ग्रंथ पुराण रे ॥
दास सुंदर नाम ते गति लहे पद निरवाण रे ॥

राग मारू[84]

जोई जन राम को भावै हो ॥ कनक कामिनी परिहरे नहिं आप
बंधावै हो ॥ सबही सौं निर्वैता काहू न दुखावहि हो ॥
शीतल वाणी बोल के रस अमृत प्यावे हो ॥ केतो मौन गहे रहे
के हरि गुण गावै हो ॥ मर्म कथा संसार की सब दूर उडावे हो ॥
पांचों इंद्रिय वश करे मन मनहिं मिलावे हो ॥ काम
क्रोध अरु लोभन को खन खोद बहावे हो ॥ चौथे पद को
चीन्ह के ता माहिं समावै हो ॥ सुंदर ऐसे साध के ढिग काल
न आवै हो।

"रागकल्पद्रुम" में प्राप्त अज्ञातनामा कवियों के पदों में हिंदी-निर्गुण-काव्य का अस्तित्व;

"रागकल्पद्रुम" के "प्रथम" खंड में प्राप्त अज्ञातनामा कवियों के निर्गुणपरक पद

1. यह ओंकार निराकार जाको, सब जग में विस्तार।
यह प्रतच्छ देख भयो प्रतीत ताको सुमरो बारंबार ॥[85]

2. रामकृष्ण पूरण परब्रह्म सोई साकार वही निरंकार।
जित तित इत उत वही भरपूर रहो, त्रैलोक्य चराचर घट
घट व्याप रहो करतार।[86]

3. आज रंग है योगी रंग है सो तुम रंग भीने साधू।
अंग-अंग बहुभेष तिहारो, अलख जगाए नाद।[87]

4. तेरो नाम चहुंचक भरपूर रहो तुही,
दुरत फिरत तुही सबन में करत किलोल।
तुही तान तु ही मान तु ही रोम रोम,
रम रहो तु ही मन तु ही बोले बोल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शेष सहस रसना तेहू स्तुति न कर सकत,
तेरो रूप तु ही जाने तु ही अमोल।
गुप्त प्रगट तेरी गति तु ही जाने,
तु ही सागर गुण आगर तु ही मूंदत तु ही खोल।[88]

5. हे गोविन्द नारायण कृष्ण मुरारि भगवंतं जगदीश,
माधो मुकुंद गोपाल हरि परमेश्वर गोवर्द्धन धारी।
मधुसूदन श्याम।
भक्तवत्सल जगदीश गुसाईं दीनदयाल दामोदर,
निरंजन रघुनाथ निराकार नरसिंह पतितपावन,
धन धन जगतपति जपत जग अष्टयाम।[89]

6. रवि तू जगमगात ज्योतिस्वरूप ब्रह्मांड भई।
निरंजन निराकार सहस्रकिरण ब्रह्म तुई।[90]

7. जब ही इश्क सरोद अवाज भई कलाम।
रूप, तेज तब जाय भेद भयो।
ओंकार निरंजन अपार जाको विस्तार ब्रह्म पठायो।[91]

8. यों ही जात जनम अकारथ अचेत चिंता कर ताकी।
जो है निरंजन निराकार सबमें व्याप्त ताकों।
ध्यान धरत नाहीं अज्ञान मत अजहूं समझ कर है कछू वाकी
जे मन विच कर लो लाई श्रीधर पद्मनाभ परमेश्वर,
की सूरत को तुम चाहे दाता विधाता और रखिवंध ताकी॥[92]

9. दीजै कृपाल दयाल हमको तिहारी भक्ति,
निज चरण शरण करतार।
तुहीं आदि तुहीं अंत तुहीं निरगुण तु ही सगुण
तुं ही है जगत आधार।[93]

10. निरगुण निरंजन निराकार करतार गोचर सो देखियत।
सब ही गुणन में समाय रह्यो वाही बात,
काठ में हू तास पास फूलन में विसेखियत
छीर में जो घृत बीज में तरवर सोई जगत जगदीश।
जग पेखियत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाही की जगत जोत नैनन के तारन में, तरन में
ससि में सूरज में देखियत ।[4]

"रागकल्पद्रुम" द्वितीय खंड में प्राप्त अज्ञातनामा कवियों के निर्गुणपरक पद

1. *योगन हो वन ढूंढूं, पिया मैं नहीं पायं।*
कानन मुद्रा गलबीच सैली अंग विभूति रमाये ।[5]
2. *हौं तो चली अब देश विदेश बाबुल तेरी नगरी छूटी।*
वीरन फेर कठिन है आवन, आश मिलन की टूटी।
ससुरे जात हों संग पिया के, माता पिता सों रूटी।
सइयां हंसत मैं अस रोवत हूँ जैसे भारी लूटी।
सांचा मित्र कोई नहीं जग में प्रीति जगत की छूटी।
ससुर के लीक तुराव से पूछो नेहर सों जो फूटी ।[6]
3. *चटक चुनरिया रंगा दे रे उइको रंगा दे रे*
यह चुनरी मेरे नई ओढने की लाख यत्न से बा दे रे।
मैं तो करूंगी भेष योगिनी का लागी लगन मोरी।
तुम से कफायत ढूंढूंगी वन वन तइको लगा दे ।[7]
4. *हो हो होरी, हो हो होरी, सबै जग होरी, हो रही हो।*
सब ही सुहागिन खेलन निकसीं हों दुहागन सो रही हो।
अवसर सब ही बीत गयो है, ना जानो कौन गति वही हो।
गुण अवगुण ले चलहुं सइयां पे जायके चरण दोई गही हो ।[8]
5. *मोरे पिया रे बालम पर देश होरी मैं ना खेलौं।*
होरी अहोरी सब जग होरी में केहे संग रंग भर रेलौं।
सोना लेने पी गए सूना कर गए देश,
सोना मिलो न पी मिले रूपा हो गए केश।
अपने सइयां को ढूंढन निकसी कर योगन को भेश ।[9]
6. *होरी खेलिए री मेरी सजनी अपने प्रिय संग जाई।*
रूप यौवन की अति ही माती देखिए तेरी स्वभाई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये फाल्गुन भाग्यन ते पायो मन में समझ बनाई।
पी को पाय के जान न दीजे फेर अवसर कहां पाई।
रस ही हाथ रहैगो तेरे हौं जो कही तेरे हित की सुनाई।
मान किए लालन कहां पइहों सौतन ही को चाई।[100]

7. योगी रंग है आज रंग है योगी रंग है तुम रंग भीजे शाद।
बहुरूप बहु भेष तिहारे अलख जगा दे अनाहत नाद।
अंग अंग वस्त्र तान तार को अधर मिली भभुताद।
अवीर गुलाल की बुरकी डारे होरी होरी सेज सुवास।
चेल चेलो लाद।[101]

राग कल्पद्रुम, तृतीय खंड, में प्राप्त अज्ञातनामा कवियों के निर्गुणपरक पद

1. हरि हरि नाम लेहो मन मेरे अष्टप्रहर आनंद होय तोरे।
इह लोक परलोक के स्वामी जपो निशिदिन सांझ सवेरे।[102]

2. जगन्नाथ जय जगन्नाथ तू भज ले रे मन मेरा।
भवसागर ज्यों पार जायगो, अब ही चेत सवेरा।
माया मोह भुलाना नट रे एह मेरा एह मेरा।
जब जयदूत की मार परेगी क्या गत होगा तेरा।[103]

3. तूं नर रे रर रे राम नाम तन देरे मन देरे धन दे रे रर राम।
जित तित इत उत दर दर दर दर दोरे मत ताते,
राम नाम लै लै तारत ध्यान धर अष्टजाम।[104]

4. साहब कूं सांचा जानो जी साहब कूं सांचा जानो,
भला और कहे तो क्या मानूं।
एक मांगे एक ठाडो रहे एक न सोंवा दे,
तसवी दे बाबत भगवान साहब वे और कैसे न पहचानूं।
एक है एक चुप रहे और एक करारेन में देत
सोचत सोचत सोच करूँ तो दिल में नित यह ठानूँ।
एक बीज में क्या क्या उपजे आँख सेती देख,
डाल फूल फल पात अचपन क्या क्या और बखानूं।[105]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5. रात सइयां तोरे गरे लाग मैं बड़ी चैन से सोई रे।
उठी हाथ मल मल पछतानी नींद चैन सब सोई रे।
बारापन में खेल गमाई सारी उमर यों ही खोई रे।
अब पछताए कहा होत है, अंत उनसों मुख धोई रे।[106]

6. पिया मोरे गवना ले आये रे।
च्यार कहार मिल डोलिया ले आये, आये बराती ले धाये रे।[107]

7. हम तुम तो एक सरूप।
हमरा तुमरा एक ही रूप।
जब आया काया में सासा।
तुम भए ठाकुर हम भए दासा।[108]

8. जानी तोरे रंग में मैं माती रे।
बांह पकर पिय ले चले रे कोउ नहीं संग साथी रे।[109]

9. अब रे जगत दुइ दिन का बसेरा।[110]

10. गुरु बिन होरी कौन खिलावे कोई पंथ लखावो।
जा का जाको निरमल कर माथा मन तें छुडावे।
फीके रंग जगत के ऊपर फीके रंग चढावे।
लाल गुलाल लगावे हाथ सों भरम अबीर उडावे।
तीन लोक की माया फूंक के को ऐसो फाग रमावे।
हरि हेरत मैं फिरत बावरी हरि नयन में कब आवे।
हरि को लिख का जम दिया सो काहे न धूम मचावे।[111]

11. ऐ मन सोचो ई सुमरन कर ले हरि के चरन चित रख ले।
काहे कूं भटकत फिरत बावरे हरि हरि हरि रट ले।[112]

12. पिया पठवे गवनबा की पाती मैं तो अपने गुणन सर माती।
जो मेरे पिय की खबर ले आवे मैं तो उनके चरण धोलाती।
डोलिया पकर के ले चले खेलूं ना रे, ना कोई संग न साथी।[113]

13. देखहु लोगवा नदिया मैं नैया बइ जाय।
अबके बिछुरे कब मिलि हो रहरे जिय घबराय[114]

14. गोरी तेरो लाद चला बनजरवा।
इस बनजरवा के दशवें दरवजवा, कवन बाट गइलो दइजरवा।[115]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

15. सुगना राम नगर के बासी।
रामनगर में जन्म लियो है, मरन तरन को कासी।[16]

16. गोरी तेरो जोवन सदा नहीं रइहे।
एह जोवना तरवर को छइयां ढुरत ढुरत ढुर जाइहे।[17]

17. सोले नी अनी कौने मेरा झीना बालक सोले।
काम क्रोध मद लोभ मोह में कैसे हो झकझोले।
अगर चंदन के पालने झुलाऊँ रेशम पाट पटोले।
बालापन में खेल गमायो तरुनापन बस होले।
वृद्ध भयो जब हेरन लग्यो जमके खाए गलोले
अब आती जाती झोंटा देती झपक थपक सुख झोले।[18]

18. गोरिया जाति रे बजारे बजार सौदा कर ले री।
रूप रंग के हाट में रूप रंग जो बिकाय।
गए हाट निबट गए सौदा फिर पाछे पछताय।[19]

19. जाग जाग रे मुसाफिर जाग रे परमेश्वर चित्त अनुराग रे।
सगरि उमर यों ही खोई अब हरि चरण में चित्त लाग रे।[20]

20. आगे दिन पीछे गए हरि से किया न हेत।
अब पछताए क्या हुवा, चिडियां चुग गईं खेत।[21]

21. जाना रे सैयां के देशवा।
आट बाट टेढा पैंडा चलने का बड़ा अंदेशवा।[22]

22. राम भजन मोहे श्रवन सुनाव।
नाम कहत सब काम होत है, मन के सब कलुष बहाव।[23]

23. नैहरवा रे मोये रहां लो न जाय।
जब सुध आवे मोरे वीर बलम की, गनत गनत दिन रैन विहाय।
रहत अंदेशन संदेशन पावत नई लगन भइ एरी बलाय।
पचरंगि चूनर मैली भइली पिया बिन विरह विपत रही छाय।[24]

24. सब दिन नहियरवाँ गइली भुलाय ससुरवा में मार।
हरि को किया करार इस नेहर में कोउ न हमार।
झूठो भयो उन हर को आज,
पिया मिले मोहि लागी लाज।[25]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"रागकल्पद्रुम" में उपलब्ध "कबीर बीजक" के अतिरिक्त कबीर के पद एवं अन्य निर्गुणोपासक भक्तों के पद

क्रमांक	कवि	प्रथम पंक्ति	पदभाव	राग तालनाम	खंड व पृ. सं.
1.	कबीर	अलख लखो नहीं	ब्रह्मनिरूपण महिमा	सोरठ-चौताल	खं.2,पृ. 364
2.	कबीर	देखो रामनाम की	ब्रह्मनिरूपण	झिंझोटी-तिताला,	खं. 1,451
3.	कबीर	रामरस ऐसा है रे	ब्रह्मनिरूपण	कलिंगड़ा.	वही ,पृ. 611
4.	नामदेव	विठीयो दियो न	ब्रह्मनिरूपण	टोड़ी-चौताल	वही, पृ. 117
5.	नानक (म.9.)	साधो रचना राम	ब्रह्मनिरूपण	मुलतानी-तिताला	वही, पृ. 544
1.	कबीर	किंगरी निर्वाण बाजे	ज्ञानपरक पद	कलिंग-खेमटा	खं.पृ. 50
2.	कबीर	कोई सुनता हे	ज्ञानपरक पद	वही।	वही, 57
3.	कबीर	संतो खेलो होरी	ज्ञानपरक पद	भैरवी-खेमटा	वही, 231
4.	कबीर	साधो खेल लो जग में	ज्ञानपरक पद	भैरवी-तिताला	वही,244
5.	कबीर	अलख लखो नहीं	ज्ञानपरक पद	सोरठ-चौताल	वही, 364
6.	कबीर	अुठा दे नाले	ज्ञानपरक पद	सारंगलम तिताला	वही, 365
7.	कबीर	चरखा देहो बनाय	ज्ञानपरक पद	भटियार एकताला	वही, 368
8.	कबीर	ज्ञान की आंधी आई	ज्ञानपरक पद	आशावरी, तिताला	वही।
9.	कबीर	बंगला खूब बना	ज्ञानपरक पद	कलिंग-तिताला	वही।
10.	कबीर	हम न मही	ज्ञानपरक पद	वही।	वही।
11.	कबीर	नर जाने अमर	ज्ञानपरक पद	वही	वही, पृ. 339
12.	कबीर	दुख लागे अरु हांसी	ज्ञानपरक पद	जंगला-एकताल	वही, पृ. 501
13.	कबीर	घूंघट को पट खोल	ज्ञानपरक पद	सिंधुकाफी तिताला	वही, पृ. 524
14.	कबीर	बीबी मींडकी री	ज्ञानपरक पद	धनाश्री-तिताला	खं. 2, पृ. 559
15.	कबीर	तोरा मोरा जियरा	ज्ञानपरक पद	पीलू-तिताला	वही, पृ. 63
16.	कबीर	बंगला अजब बना	ज्ञानपरक पद	कलिंग-तिताला	वही, पृ. 611
17.	कबीर	माई मेरो दोनों कुल	ज्ञानपरक पद	काफ़ी-तिताला	वही, पृ. 612
18.	कबीर	हम तो एक ही	ज्ञानपरक पद	बिहारी तिताला	वही, पृ. 629
19.	कबीर	बोलो राम पिंजर के	ज्ञानपरक पद	विहाग तिताल	वही, पृ 632

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1.	कबीर	साचे मन के मीता	अनन्य प्रीति	कनाडी-तिताला	खं. 2, पृ. 367
2.	कबीर	कौन विध प्रीतम पाइए	अनन्य प्रीति	कलिंग	वही, पृ. 368
3.	कबीर	नहीं छांडो बाबा	अनन्य प्रीनि	बसंत-धमार	वही, पृ.507
4.	कबीर	कबीर बिगडा	अनन्य प्रीति	विहाग-तिताला	भाग, 1,पृ.328
5.	कबीर	तुम जागो मोरे बालम	अनन्य प्रीति	भैरवी-जलद	खंड-1, पृ. 380
6.	कबीर	हमन हैं इश्क दीवाना	अनन्य प्रीति	सोरठ	वही, पृ. 681
1.	धर्मदास	समझ मन सोच	अनन्य प्रीति	रेखता-गांधार	खं. 2, पृ. 366
1.	रैदास	मेरी प्रीति गोविंद सों	अनन्य प्रीति	धनाश्री-तिताला	खं. 2, पृ. 553
1.	नानक	हमरी तुमकों लाज[126]	अनन्य प्रीति	मुलतानी-धनाश्री तिताला	वही, पृ. 243
1.	कबीर	मोरे बाबुल दीन्हों	रूपकशैलीके पद	भैरवी धमार यत	खंड 2, पृ. 228
2.	कबीर	मैं गमने नहीं जइहूं	रूपकशैलीके पद	भैरवी-खेमटा	वही, पृ. 238
3.	कबीर	चिलम भरत मोरी	रूपकशैलीके पद	प्रदीप-जयतिश्री	सं. 1, पृ. 339
4.	कबीर	मिल लो री असीं	रूपकशैलीके पद	भैरवी-खेमटा	सं., 1, पृ. 397
5.	कवीर	अब मोहे पिया मिले	रूपकशैलीके पद	बरवा-कहरवा	सं., पृ. 595
1.	कबीर	ना कछु ना कछु	उपदेशपरक पद	कलिंग-खेमटा	खं, 2, पृ. 54
2.	कबीर	भजन बिन तीनों	उपदेशपरक पद	कलिंग मारू-तिताला	खं. 2, पृ. 64
3.	कबीर	क्या रे सोवे तू	उपदेशपरक पद	सिंधु-तिताला	खं. 2, पृ. 369
4.	कबीर	भज राम राम	उपदेशपरक पद	ईमन झिंझोटी तिताला	खं. 2, पृ. 508
5.	कबीर	जाग पियारी अब का	उपदेशपरक पद	भैरवी, तिताला	खं. 2, पृ. 348
6.	कबीर	समझ बूझ के देखो	उपदेशपरक पद	वही।	खं., 1, पृ. वही
7.	कबीर	भगतन क्या नैना	उपदेशपरक पद	भैरवी जदल तिताला	खं. 1, पृ. 393
8.	कबीर	राम रस पीवत जन	उपदेशपरक पद	भैरवी-तिताला	खं., पृ. 396
9.	कबीर	मुख सोवे कुमारिका	उपदेशपरक पद	झिंझोटी-धीमा तिताला	खं. पृ. 442
10.	कबीर	दिवाणें क्या खोजे	उपदेश एवं चेतावनीपूर्ण पद	सोहनी-तिताला	प्र.खृ. पृ. 625
11.	कबीर	हरि को नाम ले	उपदेश एवं चेतावनीपूर्ण पद	सिंदूरा	प्र.खं. पृ. 644

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

12.	नामदेव	गाय ले रे मन	उपदेश एवं चेतावनीपूर्ण पद	गौरी	प्र.खं. पृ. 607
1.	नानक के पद (म. 9)	दया मेरी मेरी करते[127]	उपदेश एवं चेतावनीपूर्ण पद	कलिंग खेमटा	खं. 2, पृ. 57
2.	नानक के पद (म. 9)	साधो मन का मान[128]	उपदेश एवं चेतावनीपूर्ण पद	मुलतानी ; तिताल	खं. 2, पृ. 57 खं. 1, पृ. 544
3.	नानक के पद (म. 9)	साधो, यह मन[129]	उपदेश एवं चेतावनीपूर्ण पद	वही।	वही, पृ. 544
4.	नानक के पद (म. 9)	मन रे कहा भयो	उपदेश एवं चेतावनीपूर्ण पद	वही।	वही।
5.	नानक के पद (म. 9)	रे नर, यह सांची[129]	उपदेश एवं चेतावनीपूर्ण पद	वही।	वही, पृ. 545
6.	नानक के पद (म. 9)	या जग भरम[130]	उपदेश एवं चेतावनीपूर्ण पद	सोरठ	वही, पृ. 669
7.	नानक नाम से	इस दमदा मैनूं[131]	उपदेश एवं चेतावनीपूर्ण पद	झिंझौटी तितांला	वही, पृ. 422
8.	म.1	यह जग मीत न	उपदेश एवं चेतावनीपूर्ण पद	मुलतानी : तिताला	खं. 1, पृ. 545
9.	नानक नामांकित पद	मड़ों जिंदड़ी कब लग[132]	उपदेश एवं चेतावनीपूर्ण पद	आशावरी तिताला	वही, पृ. 613
12.	कबीर	झूठा जगत पसारो	उपदेश एवं चेतावनीपूर्ण पद	खम्भाइच।	खं. 2, पृ. 367
13.	कबीर	हाटड़ी वे छाड चला	उपदेश एवं चेतावनीपूर्ण पद	झिंझोटी तिताला	खं. 1, पृ.426

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निष्कर्ष

शास्त्रीय संगीत के "पद" अंश में हिंदी निर्गुण काव्य का अस्तित्व मुख्यतः दो रूपों में मिलता है[1] निर्गुण भक्तों की पदावली के ग्रहण द्वारा प्रत्यक्ष रूप में तथा निर्गुणभक्ति के प्रमुख तत्त्वों के ग्रहण द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में। दोनों रूपों में यह अस्तित्त्व महत्त्व रखता है, क्योंकि इस प्रकार शास्त्रीय-संगीत के क्षेत्र में उच्च कोटि के आध्यात्मिक पदसाहित्य की श्रीवृद्धि हुई है।

हिंदी निर्गुणकाव्य का सर्वाधिक प्रभाव शास्त्रीय-संगीत की ध्रुपद-शैली पर पड़ा है। ख्याल-शैली में भी उसका पर्याप्त प्रभाव मिलता है तथा ठुमरी-शैली विशेषतः श्रृंगाररस-प्रधान होने पर भी, निर्गुण भक्ति के प्रभाव से अछूती नहीं कही जा सकती, उदाहरण के लिए "भैरवी" की प्रसिद्ध ठुमरी "बाबुल मोरा नैहर छूट्यो जाय" ली जा सकती है।

वस्तुतः आज प्रचलित शास्त्रीय-संगीत की तीनों प्रतिनिधि-शैलियों पर हिंदी निर्गुण काव्य का प्रभाव मिलता है, किंतु इस संबंध में एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि 'जिस प्रकार सगुण भक्तों ने शास्त्रीय-संगीत को ध्रुपदांग की "कीर्तन शैली" प्रदान की है, वैसी कोई स्वतंत्र शैली निर्गुणी भक्तों ने संभवतः शास्त्रीय संगीत को नहीं दी। इतना अवश्य कहा जाता है कि हिंदी संतकवियों के पदों को सभ्य समाज में बड़े सम्मान से गाया जाता है।[133]

संतकाव्य के प्रति अतीव अनुराग के कारण, जब मैंने संगीत के परिप्रेक्ष्य में उसका गहन अध्ययन किया तो मुझे यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम एवं लोकसंगीत; संगीत के सभी क्षेत्रों में, हिंदी के निर्गुण संतकवियों का महान् योगदान, वैष्णव कवियों के योगदान से कम नहीं है तथापि यह मूल्यांकन अद्यावधि उपेक्षित रहा।

संतकवियों ने उच्च कोटि का पद-साहित्य, संगीत की समस्त विधाओं को दिया, जिसमें ज्ञान और भक्ति के साथ, कर्म का जो सामंजस्य है, उतना वैष्णव-काव्य में नही है।

सुंदरदासजी ने तो दो आध्यात्मिक रागमालाओं (राग कदंब) की भी रचना की है। इनकी विशेषता है कि इनके राग भी काल क्रमानुसार प्रातः से क्रमशः रात्रि तक के हैं। 'आदिग्रंथ' की 'रागमाला' सर्वविदित ही है।

'प्रबंध' वाले पंचम अध्याय में, मैंने प्रबंध-धातु, प्रबंध के अंग एवं नाना प्रबंध-भेदों की दृष्टि से, संतकाव्य के समुन्नत स्तर को दिखाया है।

शास्त्रीय-संगीत को, संतकाव्य की इस अपूर्व देन की ओर अभिमुख करना, इस शोध-प्रबंध का ध्येय है?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संदर्भ

1. "गांधर्वमिति विज्ञेयं स्वरतालपदश्रयम्।
   गांधर्व त्रिविधं विद्यात् स्वरताल पदात्मकम्।"
   ना.शा. 28,8 12
2. द्रष्टव्यः प्रबंध का शास्त्रीय अध्ययन-एक संक्षिप्त दिग्दर्शन, डॉ. प्रेमलता शर्मा, पृ. 13 "कबीर बीजक" तथा सुंदरदास के "ज्ञानतत्त्वसागर" के पदों के अतिरिक्त।
3. द्रष्टव्यः रागकल्पद्रुम, द्वितीय खंड, "रागसागर की सूचना" के अंतर्गत पृ. 2 और 3 में दी गई कवियों की सूची में नानक का नाम।
4. द्रष्टव्यः रागकल्पद्रुम का विश्लेषणात्मक अध्ययन (अप्रकाशित शोधप्रबंध चित्तरंजन ज्योतिषी, षष्ठ अध्याय।)
5. द्रष्टव्यः भावसाम्य की दृष्टि से तुलना हेतु कबीर का निम्ननांकित दोहा;
   "गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागों पाँय।
   बलिहारी वा गुरु की, जिन गोविन्द दियो बताय।"
   (सं.सं.सु. सार—वि.हरि.प्र.सं. पृ. 59 साखी सं. 8)
   एवं राग "दरबारी कानड़ा" की एक बंदिश;
6. स्थायी : "जो गुरु कृपा करे कोटिक पाप कटत पल छिन मों।
   अंतरा : गुरु की महिमा हरि सों भारी।
   वेद पुरानन सबहि बिचारी।
   ब्रह्म व्यास रटे पल छिन मों। (क्र.पु.मा., भाग 4, पृ, 659।)
7. मारिफुन्नगमात, नवाब अली खाँ साहेब, दूसरा भाग, प्र.सं. पृ. 111 तथा क्र.पु.भा. भाग 2, पृ. 203, (क्र.पु.मा. में किंचित् शब्दभेद)।
8. क्र.पु.मा. भाग 3, पु. 161।
9. वही, पृ. 66।
10. वही. वही।
11. रा. वि. भाग 2, पृ. 73।
12. क्र. पु. मा. भाग 2, पृ. 40।
13. मौखिक परंपरा से प्राप्त।
14. क्र. पु. मा. भाग 3 , पृ0 389।
   विशेष—यह पद पीछे निराकार- ब्रहा- निरूपण संबंधी पदों के अन्तर्गत आ चुका है। यहां अविगत, अविनाशी , अलख, अगोचर आदि अनेक शब्दों का प्रयोग दिखलाने के लिए इसकी पुनरावृत्ति करनी पड़ी।
15. वही, पृ. 404 ,तुलना हेतु द्रष्टव्य : कबीर का निम्न पदः ''मेरे बाबुल दीन्हों गवनवा, मैं तो चली हूँ सैयां के नगरवा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहें कबीर सुन री दुल्हन , पिय के घर ले चरणवा।
रा. क. खण्ड 2, पृ. 228 प सं. 12 भैरवी – धमार – यत् ।
* द्रष्टव्य : गुरु अमरदास का पदः " निरगुण सरगुण आपै सोई आ. ग्रं. पृ. 12 पर राग माझ , म 3 असटपदि।

16. सं ता जी और र - प्रभुदयाल मीतल , 76/74 टोडी - चौताल।
17. सं. स. तान जी. और रच. पृ. 70 , टोडी-चौताल
18. सं. स. तान. जी. और रच. पृ. 72, गुर्जरी-तिताला।
19. वही, टोडी-झपताल
20. वहीं, पृ. 75, मुलतानी धनाश्री -चौताला।
विशेष- तानसेन ने उक्त पद में ज्ञान और भक्ति को एक समान महत्त्व दिया है। इस सम्बन्ध में भावसाम्य की दृष्टि से तुलना के लिए,
कबीर का निम्न पद द्रष्टव्य है;
" जा नरि रांम भगति नहीं साधी।
सो जनमत काहै न मूवौ अपराधी।।
गरम मुचे मुचि भई किन बांझ, सूकर रूप फिरै कलि मांझ।
जिहि कुल पुत्र न ग्यांन बिचारी, बाकी विधवा काहै न भई महतारी।
क. ग्रं 17/24।
21. वही, पृ 70 टौडी -चौताल।
22. वही, वही, भैरव - धीमा तिताला।
23. वही, पृ 71, भैरव - चौताल।
24. वही, पृ 71, भैरव - चौताल।
25. वही, 75/72, टोडी - चौताल।
26. वही, 75/73।
27. वही, 91/122।
28. वही, 82 9/3, टोडी - चौताल।
29. सं. स. तान की जी. और रच. 73/67।
30. सं. स. तान की जी. और रच. 74/69।
31. वही, 77/78।
32. वही, 74/70।
33. सं स तान की जी. और रच, संगीतसार,पृ 144।
34. वही, पृ 145।
35. वही, पृ 174 , रागमाला से उद्धृत।
36. वही।
37. संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएँ , नर्मदेश्वर चतुर्वेदी , 7 वां सं पृ 61 तुलना हेतु।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

38. वही, पृ 62।
39. वही, पृ 64।
40. वही, पृ 72।
41. वही, पृ 74।
42. वही, पृ 71।
43. वही, पृ 74।
44. सं. वे. और गो. जी. और र. - प्र. गी. प्र. सं. 50/23 ।
45. वही , पृ. 65।
46. वही, पृ. 68।
47. वही, पृ. 72।
48. वही, पृ. 81।
49. वही , पृ. 81।
50. वही, 69/70।
51. वही, पृ 80।
    * और विकार दुविधा तज रे, "बैजू" हरि चरनन भज रे।
    प्रभु क्यों न होत पदरज रे, गोपाल भजन न तज रे।।
    संगीताचार्य बैजू और गोपाल : जीवनी और रचनायें - प्रभुदयाल मीतल, प्र सं 55/ 37।
52. क्र. पु भा. भाग 3, पृ 542 ,543,544,545- राग बिंद्रावनी सारंग चौताल।
53. क्र पु भा भाग 3 पृ 486 - 87-88
54. रा. क. खण्ड 2,628 12
55. रा. वि. भाग 2, पृ. 47।
56. वही, पृ. 50।
57. वही, भाग 3 , पृ 162।
58. मौखिक परम्परा से प्राप्त । पं0 दिलीपचंद्र वेदी जी से सीखी रचना।
59. मौखिक परम्परा से प्राप्त।-वही
60. रा. वि. 3, पृ. 17।
61. वही, भाग प्रथम, पृ. 99.
62. संगीतांजलि, भाग 3, पृ. 184।
63. संगीतांजलि, 5, पृ. 180।
64. रा. वि. 4 पृ. 39।
65. वही, भाग 1, पृ 30: कबीर के नाम से इतना प्रसिद्ध यह पद क. ग्रं. आदि कबीर के प्रामाणिक पुस्तक संग्रहों में नहीं है।
66. मौखिक परंपरा से प्राप्त।
67. वही।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

68. क्र. पु. 3, पृ, 638 - 31।
69. रा. वि. 5, पृ. 638-39 : स्वामी दादू दयाल कृत सं. सं. सुं. सार. वि हरि, 267/1।
70. रा. वि. 2, पृ. 76।
71. वही, पृ. 109।
72. वही, भा. 5 पृ. 172 , महला 1 आ. ग्रं.
73. मौखिक परम्परा से प्राप्त। महला 1 आ. ग्रं
74. वही,। म 1 आ ग्रं
75. रा. वि. तृतीय भाग, पृ. 106, सुंदरदास का सवैया।
76. संगीतांजलि, भाग 4, पृ 30।
77. वही, भा, 2, 52।
78. रा. वि. भाग, 2 पृ 26।
79. क्र. पु. भा. 3, पृ 122।
80. रा. वि. भाग 1, पृ 52 ।
81. मौखिक परम्परा से प्राप्त। कबीर का पद, क, ग्रं.
82. रा. वि. भा 4, पृ. 21 आ ग्रं
83. रा. र., भक्त राम, (प्रकाशित सं. 1983) पृ. 627।
84. वही, पृ. 620-21।
85. पृ. 67, राम भैरव, ताल सुरफाख्ता।
86. पृ. 78, भैरवः जलद तिताला।
87. पृ. 80, भैरव-एकताला।
88. पृ. 121, टोडी-चौताला।
89. पृ. 128 : टोडी - तिताला।
90. पृ. 138 : टोडी - रूपक।
91. पृ. 176 :
92. पृ. 247 : धनाक्षी - चौताल।
93. पृ. 350, भैरवी - चौताल।
94. पृ. 655, राग सोरठ - चौताल।
95. पृ. 60, कलिंग - यत्।
96. वही।
97. पृ. 231 : भैरवी - चर्चरी।
98. पृ. 212 : सोरठ : धमार।
99. पृ. 213 : सोरठ : धमार।
100. पृ. 218 : जयजयवन्ती : तिताला।
101. पृ. 331 : भैरवी - धमार।
102. पृ. वही : भैरव - तिताला।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

103. पृ. 90 : खट्: जलद - तिताला।
104. पृ. 104 : भैरवी - धीमा तिताला।
105. पृ. 109 5 वही।
106. पृ. 110 : भैरवी - जलदः तिताला।
107. पृ. 114 : भैरवी - जलदः तिताला।
108. पृ. 114 : भैरवी - यत्
109. पृ. 116 : भैरवी - तिताला।
110. पृ. 123 : भैरवी।
111. पृ. 118 : होरी।
112. पृ. 129 : सिंधु भैरवी - तिताला।
113. पृ. 169 : आशावरी- तिताला।
114. पृ. 179 : जंगला : खेमटा।
115. पृ. वही।
116. पृ. 179 : झिंझोटी - खेमटा।
117. पृ. वही।
118. पृ. 191 : विहाग - यत्।
119. पृ. 193 : विहारी - खेमटा।
120. पृ. वही : विहाग - तिताला।
121. वही।
122. पृ. 194 : कलिंगड़ा : तिताला।
123. पृ. 195 : भूपाली - झिंझोटी।
124. पृ. 197 : विहाग - यत्।
125. पृ. वही।
126. विशेष यह पद आ. ग्रं. में नहीं है।
127. विशेष : यह पद आदि ग्रंथ में नहीं है।
128. सं. व. 129, सं. के म. 9 के पद आ. ग्रं. में 'गौड़ी' राग में।
129. 'नर' की जगह आ. ग्रं. में 'मन' शब्द 'सोरठ' राग में।
130. पहले 'साधो' शब्द आ. ग्रं. में तथा 'धनासरी' राग में।
131. यह पद नानक के नाम से प्रचलित होने पर भी आ. ग्रं. में नहीं है।
132. आ. ग्रं. में यह पद नहीं है।
133. द्रष्टव्य :- भारतीय संगीत का इतिहास - उमेश जोशी, पृ. 509 (दिलीपचन्द्र वेदी के उद्धृत लेख में से)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रंथों की सूची

संस्कृत ग्रंथ

ग्रंथ	लेखक या संपादक	प्रकाशक
अष्टोत्तरशतोपनिषत्सु	अमृतना-(क) संपा. महादेव शास्त्री	
अद्वयतारकोपनिषद्	(ख) संपा. श्रीराम शर्मा आचार्य	डॉ. चमनलाल गौतम
अभिधान चिन्तामणि'	हेमचंद्र	संस्कृति-संस्थान, बरेली
ईशावास्योपनिषद्	श्रीराम शर्मा आचार्य	
एक सौ आठ उपनिषदें (हिंदी टीका सहित)	संपाः श्रीराम शर्मा आचार्य	संस्कृति-संस्थान, बरेली (उ.प्र.)
ब्रह्मविद्या खंड, साधना खंड और ज्ञानखंड तीन खंडों में)	संपा-श्रीराम शर्मा आचार्य	संस्कृति-संस्थान, बरेली
केनोपनिषद्	वही	वही
कठोपनिषद्	वही	वही
गीतगोविन्द	जयदेव	निर्णय सागर मुद्रणालय मुम्बई नं. 2
चित्रकाव्यमीमांसा		
छान्दोग्योपनिषत्	श्री राम शर्मा आचार्य	
जयदामा		
तत्त्व-संग्रह	संपा. डॉ. विनयतोष भट्टाचार्य	
तैत्तरीयोपनिषद	श्रीराम शर्मा आचार्य	
ध्यानबिंदूपनिषत्	श्रीराम शर्मा आचार्य	
नादबिंदूपनिषत्	श्रीराम शर्मा आचार्य	
नाट्यशास्त्र	भरत	गीता प्रैस
नारद-भक्तिसूत्र	नारद	गोरखपुर सं. 2001।
प्रश्नोपनिषत्	श्री राम शर्मा आचार्य	
पातंजलि योगदर्शन	टीकाःहरिकृष्णदास गोयनका	गीता प्रेस गोरखपुर
ब्रह्मोपनिषत्	श्रीराम शर्मा आचार्य	गीताप्रैस, गोरखपुर
भरत कोष	मतंग	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाभारत	रामनारायणदत्त शास्त्री (टीकाकार)	गीताप्रेस, गोरखपुर।
मंत्रिकोपनिषत्	श्री राम शर्मा आचार्य	
मुण्डकोपनिषत्	श्री राम शर्मा आचार्य	
मंडलब्राह्मणोपनिषत्	श्री राम शर्मा आचार्य	
योगशिखोपनिषत्	संपा. महादेव शास्त्री	आड्यार लाइब्रेरी, मद्रास
योगोपनिषत्	संपा. महादेव शास्त्री	आड्यार लाइब्रेरी, मद्रास
योगवाशिष्ठ	श्री राम शर्मा आचार्य	संस्कृति संस्थान, बरेली
लघुभागवतामृत (बंग अक्षरों में)	रूपगोस्वामी संपा. अतुलकृष्ण गोस्वामी	श्री महाप्रभु चैतन्य मंदिर, 11 नं. सिमूलिया महेंद्र नाथ गोस्वामी लेन, कलकत्ता
वृहदारण्यकोपनिषद्	श्री राम शर्मा आचार्य	
बृहद्देशी	मतंग	
विष्णुसहस्रनाम (हिंदी टीका सहित)	शंकर	गीताप्रेस, गोरखपुर।
श्रीमद्भागवत्		गीताप्रेस, गोरखपुर।
शारदातिलक तंत्र	संपा. आर्थरवेलेन	तांत्रिक टैक्स्ट सोसायटी, कलकत्ता, 1933
शाण्डिल्योपनिषद्	श्री राम शर्मा आचार्य	
संगीत-रत्नाकर	शार्ङ्देव संपा. पं. एस. सुब्रह्मण्यं शास्त्री	आड्यार लाइब्रेरी, 1944,
संगीत पारिजात	पं. अहोबल	
संगीत मकरन्द	नारद संपा. एम. आर तैलंग	बड़ौदा, 1920 सरस्वती
संगीत दर्पण	चतुर दामोदर	महल, तंजौर 1952
संगीतराजं	राणा कुम्भा, संपा. डॉ. प्रेमलता शर्मा	हिंदू विश्वविद्यालय, नेपाल राज्य संस्कृत ग्रंथमाला-5 1963
स्वच्छन्द तंत्र	टीकाः क्षेमेंद्र	रिसर्च विभाग, श्रीनगर।
हठयोगप्रदीपिका	स्वत्मारामयोगीन्द्र	श्री वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
हंसोपनिषद्,	योगी श्रीनिवास	
त्रिशिरब्रह्मणोपनिषद्	श्री राम शर्मा आचार्य	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंग्रेजी ग्रंथ

अलगज़ाली दि मिस्टिक	मारग्रेट स्मिथ	
आउटलाइन्ज़ ऑफ इस्लामिक कल्चर	ए.एम.ए.शास्त्री	बंगलौर प्रैस, बंगलौर।
इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एंड ऐथेकिस	संपा जेम्ज हेस्टिंग्ज़	
क्रिटिकल स्टडी ऑफ़ आदिग्रंथ।	डॉ. सुरेंद्रसिंह कोहली	दि पंजाबी राइटर्ज़ कोआपरेटिव इंडस्ट्रियल सोसाइटी लिमिटिड, न्यू दिल्ली।
कबीर एंड दि कबीर पंथ	वेसकट	
गार्लैंड आफ लैटर्ज़	सर जॉन वुइरौफ़	गणेश एंड कंपनी लिमि. मद्रास।
तंत्राज़ देयर फ़िलॉसफी एंड आकेल्ट सीक्रेट्स	जी.एन. बोस	
दि न्यू ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी	संपा. एगन वेलिज़	
दि एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ म्यूज़िक म्यूज़ियिम		लंदन 1958।
प्रिंसिपल्ज़ ऑफ तंत्राज़,	आर्थर एवेलन	
योगा उपनिषदाज़	श्री निवास आयंगर संपा.	आडयार लाइब्रेरी, 1952
रागाज़ एंड रागिनीज़	ओ.सी. मांगोली	नालंदा प्रकाशन, बम्बई 1948
शक्ति एंड दि शाक्त	सर जॉन वुडरॉफ़	गणेशं एंड कं. प्रा. लिमि. मद्रास 17-1959
सर्पेंट पावर	आर्थर एवेलन	वही।

गुरुमुखी लिपि में लिखित संदर्भ-ग्रंथ

अमोल बाई वारां सटीक		लाला देवीदास जानकीदास पुस्तकांवाले, बाज़ार माई सेवां, अमृतसर।
आदिग्रंथ		
गुरु नानक चिंतन ते कला	डॉ. तारनसिंह	बाजार माइसेवा, अमृतसर
गुरु गिरारथ कोष	पं. तारासिंह नरोत्तम।	
गुरुबाणी संगीत	सरदार ज्ञान सिंह	गुरुद्वारा प्रबंध कमेटी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

		1959
रागमाला निर्णय	भूमिका लेखकः प्यारा सिंह 'पद्म'	
रागमाला निर्णय	शमशेरसिंह 'अशोक'	रागमाला निर्णय कमेटी, अमृतसर।
श्रीगुरपूर्व दरशन	मेहरसिंह 'रागी	बाज़ार माई सेवां, अमृतसर।
श्री गुरुग्रंथ कोष	--	खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी, अमृतसर।
श्री गुरमत निरणय सागर	पं. तारासिंह नरोत्तम	गुरुदत्त प्रेस, अमृतसर।
शबदारथ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जीं	--	शिरोमणिगुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर।
सिरी गुरु नानक चमत्कार	भाई वीरसिंह	खालसा समाचार, हाल बाज़ार अमृतसर।
सत्ते बलवंड दी वार	साहिबसिंह	अमृतसर, 1949

हिंदी ग्रंथ

अष्टछाप के वाद्ययंत्र	चुन्नीलाल शेष	संगीत कार्यालय, हाथरस।
अनुराग बांसुरी	नूर मुहम्मद	हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सं. 2002
आश्रमं भजनावली	--	सस्ता साहित्य मंडल, गोरखपुर
आधुनिक हिंदी काव्य में छंदयोजना	डॉ. पुत्तूलाल शुक्ल	--
उत्तरकांड	--	गीताप्रेस, गोरखपुर
उत्तरी भारत की संत परंपरा	परशुराम चतुर्वेदी	किताबमहल, प्रयाग।
कबीर	डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई।
कबीर ग्रंथावली	संपा. श्यामसुंदरदास	
कबीर वचनावली	अयोध्यासिंह उपाध्याय' हरिऔध	ना.प्र.स.काशी।
कबीर की विचारधारा	डॉ. गोविंद त्रिगुणायत	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कबीर साहेब की शब्दावली	— — —	बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।
कबीर साहित्य की परख	परशुराम चतुर्वेदी	
कबीर साहित्य का अध्ययन	पुरुषोत्तम	
कबीर और जायसी का रहस्यवाद	डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत	
कबीर पंथ	महर्षि शिवव्रतलाल	मिशन प्रेस, इलाहाबाद।
कबीर एक विवेचन	डॉ. सरनामसिंह	
कबीर बीजक	विश्वनाथसिंह जू महाराज (रीवां नरेश)	
कबीर साहेब का बीजक	विचारदास	
काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध	डॉ. उमा मिश्रा	दिल्ली पुस्तक सदन, दिल्ली।
क्रमिक पुस्तकमालिका (6 भाग)	भातखंडे	
गीता	—	गीताप्रेस, गोरखपुर।
गुसाईं गुरुबानी	संपादित।	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
गुरु अर्जुनदेव की बानी	संपा. प्यारासिंह 'पद्म'	भाषाविभाग, पटियाला
गोरक्ष सिद्धांत संग्रह	गोपीनाथ कविराज	
गोरखबानी	संपा. पीताम्बरदत्त बड़थवाल	हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई-2
गीतगोविन्द (हिंदी टीका)		
छंदः प्रभाकर	जगन्नाथप्रसाद भानु।	
छंदः शास्त्र की भूमिका	शिवकुमार नारायण।	
जायसी ग्रंथावली	रामचंद्र शुक्ल	
तसव्वुफ अथवा सूफीमत	चंद्रबली पाण्डेय	सरस्वती मंदिर, बनारस।
तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि	डॉ. गोपीनाथ कविराज	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
तालप्रकाश	भगवतशरण शर्मा	संगीत कार्यालय, हाथरस
तालमार्तंड	सत्यनारायण वशिष्ठ	संगीत कार्यालय, हाथरस
दादूदयाल की बानी		बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
दादू	क्षितिमोहन सेन	
नाथ संप्रदाय	डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी	
नानकबानी	डॉ. जयराम मिश्र	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाहुड़ दोहा	मुनि रामसिंह	
प्रेमरससिद्धांत	कृपालुदास महाराज।	
प्रणवभारती	पं. ओंकरनाथ ठाकुर	
प्रबंध का शास्त्रीय अध्ययनः एक संक्षिप्त दिग्दर्शन	डॉ. प्रेमलता शर्मा	
बालकांड	तुलसीदास	गीताप्रेस गोरखपुर : उ.प्र.
भागवत दर्शन	डॉ. हरवंशलाल शर्मा	
भरत का संगीतसिद्धांत	कैलाशचंद्रदेव 'वृहस्पति'	
भक्तिरसामृतसिंधु (हिंदी टीका)	रूपगोस्वामी	दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
भारतीय ताजमंजरी		
भारतीय तालदीपिका		
भारतीय संगीत का इतिहास	उमेश जोशी।	मानसरोवर प्रकाशन महल फीरोज़ाबाद, 1957
भारतीय संस्कृति और साधना (2 खंड)	गोपीनाथ कविराज	
भारतीय संगीत	उत्तमराम शुक्ल	दुर्लभ प्रकाशन मंदिर, मथुरा।
मीरा मंदाकिनी	नरोत्तमदास	
मीरा वृहत् पद संग्रह	पद्मावती 'शवनम'	
महाभारत	चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य	
मीरासुधासिंधु	आनन्दस्वरूप महाराज।	
मीरांबाई की पदावली	परशुराम चतुर्वेदी	
मीरा पदावली		हिंदी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
मीरा-स्मृति-ग्रंथ	संकलनः भगवानदास	
मीरां एक अध्ययन	तिवारी	
मीरां दर्शन		
मीराबाई का काव्य		
मारिफुन्नगमात	राजा नवाबअली	
मात्रिक छंदों का विकास	डॉ. शिवनन्दन प्रसाद	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद	डॉ. कपिलदेव पांडेय	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
मध्यकालीन हिंदी संत विचारधारा और साधना	केशनीप्रसाद चौरासिया	
योगप्रवाह	डॉ. पीताम्बरदत्त 'बड़थ्वाल'।	
रागकल्पद्रुम	संपा. कृष्णानंद व्यासदेव	
राजस्थान का लोकसंगीत	देवी लाल सामर	
रागविज्ञान	पटवर्धन	
रागरत्नाकर	भक्तराम	
रामवर्षा(भाग 1)		श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशनलीग, लखनऊ। 1945।
विचार और वितर्क	डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी	इलाहबाद, 1954
विद्यापति की पदावली	जयनाथ 'नलिन'	
विचार और विश्लेषण	डॉ. नगेंद्र	ज्ञानमंडल लिमिटिड, कबीरचौरा, वाराणसी।
विष्णु सहस्रनाम	शंकर	गीताप्रेस, गोरखपुर।
श्री राधामाधवचिन्तन	हनुमान प्रसाद पोद्दार	गीताप्रेस, गोरखपुर।
श्री श्री चैतन्य चरितावली		गीताप्रेस गोरखपुर।
श्री गुरुग्रंथः एक परिचय	डॉ. धर्मपाल मैनी	
सुंदर ग्रंथावली (दो खंड)	संपा. पुरोहित हरिनारायण शर्मा	राजस्थान रिसर्ज सोसाइटी, कलकत्ता।
सत्य कबीर की साखी		
स्वामी दादूदयाल की बानी	चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी	
संतुसुधासार (संक्षिप्त और वृहत्)	वियोगी हरि	
संतकाव्य	परशुराम चतुर्वेदी	किताब महल, इलाहाबाद
सूफी काव्य संग्रह		
सूफ़ीमत साधना और साहित्य	रामपूजन तिवारी	
सूफीमत और हिन्दी — साहित्य	डॉ. विमल कुमार जैन	आत्माराम एंड संस, दिल्ली।
सूफ़ीकाव्य		

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत साहित्य का इतिहास	कीथ	मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
सुन्दर दर्शन	त्रिलोकीनारायण दीक्षित	
सुन्दरविलास	सुंदरदास	वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।
संतों की निर्गुण-सगुण समन्वय-साधना	आचार्य विनयमोहन शर्मा	
संतमतसरभंग सम्प्रदाय	डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्माचारी	बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना
संत नामदेव की हिन्दी पदावली	डॉ. भगीरथ मिश्र	लखनऊ विश्वविद्यालय।
संतबानी संग्रह	गणेशप्रसाद द्विवेदी	
सूरसारावली	सूरदास	
सिद्ध साहित्य	डॉ. धर्मवीर भारती,	किताब महल, प्रयाग
सूरसागर		
संगीतांजलि का.	ओंकारनाथ ठाकुर	श्री कला संगीत भारती, हि. वि. वि. वाराणसी।
संगीतशास्त्र	के. वासुदेव शास्त्री	प्रकाशनशाखा ,सूचना-विभाग, उत्तर प्रदेश।
संगीतज्ञ तानसेनः जीवनी और रंचनाएँ	प्रभुदयाल मीतल	
संगीतज्ञ बैजू और गोपालः जीवनी ओर रचनाएँ-	प्रभुदयाल मीतल	
सती सोरठी योगी बृजाभार	महादेव प्रसाद सिंह	
संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएँ	नर्मदेश्वर चतुर्वेदी	
हिन्दी साहित्य की भूमिका	डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दीग्रंथ रत्नाकर, बम्बई।
हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि-	गोविंद त्रिगुणायत	साहित्य निकेतन, कानपुर
हिन्दी साहित्य का इतिहास-	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	का. ना. प्र. स.,14 वां सं.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-- डॉ. रामकुमार वर्मा

हिन्दी काव्य और उसका सौदर्न्य-- डॉ. ओमप्रकाश।

हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय-- पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

हिन्दी और मराठी का निर्गुण-संतकाव्य। डॉ. प्रभाकर माचवे।

हिन्दी को मराठी संतों की देन डॉ. विनयमोहन शर्मा।

हिंदी संतकाव्य-संग्रह गणेश प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी छंदप्रकाश रघुनन्दन शास्त्री राजपाल एंड सन्ज, कश्मीरी गेट दिल्ली।

हिन्दी भक्ति -- साहित्य में लोकतत्व--- डॉ रवीन्द्र भ्रमर भारती साहित्य मंदिर, फव्वारा।

हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास(षोडश भाग) ना. प्रा. स. काशी।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल हजारीप्रसाद द्विवेदी

हिन्दी काव्यधारा राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत डॉ उषा गुप्ता लखनऊ विश्व विद्यालय।

बँगला ग्रंथ

जपसूत्रम् (6 भाग) स्वामी प्रत्यगात्मानन्दजी सरस्वती

संगीत रागकल्पद्रुम (तृतीय खण्ड) कृष्णानन्द व्यासदेव।

गोरख विजय संपा. पंचानन मण्डल।

लघुभागवतामृत (बंग संस्करण) मूल लेखक : रूपगोस्वामी।

हस्तलिखित ग्रंथ और अप्रकाशित शोधप्रबन्ध

गुरुप्रनाली जां गुरुबंसावली (ह. लि.) (गुरुमुखी में)

दादूदयाल जीवन-दर्शन और काव्य रामनारायण 'उपाध्याय'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुवपद और हिन्दी साहित्य — के.सी.डी. यजुर्वेदी, आगरा विश्वविद्यालय.

नाथ और संतसाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन- (प्रकाशित भी) — नगेन्द्रनाथ उपाध्याय, काशी हिन्दू विंश्वविद्यालय।

राग कल्पद्रुम का विश्लेषणात्मक अध्ययन — डॉ ।चेतरंजन ज्योतिषी (काशी हिन्दू विश्वविघालय से प्रस्तुत; शोध-प्रबन्ध)

सेवादास जी की बानी — ह. लि. 18 वीं शताब्दी का ग्रंथ।

हिन्दी और कश्मीरी के निर्गुण संतकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन। — डॉ. कृष्णा शर्माः कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय।

हिन्दी के श्रृंगारयुग में संगीतकाव्य — डॉ. हेमलता भटनागरः दिल्ली विश्वविद्यालय -

पत्रिकाएँ

नागरी प्रचारिणी पत्रिका
जरनल ऑफ़ म्यूज़िक एकैडमी, मद्रास।
इंडियन म्यूज़िक जरनल, दिल्ली।
पंजाबी दुनिया, पटियाला।
आलोचना
साहित्य संदेश, आगरा।
निर्धन संदेश
संगीत, हाथरस।
नादरूप — श्री कला संगीत भारती, जनवरी, 1961।
निर्गुणियारा — अंकः 5-20 जुलाई, 1955
विश्लेषण — पंजाबः हिन्दी साहित्य अकादमी, कुरूक्षेत्र
फ़िफ्थ ऑल इण्डिया म्यूज़िक टीचर्ज कान्फ्रैंस एंड म्यूजिक फ़ैस्टिवल, जयपुर, — गांधर्व महाविद्यालय, जयपुर 8 से 11 अक्टूबर अंक, 1964
ब्रजभारती, मथुरा।
अनेकान्त
विश्लेषण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डॉ. सीता बिम्ब्रॉ

अमर स्वाधीनता-सेनानी; चरखे के एवं गांधीवादी शिक्षा-पद्धति के आचार्य; आजीवन ख्याति, पद तथा पुरस्कारों से दूर रहकर; देश की सांस्कृतिक नींव को मज़बूत बनाए रखने के महद् अनुष्ठान में लगे रहने वाले परम श्रद्धेय बाबा लालसिंहजी की दत्तक पुत्री हैं, सीता बिम्ब्रॉ। शास्त्रीय संगीत,सत्साहित्य लेखन तथा गांधीवादी जीवन-पद्धति में जीने का संस्कार, इन्हें 'बाबाजी' ने ही दिया है। उन्हीं की छत्रछाया में 32 वर्ष रहकर, आपने स्व. पं. दिलीपचन्द्र वेदी, स्व. पं. हुसनलाल, स्व. उस्ताद नसीर अहमद जी से, संगीत-शिक्षा ग्रहण की। उनके बनाए सशक्त व्यक्तित्व का ही यह श्रेय है कि अबतक इनकी साहित्य, संगीत और अध्यात्म-विषयक 16 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण-परिक्षद् ;छब्म्त्ज्द्ध ने आपकी 'स्वाधीनता की सरगम' सी. डी. तथा 'आज़ादी की याद में' वी.सी.डी. बनाई। 'गांधी-हिन्दुस्तानी-साहित्य-सभा', 'राधा-लक्ष्मी-ट्रस्ट' तथा 'लोककल मंच' नई दिल्ली ने आपको 'संगीत-विभूति' का सम्मान दिया। विश्वकर्मा-समाज ने'लेखिका भूषण' का। आपके लेख; हिंदुस्तान, नवभारत टाइम्ज़,दैनिक जागरण, आजकल, गांधी-मार्ग,गगनांचल, वॉइस, लाइट ऑफ नेशन, मंगलप्रभात, हरिजन, संगीत, विश्वभारती आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। 'कालिदास संस्कृत संगीत एवं ललित कला अकादमी एवं अनेकों गांधीवादी संस्थाओं द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठियों में आपके आलेख-पाठ तथा एफ. एम. रेनबो तथा इंद्रप्रस्थ चैनलों से भी आपके अनेकों कार्यक्रम हो चुके हैं। संप्रति आप हरिजन-सेवक-संघ; गांधी-भवन दि.वि.वि. में बच्चों को चरखा, रामायण-गान तथा हिंदी-वर्तनी-सुधार जैसे कार्यों में संलग्न रहती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

₹ 950/-
ISBN 81-7487-900-5
9788174879004

RADHA PUBLICATIONS
4231/1, Ansari Road, Daryaganj
New Delhi-110002
Phones : 23247003, 23254306
website. radhapublications.com
Email : radhapublications@rediffmail.com

Collection, Varanasi